॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रंथमाला
१३

महाकवि श्रीहर्षप्रणीतं

नैषधमहाकाव्यम्

चन्द्रकलाऽऽख्यया व्याख्यया हिन्द्यनुवादेन च विभूषितम्

व्याख्याकारः—
काव्यतीर्थः, साहित्यसुधाकरो महोपाध्यायः
डॉ. आचार्यश्रीशेषराजशर्मा
पूर्व-प्राध्यापकः
काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य, नेपालस्थत्रिभुवनविश्वविद्यालयस्य,
वाल्मीकिसंस्कृतमहाविद्यालयस्य च

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
१९७६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

चौखम्बा सुरभारती ग्रंथमाला

१३

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
......२२१........
दिनांक.......

महाकविश्रीहर्षप्रणीतं
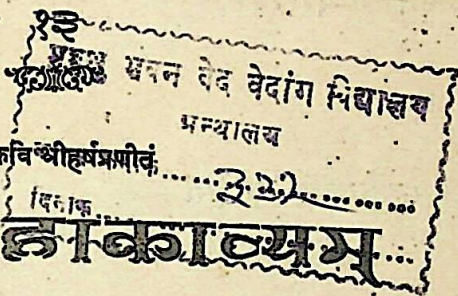
नैषधमहाकाव्यम्

चन्द्रकलाऽऽख्यया व्याख्यया हिन्द्यनुवादेन च विभूषितम्

(प्रथमः सर्गः)

व्याख्याकारः—

काव्यतीर्थः, साहित्यसुधाकरो महोपाध्यायः

रेग्मीः आचार्य श्रीशेषराजशर्मा

भूतपूर्व–प्राध्यापकः

काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य, नेपालस्थत्रिभुवनविश्वविद्यालयस्य,
वाल्मीकि संस्कृतमहाविद्यालयस्य च

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

१९७६

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA

13

NAIṢADHA MAHĀKĀVYAM

OF

MAHAKAVI SHRIHARSHA

with 'Chandrakala' Sanskrit-Hindi Commentaries.

by

Shri Shesaraja Sharma Regmi

Formerly Professor

Banaras Hindu University, Tribhuvan University
and Valmiki Sanskrit Mahavidyalaya, Nepal

THE

CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

1976

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूमिका

महाकाव्य नैषधीयचरित और महाकवि श्रीहर्ष

संस्कृतके महाकाव्योंमें नैषधीयचरितका उच्च स्थान है। यों तो संस्कृतमें काव्य अपरिमित हैं, परन्तु पठनपाठनमें लघुत्रयी, बृहत्त्रयी और पञ्च महाकाव्य बहुत ही प्रसिद्ध हैं। लघुत्रयीमें प्रस्तुत महाकाव्यका परिगणन न होनेसे उसके विषयमें कुछ भी न कहकर बृहत्त्रयी और पञ्च काव्योंकी कुछ चर्चा की जाती है। किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित ये तीन महाकाव्य बृहत्त्रयीके रूपमें विख्यात हैं। इसी तरह कुमारसंभव, रघुवंश, किरातार्जुनीय, शिशुपालवध और नैषधीयचरित ये पाँच महाकाव्य "पञ्चकाव्य" के रूपमें विख्यात हैं और पठनपाठनमें बहुप्रचलित हैं। इन दोनों विभागोंमें व्याकरणके "यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम्" इस उक्तिके समान पूर्व पूर्वकी अपेक्षा पर पर श्रेष्ठ माने गये हैं। लोकोत्तर चमत्कार, रस, भाव, ध्वनि, अलङ्कार, पदलालित्य और वर्णन तथा प्रमाणमें असाधारणता इत्यादि गुणगणोंसे नैषधीयचरित महाकाव्य सब काव्योंमें श्रेष्ठ माना गया है।

पूर्वोक्त इन सभी काव्योंका कथानक इतिहास और पुराणसे लिया गया है परन्तु इनको आकर्षक मनोहर कल्पनासें सजाकर महाकवियोंने अतिशय सुन्दरता और नवीनतासे चित्रित किया है। अतएव—

"अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथेदं रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥
शृङ्गारी चेत्कविः काव्ये सर्वं रसमयं जगत्।
स एव वीतरागश्चेन्नीरसं सर्वमेव तत्॥"

यह उक्ति विशेषतया इन लोगोंमें लागू होती है। यद्यपि—

"उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥"

इस उक्तिसे नैषधमें पदलालित्यकी विशेषता होनेपर भी तीनों गुण होनेसे माघकी विशेषता परिलक्षित होती है, परन्तु—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"तावद्भा भारवेर्भाति यावन्माघस्य नोदयः ।
उदिते नैषधे भानौ क्व माघः ? क्व च भारविः ? ॥"

अर्थात् भारविकी कान्ति माघके उदयके पहले ही शोभित होती है, परन्तु नैषधरूपी सूर्यके उदय होनेपर कहाँ माघ ? और कहाँ भारवि ? इस उक्तिसे नैषध-महाकाव्यकी पूर्वोक्त दोनों काव्योंसे श्रेष्ठता जानी जाती है ।

नैषधीयचरित महाकाव्यके कर्ता महाकवि श्रीहर्षके पिताका नाम श्रीहीर और माताका नाम मामल्लदेवी वा अल्लदेवी था, यह बात उक्त काव्यके प्रत्येक सर्गके अन्तस्थित—

"श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः सुतं ।
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम् ॥"

इस पद्यसे जानी जाती है। किसी उदयनाचार्य नामके पण्डितसे श्रीहर्षके पिता श्रीहीर शास्त्रार्थमें हार गये थे । ये उदयनाचार्य कुसुमाञ्जलि और किरणावलीके कर्ता दशमशताब्दीके मैथिल दार्शनिक उदयनाचार्यसे भिन्न थे । अन्तिम समयमें श्रीहीरने अपने पुत्र श्रीहर्षसे उक्त पण्डितको शास्त्रार्थमें जीतनेका अनुरोध किया था । श्रीहर्षने अपनी मातासे चिन्तामणि मन्त्रकी दीक्षा लेकर भगवतीकी उपासनाके फलस्वरूप असाधारण विद्वत्ता और प्रतिभाकी प्राप्ति होनेसे खण्डन-खण्डखाद्य नामक वेदान्त ग्रन्थमे उदयनाचार्यको परास्त किया ।

असामान्य वैदुष्यपूर्ण प्रतिभाके कारण जब इनकी रचना दुरूह हुई तब अपनी कृतिको वोधगम्य करानेके लिए उन्होंने आधीरातके समय शिरमें पानी डालकर दही पिया, तब कफकी प्रचुरतासे कुछ बुद्धिकी मन्दता हुई तदनन्तर इनका काव्य समझनेमें लोग समर्थ हुए ऐसी जनश्रुति है ।

ऐसी भी उक्ति है कि महाकवि श्रीहर्ष प्रसिद्ध आलङ्कारिक मम्मटभट्टके भाञ्जे थे और उन्होंने अपनी रचना नैपधचरित मामाको दिखलाया । मम्मटने कहा कि "मुझे काव्यप्रकाशके सप्तम उल्लास लिखनेके पहले ही यह ग्रन्थ मिल जाता तो दोषोंके उदाहरण ढूँढनेमें अनेक ग्रन्थोंको देखनेका परिश्रम नहीं उठाना पड़ता, तुम्हारे एक ही ग्रन्थसे सब काम चल जाता" परन्तु इस लोकोक्तिमें सत्यताका बहुत कम अंश देखा जाता है। महाकवि श्रीहर्ष कान्यकुब्ज (कन्नौज) और वाराणसीके महाराज विजयचन्द्र और जयचन्द्रके सभापण्डित थे और वे कान्यकुब्जेश्वरसे पानके दो बीड़े और आसन पाते थे, तथा समाधिमें ब्रह्मका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साक्षात्कार करते थे। उनका काव्य मधुकी वृष्टि करनेवाला है और तर्कोंमें उनकी उक्तियाँ शत्रुओंको परास्त करने वाली हैं, ये बात ग्रन्थके अन्तस्थित—

"ताम्बूलद्वयमासनं च लभते यः कान्यकुब्जेश्वरा-
द्यः साक्षात्कुरुते समाधिषु परं ब्रह्म प्रमोदाऽर्णवम्।
यत्काव्यं मधुवर्षि, घर्षितपरास्तर्केषु यस्योक्तयः
श्रीश्रीहर्षकवेः कृतिः कृतिमुदे तस्याऽभ्युदीयादियम्॥" २२–१५३

इस पद्यसे जानी जाती है। महाकवि श्रीहर्षका समय विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दी है। ये न्याय, वेदान्त आदि अनेक शास्त्रोंपर पूर्ण अधिकार रखते थे। इनके ग्रन्थोंका संक्षिप्त परिचय देकर पीछे नैषधीयचरितपर कुछ लिखेंगे—

१ स्थैर्यविचारणप्रकरण—संभवतः इसमें बौद्धोंके क्षणिकवादका खण्डन होगा।

२ विजयप्रशस्ति—इसमें जयचन्द्रके पिता विजयचन्द्रकी प्रशस्ति है।

३ खण्डनखण्डखाद्य—इसमें न्यायकी रीतिका अवलम्बन कर न्यायका खण्डन और अद्वैतसिद्धान्तका मण्डन है। यह अत्यन्त दुरूह और पाण्डित्यका निकषग्रावा माना गया है। बादमें विक्रमकी सोलहवीं शताब्दीके शङ्करमिश्रने इसीकी शैलीपर "वादिविनोद" नामक ग्रन्थकी रचना की थी।

४ गौडोर्वीशकुलप्रशस्ति—इसमें वङ्गदेशके किसी राजाकी प्रशस्तिका वर्णन है।

५ अर्णववर्णन—इसमें समुद्रका वर्णन होगा।

६ छिन्दप्रशस्ति—इसमें छिन्द नामके किसी राजाकी प्रशस्तिका वर्णन होगा।

७ शिवशक्तिसिद्धि—नामके अनुसार इसमें भी शिव और शक्तिकी सिद्धि की गई होगी।

८ नवसाहसाङ्कचरितचम्पू—संभवतः राजा भोजके पिता "नवसाहसाङ्क" उपाधिवाले सिन्धुराजका चरित होगा।

९ नैषधीयचरित महाकाव्य—महाकविने इसे "तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले" कहकर चिन्तामणि मन्त्रके चिन्तनके फलस्वरूप बतलाया है। इसमें कुल २२ सर्ग हैं। रत्नाकर महाकविके "हरविजय महाकाव्य"—(जिसमें ५० सर्ग हैं) को छोड़कर प्रचलित अन्य समस्त महाकाव्योंमें यह विशाल और श्रेष्ठ है। इसमें तेरहवाँ सर्ग ५६ श्लोकोंका, १५वाँ सर्ग ९३ श्लोकोंका और उन्नीसवाँ सर्ग ६७ श्लोकोंका है। इनको छोड़कर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्य सर्गोंमें श्लोकोंकी संख्या शताऽधिक है। किं बहुना १७वाँ सर्ग २२२ श्लोकोंका है।

इसमें समष्टि श्लोकसंख्या २८२८ है। कहा जाता है कि अपने आश्रयदाता महाराज जयचन्द्रकी आज्ञासे महाकविने इस महाकाव्यको रचा था। इसमें उन्नीस छन्दोंका प्रयोग किया गया है जिनमें सबसे अधिक उपजाति छन्द हैं, जिसमें ७ सर्ग लिखे गये है। वंशस्थमें ४ सर्ग हैं। इनके अतिरिक्त दोधक, वसन्ततिलका, स्वागता, द्रुतविलम्बित, रथोद्धता, शार्दूलविक्रीडित, स्रग्धरा, शिखरिणी और अनुष्टुप् आदि छन्द हैं। १७वाँ सर्ग तो अनुष्टुप् छन्दोंमें ही रचित है। इस महाकाव्यपर २३ टीकाएँ रची गई हैं ऐसा प्रतीत हुआ है, जिनमें प्राचीनमें मल्लिनाथकी जीवातु और नारायण पण्डितकी प्रकाश टीका तथा नवीनमें जीवानन्द विद्यासागर और म० म० हरिदास सिद्धान्तवागीशकी टीकाएँ उपलब्ध हैं, और टीकाएँ केवल नाममात्रसे प्रसिद्ध हैं। श्रीहर्षके ग्रन्थोंमें नैषधीयचरित और खण्डनखण्डखाद्य उपलब्ध हैं अन्य अप्राप्य हैं।

नैषधीयचरितका उपजीव्य है महाभारतके वनपर्वस्थित नलोपाख्यान। इसमें आरम्भमें नलके अनुपम गुणगणोंका सविस्तर वर्णन है। दमयन्तीके पूर्वाऽनुरागकी भी विशद चर्चा है। अनन्तर नलकी दमयन्तीमें आसक्ति, दमयन्तीके विरहसे अधीर होकर राजा वनविहारके लिए जाते हैं, वहाँ तालाबके पास एक हंसको पकड़ते हैं। मनुष्यकी वाणीमें उसका विलाप सुनकर उसको छोड़ देते हैं। वह फिर आकर उनसे दमयन्तीका वर्णन करता है, और दमयन्तीके साथ राजाका सम्बन्ध करानेका प्रण कर दमयन्तीके पास जाता है। हंस दमयन्तीसे राजा नलके सौन्दर्य और गुणोंका वर्णन करता है। राजा भीम दमयन्तीके स्वयंम्वरका प्रयोग करते हैं। नारदके मुखसे स्वयंवरका समाचार सुनकर इन्द्र यम, वरुण और अग्निके साथ दमयन्तीके स्वयंवरमें जानेके लिए प्रस्तुत होते हैं। रास्तेमें नलको देखकर अपने कौशलसे उन्हें अपना दूत बनाते हैं। बड़े समारोहसे स्वयंवर होता है; चारो देवता नलका रूप लेकर उपस्थित होते हैं। नलका निश्चय करनेमें असमर्थ होकर दमयन्ती व्याकुल होती है। अन्तमें देवगण उनकी पति-भक्तिसे प्रसन्न होकर अपने चिह्नोंको प्रकट करते हैं। तब दमयन्तीके साथ नलका विवाह होता है। लौटते समय कलिके साथ देवताओंका सामना होता है। कलिके नास्तिकवाद प्रकाशित करनेपर देवगण उसका खण्डन करते हैं। कलि नलके ऊपर कुपित होकर उनको उनको पीडित करनेका प्रण करके द्वापरके साथ अन्यत्र कहीं उपयुक्त

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थान न देखकर उनके बागीचेमें रहकर अवसर ताकता रहता है। अन्तमें नल और दमयन्तीकी प्रथम मिलनरात्रिका मनोहर वर्णन करके ग्रन्थ समाप्त होता है।

नलोपाख्यानके अनुसार भाई पुष्करके साथ जूएमें राज्य गँवाँकर नलका पर्यटन आदि वृत्तान्त न होनेसे यह महाकाव्य अधूरा-सा प्रतीत होता है। अतएव कहा जाता है कि इसमें पहले ६० सर्ग थे, परन्तु अभी २२ सर्ग मात्र उपलब्ध हैं। इसमें रस, अलङ्कार, ध्वनि, गुण, रीति आदि अलङ्कार शास्त्रके प्रत्येक विषयसे पूर्ण मौलिकता परिलक्षित होती है। कालिदासकी रचनाओंको छोड़कर पूर्ववर्ती समस्त कवियोंकी रचनाएँ इसके सामने हतप्रभ हो गई हैं। श्रीहर्षने आलङ्कारिकोंके नियमका भी पूर्णरूपसे पालन नहीं किया है, वर्णनोंमें उनकी विलक्षण कल्पनाओंकी उड़ानने सब सीमाका अतिक्रमण कर दिया है। श्री-हर्षने अलङ्कार आदिके प्रयोगोंमें दर्शन और व्याकरणसे उदाहरण लेकर अपनी अनोखी सूझबूझका परिचय दिया है। संस्कृतभाषामें श्रीहर्षका असाधारण अधिकार देखा जाता है। "नैषधं विद्वदौषधम्" यह प्रसिद्ध जनश्रुति है। नैषधको शास्त्रकाव्य कहनेमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं प्रतीत होती है। अलङ्कारोंमें उन्होंने अतिशयोक्ति, अपह्नुति, अर्थान्तरन्यास, उपमा, व्यतिरेक, रूपक आदिमें अपना बेजोड़ कौशल प्रदर्शित किया है। यमक आदि शब्दाऽलङ्कारके प्रयोगमें भी वे अपनी सानी नहीं रखते हैं। हाँ, भारवि और माघके समान एकाक्षर और द्व्यक्षरवाले श्लोकोंका प्रदर्शन कर श्रीहर्षने अपना काव्यशिल्प नहीं दरसाया है, वस्तुतः यह भूषण है, दूषण नहीं है। नैषधीयचरितके १३वें सर्गके ३४वें श्लोकमें उन्होंने पञ्चनलीका वर्णन करनेमें अद्भुत और असाधारण वैदुष्य दिखाया है। नैषधीयचरितमें प्रसाद-गुण और वैदर्भी रीतिका पर्याप्त प्रदर्शन होनेपर भी माधुर्य और ओजोगुण और पाञ्चाली, आदि रीतिकी प्रचुरता उपलक्षित होती है। इस काव्यरत्नके रसास्वा-दनके लिए कठिन परिश्रम और परिमार्जित बुद्धि अपेक्षित है इसमें दो मत नहीं।

अब नैषधीयचरितके कुछ असाधारणश्लोकोंका प्रदर्शन कर इस प्रसङ्गका उपसंहार किया जाता है—

नलके प्रताप और यशका कैसा मनोहर वर्णन है—

"तदोजसस्तद्यशसः स्थिवाविमौ वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा।
तनोति भानोः परिवेनकैतवात्तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि॥ १-१४।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दमयन्तीके विरहसे सन्तप्त होनेपर भी नलके अयाचित-व्रतका पालन कितनी रमणीयतासे वर्णित है—

"स्मरोपतप्तोऽपि भृशं न स प्रभुर्विदर्भराजं तनयामयाचत।
त्यजन्त्यसून्शर्म च मानिनो वरं त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम्॥ १–५०।

नलसे पकड़े जानेपर हंसके मुखसे करुणरसका कैसा सजीव वर्णन है—

"मदेकपुत्रा जननी जराऽतुरा, नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो! विधे! त्वां करुणा रुणद्धि नो"॥ १–१३५।

महाराज भीमकी पुरीका श्लिष्ट रूपमें कैसा मनोहर वर्णन है—

"स्थितिशालिसमस्तवर्णतां न कथं चित्रमयी बिभर्तु या।
स्वरभेदमुपैतु या कथं कलिताऽनल्पमुखारवा न वा"॥ २–९८।

नलकी साधुताका वर्णन व्याकरणपाण्डित्यप्रदर्शनपूर्वक कैसी प्रवीणतासे किया गया है—

"क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाऽभिधेया।
या स्वौजसां साधयितुं विलासैस्तावत्क्षमानामपदं वहु स्यात्"॥ ३–२३।

कितनी मार्मिकतासे नलके घोड़ोंका वर्णन अधिकारूढवैशिष्टयरूपकसे प्रदर्शित है—

"विना पतत्रं विनतातनूजैः समीरणैरीक्षणलक्षणीयैः।
मनोभिरासीदनणुप्रमाणैर्न निर्जिता दिक्कतमा तदश्वैः"॥ ३–३७।

कैसी सूझबूझसे नलके गुणोंका अतिशयोक्तिसे अशक्यवर्णन प्रतिपादित किया है—

"यदि त्रिलोकी गणनापरा स्यात्तस्याः समाप्तिर्यदि नायुषः स्यात्।
पारेपरार्धं गणितं यदि स्याद् गणेयनिःशेषगुणोऽपि स स्यात्"॥ ३–४०।

चन्द्रमें स्थित कलङ्कको उत्प्रेक्षा और अपह्नुतिसे कैसी सजीवतासे दरसाया है—

"स्मरमुखं हरनेत्रहुताऽशनाज्ज्वलदिदं विधिना चक्रषे विधुः।
बहुविधेन वियोगिवधैनसा शशमिषादथ कालिकयाऽङ्कितः"॥ ४–७३।

इस पद्यमें देवताओंका विग्रह नहीं है, शब्द ही देवता हैं ऐसे मीमांसासिद्धान्त-को कैसी विलक्षणतासे प्रस्तुत किया है—

"विश्वरूपकलनादुपपन्नं तस्य जैमिनिमुनित्वमुदीये।
विग्रहं मखभुजामसहिष्णुर्व्यर्थतां मदर्शनि स निनाय"॥ ५–३९।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सार अलङ्कारके द्वारा इन्द्रकी श्रेष्ठताका कैसा मनोहर वर्णन है—

"लोकस्रजि द्यौर्दिवि चादितेया अप्यादितेयेषु महान्महेन्द्रः।
किङ्कर्तुमर्थी यदि सोऽपि रागाज्जागर्ति कक्षा किमतः पराऽपि ॥ ६-८१ ।

स्वर्गसे भी भारतवर्षकी श्रेष्ठताका कितना सुन्दर वर्णन है—

"स्वर्गे सतां शर्म, परं न धर्मा भवन्ति भूमाविह तच्च ते च।
इष्टयाऽपि तुष्टिः सुकरा सुराणां कथं विहाय त्रयमेकमीहे" ॥ ६-९८ ।

एक दमयन्तीको देखनेसे अनेक अप्सराओंको देखनेका कौतुक पूर्ण होता है, इस बातको कैसी विलक्षणतासे दिखाया है—

"भ्रूश्चित्ररेखा च, तिलोत्तमाऽस्या नासा च, रम्भा च यदूरुसृष्टिः।
दृष्टा ततः पूरयतीयमेकाऽनेकाऽप्सरःप्रेक्षणकौतुकानि" ॥ ७-९२ ।

महाराज नल कामदेव और अश्विनीकुमारोंसे भी सुन्दर हैं इस बातका दमयन्तीके मुखसे किस तरह विलक्षणतासे प्रदर्शित किया है—

"न मन्मथस्त्वं स हि नाऽस्तिमूर्तिर्न वाऽऽश्विनेयः स हि नाऽद्वितीयः।
चिह्नैः किमन्यैरथवा तवेयं श्रीरेव ताभ्यामधिको विशेषः" ॥ ८-२९ ।

दमयन्ती नलको "आपकी वाणी मात्रके सुननेसे नाम सुननेकी इच्छा शिथिल नहीं हुई है" इस बातको दृष्टान्त अलङ्कारसे कैसे मधुरतापूर्वक कहती है—

"गिरः श्रुता एव तव श्रवःसुधाः, श्लथाऽभवन्नाम्नि तु न श्रुतिस्पृहा।
पिपासुता शान्तिमुपैति वारिणा, न जातु दुग्धान्मधुनोऽधिकादपि" ॥ ९-५ ।

नैषधीयचरितके एकसे नौ सर्गों तक आपाततः कतिपय मनोहर श्लोकोंका प्रदर्शन किया गया है, इसको परिसंख्याके रूपमें नहीं समझना चाहिए।

नैषधीयचरितकी इस नवीन चन्द्रकलाव्याख्यामें मैंने प्राचीन तथा नवीन जीवातु, प्रकाश और जयन्तीका निरीक्षणपूर्वक छात्रोंको सुगमतया बोध करानेका प्रयत्न किया है, मैं इस विषयमें कहाँ तक सफल हुआ हूँ इस विषयमें कृतवेदी विद्वद्गण तथा छात्रगण ही प्रमाण हैं।

अन्तमें त्वरा और प्रमादके कारण होनेवाले स्खलनमें सूचनाकी प्रार्थनाकर मैं अपने लघुवक्तव्यको समाप्त करता हूँ।

वाराणसी, ब्रह्माघाट
सं० २०३३ मेषसंक्रान्तिः।

शेषराजशर्मा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नायकादिसिद्धाऽन्त ।

नैषधीयचरितमें राजा नल धीरोदात्त नायक हैं, दमयन्ती परकीया (कन्या) नायिका हैं। ये दोनों विभाव हैं। हंसादि द्वारा नल और दमयन्तीके वर्णनपरक वाक्य पुष्प, चन्दन, चन्द्रोदय, वसन्तऋतु, कोकिलशव्द, भ्रमरझङ्कार आदि उद्दीपन विभाव हैं, परस्परनिरीक्षण आदि अनुभाव है। निर्वेद आदि व्यभिचार भाव हैं। १७ सर्गतक विप्रलम्भश्रृङ्गारका पूर्वराग है, अनन्तर संभोगश्रृङ्गार है। प्रधान रस श्रृङ्गार है, करुण आदि अङ्गरस हैं। स्थायी भाव रति है। वैदर्भी रीति प्रधान है कहीं-कहीं गौडी भी है, गुण प्रायः प्रसाद है कहीं-कहीं माधुर्य और ओज भी है। हंस निसृष्टार्थ दूत है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

नैषधीय चरितका संक्षिप्त कथासार

[नवमसर्गपर्यन्त]

प्रथम सर्ग

निषध देशके महाराज नलके गुणोंका वर्णन। उनके गुणोंको दूत, द्विज और वन्दी आदिसे सुनकर विदर्भ देशके नरेश भीमकी पुत्री दमयन्तीका उनमें पूर्वरागका वर्णन। उसी तरह दमयन्तीके लोकोत्तर सौन्दर्य और गुणगणोंको सुनकर उनपर नलके अनुरागका वर्णन। दमयन्तीके विरहसे आकुल होकर सभाभवनमें रहनेमें नलकी असमर्थता। मन बहलानेके लिए बागीचेमें जानेके लिए उनकी इच्छा। नलके घोड़ेका वर्णन। घुड़सवार अपने वयस्योंके साथ उपवनमें नलकी यात्राका वर्णन। उपवनके साथ वहाँके तालाबका सविस्तर वर्णन। वहाँपर एक सुनहरे हंसको देखकर नलसे उसका ग्रहण। मनुष्यवाणीमें नलकी निन्दा कर अपनी माता, हंसी और बच्चोंकी शोचनीयताको प्रकाश कर हंसका अति-करुण विलाप करना। उससे आर्द्रचित्त होकर सहृदय नलका उसे छोड़ देना।

द्वितीय सर्ग

नलसे छुटकारा पाकर हंसका अपने घोंसलेमें जाना और वहाँसे लौटकर फिर राजाके पास आना। हंसका राजाके लिए मृगयाका समर्थन करना और प्रत्युपकारके लिए दमयन्तीका और उनके सौन्दर्य आदि गुणोंका सविस्तर वर्णन कर राजाके प्रति दमयन्तीकी आसक्ति उत्पन्न करानेकी प्रतिज्ञा करना।। दमयन्तीके विरहसे अपनी अवस्थाका राजासे वर्णन। राजाकी अनुमतिसे आकाशमार्गसे हंसका कुण्डिनपुरके प्रति प्रस्थान। प्रस्थान-समयमें शकुन आदिका वर्णन। कुण्डिनपुर, वहाँके भवनोंका और राजप्रासादका सविस्तर वर्णन। उपवनका वर्णन और हंसका उपवनमें सखियोंके साथ दमयन्तीको देखना।

तृतीय सर्ग

दमयन्तीके पास जमीनपर हंसका उतरना। उसे देखकर पकडनेके लिए दमयन्तीकी इच्छा। उनको सखियोंका निषेध। दमयन्तीका अभिप्राय जानकर प्रतारण कर हंसका सखियोंसे बहुत दूर एकान्त स्थानमें दमयन्तीको पहुँचाना और मनुष्यवाणीसे उनको उलहना देकर अपना परिचय देकर नलके गुणोंका सविस्तर वर्णन करना। हंसका नलके प्रति दमयन्तीका अनुराग उत्पन्न करनेका प्रयत्न करना और "मैंने आपको परिश्रान्त कर अपराध किया है, अतः आपका कौन-सा ईप्सित कर्म करूँ ?" कहना। दमयन्तीका उत्तरके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तौरपर आरम्भमें आकारगोपन करना और श्लेषसे द्व्यर्थक पदोंका प्रयोग करना, तब नलके प्रति दमयन्तीका सन्देश देनेके लिए हंसकी असमर्थता प्रकट करनेपर दमयन्तीका व्यक्त रूपसे नलमें अपने अनुरागको प्रकाश करना तथा नलको अपने प्रीतिसन्देश देनेके लिए उपयुक्त अवसरका प्रतिपादन करना। हंसका भी नलकी विरहाऽवस्थाका वर्णन करना और दमयन्तीका नलके साथ सम्बन्धमें औचित्यका प्रतिपादन करना। इसी समय ढूँढती हुई सखियोंका उस स्थानपर आना और रुखसत होकर हंसका विरहसे व्याकुल और अशोक वृक्षके नीचे शय्यामें लेटे हुए राजाके पास आकर कार्यकी सफलताकी सूचना करना।

चतुर्थ सर्ग

दमयन्तीकी विरहाऽवस्थाका करुण वणन। सखियोंके सामने उपालम्भपूर्वक दमयन्तीका चन्द्रकी निन्दा और राहुकी स्तुति करना। पीछे उनकी सविस्तर कामदेवकी निन्दा करना। दमयन्तीका कामवाणसे विद्ध होकर ज्याद। बोलनेमें असमर्थ होना, सखियोंके साथ उक्ति-प्रत्युक्तिमें तत्पर होना जैसे कि पूर्वार्द्धमें सखियोंका दमयन्तीको प्रबोध करना उत्तरार्द्धमें दमयन्तीका उत्तर देना। इसी प्रसङ्गमें नैराश्यके कारण दमयन्तीका वेहोश होना, उनको होशमें लानेके लिए सखियोंका अनेक उपचार करना। दमयन्तीकी चेतनाका वर्णन, कोलाहल सुनकर राजा भीमका प्रधान मन्त्री और प्रधान वैद्यके साथ कन्याके अन्तःपुरमें आना तथा प्रधानमन्त्री और प्रधान वैद्यका एक ही पद्यमें भिन्न-भिन्न अर्थमें दमयन्तीके उपयुक्त उपचार-का प्रतिपादन करना और राजाका स्वयंवर करानेकी सूचना कर दमयन्तीको आश्वासन देना।

पञ्चम सर्ग

राजा भीमका दमयन्तीके स्वयंवरमें उपस्थितिके लिए अनेक राजाओंको निमन्त्रण देना। उसी अवसरमें पर्वत मुनिके साथ देवर्षि नारदका आकाशमार्गसे इन्द्रके समीप जानेका वर्णन। आतिथ्य कर इन्द्रका "राजाओंका धर्मयुद्धमें प्राणपरित्याग न करनेका" कारण पूछना। नारदका स्वयंवरमें दमयन्तीको प्राप्त करनेके लिए राजाओंकी युद्धमें अप्रवृत्तिका वर्णन करना और युद्ध देखनेके लिए अपनी इच्छाको प्रकट करना। इन्द्रका उपेन्द्रके संरक्षणमें युद्धमें अपनी अभीतिका प्रकाश करना और दोनों ऋषियोंका मर्त्यलोकके प्रति प्रस्थान। यम, वरुण और अग्निके साथ इन्द्रका कुण्डिनपुरमें दमयन्तीके स्वयंवरमें जानेके लिए प्रवृत्त होना, उस समय इन्द्राणी और अप्सराओंके भिन्न-भिन्न मनोभावोंका सविस्तर वर्णन। इन्द्र आदि देवताओंका दमयन्तीके पास दूतीको और राजा भीमके पास मित्रभावसे अनेक उपहारोंको भेजना। रास्तेमें रथमें आरूढ होकर कुण्डिनपुरमें प्रस्थानके लिए उद्यत नल का सौन्दर्य देखकर देवताओंमें प्रत्येककी दमयन्तीकी प्राप्तिमें निराशाका वर्णन। इन्द्रका अपने साथ देवताओंका परिचय देकर नलके प्रति अपनी अर्थिताको जतलाना। इन्द्रका कपट न जानकर अपनेको सौभाग्यशाली समझकर नलका उनकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए स्वीकृति देना। तब इन्द्रका दमयन्तीके पास दूतरूपमें जानेके लिए नलसे प्रकाशरूपमें अनुरोध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करना। देवताओंका कपट जानकर स्वयम् दमयन्तीके प्रणयार्थी होनेसे नलकी अस्वीकृति जतानेपर इन्द्र आदि देवताओंके सामूहिक प्रयासकर अदृश्य शक्ति देकर जबर्दस्तीसे नलको अपने दूतकर्ममें प्रवृत्त करना।

षष्ठ सर्ग

रथमें आरूढ होकर वेगपूर्वक नलका कुण्डिनपुरमें पहुँचना। पहुँचनेके बाद ही उनकी मूर्तिका अदृश्य होना। नलका राजमन्दिरमें और अन्तःपुरमें प्रवेश करना। भ्रमसे दमयन्तीका दर्शन होना, और अन्तःपुरमें नलका अनेक महिलाओंका अनेक क्रियाकलाप देखना। नलकी जितेन्द्रियताका वर्णन। स्त्रियोंके स्पर्शसे वचनेके लिए नलका चतुष्पथ (चौराहा)-में जाना, वहाँपर भी उनका अनेक स्त्रियोंके सम्पर्कका वर्णन। अन्तःपुरमें माताको प्रणाम कर लौटती हुई दमयन्तीके साथ योग होनेपर भी भ्रमवश नलका न पहचानना तथा दमयन्तीका भी नलको न देखना। भ्रमणक्रमसे नलका दमयन्तीके प्रासादमें पहुँचना। वहाँपर नलका स्त्रियोंकी अनेक क्रियाओंको देखना। सखीसमाजमें विद्यमान दमयन्तीको नलका पहचानना। वहाँपर अग्नि, यमराज और वरुणकी दूतियोंकी प्रार्थनाओंमें दमयन्ती-की अस्वीकृतिसे नलको उनकी प्राप्तिमें प्रत्याशा। दमयन्तीको इन्द्रकी दूतीसे इन्द्रसन्देशका विशेष वर्णन। इन्द्रकी प्रार्थनाको स्वीकार करनेके लिए सखियोंकी भी दमयन्तीसे अभ्यर्थना। दमयन्तीने प्रौढिपूर्वक इन्द्रकी प्रणयप्रार्थनाका प्रत्याख्यान, नलमें आशाका सञ्चार होना।

सप्तम सर्ग

दमयन्तीके अङ्गप्रत्यङ्गोंमें नलका दृष्टिपात। नलका मन ही मन दमयन्तीके केशोंसे आरम्भ कर नखपर्यन्त शरीरके अवयवोंका सविस्तर वर्णन कर उनके समीप प्रकटरूप होने-की इच्छा करना।

अष्टम सर्ग

दमयन्ती और उनकी सखियोंका नलको देखकर अनेक मनोभावोका वर्णन। उनका नलसे "आप कौन हैं? और कहाँसे आये हैं?" इस प्रकार प्रश्न करनेमें भी असमर्थ होकर आसन छोड़कर उठना, तब स्वयम् दमयन्तीका नलके प्रति मधुरवचनोंसे स्वागत वाक्यका भाषण। आसनमें बैठनेका अनुरोध कर "आप कौन हैं? कहाँसे आये हैं? और कहाँ जायंगे?" इत्यादि प्रश्न कर दमयन्तीका नलके रूपकी प्रशंसा करना। दमयन्तीका नलके कुल आदिका परिचय पूछकर उनमें नलत्वकी संभावना करना। तब आसनमें बैठकर नलका अपनेको इन्द्र इत्यादि देवताओंका सन्देश लेकर आया हुआ दूत बतलाना। क्रमपूर्वक नलका दमयन्तीके विरहसे इन्द्र, अग्नि, यम और वरुणकी अवस्थाका वर्णन करना और चारो देवताओंके प्रणयसन्देशका वर्णन कर एकको वरण करनेके लिए प्रार्थना करना।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नवम सर्ग

नलवर्णित इन्द्र आदि देवताओंके प्रणयसन्देशको अनसुना-सा कर दमयन्तीका पुनः नलके कुल और नामका प्रश्न करना। उनमें अनावश्यकताका प्रतिपादन कर नलका देवताओंकी प्रणय-प्रार्थनाका उत्तर देनेके लिए दमयन्तीसे अनुरोध कर अपनेको चन्द्रवंशका अङ्कुर बतलाकर "शिष्टलोग अपने नामका ग्रहण नहीं करते हैं" कहकर नामकीर्तनमें अपनी असमर्थता जताना। तब दमयन्तीका भी परपुरुषके साथ कुलललनाके संभाषणमें अनौचित्य प्रतिपादन कर देवताओंके प्रणयसन्देशके उत्तर देनेमें अपनी असमर्थता दिखाना। तब दमयन्तीकी सखीका दमयन्तीके अभिप्रायको अपने वचनसे कहना और नलकी अप्राप्तिमें दमयन्तीकी आत्महत्या करनेका इरादा जताना। तब नलका आत्महत्या करनेपर भी दमयन्तीपर तत्तद्देवताओंका अधिकार होनेका वर्णन करना। फिर उनका दमयन्तीसे देवताओंमें किसी एकको वरण करनेके लिए अनुरोध करना। दमयन्तीका उस वाक्यको अनसुना-सा कर नलको यमदूतके समान कहना। तब सखीका नलके प्रति दमयन्तीका दृढ अनुरागका वर्णन करना, तब भी दूतकर्ममें धुरन्धर नलका इन्द्र आदि देवताओंकी प्रतिकूलतासे नलके साथ दमयन्तीके विवाहमें असंभाव्यताका वर्णन करना। अनन्तर दमयन्तीके करुणापूर्ण विलापसे पिघल कर दूतकर्म भूलकर नलका अनेक प्रकारसे दमयन्तीको आश्वासन देना। फिर अपने दूतकर्मका स्मरण होनेसे नलका पश्चात्ताप करना, तब हंसका आकर दमयन्तीको निराश न करनेके लिए अनुरोध करना। अनन्तर नलका "इन्द्र आदि देवताओंमें किसी एकको वा मुझे वरण कीजिए" ऐसा अनुरोध कर विचारपूर्वक कार्य करनेकी सम्मति देना। नलको पहचान कर दमयन्तीका प्रसन्न और लज्जित होना। उनकी सखीका नलको वरण करनेके लिए दमयन्तीके दृढ निश्चयकी सूचना करना। यह सुनकर लज्जित होकर नलका देवताओंके साथ स्वयंवरमें अपनी उपस्थितिका ज्ञापन कर जाना। अन्तमें नलका इन्द्र आदि देवताओंको दमयन्तीका सब वृत्तान्त सुनाना।

इति शम्।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूक्तयः

अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्करोति सुप्तिर्जनदर्शनाऽतिथिम् । १–३९ ।
त्यजन्त्यसून्शर्म च मानिनो वरं त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् । १–५० ।
स्मरः स रत्यामनिरुद्धमेव यत्सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः । १–५४ ।
क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग् जनः । १–१०२ ।
विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि । १–१३१ ।
तरुणीस्तन एव दीप्यते मणिहारावलिरामणीयकम् । २–४४ ।
ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् । २–४८ ।
धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्सन्निधिरेव सन्निधिः । २–५३ ।
स्वत एव सतां पराऽर्थता, ग्रहणानां हि यथा यथार्थता । २–६१ ।
कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते । ३–१७ ।
विधेरपि स्वारसिकः प्रयासः परस्परं योग्यसमागमाय । ३–४८ ।
सन्दर्भ्यते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन । ३–४९ ।
ह्रदे गभीरे हृदि चाऽवगाढे शंसन्ति कार्याऽवतरं हि सन्तः । ३–५३ ।
अशक्यशङ्काव्यभिचारहेतुर्वाणी न वेदा यदि सन्तु के तु । ३–७८ ।
अहेलिना किं नलिनी विधत्ते सुधाकरेणाऽपि सुधाकरेण । ३–८० ।
अलं विलम्ब्य, त्वरितुं हि वेला, कार्ये किल स्थैर्यसहे विचारः ।
गुरूपदेशं प्रतिभेव तीक्ष्णा प्रतीक्षते जातु न कालार्तिः ॥ ३–९१ ।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा । ३–९३ ।
आत्यन्तिकाऽसिद्धिविलम्बिसिद्ध्योः कार्यस्य काऽऽऽर्यस्य शुभा विभाति । ३–९६ ।
इतः स्तुतिः कः खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति । ३–११६ ।
प्रियमनु सुकृतां हि स्वस्पृहाया विलम्बः । ३–१३४ ।
तदुदितः स हि यो यदनन्तरः । ४–३ ।
त्रसति कः सति नाऽऽश्रयबाधने ? ४–१६ ।
क्वसहतामवलम्बलवच्छिदामनुपपत्तिमतीमपि दुःखिता । ४–११० ।
झटिति पराशयवेदिनो हि विज्ञाः । ४–११८ ।
साधने हि नियमोऽन्यजनानां, योगिनां तु तपसाऽखिलसिद्धिः । ५–३ ।
कर्म कः स्वकृतमत्र न भुङ्क्ते ? ५–६ ।
यावदर्हकरणं किल साधोः प्रत्यवायधुतये न गुणाय । ५–९ ।
आकरः स्वपरभूरिकथानां प्रायशो हि सुहृदोः सहवासः । ५–१२ ।
पूर्वपुण्यविभवव्ययलब्धाः सम्पदो विपद एव विमृष्टाः !
पात्रपाणिकमलाऽर्पणमासां तासु शान्तिकविधिर्विधिदृष्टः ॥ ५–१७ ।
उत्तरोत्तरशुभो हि विभूनां कोऽपि मञ्जुलतमः क्रमवादः । ५–३७ ।
वर्त्म कर्षतु पुरः परमेकस्तद्गताऽनुगतिको न महाऽर्घः । ५–५५ ।
चौर्य काचिदथवाऽस्ति निरूढा, सैव सा चरति यत्र हि चित्तम् । ५–५७ ।
तं धिगस्तु कलयन्नपि वाञ्छामर्थिवागवसरं सहते यः । ५–८३ ।
याचमानजनमानसवृत्तेः पूरणाय बत ! जन्म न यस्य ।
तेन भूमिरतिभारवतीयं, न द्रुमैर्न गिरिभिर्न समुद्रैः ॥ ५–८८ ।
किं ग्रहा दिवि न जाग्रति ते ते ? भास्वतस्तु कतमस्तुलयाऽऽस्ते ? ५–१०० ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आर्जवं हि कुटिलेषु न नीतिः । ५–१०३ ।
ह्रीर्गिराऽस्तु वरमस्तु पुनर्न स्वीकृतैव परवागपरास्ता । ५–१०५ ।
दुर्जया हि विषया विदुषाऽपि । ५–१०६ ।
हास्यतैव सुलभा न तु साध्यं, तद्विधित्सुभिरनौपयिकेन । ५–११५ ।
शंसति द्विनयनी दृढनिद्रां द्राङ् निमेषमिषघूर्णनपूर्णा । ५–१२६ ।
स्वतः सतां ह्रीः परतोऽपि गुर्वी । ६–२२ ।
पलालजालैः पिहितः स्वयं हि प्रकाशमासादयतीक्षुडिम्भः । ८–२ ।
मुग्धेषु कः सत्यमृषाविवेकः ? ८–१८ ।
वाग्जन्मवैफल्यमसह्यशल्यं गुणाधिके वस्तुनि मौनिता चेत् ।
खलत्वमल्पीयसि जल्पितेऽपि, तदस्तु बन्दिभ्रमभूमितैव ॥ ८–३२ ।
बिम्बाऽनुबिम्बौ हि विहाय धातुर्न जातु दृष्टाऽतिसरूपसृष्टिः । ८–४६ ।
द्विषन्मुखेऽपि स्वदते स्तुतिर्यः, तन्मिष्टता नेष्टमुखे त्वमेया । ८–५१ ।
विवेकधाराशतधौतमन्तः सतां न कामः कलुषीकरोति । ८–५४ ।
नामाऽपि जागर्ति हि यत्र शत्रोस्तेजस्विनस्तं कतमे सहन्ते ? ८–७४ ।
पिपासुता शान्तिमुपैति वारिणा, न जातु दुग्धान्मधुनोऽधिकादपि । ९–५ ।
गरौ गिरः पल्लवनाऽर्थलाघवे मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता । ९–८ ।
जनः किलाचारमुचं विगायति । ९–१३ ।
स्वभावभक्तिप्रवणं प्रतीश्वराः कया न वाचा मुदमुद्गिरन्ति वा । ९–२६ ।
ह्रदस्य हंसावलिमांसलश्रियो बलाकयेव प्रबला विडम्बना । ९–२७ ।
अकाञ्चनेऽकिञ्चननायिकाऽङ्के किमारकूटाभरणेन न श्रियः ? ९–२८ ।
नृपत्किशोरी कुरुतामसङ्गतां कथं मनोवृत्तिमपि द्विपाऽधिपे ? ९–२९ ।
मृणालतन्तुच्छिदुरा सतीस्थितिर्लवादपि त्रुट्यति चापलात्किल । ९–३१ ।
निषिद्धमप्याचरणीयमापदि सती क्रिया नाऽवति यत्र सर्वथा ।
घनाऽम्बुना राजपथेऽतिपिच्छिले क्वचिद्बुधैरप्यपथेन गम्यते ॥ ९–३६ ।
क्व वा निधिर्निर्धनमेति किं च तं स वा कपाटं घटयन्निरस्यति ? ९–३९ ।
अयोऽधिकारे स्वरितत्वमिष्यते कुतोऽयसां सिद्धरसस्पृशामपि ? ९–४२ ।
मुखं विमुच्य श्वसितस्य धारया वृथैव नासापथधावनश्रमः । ९–४४ ।
……न्याय्यमुपेक्षते हि कः ? ९–४६ ।
विजृम्भितं यस्य किल ध्वनेरिदं विदग्धनारीवदनं तदाकरः । ९–५० ।
चकास्ति योग्येन हि योग्यसंगमः । ९–५६ ।
सुरेषु विघ्नैकपरेषु को नरः करस्थमप्यर्थमवाप्तुमीश्वरः ? ९–८३ ।
जनाऽऽनने कः करमर्पयिष्यति ? ९–१२५ ।
न वस्तु दैवस्वरसाद्विनश्वरं सुरेश्वरोऽपि प्रतिकर्तुमीश्वरः । ९–१२६ ।
सतां हि चेतःशुचिताऽऽत्मसाक्षिका । ९–१२९ ।
विचार्य कार्यं सृज मा विधान्मुधा कृताऽनुतापस्त्वयि पार्ष्णिविग्रहम् । ९–१३४ ।
न मोघसङ्कल्पधराः किलाऽमराः । ९–१४५ ।
स्तवे रवेरप्सु कृतप्लवैः कृते न मुद्वती जातु भवेत्कुमुद्वती । ९–१४८ ।

इति ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

नैषधीयचरितं महाकाव्यम्

चन्द्रकलाऽऽख्यया व्याख्यया हिन्द्यनुवादेन च विभूषितम्

प्रथमः सर्गः

मङ्गलाचरणम्

सृष्टिस्थितिप्रलयरूपदशामुपेतो यद्भ्रूविलासवशगोऽस्ति समस्तलोकः ।
आनन्दकाननपतिं गिरिजापतिं तं प्रारिप्सितं सपदि पूरयितुं नमामि ॥१॥
दैवीं समृद्धिमिह यत्करुणा बिभर्ति यच्चिन्तनं सततमेव सुखं पिपर्ति ।
भोगाऽपवर्गजननी परदेवता सा नित्यं कृतार्थयतु भक्तजनं प्रबोधात् ॥२॥
सौजन्यधन्यबुधतल्लजदेवचन्द्रसौभाग्यभाग्यपरहेमकुमारिसूनुः ।
वीणाप्रावीणगुणभूषणकृष्णपूर्णचन्द्रद्वयीसहजनुर्द्विजशेषराजः ॥३॥
सोऽहं करोमि निषधाऽधिपवृत्तकाव्यव्याख्यां नितान्तसरलीकरणाशयेमाम् ।
श्रीहर्षकोविदकृतिः क्व ? मदीयमन्दसंविच्च कुत्र ? सुतरामसमानयोगः ॥४॥
छात्रोपकारपरतामभिलक्ष्य जातं जानन्तु मामकमिमं प्रगुणप्रयासम् ।
पुष्पोपलब्धिरहितेषु जनेषु जातु किं कोरकोऽपि जनुषा न मुदं करोति ? ॥५॥
हा हन्त ! वर्षनवकाद्दयिताऽनुजेन जातोऽहमस्मि दुरदृष्टवशाद्वियुक्तः ।
हा ! मासषट्कसमयात्पुनरस्मि हन्त ! पूज्याऽग्रजेन च वियुज्य नितान्ततान्तः ॥६॥
"रुग्णं मदग्रजवरं किल काशिकायामानीय भेषजविधानपरो भवामि ।"
मन्मानसप्रभवमत्र शुभाऽभिलाषं हा ! हन्त !! घातुकविधिर्विफलीचकार ॥७॥
जैवातृकत्वमरतिं नितरां तनोति स्वःस्थस्मृतिश्च हृदयं बहुशो दुनोति ।
कालप्रतीक्षणपरः समयं नयामि श्रीविश्वनाथचरणौ शरणं प्रयामि ॥८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ तत्र भवांश्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनप्राप्ताऽलौकिकप्रतिभाप्रकर्षो महाकविः श्रीहर्षः पुण्यश्लोकश्लोकनपरं नैषधीयचरिताऽभिधानं महाकाव्यं विधित्सुरादौ वस्तुनिर्देशरूपं मङ्गलं निर्दिशति निपीयेति ।

निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथां तथाऽऽद्रियन्ते न बुधाः सुधामपि ।
नलः सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः स राशिरासीन्महसां महोज्ज्वलः ॥ १ ॥

अन्वयः—यस्य क्षितिरक्षिणः कथां निपीय बुधाः सुधाम् अपि तथा न आद्रियन्ते । सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलो महसां राशिः महोज्ज्वलः स नल आसीत् ॥ १ ॥

व्याख्या—यस्य = प्रकृतस्य, क्षितिरक्षिणः = भूपतेः, कथानायकस्य नलस्येति भावः । कथाम् = उपाख्यानं, निपीय = नितरामास्वाद्य, सादरं श्रुत्वेति भावः । बुधाः = विद्वांसः, सुधाम् अपि = अमृतम् अपि, तथा = तेन प्रकारेण, न आद्रियन्ते = न आदरं कुर्वन्ति, बुधाः सुधाम् उपेक्ष्य नलकथां बहु मन्यन्त इति भावः । सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः = शुक्लातपत्रीकृतयशोमण्डलः, महसां = तेजसां, राशिः = समूहः, रविरिवेतिभावः । महोज्ज्वलः = उत्सवदीप्यमानः, नित्यमहोत्सवशालीति भावः । सः = प्रसिद्धः, नलः = नलनामको राजा, आसीत् = अभवत् ॥ १ ॥

अनुवादः—जिन राजा नलकी कथाको सुनकर विद्वान् (वा देवता) अमृतका भी वैसा आदर नहीं करते हैं । महाराज नल कीर्तिमण्डलको सफेद छत्र बनाने वाले, तेजोंके राशिस्वरूप (सूर्यके समान), उत्सवोंसे उज्ज्वल अथवा अतिशय शृङ्गार-रसवाले थे ॥ १ ॥

टिप्पणी—विघ्नध्वंसके लिए वा आरब्ध कार्य निर्विघ्नपूर्वक समाप्त हो जाय इसके लिए मङ्गलका आचरण किया जाता है । मङ्गलके तीन भेद होते हैं— नति (नमस्कार), स्तुति और वस्तुनिर्देश । यहाँपर पुण्यश्लोक (पवित्र कीर्तिवाले) नलरूप वस्तुका निर्देश करनेसे वस्तुनिर्देशरूप मङ्गल है । क्षितिरक्षिणः = क्षितिं रक्षतीति तच्छीलः, तस्य, क्षिति—उपपदपूर्वक रक्ष धातुसे "सुप्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये" इस सूत्रसे णिनि प्रत्यय (उपपदसमास) । कथां = कथनं कथा ताम् "कथ वाक्यप्रबन्धे" धातुसे "चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च" इस सूत्रसे अङ् और "अजाद्यतष्टाप्" इस सूत्रसे टाप् प्रत्यय । निपीय = नितरां पीत्वा, नि—उपसर्गपूर्वक "पीङ् पाने" धातुसे "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इस सूत्रसे क्त्वा प्रत्यय और उसके स्थानमें "समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्" इस सूत्रसे ल्यप् आदेश । यहाँ "पा पाने" धातु नहीं लेना चाहिए क्योंकि "न ल्यपि" इस सूत्रसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उसमें ईत्वका निषेध होता है। बुधाः = बुध्यन्त इति, "बुध अवगमने" धातुसे "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इस सूत्रसे क प्रत्यय। "ज्ञातृचान्द्रिसुरा बुधाः" इति क्षीरस्वामी। सुधाम् = "पीयूषममृतं सुधा" इत्यमरः। आद्रियन्ते = "आङ्"-उपसर्गपूर्वक "दृङ् आदरे" इस तौदादिक धातुसे लट् + झ। सितच्छत्रितकीर्तिमण्डलः = सितं च तत् छत्रं, "विशेषणं विशेष्येण बहुलम्" इस सूत्रसे समास और उसकी "तत्पुरुषः समानाऽधिकरणः कर्मधारयः" इससे कर्मधारय संज्ञा हुई है। सितच्छत्रं कृतं सितच्छत्रितं, "तत्करोति तदाचष्टे" इससे णिच् प्रत्यय होकर क्त प्रत्यय हुआ है। कीर्तेः मण्डलम् (ष० त०)। सितच्छत्रितं कीर्तिमण्डलं येन सः, "अनेकमन्यपदाऽर्थे" इससे बहुव्रीहि समास। महोज्ज्वलः = महैः उज्ज्वलः (तृ० त०)। "क्षण उद्धर्षो मह उद्धव उत्सवः" इत्यमरः। अथवा महान् (साऽतिशयः) उज्ज्वलः (शृङ्गारः) यस्य सः (बहु०)। "शृङ्गारः शुचिरुज्ज्वलः" इत्यमरः। आसीत् = "अस भुवि" धातुसे लङ्। इस पद्यमें सुधासे भी नल-कथाकी मधुरताके आधिक्य वर्णनसे व्यतिरेक अलंकार है। व्यतिरेकका लक्षण है—

"आधिक्यमुपमेयस्योपमानान्न्यूनताऽथवा। व्यतिरेकः" (सा० द० १०-५२)। इसी तरह कीर्तिमण्डलमें सितच्छत्रका, एवम् नलमें महोराशित्वका आरोप करनेसे दो रूपक अलंकार हुए हैं। रूपकका लक्षण है—"रूपकं रूपितारोपाद्विषये निरपह्नवे।" (सा० द० १०—२८)। इस प्रकार व्यतिरेक और रूपकोंकी निरपेक्षतया स्थिति होनेसे तिल-तण्डुल न्यायसे संसृष्टि अलंकार है। उसका लक्षण है—"मिथोऽनपेक्षयैतेषां स्थितिः संसृष्टिरुच्यते।" (सा० द० १०—९८)। इस सर्गमें १—१४२ पद्य तक वंशस्थ छन्द है, उसका लक्षण है—"जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ" ।ऽ।ऽऽ।।ऽ।ऽ।ऽ ।। १ ।।

रसैः कथा यस्य सुधाऽवधीरिणो, नलः स भूजानिरभूद्गुणाऽद्भुतः।
सुवर्णदण्डैकसितातपत्रितज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः ॥ २ ॥

अन्वयः—यस्य कथा रसैः सुधाऽवधीरिणी, भूजानिः स नलः सुवर्णदण्डैकसितातपत्रितज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः गुणाऽद्भुतः अभूत् ॥ २ ॥

व्याख्या—यस्य = नलस्य, कथा = उपाख्यानं, रसैः = स्वादैः, शृङ्गारादिरसैर्वा, सुधाऽवधीरिणी = अमृततिरस्कारिणी, भूजानिः = भूपतिः, सः = पूर्वोक्तः, नलः = तदाख्यो नृपः, सुवर्णदण्डैकसितातपत्रितज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डलः = स्वर्णदण्डैकशुक्लच्छत्रितदीप्यमानतेजःपङ्क्तियशोमण्डलः, अतएव गुणाऽद्भुतः = शौर्यदाक्षिण्यादिभिराश्चर्यभूतः, अभूत् = आसीत् ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—जिन (नल) का उपाख्यान, स्वाद वा शृङ्गार आदि रसोंसे अमृतको भी तिरस्कार करनेवाला है, ऐसे महाराज नल दीप्यमान प्रतापपङ्क्तिको सुवर्णदण्ड और कीर्तिमण्डलको एक सफेद छत्र बनानेवाले अतएव शौर्य और दाक्षिण्य आदि गुणोंसे आश्चर्यरूप थे।

टिप्पणी—रसैः = "रसो गन्धो रसः स्वादः" इति विश्वः। सुधाऽवधीरिणी = सुधाम् अवधीरयतीति तच्छीला, सुधा + अव + धीर + णिनिः, स्त्रीत्वविवक्षामें "ऋन्नेभ्यो ङीप्" इस सूत्रसे ङीप् (उपपदसमास)। भूजानिः = भूः जाया यस्य सः (बहु०), "जायाया निङ्" इस सूत्रसे जाया शब्दका निङ् आदेश। सुवर्णदण्डैक० इत्यादिः = सुवर्णस्य दण्डः (ष० त०), सितं च तत् आतपत्रम् (क० धा०)। एकं च तत् सितातपत्रं (क० धा०), सुवर्णदण्डश्च एकसितातपत्रं च सुवर्णदण्डैकसितातपत्रं, "चार्थे द्वन्द्वः" इस सूत्रसे इतरेतरयोगद्वन्द्व। सुवर्णदण्डैकसितातपत्रे कृते सुवर्णदण्डैकसिताऽऽतपत्रिते, "सुवर्णदण्डैकसितातपत्र" शब्दसे "तत्करोति तदाचष्टे" इससे णिच् होकर कर्ममें क्त प्रत्यय। प्रतापानाम् आवलिः (ष० त०)। ज्वलन्ती चाऽसौ प्रतापावलिः (क० धा०)। कीर्तेः मण्डलम् (ष० त०)। ज्वलत्प्रतापावलिश्च कीर्तिमण्डलं च (द्वन्द्वः)। सुवर्णदण्डैकसितातपत्रिते ज्वलत्प्रतापावलिकीर्तिमण्डले यस्य सः (बहु०)। गुणाऽद्भुतः = गुणैः अद्भुतः (तृ० त०)। अभूत् = भू + लुङ् + तिप्, "गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचः परस्मैपदेषु" इस सूत्रसे सिच्का लुक् हुआ है। यहाँपर व्यतिरेक, दीप्यमान प्रतापावलिमें सुवर्ण दण्डका और कीर्तिमण्डलमें एकसितातपत्रका आरोप करनेसे दो रूपक और यथासंख्य इस प्रकार इन तीन अलंकारोंका संसृष्टि अलंकार हुआ है। यथासंख्यका लक्षण है—"यथासंख्यमनूद्देश उद्दिष्टानां क्रमेण यत्।" सा० द० १०—७६ ॥ २ ॥

पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे स्मृता रसक्षालनयेव यत्कथा।
कथं न सा मद्गिरमाविलामपि स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति ? ॥ ३ ॥

अन्वयः—अत्र युगे यत्कथा स्मृता (सती) रसक्षालनया इव जगत् पवित्रम् आतनुते। सा आविलाम् अपि स्वसेविनीम् एव मद्गिरं कथं न पवित्रयिष्यति ? ॥ ३ ॥

व्याख्या—कविः स्वविनयं प्रदर्शयति—पवित्रमिति। अत्र = अस्मिन्, युगे = कलियुग इत्यर्थः। यत्कथा = यस्य (नलस्य) कथा (उपाख्यानम्), स्मृता = चिन्तिता (सती), रसक्षालनया इव = जलधावनेन इव, जगत् = लोकं,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पवित्रं = विशुद्धम्, आतनुते = करोति । सा = नलकथा, आविलाम् अपि, कलुषाम् अपि, सदोषाम् अपीति भावः, स्वसेविनीम् एव = आत्मवर्णनपराम् एव । मद्गिरं = मद्वाचं, नैषधवर्णनरूपामिति भावः । कथं = केन प्रकारेण, न पवित्रयिष्यति = पवित्रां न करिष्यति ? पवित्रां करिष्यत्येवेति भावः ॥ ३ ॥

अनुवादः—इस कलियुगमें जिन महाराज नलकी कथा जलसे प्रक्षालनके समान लोकको पवित्र कर देती है, वह (कथा) कलुष (दोषयुक्त) होनेपर भी अपनी ही सेवा करनेवाली मेरी वाणीको क्यों पवित्र नहीं करेगी ? ॥ ३ ॥

टिप्पणी—अत्र = अस्मिन् इति, इदम् + त्रल् । यत्कथा = यस्य कथा (ष० त०), स्मृता = स्मृ + क्तः + टाप् (कर्ममें) । रसक्षालनया = रसेन क्षालना, तया (तृ० त०) । "शृङ्गारादौ द्रवे वीर्ये देहधात्वम्बुपारदे ।" इति विश्वः । णिजन्त "क्षल शौचकर्मणि" धातुसे "ण्यासश्रन्थो युच्" इससे युच् (अन) होकर टाप् प्रत्ययसे "क्षालना शब्द बनता है । आतनुते=आङ्–उपसर्गक "तनु विस्तारे" धातुसे लट् + त । आविलाम् = "कलुषोऽनच्छ आविलः" इत्यमरः । स्वसेविनीं= स्वं सेवते तच्छीला, ताम् । स्व + सेव + णिनि + ङीप् (उपपद०) । यहाँपर जैसे जलसे प्रक्षालन करनेसे वस्तुकी पवित्रता होती है उसी तरह नलकी कथाका स्मरण करनेसे जगत्की पवित्रता होती है ऐसा अर्थ अभिव्यक्त होता है । कहा भी गया है—

"कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च ।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम् ॥"

अर्थात् कर्कोटक नाग, दमयन्ती, नल और राजर्षि ऋतुपर्ण इनका कीर्तन करनेसे कलिका नाश होता है । और भी—

"पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।
पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः ॥"

अर्थात् राजा नल, युधिष्ठिर, वैदेही (सीताजी) और जनार्दन (भगवान् कृष्ण) ये सब पुण्यश्लोक अर्थात् पुण्यकीर्तिवाले हैं, इनका स्मरण करनेसे पुण्यलाभ होता है यह तात्पर्य है । यहाँपर उत्प्रेक्षा अलंकार और जिन नलकी कथा स्मरण करनेपर भी शुद्ध करती है, सेवा (वर्णन) करनेसे क्या कहना है ? इस प्रकार कैमुतिक न्यायसे अर्थापत्ति अलंकार है । उसका सोदाहरण लक्षण है—

"अर्थापत्तिः स्वयं सिध्येत्पदार्थान्तरवर्णनम् ।
स जितस्त्वन्मुखेनेन्दुः का वार्ता सरसीरुहाम् ॥" (चन्द्रालोक)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकार दो अलंकारोंसे संसृष्टि अलंकार है ॥ ३ ॥

अधीतिबोधाचरणप्रचारणैर्दशाश्चतस्रः प्रणयन्नुपाधिभिः ।
चतुर्दशत्वं कृतवान्कुतः स्वयं न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम् ॥ ४ ॥

अन्वयः—अयं चतुर्दशसु विद्यासु अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः उपाधिभिः चतस्रः दशाः प्रणयन् स्वयं चतुर्दशत्वं कुतः कृतवान् ? (इति) न वेद्मि ॥ ४ ॥

व्याख्या—नलस्य चतुर्दशविद्याध्ययनं प्रतिपादयति—अधीतीति । अयं=नलः, चतुर्दशसु = चतुर्दशसंख्यकासु, विद्यासु = वेदादिषु, अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः = श्रवणाऽर्थज्ञानतदर्थाऽनुष्ठानप्रसारणैः, उपाधिभिः = भेदैः, चतस्रः = चतुःसंख्यकाः, दशाः = अवस्थाः, प्रणयन् = कुर्वन्, स्वयम् = आत्मना, चतुर्दशत्वं = चतुर्दशसंख्यकत्वं, कुतः = कस्मात्, कृतवान् = विहितवान्, इति, न वेद्मि = नो जाने, चतुर्दशसंख्यकानां विद्यानां चतुरावृत्त्या षट्पञ्चाशत्त्वमापादनीयं, कथं केवलं चतुर्दशत्वमिति भावः, चतुरवस्थत्वं कृतवानिति विरोधपरिहारः ॥ ४ ॥

अनुवादः—महाराज नलने चौदह विद्याओंमें, शब्दतः अध्ययन, अर्थका ज्ञान, शास्त्रोक्त कर्मका आचरण और प्रचारण इन भेदोंसे चार अवस्थाओंको करते हुए स्वयम् चतुर्दशत्व कैसे किया ? यह मैं नहीं जानता हूँ । चौदह विद्याओंको चार भेदोंसे गुणन करनेपर छप्पन भेद होने चाहिए परन्तु चोदह ही कैसे हुए ऐसा विरोध होनेपर उन विद्याओंको चतुर्दशत्व अर्थात् अध्ययन आदिसे चार अवस्थाओंवाली बनानेसे उसका परिहार हो जाता है ॥ ४ ॥

टिप्पणी—चतुर्दशसु = चतुरधिका दश चतुर्दश, तासु, "शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्" इससे मध्यमपदलोपी समास । विद्यासु=विदन्ति धर्माऽर्थकाममोक्षान् आभिरिति विद्याः, तासु, "विद ज्ञाने" धातुसे "संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः" इस सूत्रसे क्यप् प्रत्यय होकर "अजाद्यतष्टाप्" इस सूत्रसे टाप् प्रत्यय । चौदह विद्याएँ हैं जैसे कि विष्णुपुराणमें हैं—

"अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥"

अर्थात् वेदके छः अङ्ग—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष, चार वेद—ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद । मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र और पुराण । अधीतिबोधाचरणप्रचारणैः = अध्ययनम् अधीतिः, अधि–उपसर्गपूर्वक "इङ् अध्ययने" धातुसे "स्त्रियां क्तिन्" इस सूत्रसे क्तिन्प्रत्यय । बोधनं बोधः, "बुध अवगमने" धातुसे "भावे" इस सूत्रसे घञ् । अधीतिश्च बोधश्च आचरणं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च प्रचारणं च अधीतिबोधाचरणप्रचारणानि, तैः (द्वन्द्वः)। यहाँपर "अधीति" पदसे शब्दतः अध्ययनका, "बोध" पदसे अर्थज्ञानका, "आचरण" पदसे शास्त्रोक्त कर्मके अनुष्ठानका और "प्रचारण" पदसे अध्यापन वा लोकमें प्रचार करनेका तात्पर्य समझना चाहिए। उपाधिभिः = "उपाधिर्धर्मचिन्तायां कैतवे च विशेषणे।" इति विश्वः। चतस्रः = यह "दशाः" इस पदका विशेषण है। "त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ" इस सूत्रसे स्त्रीलिङ्गमें 'चतुर्' शब्दके स्थानमें "चतसृ" आदेश हुआ है। प्रणयन् = प्रणयतीति, प्र—उपसर्गपूर्वक "णीञ् प्रापणे" धातुसे लट्के स्थानमें "लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे" इस सूत्रसे शतृ आदेश, लट्की अनुवृत्ति होनेपर भी फिर लट्के ग्रहणसे कहीं-कहींपर प्रथमाके सामानाधिकरण्यमें भी शतृ-शानच् आदेश ज्ञापित हैं। चतुर्दशत्वं = चतुर्दशानां भावः चतुर्दशत्वं, तत्। चतुर्दश शब्दसे "तस्य भावस्त्वतलौ" इस सूत्रसे त्व प्रत्ययः। "त्वाऽन्तं क्लीवम्" इस लिङ्गाऽनुशासन सूत्रसे त्व-प्रत्ययाऽन्त शब्द नपुंसकलिङ्गमें रहता है। यहाँपर चौदह विद्याओंको चार भेदोंसे गुणन करनेपर छप्पन होना चाहिए फिर चतुर्दशत्व कैसे ? ऐसा विरोध होनेपर उसका परिहार— "चतुर्दशत्वम्" इसका चतस्रः दशा यासां ताश्चतुर्दशाः, (बहु०), तासां भावः चतुर्दशत्वम् अर्थात् चार अवस्थावालियोंका भाव ऐसा अर्थ करनेसे उसका परिहार होता है, अतः विरोधाभास अलंकार है। उसका लक्षण है—

"आभासत्वं विरोधस्य विरोधाभास इष्यते।" "चतुर्दशत्वम्" यहाँपर "त्वतलोर्गुणवचनस्य" इससे पुंवद्भाव हुआ है। कुतः = कस्मात् इति "किम्" शब्दसे "पञ्चम्यास्तसिल्" इस सूत्रसे तसिल् प्रत्यय और "कु तिहोः" इससे "किम्" के स्थानमें "कु" आदेश हुआ है। कृतवान् = "कृ" धातुसे "निष्ठा" इस सूत्रसे कर्ताके अर्थमें क्तवतु प्रत्यय। वेद्मि = विद् + लट् + मिप् ॥ ४ ॥

अमुष्य विद्या रसनाऽग्रनर्तकी त्रयीव नीताऽङ्गगुणेन विस्तरम्।
अगाहताऽष्टादशतां जिगीषया नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियाम् ॥ ५ ॥

अन्वयः—अमुष्य रसनाऽग्रनर्तकी विद्या, त्रयी इव अङ्गगुणेन विस्तरं नीता (सती) नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियां जिगीषया अष्टादशताम् अगाहत ॥ ५ ॥

व्याख्या—नलस्याऽष्टादशविद्याऽभिज्ञतां प्रतिपादयति अमुष्येति। अमुष्य = नलस्य। रसनाऽग्रनर्तकी = जिह्वाग्रसञ्चारिणी, विद्या = पूर्वोक्ता वेदादिविद्या सूदविद्या च, रसनाऽग्रनर्तनधर्मादिति भावः, त्रयी इव = त्रिवेदी इव, अङ्गगुणेन = शिक्षाद्यङ्गावृत्त्या, विस्तरं = वृद्धिं, नीता = प्रापिता सती, नवद्वयद्वीपपृथग्जय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रियाम् = अष्टादशद्वीपपृथग्विजयलक्ष्मीनां, जिगीषया = जेतुमिच्छया (इव), अष्टादशताम् = अष्टादशसंख्यकत्वम्, अगाहत = अभजत ॥ ५ ॥

अनुवादः—नलकी जिह्वाके अग्रभागमें नर्तकीकी समान विद्या (वेदादि-विद्या, अथवा पाकविद्या) ने त्रयी = त्रिवेदी (तीन वेदों) की समान शिक्षा आदि छः अङ्गोंकी गुणनक्रियासे वृद्धिको प्राप्त कराई जाती हुई नलकी अठारह द्वीपोंकी पृथक्-पृथक् विजय-लक्ष्मियोंको जीतनेकी इच्छासे अठारह संख्याको प्राप्त किया ॥ ५ ॥

टिप्पणी—रसनाऽग्रनर्तकी = रसनाया अग्रम् (ष० त०), नृत्यतीति नर्तकी, "नृती गात्रविक्षेपे" "धातुसे" "शिल्पिनि ष्वुन्" इस सूत्रसे "नृतिखनिरञ्जिभ्य एव" इसके अनुसार "ष्वुन्" प्रत्यय होकर षकारका "षः प्रत्ययस्य" इससे इत्संज्ञा होनेसे लोप होकर षित् होनेसे "षिद्गौरादिभ्यश्च" इससे ङीष्" । क्रियाकौशलको "शिल्प" कहते हैं। रसनाऽग्रे नर्तकी (स० त०) । विद्या नलकी जिह्वाके अग्र भागमें नाचती थी अर्थात् सब विद्याएँ उनको उपस्थित थीं । त्रयी = त्रयः (ऋग्यजुःसामाख्याः, अथवा पद्यगद्यगीतरूपा अथवा प्रायेण धर्माऽर्थकामरूपाः) अवयवा यस्याः सा, 'त्रि' शब्दसे "संख्याया अवयवे तयप्" इस सूत्रसे तयप् और उसके स्थानमें "द्वित्रिभ्यां तयस्याऽयज्वा" इस सूत्रसे अयच् आदेश और श्रुतिका विशेषण होनेसे "टिड्ढाणञ्०" इत्यादि सूत्रसे ङीप् । 'त्रयीं' कहनेसे ऋक्, यजु, साम ही वेद हैं अथर्वा वेद नहीं है यह नहीं समझना चाहिए । यहाँपर 'अङ्गगुणेन' इस पदके साथ सम्वन्ध करनेके लिए, ऐसा प्रयोग किया है । वेदके कोई अवयव ऋग्रूप अर्थात् पद्यमय, कोई यजूरूप अर्थात् गद्यमय और कोई समरूप अर्थात् गीतरूप हैं ऐसा कहनेसे अथर्ववेदका भी इनमें अन्तर्भाव हो जाता है । अथवा प्रायेण मन्त्ररूप वेदके प्रतिपाद्य विषय धर्म, अर्थ, काम ही अवयव हैं, अतएव भगवान्ने अर्जुनको—

"त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवाऽर्जुन" ।

कहा है । मोक्षका प्रतिपादन अधिकतर ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषन्में है । अङ्गगुणेन = अंङ्गानां गुणः, तेन (ष० त०) । वेदके छः अङ्ग हैं—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्यौतिष । त्रयीको छः अङ्गोंसे गुणन करनेपर अठारह संख्या होती है । विस्तरं = विस्तरणं विस्तरः, तम्, वि-उपसर्गपूर्वक "स्तृञ् आच्छादने" धातुसे "ऋदोरप्" इससे अप् प्रत्यय । शब्दके फैलावमें विस्तर शब्द है । इतर विषयके फैलावमें पूर्वोक्त-उपसर्गयुक्त धातुसे "प्रथने वावशब्दे"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस सूत्रसे घञ् प्रत्यय होकर "विस्तार" शब्द बनता है। अत एव अमर-सिंहने कहा है—

"विस्तारो विग्रहो व्यासः, स च शब्दस्य विस्तरः ।"

नीता = नी + क्त + टाप् । नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियां = द्वौ अवयवौ यस्य तत् द्वयम्, द्वि + तयप् (अयच्) । द्विर्गता आपो यस्मिन् इति द्वीपम् (बहु०), "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्" इस सूत्रसे अप्के अकारके स्थानमें ईत्व। "ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षे" इस सूत्रसे समासान्त 'अ' प्रत्यय। "द्वीपोऽस्त्रियामन्तरीपं यदन्त-र्वारिणस्तटम् ।" इत्यमरः । नवानां द्वयम् (ष० त०) । नवद्वयं च ते द्वीपाः (क० धा०) । नवद्वय कहनेसे अठारह द्वीप जाने जाते हैं। इनमें सात महाद्वीप हैं जैसे कि—१. जम्बूद्वीप, २. प्लक्षद्वीप, ३. शाल्मलीद्वीप, ४. कुशद्वीप, ५. क्रौञ्चद्वीप, ६. शाकद्वीप और ७. पुष्करद्वीप । ये नाम श्रीमद्भागवतके अनुसार हैं। स्वर्णप्रस्थ आदि आठ जम्बूद्वीपके उपद्वीप हैं, तीन अन्य द्वीप हैं। महाकवि कालिदासने भी "अष्टादशद्वीपनिखातयूपः" कहकर अठारह द्वीपोंकी चर्चा की है। जयस्य श्रियः (ष० त०), नवद्वयद्वीपानां पृथग्जयश्रियः, तासाम् (ष० त०) "जिगीषया" इस कृदन्तपदके योगमें "कर्तृकर्मणोः कृति" इस सूत्रसे कर्ममें षष्ठी । जिगीषया = जेतुमिच्छा जिगीषा, सन् प्रत्ययान्त "जि जये" धातुसे "अ प्रत्ययात्" इससे 'अ' प्रत्यय और टाप् । अष्टादशताम् = अष्टौ च दश च अष्टादश (द्वन्द्वः), "द्व्यष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः" इससे आत्व हुआ है। अष्टादशानां भावः अष्टादशता, ताम्, अष्टादशन् + तल् + टाप् । अगाहत = "गाहू विलोडने" धातुसे "अनद्यतने लङ्" इस सूत्रसे लङ् । पूर्वोक्त चौदह विद्याओंके साथ वेदोंके चार उपवेद—आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र इनमें भी महाराज नल पारदर्शी थे यह बात इस पद्यसे सूचित होती है। नवद्वयद्वीपपृथग्जयश्रियां जिगीषया अर्थात् नलसे जीते गये अठारह द्वीपोंकी पृथक् जयश्रियोंको मानों जीतनेकी इच्छासे उनकी विद्याओंने भी अठारह संख्याको प्राप्त किया। यहाँपर उत्प्रेक्षावाचक शब्द इव आदि न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा और उपमा, इनकी संसृष्टि अलंकार है ।। ५ ।।

दिगीशवृन्दांऽशविभूतिरीशिता दिशां स कामप्रसभाऽवरोधिनीम् ।
बभार शास्त्राणि दृशं द्वयाऽधिकां निजत्रिनेत्राऽवतरत्वबोधिकाम् ।। ६ ।।

अन्वयः—दिगीशवृन्दांऽशविभूतिः दिशाम् ईशिता सः शास्त्राणि कामप्रसभाऽवरोधिनीं निजत्रिनेत्राऽवतरत्वबोधिकां द्वयाऽधिकां दृशं बभार ।। ६ ।।

व्याख्या—नलस्य देवांशत्वं प्रतिपादयति—दिगीशेति । दिगीशवृन्दांऽशविभूतिः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

= इन्द्रादिदिक्पालमात्रोद्भवः, दिशां = प्राच्यादिकाष्ठानाम्, ईशिता = ईश्वरः, सः= नलः, शास्त्राणि = वेदादिशास्त्राणि (एव), कामप्रसभावरोधिनीं = इच्छायाः कामदेवस्य वा बलाऽवरोधकारिणीं, निजत्रिनेत्राऽवतरत्वबोधिकां = स्वत्रिनयनाविर्भावज्ञापिकां, स्वमहादेवाऽवतारत्वज्ञापिकां वा, द्वयाऽधिकां = द्वितयाऽतिरिक्तां, तृतीयामिति भावः, दृशं = नेत्रं, बभार = धृतवान् ॥ ६ ॥

अनुवादः—इन्द्र आदि दिक्पालोंके अंशसे उत्पन्न अतएव दिशाओंके स्वामी नलने स्वेच्छाचारिताको वा कामदेवको बलसे निवारण करनेवाली, अपने तीन नेत्रोंके आविर्भावका वा महादेवके अवतारत्वका बोधन करनेवाली दो से अधिक शास्त्ररूप दृष्टिको धारण किया ॥ ६ ॥

टिप्पणी—दिगीशवृन्दांऽशविभूतिः = दिशाम् ईशाः (ष० त०), तेषां वृन्दं, (ष० त०), "स्त्रियां तु संहतिर्वृन्दं निकुरम्बं कदम्बकम् ।" इत्यमरः । दिगीशवृन्दस्य अंशाः (ष० त०), तैः विभूतिः (उद्भवः) यस्य सः (व्यधिकरणबहु०) । लोकपालोंके अंशोंसे राजाकी उत्पत्ति होती हैं, इस बातको भगवान् मनुने भी कहा है—

> इन्द्राऽनिलयमाऽर्काणामग्नेश्च वरुणस्य च ।
> चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः ॥ मनु० ७–४ ।

दिशाम् = "ईशिता" इस पदके योगमें "कर्तृकर्मणोः कृति" इस सूत्रसे कर्ममें षष्ठी । ईशिता=ईष्ट इति, "ईश ऐश्वर्ये" धातुसे "ण्वुल्तृचौ" इस सूत्रसे तृच्प्रत्यय । नलको "दिशाम् ईशिता" कहनेसे आठ दिक्पाल इन्द्र आदि एक-एक दिशाके स्वामी हैं, पर नल सब दिशाओंके स्वामी हैं, अतः व्यतिरेक अलंकार व्यङ्ग्य होता है । शास्त्राणि = शिष्यते एभिरिति, "शासु अनुशिष्टौ" धातुसे "सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन्" इस सूत्रसे ष्ट्रन् प्रत्यय । शास्त्रका लक्षण ऐसा किया गया है—"प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च पुंसां येनोपदिश्यते । तद्धर्माश्चोपदिश्यन्ते शास्त्रं शास्त्रविदो विदुः ।" अर्थात् पुरुषोंकी प्रवृत्ति और निवृत्ति एवम् उनके धर्म जिससे उपदेश किये जाते हैं, उसे "शास्त्र" कहते हैं । कामप्रसभाऽवरोधिनीं = प्रसभेन अवरुणद्धीति प्रसभाऽवरोधिनी, प्रसभ- और अव-उपसर्गपूर्वक "रुधिर् आवरणे" धातुसे णिनि प्रत्यय, और स्त्रीत्वविवक्षामें ङीप् । कामस्य प्रसभावरोधिनी ताम् (ष० त०) । स्वेच्छाचारिताको बलसे रोकनेवाली (नलपक्षमें) । कामदेवको बलसे रोकनेवाली (महादेवके पक्षमें) । "प्रसभ" के बदलेमें कहींपर "प्रसर" पदका पाठ है, उसमें कामस्य प्रसरः (विस्तारः, वृद्धिर्वा), तम् अवरुणद्धीति ऐसी व्युत्पत्ति करनी चाहिए । निज-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्रिनेत्राऽवतरत्वबोधिकाम् = अवतरणम् अवतरः, अव-उपसर्गपूर्वक तॄधातुसे "ऋदोरप्" इस सूत्रसे अप् प्रत्यय, अवतरस्य भावः अवतरत्वम्, अवतर + त्व, त्रयाणां नेत्राणाम् अवतरत्वम्, "तद्धिताऽर्थोत्तरपदसमाहारे च" इस सूत्रसे उत्तरपदसमास, निजं च तत् त्रिनेत्राऽवतरत्वम् (क० धा०)। बोधयतीति बोधिका, बुध + ण्वुल् (अक) + टाप् । निजत्रिनेत्राऽवतरत्वस्य बोधिका, ताम् (ष० त०)। अपने तीन नेत्रोंके आविर्भावका वा महादेवत्वका बोधन करनेवाली, यह पद "दृशम्" का विशेषण है । द्वयाऽधिकां = द्वौ अवयवौ यस्य तत् द्वयम्, द्वि + तयप् (अयच्)। द्वयात् अधिका, ताम् (प० त०)। यह भी "दृशम्" इसका विशेषण है, शास्त्ररूप दो से अधिक नेत्र यह तात्पर्य है । कहा भी गया है—

"अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षाऽर्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नाऽस्त्यन्ध एव सः ॥"

महाराज नलके शास्त्र ही दो से अधिक अर्थात् तीसरे नेत्ररूप थे यह तात्पर्य है । बभार = "डुभृञ् धारणपोषणयोः" धातुसे लिट् + तिप् । यहाँ शास्त्रोंमें दृक्का आरोप होनेसे रूपक अलङ्कार है ॥ ६ ॥

पदैश्चतुर्भिः सुकृते स्थिरीकृते कृतेऽमुना के न तपः प्रपेदिरे ?
भुवं यदेकाङ्घ्रिकनिष्ठया स्पृशन्दधावधर्मोऽपि कृशस्तपस्विताम् ॥ ७ ॥

अन्वयः—अमुना कृते सुकृते चतुर्भिः पदैः स्थिरीकृते (सति) के तपो न प्रपेदिरे ? यत् अधर्मोऽपि अङ्घ्रिकनिष्ठया भुवं स्पृशन् कृशः (सन्) तपस्वितां दधौ ॥ ७ ॥

व्याख्या—अथ नलस्य प्रभावं दर्शयति—पदैरिति । अमुना = नलेन, कृते = सत्ययुगे, सुकृते = धर्मे, चतुर्भिः = चतुःसंख्यकैः, पदैः = चरणैः, वृषरूपत्वादिति-शेषः । स्थिरीकृते = निश्चलीकृते (सति)। तपोज्ञानयज्ञदानरूपैः पदैरयमर्थो धर्मपक्षे योज्यः । के = जनाः, तपः = चान्द्रायणादिरूपं नियमाचरणं, न प्रपेदिरे = न प्राप्तवन्तः, अपि तु सर्व एव तपश्चक्रुरित्यर्थः । यत् = यतः, अधर्मोऽपि = धर्मविरोध्यपि, किमुत अन्यः इति अपिशब्दाऽर्थः । अङ्घ्रिकनिष्ठया = चरणकनिष्ठया, भुवं = भूमिं, स्पृशन् = आमृशन्, कृशः=दुर्बलः (सन्), तपस्वितां=तापसत्वं, दीनत्वं च, दधौ = धारयामास, नलस्य शासनादधर्मोऽपि धर्मव्यापृतचित्तोऽभूदिति भावः ।

अनुवादः—सत्ययुगमें महाराज नलके धर्मको चार चरणों (तपस्या, ज्ञान, यज्ञ और दान) से स्थिर करनेपर किसने तपस्या नहीं की ? जो कि अधर्म भी पैरकी छोटी अङ्गुलिसे पृथ्वीका स्पर्श करता हुआ दुर्बल होकर तपस्वी (तपस्या करनेवाला वा दीन) हो गया ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—कृते = कृ + क्तः, कृतम् = "युगपर्याप्तयोः कृतम्" इत्यमरः। सुकृते = "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः।" इत्यमरः।

"तपः परं कृतयुगे, त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥"

इस उक्तिके अनुसार सत्ययुगमें तपस्याकी, त्रेतामें ज्ञानकी, द्वापरमें यज्ञकी और कलियुगमें दानकी प्रधानता है, परन्तु महाराज नलने इन चारों चरणोंसे धर्मको स्थिर किया, यह बात इस पद्यसे सूचित होती है। शास्त्रोंमें लिखा गया है—सत्ययुगमें पूर्वोक्त तपस्या आदि चारों विषयोंकी उपस्थितिसे धर्म चतुष्पात् होता है। परन्तु अन्य युगमें धर्मके एक-एक चरणोंकी क्रमसे न्यूनता होती है, जैसे कि त्रेतामें तपस्याकी न्यूनतासे ज्ञान, यज्ञ और दानकी स्थितिसे धर्म त्रिपात् होता है। द्वापरमें तपस्या और ज्ञानकी न्यूनतासे यज्ञ और दानकी स्थितिसे धर्म द्विपात् होता है। इसी तरह कलियुगमें तपस्या, ज्ञान और यज्ञकी न्यूनतासे और एकमात्र दानकी स्थितिसे धर्म एकपात् हो जाता है। नलने अपने पराक्रमसे तपस्या आदि चारों चरणोंसे धर्मको स्थिर रक्खा था। स्थिरीकृते = अस्थिरं स्थिरं यथा संपद्यते तथा कृतं स्थिरीकृतम्, तस्मिन्, "कृभ्वस्तियोगे संपद्य कर्तरि च्विः" इससे च्वि प्रत्यय स्थिर + च्वि + कृ + क्त + ङि। "च्वौ च" इससे अ वर्णका ई भाव होता है। प्रपेदिरे = प्र—उपसर्गपूर्वक "पद" धातुसे लिट् + झ। अधर्मः = न धर्मः (नञ् त०)। यहाँपर नञ् विरोध अर्थमें है, नञ्के छः अर्थ हैं। जैसे कि—

"तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।
अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट् प्रकीर्तिताः॥"

अर्थात् नञ्के सादृश्य, अभाव, भिन्नता, अल्पता, अप्रशस्तता और विरोध ये छः अर्थ होते हैं। अङ्घ्रिकनिष्ठया = अङ्घ्रेः कनिष्ठा, तया (ष० त०)। "पादः पदङ्घ्रिश्चरणोऽस्त्रियाम्।" इत्यमरः। स्पृशन् = स्पृश + लट् (शतृ०)। तपस्वितां=तपः अस्याऽस्तीति तपस्वी, 'तपस्-शब्दसे "तपःसहस्राभ्यां विनीनी" इस सूत्रसे विनि प्रत्यय। तपस्विनो भावः तपस्विता, ताम्, तपस्विन् + तल् + टाप्। तपस्वी पदके दो अर्थ हैं, "तपस्वी शोचनीयः स्यात्" इस कोषके अनुसार शोचनीय अर्थात् दीन पुरुष और "मुनिदीनौ तपस्विनौ" इस विश्वकोशके अनुसार तपस्या करनेवाला मुनि भी। दधौ = धा + लिट् + तिप्। यहाँपर "अधर्मोऽपि तपस्वितां दधौ, किमुत अन्यः" अर्थात् अधर्म भी तपस्वी हो गया, अन्यका क्या

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कहना ? ऐसा कहनेसे कैमुत्य न्यायसे अर्थापत्ति अलङ्कार और अधर्म भी धार्मिक हुआ कहनेसे विरोध अलङ्कार है। इस प्रकार दोनों अलङ्कारोंकी निरपेक्षतया स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है ॥ ७ ॥

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः स्फुरत्प्रतापाऽनलधूममञ्जिम।
तदेव गत्वा पतितं सुधाऽम्बुधौ दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ ॥ ८ ॥

अन्वयः—अस्य यात्रासु बलोद्धतं स्फुरत्प्रतापाऽनलधूममञ्जिम यत् रजः, तद् एव गत्वा सुधाऽम्बुधौ पतितम् (अतएव) पङ्कीभवत् (सत्) विधौ अङ्कतां दधाति ॥ ८ ॥

अथ श्लोकसप्तकेन महाकविर्नलप्रतापं वर्णयति।

व्याख्या—अस्य = नलस्य, यात्रासु = विजययानेषु, बलोद्धतं = सैन्योत्क्षिप्तं, स्फुरत्प्रतापाऽनलधूममञ्जिम = ज्वलत्तेजोऽग्निधूममञ्जु, यत्, रजः = धूलिः, तद् एव = रज एव, गत्वा = व्रजित्वा, उत्क्षेपवेगादिति भावः। सुधाऽम्बुधौ = क्षीर-समुद्रे, पतितं = निपतितं सत्, अतएव, पङ्कीभवत् = कर्दमीभवत् सत्, विधौ = चन्द्रमसि, सुधाऽम्बुधिस्थित इति भावः अङ्कतां = कलङ्कत्वं, दधाति = धारयति ॥ ८ ॥

अनुवादः—नलकी विजययात्राओंमें सेनाओंसे उठी हुई और जलते हुए प्रतापरूप अग्निके धूमके समान मनोहर जो धूलि है वही जाकर क्षीरसमुद्रमें गिर पड़ी और वही कीचड़ होकर चन्द्रमामें कलङ्कके भावको धारण कर रही है ॥ ८ ॥

टिप्पणी—बलोद्धतं=बलैः उद्धतम् (तृ० त०), स्फुरत्प्रतापाऽनलधूममञ्जिम= प्रताप एव अनलः "मयूरव्यंसकादयश्च" इससे रूपकसमास, स्फुरं-श्चाऽसौ प्रता-पाऽनलः (क० धा०), तस्य धूमः (ष० त०)। मञ्जोर्भावो मञ्जिमा 'मञ्जु' शब्दसे "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" इस सूत्रसे इमनिच् प्रत्यय। "कान्तं मनोरमं रुच्यं मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्।" इत्यमरः। स्फुरत्प्रतापानलस्य धूमः (ष० त०), तस्य इव मञ्जिमा यस्य तत्, "सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ" इस सूत्रमें "सप्तमी" पदसे ज्ञापित व्यधिकरण बहुव्रीहि। रजः = पांशुर्ना न द्वयो रजः" इत्यमरः। सुधाऽम्बुधौ = अम्बूनि धीयन्ते यस्मिन् सः, अम्बुधिः अम्बु-उपपदपूर्वक "धा" धातुसे "कर्मण्यधिकरणे च" इस सूत्रसे कि प्रत्यय। अम्बु + धा + किः। सुधाया अम्बुधिः तस्मिन् (ष० त०) पतितं = पत + क्तः, (कर्तामें अर्थमें)। पङ्कीभवत् = अपङ्कं पङ्कं यथा सम्पद्यते तथा भवत्, पङ्क + च्वि + भू + लट् (शतृ०)। अङ्कताम् =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अङ्कस्य भावः अङ्कता, ताम्, अङ्क + तल् + टाप् । "कलङ्काऽङ्कौ लाञ्छनं च" इत्यमरः । दधाति="डुधाञ् धारणपोषणयोः" इस जुहोत्यादि धातुसे लट् + तिप् । यहाँपर द्वितीय चरणमें रूपक, और उपमा है । धूलि समुद्रमें पड़कर कीचड़ होती हुई चन्द्रमामें कलङ्करूपको धारण करती है, यहाँपर उत्प्रेक्षाव्यञ्जक इव आदि शब्दोंके नहोनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा है, इस प्रकार तीन अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ८ ॥

स्फुरद्धनुर्निःस्वनतद्घनाऽऽशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य सङ्गरे ।
निजस्य तेजःशिखिनः परःशता वितेनुरङ्गारमिवाऽयशः परे ॥ ९ ॥

अन्वयः—सङ्गरे परःशताः परे स्फुरद्धनुर्निःस्वनतद्घनाशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य निजस्य तेजः शिखिनः अङ्गारम् इव अयशः वितेनुः ॥ ९ ॥

व्याख्या—सङ्गरे = युद्धे, परःशताः = शतात् परे, शताधिका इत्यर्थः, बहव इति भावः । परे = शत्रवः, स्फुरद्धनुर्निःस्वनतद्घनाशुगप्रगल्भवृष्टिव्ययितस्य = प्रसरच्चापघोषसमन्वितनलमेघबाणमहावर्षनिर्वापितस्य, निजस्य = स्वस्य, तेजः-शिखिनः = प्रतापाऽग्नेः, अङ्गारम् इव = उल्मुकम् इव, अयशः = अकीर्तिम्, पराजयजनितामिति भावः । वितेनुः = विस्तारयामासुः ॥ ९ ॥

अनुवादः—युद्धमें सैकड़ों शत्रुओंने चमकनेवाले धनु और शब्दोंसे युक्त मेघरूप नलके बाणोंकी प्रचुर वृष्टिसे बुझाये गये अपने प्रतापरूप अग्निके अङ्गार-(कोयला) के सदृश अकीर्तिको फैलाया ॥ ९ ॥

टिप्पणी—परःशताः = शतात् परे (अनन्ताः) (प० त०), "पारस्कर-प्रभृतीनि च संज्ञप्याम्" इस सूत्रसे पारस्करादिगणके आकृतिगण होनेसे सुट् आगमका निपातन हुआ है । महाराज भोज परः शब्दको निपात मानते हैं । परे = "अभिघातिपराऽरातिप्रत्यर्थिपरिपन्थिनः ।" इत्यमरः । स्फुरद्धनुर्निःस्वन० = धनुश्च निःस्वनश्च धनुर्निःस्वनौ (द्वन्द्वः) । स्फुरन्तौ धनुर्निःस्वनौ यस्य सः (बहु०) । सः (नलः) एव घनः (रूपक०) । स्फुरद्धनुर्निःस्वनश्चाऽसौ तद्घनः (क० धा०) तस्य आशुगाः (ष० त०) । प्रगल्भा चाऽसौ वृष्टिः (क० धा०) । स्फुरद्धनुर्निःस्वनतद्घनाशुगानां प्रगल्भवृष्टिः (ष० त०), तया व्ययितस्य (संजात-व्ययस्य, निर्वापितस्येति भावः) (तृ० त०) । तेजःशिखिनः = तेज एव शिखी, तस्य (रूपक०) । अयशः = न यशः, तत् (नञ्त०) । वितेनुः = वि-उपसर्गपूर्वक "तनु विस्तारे" धातुसे लिट् + झि । यहाँपर रूपक और उत्प्रेक्षाका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनल्पदग्धाऽरिपुराऽनलोऽज्ज्वलैर्निजप्रतापैर्वलयं ज्वलद्भुवः ।
प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्टया रराज नीराजनया स राजघः ॥ १० ॥

अन्वयः—राजघः सः अनल्पदग्धाऽरिपुराऽनलोज्ज्वलैः निजप्रतापैः ज्वलत् भुवो वलयं प्रदक्षिणीकृत्य जयाय सृष्टया नीराजनया रराज ॥ १० ॥

व्याख्या—राजघः = शत्रुभूपालघातुकः, सः = नलः, अनल्पदग्धारिपुराऽनलोज्ज्वलैः = वहुलभस्मीकृतशत्रुनगरवह्निप्रदीप्तैः, निजप्रतापैः = स्वतेजोभिः, ज्वलत् = दीप्तं, भुवः = भूमेः, वलयं = मण्डलं, प्रदक्षिणीकृत्य = प्रदक्षिणं विधाय, जयाय = जेतुं, सृष्टया = निर्मितया, नीराजनया = आरात्रिकेण, प्रतिपक्षराजाऽभावकरणेन वा, रराज = शुशुभे, नलस्य प्रतापो भूमण्डलव्यापकोऽभूदिति भावः ॥ १० ॥

अनुवादः—शत्रु राजाओंको मारनेवाले नल प्रचुर शत्रुनगरोंको जलानेवाले और अग्निके समान उज्ज्वल अपने प्रतापोंसे प्रदीप्त भूमण्डलकी प्रदक्षिणा करके जीतनेके लिए की गयी नीराजनासे शोभित हुए ॥ १० ॥

टिप्पणी—राजघः = राजानं हन्तीति, "राजघ उपसंख्यानम्" इस वार्तिकसे इस पदका निपातन हुआ है। अनल्पदग्धाऽरिपुरानलोज्ज्वलैः = न अल्पानि अनल्पानि (नञ्०)। अरीणां पुराणि (ष० त०)। अनल्पानि दग्धानि अरिपुराणि यैस्ते (वहु०)। अनला इव उज्ज्वलाः (उपमानपू० कर्म०)। अनल्पदग्धाऽरिपुराश्च ते अनलोज्ज्वलाः, तैः (क० धा०)। निजप्रतापैः = निजस्य प्रतापाः, तैः (ष० त०)। ज्वलत् = ज्वलतीति, तत्, ज्वल + लट् (शतृ)। प्रदक्षिणीकृत्य = अप्रदक्षिणं प्रदक्षिणं यथा संपद्यते तथा कृत्वा प्रदक्षिण + च्वि + कृ + क्त्वा (ल्यप्)। जयाय = "तुमर्थाच्च भाववचनात्" इससे चतुर्थी। सृष्टया = सृज् + क्त + टाप् + टा। रराज = "राजृ दीप्तौ" धातुसे लिट् + तिप् (णल्)। यहाँपर निजप्रतापोंसे नीराजनासृष्टिके सम्वन्ध न होनेपर भी सम्वन्धका वर्णन करनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥ १० ॥

निवारितास्तेन महीतलेऽखिले निरीतिभावं गमितेऽतिवृष्टयः ।
न तत्यजुर्नूनमनन्यसंश्रयाः प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः ॥ ११ ॥

अन्वयः—तेन अखिले महीतले निरीतिभावं गमिते निवारिता अतिवृष्टयः अनन्यसंश्रयाः (सत्यः) प्रतीपभूपालमृगीदृशां दृशः न तत्यजुः नूनम् ॥ ११ ॥

व्याख्या—तेन = नलेन, अखिले = समस्ते, महीतले = भूतले, निरीतिभावम् = अतिवृष्टयादीतिभावराहित्यं, गमिते = प्रापिते, सति निवारिताः = निराकृताः, अतिवृष्टयः = अतिवर्षाणि, अनन्यसंश्रयाः = अन्याश्रयस्थानरहिताः सत्यः, प्रतीप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूपालमृगीदृशां = शत्रुभूपतिसुन्दरीणां, दृशः = नेत्राणि, न तत्यजुः = न त्यक्तवत्यः, नूनम् = इव ॥ ११ ॥

अनुवादः—महाराज नलने समस्त भूतलसे अतिवृष्टि आदि ईतियोंको हटा दिया, तव निवारित अतिवृष्टियाँ दूसरा आश्रयस्थान न होनेसे नलके शत्रु राजाओंकी पत्नियोंके नेत्रोंको नहीं छोड़ती थीं ऐसा मालूम होता है ॥ ११ ॥

टिप्पणी—महीतले = मह्यास्तलं, तस्मिन् (ष० त०)। निरीतिभावं = ईतेः भावः (ष० त०)। राष्ट्रमें दुर्भिक्ष आदि उपद्रवोंकी सूचना करनेवाली ईतियाँ छः प्रकारकी होती हैं। जैसे कि—

"अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषकाः शलभाः शुकाः।
अत्यासन्नाश्च राजानः षडेता ईतयः स्मृताः॥"

अर्थात् अतिवृष्टि, अनावृष्टि (वृष्टिका न होना), चूहें, शलभ (टिड्डी) तोते, ज्यादा निकटवर्ती राजा इस प्रकार ईति के छः भेद होते हैं। निर्गता ईतयो यस्मिस्तत् (बहु०)। निरीतिनो भावः, तम् (ष० त०)। गमिते = गम् + णिच् + क्तः + ङि। निवारिताः = नि + वृ + णिच् + क्त टाप् + जस्। अनन्य-संश्रयाः। अन्यस्य संश्रयः (ष० त०)। अविद्यमानः अन्यसंश्रयः यासां ताः (नञ्बहु०) अनन्यसंश्रयाः = 'नञोऽस्त्यर्थानां वाच्यो वा चोत्तरपदलोपः" इससे (नञ्बहू०) प्रतीपभूपालमृगीदृशां = प्रतिकूला आपो येषु ते प्रतीपाः, प्रति-उपसर्गपूर्वक "अप्" शब्दसे "द्व्यन्तरुपसर्गेभ्योऽप ईत्" इस सूत्रसे समासाऽन्त अप्रत्यय और 'अप्'के अकारका ईत्व हुआ है (बहु०)। भुवं पालयन्तीति भूपालाः, भू-उपपदपूर्वक "पाल रक्षणे" धातुसे "कर्मण्यण्" इस सूत्रमें अण् प्रत्यय "उपपदमतिङ्" इस सूत्रसे उपपद समास। प्रतीपाश्च ते भूपालाः (क० धा०)। मृग्या इव दृशौ यासां ताः मृगीदृशः' सप्तमी विशेषणे बहुव्रीहौ" इस सूत्रसे ज्ञापित व्यधिकरण बहुव्रीहि। प्रतीपभूपालानां मृगीदृशः, तासाम् (ष० त०)। तत्यजुः = "त्यज हानौ" धातुसे लिट् + झि (उस्)। नूनम् = यह उत्प्रेक्षावाचक शब्द है, जैसे कि कहा गया है—

"मन्ये शङ्के ध्रुवं प्रायो नूनमित्येवमादयः।
उत्प्रेक्षावाचकाः शब्दा इवशब्दोऽपि तादृशः॥"

शत्रु राजाओंकी सुन्दरियोंके अश्रुपातके वर्णनसे नलसे उनके शत्रु राजाओंका पराजय गम्य होता है अतः पर्यायोक्त अलङ्कार है, जैसे कि काव्यप्रकाशमें उसका लक्षण है—"पर्यायोक्तं विना वाच्यवाचकत्वेन यद्वचः।" १०–११५।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस प्रकारसे उत्प्रेक्षा और पर्यायोक्त इन दोनों अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ११ ॥

सितांऽशुवर्णैर्वयति स्म तद्गुणैर्महाऽसिवेम्नः सहकृत्वरी बहुम् ।
दिगङ्गनाऽङ्गाभरणं रणाऽङ्गणे यशःपटं तद्भटचातुरी तुरी ॥ १२ ॥

अन्वयः—तद्भटचातुरी तुरी महाऽसिवेम्नः सहकृत्वरी रणाऽङ्गणे सितांऽशुवर्णैः तद्गुणैः दिगङ्गनाऽङ्गाभरणं बहुं यशःपटं वयति स्म ॥ १२ ॥

व्याख्या—तद्भटचातुरी = नलयोद्धृचतुरता, तुरी = सूत्रवेष्टननलिका, महाऽसिवेम्नः = विशालखड्गवायदण्डस्य, सहकृत्वरी = सहकारिणी (सती), रणाऽङ्गणे = युद्धाऽजिरे, सितांऽशुवर्णैः = चन्द्रवर्णैः, शुक्लवर्णैरित्यर्थः । तद्गुणैः = नलशौर्यादिगुणैरेव तन्तुभिः, दिगङ्गनाऽङ्गाभरणं = दिशानार्यवयवभूषणं बहुं = प्रचुरं, यशः पटं = कीर्तिवस्त्रं, वयति स्म = निर्मितवती ॥ १२ ॥

अनुवादः—नलके योद्धाओंकी चतुरता-रूप ताँतीने उनके बड़ेसे तलवाररूप वायदण्डके सहारे युद्धके प्राङ्गणमें चन्द्रसदृश सफेद रूप नलकी शूरता-आदि-गुण रूप गुणों (तन्तुओं) से दिशा-रूप स्त्रियोंके अङ्गोंके भूषण-स्वरूप प्रचुर कीर्तिरूप वस्त्रको बुना ॥ १२ ॥

टिप्पणी—तद्भटचातुरी = तस्य भटाः (ष० त०), "भटा योधाश्च योद्धारः" इत्यमरः । चतुरस्य भावश्चातुरी "चतुर" शब्दसे "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च" इस सूत्रसे भाव और कर्मके अर्थमें ष्यञ् प्रत्यय होकर "षः प्रत्ययस्य" इस सूत्रसे प्रत्ययके आदिमें स्थित मूर्धन्यषकारका लोप होकर "हलस्तद्धितस्य" इससे यकारका लोप हुआ है । "षिद्गौरादिभ्यश्च" इससे ङीष् प्रत्यय । तद्भटानां चातुरी (ष० त०) । महाऽसिवेम्नः = महांश्चाऽसौ असिः = महाऽसिः, "सन्महत्परमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः" इससे समास (क० धा०); हुआ है । महाऽसिरेव वेमा, तस्य (रूपक०) । "पुंसि वेमा वायदण्डः" इत्यमरः । सहकृत्वरी = सह कृतवती, सह—उपपदपूर्वक 'कृ' धातुसे "सहे च" इस सूत्रसे क्वनिप् प्रत्यय और अनुबन्धका लोप होकर "ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्" इस सूत्रसे तुक् आगम और स्त्रीत्वविवक्षामें "वनो र च" इस सूत्रसे ङीप् प्रत्यय होकर अन्त्य 'न' के स्थान में 'र' आदेश हुआ है । रणाऽङ्गणे = रणस्य अङ्गणं, तस्मिन् (ष० त०) । "अङ्गणं चत्वराऽजिरे" इत्यमरः । सितांऽशुवर्णैः = सिता अंशवो यस्य स सितांऽशुः (बहु०) । सितांऽशोरिव वर्णो येषां ते, तैः (व्यधिकरण-बहु०) । तद्गुणैः = तस्य गुणाः तैः (ष० त०)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिगङ्गनाऽङ्गाभरणं = दिश एव अङ्गनाः दिगङ्गनाः (रूपक०) तासामङ्गानि, (ष० त०) । तेषाम् आभरणम् (ष० त०) । यशःपटं = यश एव पटः, तम् (रूपक०) । वयति स्म = "वेञ् तन्तुसन्ताने" इस धातुसे "स्म" के योगमें "लट् स्मे" इस सूत्रसे भूतकालके अर्थमें लट् । इस पद्यमें "सितांऽशुवर्णैः" इसमें उपमा और अन्यत्र रूपक अलङ्कार है । इस प्रकार दोनों अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर हुआ है ॥ १२ ॥

प्रतीपभूपैरिव किं ततो भिया विरुद्धधर्मैरपि भेत्तृतोज्झिता ।
अमित्रजिन्मित्रजिदोजसा स यद्विचारदृक्चारदृगप्यवर्तत ॥ १३ ॥

अन्वयः––प्रतीपभूपैः इव विरुद्धधर्मैः अपि ततो भिया भेत्तृता उज्झिता किम् ? यत् स अमित्रजित् मित्रजित्, विचारदृक् अपि चारदृक् अवर्तत ॥ १३ ॥

व्याख्या––प्रतीपभूपैः इव = विरोधिभूपतिभिः इव, विरुद्धधर्मैः अपि = मिथोविरोधिधर्मैः अपि, ततः = तस्मात् नलात् इत्यर्थः, भिया = भयेन हेतुना भेत्तृता = भेदनकारिता, पक्षान्तरे भेदज्ञापकता, व्यावर्तकता इति भावः उज्झिता किं = परित्यक्ता किम् ? यत् = यस्मात्कारणात्, सः = नलः, ओजसा = तेजसा, अमित्रजित् = मित्रजिद्भिन्नः, परं मित्रजित् = मित्रजेता, अत्र योऽमित्रजित् (मित्रजिद्भिन्नः) स कथं मित्रजित् (मित्रजेता) इति विरोधः प्रतीयते, तत्परिहारस्तु—ओजसा = प्रतापेन अमित्रजित्=शत्रुजेता, तथा ओजसा = तेजसा मित्रजित् = सूर्यजेता इति । इत्थमेव सः = नलः विचारदृक् = चारदृग्भिन्नः । परं चारदृक् = चारदृष्टिः, अत्राऽपि यो विचारदृक् (चारदृग्भिन्नः) स कथं चारदृक् (चारदृक्) इति विरोधः प्रतीयते, तत्परिहारस्तु विचारदृक् = विचारपूर्वकं द्रष्टा, चारदृक् = गुप्तचरनेत्रः, "राजानश्चारचक्षुषः" इति श्रवणादिति भावः । अवर्तत = आसीत् ॥ १३ ॥

अनुवादः—शत्रु राजाओंके समान विरुद्ध धर्मोंने भी उनसे डरकर भेत्तृता = भेदकारिता वा व्यावर्तकता छोड़ दी है क्या ? क्योंकि वे प्रतापसे अमित्रजित् (मित्रको जीतनेवालेसे भिन्न) होकर भी तेजसे मित्रजित् (मित्रको जीतनेवाले थे), यहाँपर विरोध प्रतीत होता है, इसका परिहार है, नल प्रतापसे अमित्र-जित् अमित्र अर्थात् शत्रुओंको जीतनेवाले थे, और तेजसे मित्रजित् = मित्र अर्थात् सूर्यको जीतने वाले थे इसी तरह नल विचारदृक् अर्थात् चारदृष्टिसे भिन्न होकर भी चारदृक् अर्थात् चारदृष्टि थे यहाँपर भी विरोध प्रतीत होता है । इसका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परिहार है, नल विचारदृक्=विचारसे इन्साफको देखनेवाले और चारदृक् अर्थात् वे चारों (गुप्तचरों) से सब राष्ट्रके व्यवहारोंको देखनेवाले थे ॥ १३ ॥

टिप्पणी—प्रतीपभूपैः=प्रतीपाश्च ते भूपाः, तैः (क० धा०)। विरुद्धधर्मैः=विरुद्धाश्च ते धर्माः, तैः (क० धा०)। ततः=तस्मात् इति, तद्+तसिल्। भिया="भीतिर्भीः साध्वसं भयम्।" इत्यमरः। भेत्तृता=भिनत्तीति भेत्ता, भिद्+तृच्। भेत्तुर्भावः, भेत्तृ+तल्+टाप्। 'भेत्तृता' पदके दो अर्थ हैं भेदनीति कराना और व्यावर्तकता अर्थात् दूसरेसे व्यावृत्ति कराना। अमित्रजित्=न मित्राणि अमित्राः (नञ्०) अमित्रान् (शत्रून्) जयतीति अमित्रजित्। अमित्र+जि+क्विप्। (उपपद०)। मित्रजित्=मित्रं जयतीति, मित्र+जि+क्विप् (उपपद०)। यहाँपर अमित्रजित् अर्थात् जो मित्रजित्से भिन्न हैं वे कैसे मित्रजित् होंगे इस प्रकार विरोध प्रतीत होता है, इसका समाधान है—ओजसा=प्रतापसे अमित्रजित् अर्थात् अमित्रों (शत्रुओं) को जीतनेवाले और ओजसा=तेजसे मित्रजित् अर्थात् मित्र (सूर्य) को जीतनेवाले। विचारदृक्=विचारं पश्यति, विचारदृश्+क्विन् (उपपद०)। चारदृक्=चारा एव दृशो यस्य सः (बहु०)। इसी तरह नल विचारदृक् अर्थात् चारदृक्से भिन्न होकर भी चारदृक् थे, यहाँपर भी विरोध प्रतीत होता है इसका समाधान है महाराज नल विचारदृक् विचारको देखनेवाले थे एवम् चारदृक् अर्थात् चार (गुप्तचर) ही उनके नेत्र थे, गुप्तचरोंके द्वारसे नल स्वराष्ट्र और परराष्ट्रोंके सब व्यवहारोंको देखते थे यह तात्पर्य है। अवर्तत="वृतु वर्तने" धातुके लङ्+त सूर्यके समान तेजवाले और गुप्तचररूप नेत्रोंवाले नलसे डरकर शत्रुओंने भेद और वैरको छोड़ा यह भाव है। इस पद्यमें "प्रतीपभूपैरिव" यहाँपर उपमा है और "अमित्रजित् मित्रजित्, विचारदृक् चारदृक्" इन अंशोंमें विरोध अलङ्कार और 'किं' शब्दके संभावनाका बोधक होनेसे उत्प्रेक्षा इस प्रकार तीन अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार हुआ है ॥ १३ ॥

तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमौ वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा।
तनोति भानोः परिवेषकैतवात्तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि ॥ १४ ॥

अन्वयः—विधिः तदोजसः तद्यशसः स्थितौ इमौ वृथा इति यदा यदा चित्ते कुरुते, तदा परिवेषकैतवात् भानोः विधोः अपि कुण्डलनां तनोति ॥ १४ ॥

व्याख्या—विधिः=ब्रह्मा, तदोजसः=नलतेजसः, तद्यशसः=नलकीर्तेः, स्थितौ=विद्यमानतायाम्, इमौ=भानुविधू, सूर्यचन्द्रावित्यर्थः। वृथा=व्यर्थप्रायौ,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निष्फलाविति भावः। इति = इत्थं, यदा यदा = यस्मिन् यस्मिन् समये, चित्ते = मनसि, कुरुते = विधत्ते, विमृशतीति भावः। तदा = तस्मिन् तस्मिन् समये, परिवेषकैतवात् = परिधिच्छलात्, भानोः = सूर्यस्य, विधोः अपि = चन्द्रमसः अपि, कुण्डलनां = वैयर्थ्यसूचकं रेखामण्डलं, तनोति = विस्तारयति ॥ १४ ॥

अनुवादः—ब्रह्माजी नलके तेजकी और उनकी कीर्तिकी स्थितिमें ये (सूर्य और चन्द्र) व्यर्थ हैं ऐसा जब-जब विचार करते हैं तब तब परिवेष (मण्डल) के छलसे सूर्य और चन्द्रकी कुण्डलना (घेरे) को फैला देते हैं ॥ १४ ॥

टिप्पणी—तदोजसः = तस्य ओजः, तस्य (ष० त०)। तद्यशसः = तस्य यशः, तस्य (ष० त०)। स्थितौ = स्था + क्तिन् + ङि। यदा = यस्मिन् काले, "सर्वैकान्यकिंयत्तदः काले दा" इति सूत्रसे यद् शब्दसे दा प्रत्यय। तदा = तस्मिन् काले, पूर्वकथित सूत्रसे तद् शब्दसे दा प्रत्यय। परिवेषकैतवात् = परिवेषस्य कैतवं, तस्मात् (ष० त०), हेतुमें पञ्चमी। "परिवेषस्तु परिधिरुपसूर्यकमण्डले।" इत्यमरः। तनोति = "तनु विस्तारे" इस धातुसे लट् + तिप्। यहाँ पर प्रसिद्ध उपमानभूत सूर्य और चन्द्रकी निष्फलताका अभिधान होनेसे प्रतीप अलङ्कार है, जैसे कि साहित्यदर्पणमें उसका लक्षण है—

"प्रसिद्धस्योपमानस्योपमेयत्वप्रकल्पनम्।
निष्फलत्वाऽभिधानं वा प्रतीपमिति कथ्यते ॥" १०–११३

इसी तरह यहाँपर प्रस्तुत परिवेषका निषेध कर कुण्डलनाका स्थापन करनेसे अपह्नुति भी है इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी निरपेक्षतासे स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है॥ १४ ॥

अयं दरिद्रो भवितेति वैधसीं लिपिं ललाटेऽर्थिजनस्य जाग्रतीम्।
मृषा न चक्रेऽल्पितकल्पपादपः प्रणीय दारिद्र्यदरिद्रतां नृपः ॥ १५ ॥

अन्वयः—अल्पितकल्पपादपो नृपः अर्थिजनस्य ललाटे "अयं दरिद्रो भविता" इति जाग्रतीं वैधसीं लिपिं दारिद्र्यदरिद्रतां प्रणीय मृषा न चक्रे ॥ १५ ॥

नलस्य दानशौण्डत्वं श्लोकद्वयेन प्रतिपादयति—अयमिति।

व्याख्या—अल्पितकल्पपादपः = अल्पीकृतकल्पवृक्षः, नृपः = नैषधः, अर्थिजनस्य = याचकजनस्य, ललाटे = भाले, अयम् = एषः, जनः = नरः, दरिद्रः = निःस्वः, भविता = भविष्यति, इति = इत्थं, जाग्रतीं = सदा स्थितां, वैधसीं = ब्रह्मसम्बन्धिनीं, लिपिं = लिविं, वर्णावलीमिति भावः, दारिद्र्यदरिद्रतां =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दरिद्रताऽभावं, प्रणीय = निर्माय, मृषा = मिथ्या, न चक्रे = न कृतवान्, एतेन याचितपदार्थस्य दातुः कल्पपादपान्नलस्योत्कर्षाऽतिशयो द्योत्यते ॥ १५ ॥

अनुवादः—कल्पवृक्षको भी मात करनेवाले नलने याचकके लिलारमें "यह दरिद्र होगा" ऐसी विद्यमान ब्रह्माकी लिपिको उस याचककी दरिद्रताका दारिद्र्य करके झूठी नहीं बनाया ॥ १५ ॥

टिप्पणी—अल्पितकल्पपादपः=अल्पः कृतः अल्पितः, अल्प शब्दसे "तत्करोति तदाचष्टे" इससे णिच् प्रत्यय होकर क्त प्रत्यय। कल्प (संकल्पिताऽर्थ) पूरकः पादपः कल्पपादपः, "शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्" इस वार्तिकसे मध्यमपदलोपी समास। अल्पितः कल्पपादपो येन सः (बहु०)। अर्थिजनस्य = असन्निहितः अर्थः अस्याऽस्तीति अर्थी, 'अर्थ' शब्दसे "अर्थाच्चाऽसन्निहिते" इस सूत्रसे इनि प्रत्यय। "वनीयको याचनको मार्गणो याचकार्ऽथिनौ।" इत्यमरः। अर्थी चाऽसौ जनः, तस्य (क० धा०)। दरिद्रः = दरिद्रातीति, "दरिद्रा दुर्गतौ" इस धातुसे पचाद्यच्। भविता = "भू सत्तायाम्" इस धातुसे "अनद्यतने लुट्" इससे लुट् + तिप्। जाग्रतीं = जागर्तीति जाग्रती, तां, "जागृ निद्राक्षये" इस धातुसे लट्के स्थानमें शतृ आदेश और स्त्रीत्वविवक्षामें टित् होनेसे "टिड्ढाणञ्" इत्यादि सूत्रसे ङीप् प्रत्यय। वैधसीं = वेधस इयं वैधसी, ताम्, "वेधस्–शब्दसे "तस्येदम्" इससे अण् प्रत्यय और स्त्रीत्वविवक्षामें "टिड्ढाणञ्०" इत्यादि सूत्रसे ङीप्। दारिद्र्यदरिद्रतां = दरिद्रस्य भावः कर्म वा दारिद्र्यं, दरिद्र + ष्यञ्। दरिद्रस्य भावो दरिद्रता, दरिद्र + तल् + टाप्। दारिद्र्यस्य दरिद्रता, ताम् (ष० त०)। प्रणीय = प्र + नी + क्त्वा (ल्यप्)। मृषा = यह अव्यय है। चक्रे = कृ + लिट् + त। इस पद्यसे नलकी उत्कृष्ट दानशीलता प्रतीत होती है। इस पद्यमें "अल्पितकल्पपादपः" इस पदसे उपमान कल्पपादपसे उपमेय नलके आधिक्य वर्णन करनेसे व्यतिरेक अलङ्कार है ॥ १५ ॥

विभज्य मेरुर्न यदर्थिसात्कृतो न सिन्धुरुत्सर्गजलव्ययैर्मरुः।
अमानि तत्तेन निजाऽयशोयुगं द्विफालबद्धाश्चिकुराः शिरःस्थितम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—विभज्य मेरुः यत् अर्थिसात् न कृतः, उत्सर्गजलव्ययैः सिन्धुः यत् मरुः न कृतः; तत् तेन द्विफालबद्धाः चिकुराः शिरःस्थितं निजाऽयशोयुगम् अमानि ॥ १६ ॥

व्याख्या—विभज्य = विभागं कृत्वा, खण्डशो विधायेति भावः। मेरुः =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सुमेरुपर्वतः, यत् = यस्मात्कारणात्, अर्थिसात् = याचकाऽधीनः, न कृतः = नो विहितः, एवं च उत्सर्गजलव्ययैः = दानसलिलोपयोगैः, सिन्धुः = समुद्रः । यत् = यस्मात्कारणात्, मरुः = धन्वा, निर्जलदेश इति भावः, न कृतः = नो विहितः । तत्=तस्मात् कारणद्वयात्, तेन = नलेन, द्विफालवद्धाः = द्विभागनद्धाः, चिकुराः = केशाः उद्देश्यवाचकं पदमेतत् । शिरःस्थितं = स्वमस्तकस्थं, निजाऽयशोयुगं = स्वकीयाऽकीर्तियुग्मं, विधेयवाचकं पदमेतत् । अमानि = मतं, विचारितमिति भावः ॥ १६ ॥

अनुवादः—विभाग करके (खण्ड खण्ड वनाकर) सुमेरुपर्वतको याचकजनोंको नहीं दिया और न तो दान करनेके समयमें जलका व्यय करके समुद्रको मरुस्थल बनाया इस कारणसे महाराज नलने दो भागोंमें बाँधे गये अपने केशोंकों अपने शिरमें स्थित अपने दो अकीर्तिरूप समझा ॥ १६ ॥

टिप्पणी—विभज्य = वि + भज् + क्त्वा (ल्यप्) । मेरुः = "मेरुः सुमेरुहेमाद्री रत्नसानुः सुरालयः ।" इत्यमरः ।, उक्त कर्ममें प्रथमा । अर्थिसात् = अर्थ्यधीनः, "अर्थिन् शब्दसे "तदधीनवचने" इस सूत्रसे "साति" प्रत्यय । उत्सर्गजलव्ययैः = उत्सर्गस्य जलं (ष० त०), तस्य व्ययाः: तैः (ष० त०) । मरुः = "समानौ मरुधन्वानौ" इत्यमरः । द्विफालवद्धाः = द्वयोः फालयोः वद्धाः, "तद्धिताऽर्थोत्तरपदसमाहारे च" इस सूत्रसे उत्तरपदसमास । चिकुराः = "चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः ।" इत्यमरः । यह उद्देश्यवाचक पद है । शिरःस्थितं = शिरसि स्थितम् (स० त०) । निजाऽयशोयुगं = न यशसी, (नञ्०) । अयशसोर्युगम् (ष० त०) । निजं च तत् अयशोयुगम् (क० धा०), यह विधेयवाचक पद है । अमानि = मन् धातुसे कर्ममें लुङ् । उद्देश्यवाचक "चिकुराः" के बहुवचनान्त होनेपर भी विधेयवाचक पद "निजाऽयशोयुगम्" इसके एक वचनान्त होनेपर विधेयकी प्रधानतासे क्रियापदमें एकवचन हुआ है । इस पद्यमें मेरु और मरु इन दोनों अप्रस्तुत पदोंकी कर्मतासे सम्वन्ध होनेसे तुल्ययोगिता अलङ्कार है । जैसा कि उसका लक्षण है—

"पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत् ।
एकधर्माऽभिसम्वन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ॥" सा० द० १०-६६ ।

केशोंमें कृष्णताकी समतासे अयशका रूपण करनेसे रूपक अलङ्कार है, इस प्रकार तुल्ययोगिता और रूपककी परस्परमें अनपेक्षतया स्थिति होनेसे संसृष्टि अलंकार है ॥ १६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अजस्रमभ्यासमुपेयुषा समं मुदैव देवः कविना बुधेन च ।
दधौ पटीयान्समयं नयन्नयं दिनेश्वरश्रीरुदयं दिने दिने ॥ १७ ॥

अन्वयः—पटीयान् दिनेश्वरश्रीः अयं देवः अजस्रम् अभ्यासम् उपेयुषा कविना बुधेन च समं मुदा एव समयं नयन् दिने दिने उदयं दधौ ॥ १७ ॥

नलस्य विद्वज्जनसंगतिं प्रतिपादयति—अजस्रमिति ।

व्याख्या—पटीयान् = कार्यकुशलः, दिनेश्वरश्रीः = सूर्यसमतेजाः, अयं वर्ण्यमानः, देवः = राजा, नल इत्यर्थः । अजस्रं = निरन्तरम्, अभ्यासं = समीपम्, उपेयुषा = प्राप्तवता, कविना = काव्यकर्त्रा शुक्रेण च, बुधेन = पण्डितेन, चन्द्रपुत्रग्रहेण च, समं = सह, मुदा एव = आनन्देन एव, समयं = कालं, नयन् = यापयन्, दिने दिने = प्रतिदिनम्, उदयम् = उन्नतिम् उदयपर्वतसम्बन्धं च, दधौ = धृतवान् ॥ १७ ॥

अनुवादः—कार्यकुशल और सूर्यके समान तेजवाले ये महाराज नल जैसे सूर्य निरन्तर समीपमें रहनेवाले कवि (शुक्र)के तथा चन्द्रके पुत्र ग्रहके साथ हर्षके साथ समयको विताते हुए प्रतिदिन उदयाचलको प्राप्त करते हैं उसी प्रकार निरन्तर निकट रहने वाले कवि (काव्यकर्ता) और वुध (विद्वान्) के साथ हर्षसे समयको विताते हुए प्रतिदिन उन्नतिको प्राप्त करते थे ॥ १७ ॥

टिप्पणी—पटीयान् = अतिशयेन पटुः, पटु + ईयसुन् । दिनेश्वरश्रीः = दिनस्य ईश्वरः (ष० त०), तस्य इव श्रीर्यस्य सः (व्यधिकरण-बहु०) । अभ्यासं "सदेशाऽभ्याससविधसमर्यादसवेशवत् ।" इत्यमरः । उपेयुषा = उपेयायेति उपेयिवान्, तेन, "उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च" इस सूत्रसे उप-उपसर्गकपूर्वक इण् धातुसे भूतमात्रमें लिट्, उसके स्थानमें क्वसु प्रत्यय ओर इट् आगम । कविना="उशना भार्गवः कविः" इति, "संख्यावान्पण्डितः कविः" इति चाऽमरः । वुधेन = "रौहिणेयो बुधः सौम्य" इति "सन्सुधीः कोविदो बुधः" इति चाऽमरः । -'समम्" पदके साथ योग होनेसे दोनों पदोंसे "सहयुक्तेऽप्रधाने" इस सूत्रसे तृतीया । नयन् = नयतीति, नी + लट् (शतृ) । दधौ = धा + लिट् + तिप् । इस पद्यमें "दिनेश्वरश्रीः" इस पदमें उपमा और तथा "कविना" और "बुधेन" इन दोनों पदोंमें श्लेष होनेसे दो अलंकारोंकी संसृष्टि है ॥ १७ ॥

अधोविधानात्कमलप्रवालयोः, शिरःसु धानादखिलक्षमाभुजाम् ।
पुरेदमूर्ध्वं भवतीति वेधसा पदं किमस्याऽङ्कितमूर्ध्वरेखया ॥ १८ ॥

अन्वयः—कमलप्रवालयोः अधोविधानात् अखिलक्षमाभुजां शिरःसु धानात्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इदम् ऊर्ध्वं पुरा भवति इति वेधसा अस्य पदम् ऊर्ध्वरेखया अङ्कितं किम् ? ॥१८॥

व्याख्या—कमलप्रवालयोः = कमलपल्लवयोः, अधोविधानात् = तिरस्करणात्, अरुणतास्निग्धतामृदुत्वाऽतिशयैरिति शेषः । तथा अखिलक्षमाभुजां = सकलभूपालानां, शिरःसु = मस्तकेषु, धानात् = स्थापनात्, "दानात्" इति पाठान्तरेऽपि स एवाऽर्थः । इदं = पदम्, ऊर्ध्वम् = उपरिवर्ति, पुरा भवति = भविष्यति, इति = हेतोः, वेधसा = ब्रह्मणा, अस्य = नलस्य, पदं = चरणम्, ऊर्ध्वरेखया=उच्चरेखया, अङ्कितं किं = चिह्नितं किम् ? ॥ १८ ॥

अनुवादः—कमल और पल्लवको तिरस्कार करनेसे और संपूर्ण राजाओंके मस्तकोंमें स्थापन करनेसे, यह चरण उच्च स्थानमें रहेगा इस हेतुसे ब्रह्माजीने इनके चरणको ऊर्ध्वरेखासे अङ्कित किया है क्या ? ऐसा मालूम पड़ता है ॥ १८ ॥

टिप्पणी—कमलप्रवालयोः = कमलं च प्रवालश्च, तयोः (द्वन्द्वः) । अखिलक्षमाभुजां = क्षमां भुञ्जन्तीति क्षमाभुजः, क्षमा + भुज् + क्विप् (उपपद०) । "गौरिला कुम्भिनी क्षमा" इत्यमरः । अखिलाश्च ते क्षमाभुजः, तेषाम् (क० धा०) । धानात् = धा + ल्युट् + ङसिः । पुरा भवति = भू धातुसे "पुरा" पदके योगमें "यावत्पुरानिपातयोर्लट्" इस सूत्रसे भविष्यत् कालमें लट् । ऊर्ध्वरेखया = ऊर्ध्वा चाऽसौ रेखा, तया (क० धा०) । सौन्दर्य और शुभ लक्षणोंसे संपन्न नलका चरण है, यह तात्पर्य है । इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥ १८ ॥

> **जगज्जयं तेन च कोशमक्षयं प्रणीतवाञ्शैशवशेषवानयम् ।**
> **सखा रतीशस्य ऋतुर्यथा वनं वपुस्तथाऽऽलिङ्गदथाऽस्य यौवनम् ॥ १९ ॥**

अन्वयः—शैशवशेषवान् अयं जगज्जयं, तेन च कोशम् अक्षयं प्रणीतवान् । अथ रतीशस्य सखा ऋतुः यथा वनं, तथा यौवनम् अस्य वपुः आलिङ्गत् ॥ १९ ॥

अथ नलस्य तारुण्योपगमं क्रमेण वर्णयति—जगज्जयमिति ।

व्याख्या—शैशवशेषवान् = बाल्याऽवशेषयुक्तः, षोडशवर्षदेशीय इति भावः । अयं = नलः, जगज्जयं = लोकविजयं प्रणीतवान् = कृतवान्, तेन च = जगज्जयेन च, कोशं = भाण्डारगृहम्, अक्षयं = क्षयरहितं, परिपूर्णमिति भावः, प्रणीतवान् = कृतवान् । अथ = अनन्तरं, शैशवाऽपगमानन्तरमिति भावः । रतीशस्य = रतिपतेः कामदेवस्येति भावः, सखा = सहचरः, मित्रमित्यर्थः । ऋतुः = वसन्तः, यथा = येन प्रकारेण, वनं = काननम्, आलिङ्गति, तथा = तेन प्रकारेण, यौवनं = तारुण्यम्, अस्य = नलस्य, वपुः = शरीरम्, आलिङ्गत् = आलिङ्गितवत्, आश्रयदित्यर्थः । नलस्य यौवनप्रादुर्भावो जात इति भावः ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—बाल्यावस्थाका कुछ अवशेष रहनेपर ही नलने जगत्‌को जीत लिया उससे अपने कोशको अक्षय (परिपूर्ण) बना डाला। जैसे कामदेवका सहकारी (मित्र) ऋतु (वसन्त) वनको आश्रय करता है, वैसे ही बाल्यावस्थाके बीतनेपर यौवनने उनके शरीरका आश्रय लिया, अर्थात् नल युवा हो गये ॥ १९ ॥

टिप्पणी—शैशवशेषवान् = शिशोर्भावः शैशवम्, शिशु शब्दसे "इगन्ताच्च लघुपूर्वात्" इस सूत्रसे अण्, "शिशुत्वं शैशवं बाल्यम्" इत्यमरः। जगज्जयं = जगतां जयः, तम् (ष० त०)। प्रणीतवान् = प्र + नी + क्तवतुः। कोशम् = यह उद्देश्यवाचक है। अक्षयम् = अविद्यमानः क्षयो यस्य-तम् (नञ्-बहु०)। यह विधेयवाचक है। रतीशस्य = रतेः ईशः, तस्य (ष० त०)। यौवनं = यूनः भावः, युवन्—शब्दसे "हायनाऽन्तयुवादिभ्योऽण्" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय और "अन्" इससे अन्‌का प्रकृति भाव होनेसे टिलोप नहीं हुआ। "तारुण्यं यौवनं समे।" इत्यमरः। आलिङ्गत् = आङ् + लिगि + लङ् + तिप्। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १९ ॥

अथ नलशरीरवर्णनमुपक्रमते—

अधारि पद्मेषु तदङ्घ्रिणा घृणा, क्व तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे।
तदास्यदास्येऽपि गतोऽधिकारितां न शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः ॥ २० ॥

अन्वयः—तदङ्घ्रिणा पद्मेषु घृणा अकारि। तच्छयच्छायलवोऽपि पल्लवे क्व ? शारदः पार्विकशर्वरीश्वरः तदास्यदास्ये अपि अधिकारितां न गतः ॥ २० ॥

व्याख्या—तदङ्घ्रिणा = नलचरणेन, पद्मेषु = कमलेषु, घृणा = जुगुप्सा, अधारि = धृता, नलचरणापेक्षया कमलानां निकृष्टत्वादिति भावः। तच्छयच्छायलवः अपि = नलपाणिकान्तिलेशः अपि। पल्लवे = किसलये, क्व = कुत्र, नलपाणितः कमलानां हीनत्वादिति भावः। शारदः = शरदभ्युदितः, पार्विकशर्वरीश्वरः = पूर्णिमाचन्द्रः, षोडशकलासंपूर्ण इति भावः। तदास्यदास्ये अपि = नलमुखदासभावे अपि, अधिकारितां = योग्यतां, न गतः = न प्राप्तः, शारदपूर्णचन्द्रोऽपि नलमुखतो हीन आसीदिति भावः ॥ २० ॥

अनुवादः—नलके चरणने कमलोंमें घृणाकी। नलके पाणिकी कान्तिका लेश भी पल्लवमें कहाँ था ? शरत् ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्र उनके मुखके दास होनेके लिए भी अधिकारी (योग्य) नहीं थे ॥ २० ॥

टिप्पणी—तदङ्घ्रिणा = तस्य अङ्घ्रिः, तेन (ष० त०), "पादः पदङ्घ्रि-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्वरणोऽस्त्रियाम्'' इत्यमरः। अधारि = धृ + लुङ् (कर्ममें)। तच्छयच्छायलवः = तस्य शयः तच्छयः (ष० त०), ''पञ्चशाखः शयः पाणिः'' इत्यमरः। तच्छयस्य छाया तच्छयच्छायम् (ष० त०), ''विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्'' इस सूत्रसे विकल्पसे नपुंसकलिङ्गी हुआ है। ''छाया सूर्यप्रिया कान्तिः प्रतिविम्व-मनातपः।'' इत्यमरः। शारदः = शरदि भवः, शरद्–शब्दसे ''सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रे-भ्योऽण्'' इस सूत्रसे अण्। पार्विकशर्वरीश्वरः = पर्वणि भवः पार्विकः, पर्वन्–शब्दसे ''कालाट्ठञ्'' इससे ठञ्। शर्वर्या ईश्वरः (ष० त०)। पार्विकश्चाऽसौ शर्वरीश्वरः (क० धा०)। तदास्यदास्ये = तस्य आस्यम् (ष० त०)। दासस्य भावो दास्यम्, दास + ष्यञ्। तदास्यस्य दास्यं, तस्मिन् (ष० त०)। अधि-कारिताम् = अधिकरोतीति तच्छीलः अधिकारी, अधि + कृ + णिनिः, अधिकारिणो भावः अधिकारिता, ताम्, अधिकारिन् + तल् + टाप्। इस पद्यमें नलके अङ्घ्रि आदियोंका कमल आदियोंमें घृणाका सम्वन्ध न होनेपर भी सम्वन्धकी उक्ति होनेसे अतिशयोक्ति अलंकार है। उसका लक्षण है—

''सिद्धत्वेऽध्यवसायस्याऽतिशयोक्तिर्निगद्यते'' ॥ १०–६६ ॥

उसके पाँच भेद इस प्रकार हैं—

''भेदेऽप्यभेदः सम्वन्धेऽसम्वन्धस्तद्विपर्ययौ।
पौर्वापर्याऽत्ययः कार्यहेत्वोः सा पञ्चधा ततः'' (६७) ॥ २० ॥

किमस्य लोम्नां कपटेन कोटिभिर्विधिर्न लेखाभिरजीगणद् गुणान् ?।
न रोमकूपौघमिषाज्जगत्कृता कृताश्च किं दूषणशून्यविन्दवः ? ॥ २१ ॥

अन्वयः—विधिः रोम्णां कपटेन कोटिभिः लेखाभिः अस्य गुणान् किं न अजीगणत् ?। जगत्कृता रोमकूपौघमिषात् दूषणशून्यविन्दवश्च किं न कृताः ? ।२१॥

व्याख्या—विधिः = ब्रह्मा, रोम्णां = लोम्नां, कपटेन = व्याजेन, कोटिभिः = सार्धत्रिकोटिसंख्याभिः, लेखाभिः = रेखाभिः, अस्य = नलस्य, गुणान् = शौर्यौ-दार्यसौन्दर्यादीन्, किं न अजीगणत् = किं न गणितवान्, अजीगणत् इति भावः। तथैव जगत्कृता = लोकसृजा, ब्रह्मणेति भावः, अस्य, रोमकूपौघमिषात् = लोम-कूपसमूहच्छलात्, दूषणशून्यविन्दवः = दोषाऽभावपृषताः, किं न कृताः = किं नो विहिताः, कृता एवेति भावः, नलस्य गुणा अतिप्रचुरा दोषाणां सुतरामभाव इति भावः ॥ २१ ॥

अनुवादः—ब्रह्माजीने रोमोंके बहानेसे करोड़ों रेखाओंसे क्या नलके गुणोंको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं गिना ? उसी तरह लोकको सृष्टि करनेवाले उन्होंने लोमकूपोंके बहानेसे नलके दोषोंके अभावसूचक शून्यविन्दुओंको क्या नहीं किया ? ॥ २१ ॥

टिप्पणी—रोम्णां = "तनूरुहं रोम लोम" इत्यमरः। अजीगणत् = "गण संख्याने" धातुसे णिच् प्रत्यय होकर लुङ्का रूप है, "ई च गणः" इससे ईत्व हुआ है। जगत्कृता = जगत् करोतीति जगत्कृत्, तेन, जगत् + कृ + क्विप् + टा (उपपद०)। रोमकूपौघमिषात् = रोम्णां कूपाः (ष० त०), तेषामोघः (ष० त०), तस्य मिषं, तस्मात् (ष० त०)। दूषणशून्यविन्दवः = दूषणानां शून्यानि (ष० त०) तत्सूचका विन्दवः (मध्यमपद लोपी स०)। इस पद्यमें दो अपह्नुतियाँ और दो अर्थापतियां इनकी संसृष्टि है ॥ २१ ॥

अमुष्य दोर्भ्यामरिदुर्गलुण्ठने ध्रुवं गृहीताऽर्गलदीर्घपीनता।
उरःश्रिया तत्र च गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्षतिरःप्रसारिता ॥ २२ ॥

अन्वयः—अमुष्य दोर्भ्याम् अरिदुर्गलुण्ठने अर्गलदीर्घपीनता गृहीता ध्रुवम्। तत्र उरःश्रिया च गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्षतिरःप्रसारिता गृहीता ध्रुवम् ॥ २२ ॥

व्याख्या—अमुष्य = नलस्य, दोर्भ्यां = बाहुभ्याम्, अरिदुर्गलुण्ठने = शत्रुदुर्गमस्थलबलात्कारग्रहणे, अर्गलदीर्घपीनता = विष्कम्भायतपुष्टता, गृहीता ध्रुवम् = उपात्ता किम् ? तत्र = अरिदुर्गलुण्ठने, उरःश्रिया च = वक्षःस्थलसम्पत्त्या च, गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्षतिरःप्रसारिता = पुरद्वारप्रकाशमानकवाटाऽधृष्यता तिर्यक्प्रसरणशीलता च, गृहीता ध्रुवम् = उपात्ता किमु ॥ २२ ॥

अनुवादः—नलकी बाहुओंने शत्रुओंकी किलोंको बलात्कारसे ग्रहण करनेमें अर्गलाकी समान लम्बाई और मुटाईको ग्रहण कर लिया है ऐसा मालूम पड़ता है। उसमें वक्षः स्थलकी शोभाने शहरके द्वारमें प्रकाशमान कपाट (किबाड़)की समान दुर्धर्षता और तिरछी विस्तृतताको ग्रहण कर लिया है ऐसा प्रतीत होता है ॥ २२ ॥

टिप्पणी—दोर्भ्यां = "भुजबाहू प्रवेष्टो दोः" इत्यमरः। अरिदुर्गलुण्ठने = दुःखेन गम्यत एषु इति दुर्गाणि, दुर्—उपसर्ग पूर्वक गम् धातुसे "सुदुरोरधिकरणे" इस सूत्रसे ड प्रत्यय। पर्वत आदि दुर्गमस्थानोंको "दुर्ग" कहते हैं। ऐसे दुर्गोंके छः भेद होते हैं, जैसे कि भगवान् मनुने कहा है—

"धन्वदुर्गं महीदुर्गमब्दुर्गं वार्क्षमेव वा।
नृदुर्गं गिरिदुर्गं वा समाश्रित्य वसेत्पुरम् ॥" ७–७०।

अर्थात् मरुदुर्ग, महीदुर्ग, जलदुर्ग, वृक्षदुर्ग, मनुष्यदुर्ग और पर्वतदुर्ग राजा इनमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एक दुर्गका आश्रय करके नगरमें रहे। अरीणां दुर्गाणि (ष० त०)। तेषां लुण्ठनं, तस्मिन्; (ष० त०)। "लुठि स्तेये" धातुसे ल्युट् प्रत्यय होकर "लुण्ठन" पद बनता है। अर्गलदीर्घपीनता = दीर्घं च तत्पीनम् (क० धा०)। तस्य भावः, दीर्घपीन + तल् + टाप्। अर्गलस्य दीर्घपीनता (ष० त०)। "तद्विष्कम्भोऽर्गलं न ना।" इत्यमरः। गृहीता = ग्रह + क्त + टाप्। ध्रुवम् = यह उत्प्रेक्षावाचक शब्द है। उरःश्रिया = उरसः श्रीः, तया (ष० त०)। गोपुरस्फुरत्कपाटदुर्धर्षतिरःप्रसारिता = स्फुरच्च तत्कपाटम् (क० धा०)। गोपुरे स्फुरत्कपाटम् (स० त०)। "पुरद्वारं तु गोपुरम्" इत्यमरः। दुःखेन धर्षितुं शक्यं दुर्धर्षं, दुर् + धृष् + खल्। तिरः प्रसरतीति तच्छीलं तिरःप्रसारि, तिरस् + प्र + सृ + णिनि दुर्धर्षं च तत् तिरः प्रसारि (क० धा०), तस्य भावः, दुर्धर्षतिरःप्रसारिन् + तल् + टाप्। गोपुरस्फुरत्कपाटस्य दुर्धर्षतिरःप्रसारिता (ष० त०)। इस पद्यमें दो उत्प्रेक्षाओंका निरपेक्षतासे स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है॥ २२॥

स्वकेलिलेशस्मितनिर्जितेन्दुनःनिजांऽशदृक्तर्जितपद्मसम्पदः।
अतद्द्वयीजित्वरसुन्दराऽन्तरे न तन्मुखस्य प्रतिमा चराऽचरे॥ २३॥

अन्वयः—स्वकेलिलेशस्मितनिर्जितेन्दुनः निजांऽशदृक्तर्जितपद्मसंपदः तन्मुखस्य प्रतिमा अतद्द्वयीजित्वरसुन्दराऽन्तरे चराऽचरे न॥ २३॥

व्याख्या—स्वकेलिलेशस्मितनिर्जितेन्दुनः = आत्मक्रीडालवमन्दहास्यविजितचन्द्र-स्य, निजांऽशदृक्तर्जितपद्मसंपदः = स्वभागनेत्रभर्त्सितकमलश्रियः तन्मुखस्य = नलानन-स्य, प्रतिमा=उपमा, अतद्द्वयीजित्वरसुन्दराऽन्तरे = चन्द्रपद्मजेतृरुचिरपदार्थरहिते, चराऽचरे = जङ्गमस्थावरात्मके जगति, न = न अवर्तत॥ २३॥

अनुवादः—अपनी क्रीडाके लेशभूत मन्दहास्यसे चन्द्रको जीतनेवाले और अपने अंशभूत नेत्रोंसे कमलोंकी शोभाको भर्त्सना करनेवाले नलमुखकी उपमा चन्द्र और कमलको जीतनेवाले सुन्दर पदार्थसे रहित चराऽचर (जगत्)में नहीं थी॥ २३॥

टिप्पणी—स्वकेलिलेशस्मितनिर्जितेन्दुनः = स्वस्यः केलिः (ष० त०)। तस्याः लेशः (ष० त०)। स्वकेलिलेशश्च तत् स्मितम् (क० धा०)। "ईषद्विकासि-नयनं स्मितं स्यात्स्पन्दिताऽधरम्" साहित्यदर्पण–(३–२२१) की इस उक्तिके अनुसार जिस हास्यमें नेत्र कुछ विकसित होते हैं और ओष्ठ हिलता है उसे "स्मित" कहते हैं। निर्जित इन्दुः येन तत् (बहु०)। स्वकेलिलेशस्मितेन निर्जितेन्दु, तस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(तृ० त०)। यह और आगेका दूसरा पद ये दोनों पद "तन्मुखस्य" इस पदके विशेषण हैं। निजांशदृक्तर्जितपद्मसम्पदः = निजश्चाऽसौ अंशः (क० धा०)। स चाऽसौ दृक् (क० धा०)। पद्मस्य सम्पत् (ष० त०)। तर्जिता पद्मसंपत् येन (बहु०)। निजांशदृशा तर्जितपद्मसंपत् तस्य (तृ० त०)। तन्मुखस्य = तस्य मुखं, तस्य (ष० त०)। अतद्द्वयीजित्वरसुन्दराऽन्तरे = द्वौ अवयवौ यस्याः सा द्वयी, द्वि-शब्दसे "संख्याया अवयवे तयप्" इस सूत्रसे तयप् प्रत्यय होकर उसके स्थानमें "द्वित्रिभ्यां तयस्याऽयज्वा" इससे अयच् आदेश होकर स्त्रीत्व-विवक्षामें "टिड्ढाणञ्०" इत्यादि सूत्रसे ङीप् प्रत्यय। तयोर्द्वयी (ष० त०)। जयतीति तच्छीलं जित्वरं, जि—धातुसे "इण्नशजिसर्तिभ्यः क्वरप्" इस सूत्रसे क्वरप्। तद्द्वय्या जित्वरम् (ष० त०)। अन्यत् सुन्दरं सुन्दराऽन्तरम्, "मयूर-व्यंसकादयश्च" इस सूत्रसे समास हुआ है। तद्द्वयीजित्वरं च तत् सुन्दराऽन्तरम् (क० धा०)। अविद्यमानं तद्द्वयीजित्वरसुन्दराऽन्तरं यस्मिन्, तस्मिन् (नञ्-बहु०)। चराऽचरे = चराश्च अचराश्च चराऽचरं, तस्मिन्, "सर्वो द्वन्द्वो विभाषयैकवद्भवति" इस परिभाषासे एकवद्भाव हुआ है। इस पद्यमें व्यतिरेक अलङ्कार, और चन्द्र और पद्मके विजयकी विशेषणगतिसे नलके मुखमें उपमाऽभावकी हेतुतासे पदाऽर्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"हेतोर्वाक्यपदाऽर्थत्वे काव्यलिङ्गं निगद्यते।" (सा० द० १०-६१)।

इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ २३ ॥

भङ्ग्यन्तरेण तमेवाऽर्थं पुनरप्याह—

सरोरुहं तस्य दृशैव निर्जितं, जिताः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः।
कुतः परं भव्यमहो महीयसी तदाननस्योपमितौ दरिद्रता ॥ २४ ॥

अन्वयः—तस्य दृशा एव सरोरुहं तर्जितम्। (तस्य) स्मितेन एव विधोः अपि श्रियः जिताः। (आभ्याम्) परं भव्यं कुतः ? अहो! तदाननस्य उपमितौ महीयसी दरिद्रता ॥ २४ ॥

व्याख्या—तस्य = नलमुखस्य, दृशा एव = नेत्रेण एव, सरोरुहं = कमलं, तर्जितं = भर्त्सितम्। तस्य स्मितेन एव = मन्दहास्येन एव, विधोः अपि = चन्द्रमसः अपि, श्रियः = शोभाः, जिताः = निर्जिताः, (आभ्यां = सरोरुहविधुभ्याम्) परम् = अन्यत्, भव्यं=सुन्दरं वस्तु, कुतः = कस्मात्, उपलभ्येतेति शेषः। अहो = आश्चर्यम्। तदाननस्य = नलमुखस्य, उपमितौ = तुलनायां, महीयसी = अतिमहती,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दरिद्रता = वचनसम्पत्तेरभावः, कवीनामिति शेषः; सर्वथा निरुपमं नलमुख-मिति भावः ॥ २४ ॥

अनुवादः—नलके मुखमण्डलमें वर्तमान नेत्रने ही कमलकी भर्त्सनाकी और मन्दहास्यसे ही चन्द्रमाकी शोभाओंको जीत लिया। इन दोनों (कमल और चन्द्र) से अन्य सुन्दर पदार्थ कहाँ है ? आश्चर्य है कि नलके मुखकी उपमामें बड़ी दरिद्रता है॥ २४ ॥

टिप्पणी—सरोरुहं = सरसि रोहतीति, सरस्–उपपदपूर्वक रुह धातुसे "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इस सूत्रसे क प्रत्यय, (उपपद०)। विधोः = "विधुः सुधांऽशुः शुभ्रांऽशुः" इत्यमरः। भव्यं = भवतीति, "भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीय-जन्याप्लाव्यापात्या वा" इस सूत्रसे निपातन हुआ है। कुतः = कस्मात् इति, किम् + तसिल्। तदाननस्य = तस्य आननं, तस्य (ष० त०)। महीयसी = अतिशयेन महती, महत्–शब्दसे "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इस सूत्रसे ईयसुन् प्रत्यय और स्त्रीत्व विवक्षामें ङीप्। दरिद्रता = दरिद्रस्य भावः, दरिद्र + तल् + टाप्। इस पद्यमें व्यतिरेक तथा सरोरुह और विधुके विजयरूप वाक्यार्थमें मुखकी उपमाकी दरिद्रताके हेतु होनेसे वाक्याऽर्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। दोनोंकी संसृष्टि है ॥ २४ ॥

> स्ववालभारस्य तदुत्तमाऽङ्गजैः समं चमर्येव तुलाऽभिलाषिणः।
> अनागसे शंसति बालचापलं पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात् ॥ २५ ॥

अन्वयः—चमरी एव तदुत्तमाऽङ्गजैः समं तुलाऽभिलाषिणः स्ववालभारस्य अनागसे पुनः पुनः पुच्छविलोलनच्छलात् वालचापलं शंसति ॥ २५ ॥

व्याख्या—चमरी एव = चमरमृगी एव, तदुत्तमाऽङ्गजैः समं = नलकेशैः सह, तुलाऽभिलाषिणः = साम्यकामिनः, स्ववालभारस्य = आत्मकेशकलापस्य, अनागसे = अपराधाऽभावाय, पुनः पुनः = भूयो भूयः, पुच्छविलोलनच्छलात् = लाङ्गूल-संचालनव्याजात्, वालचापलं = रोमचाञ्चल्यं यद्वा, वालचापलं = शिशुचाञ्चल्यं, शंसति = सूचयति। यथा माता महापुरुषैः समं संघर्षशीलस्य स्वपुत्रस्याऽपराधाऽभावप्रतिपादनाय "एतेन मतिपूर्वकं नैतदाचरितम् वालत्वान्मूर्खत्वादेव इत्थमाचरितमि"ति कथयति तथैव चमर्यपि नलकेशैः समं साम्यं वाञ्छतो निजवाल-भारस्याऽपराधाऽभावप्रतिपादनार्थं पुच्छविलोलनच्छलात् इदं चापलं वालत्वेन कृतमिति सूचयतीति भावः।

अनुवादः—चमरी मृगी ही नलके केशोंके साथ बराबरीकी इच्छा करनेवाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपने केशकलापकी निरपराधता–प्रकाशनके लिए वारं-वार पूछ हिलानेके वहानेसे रोओंकी चपलता वा यह वालककी चपलता है ऐसी सूचना करती है ।। २५ ।।

टिप्पणी—तदुत्तमाऽङ्गजैः=उत्तमं च तत् अङ्गम् (क० धा०)। "उत्तमाऽङ्गं शिरः शीर्षं मूर्धा ना मस्तकोऽस्त्रियाम् ।" इत्यमरः। तस्य उत्तमाऽङ्गम् (ष० त०)। तदुत्तमाऽङ्गे जाताः, तैः, तदुत्तमाङ्ग–उपपदपूर्वक "जनी प्रादुर्भावे" धातुसे "सप्तम्यां जनेर्डः" इससे ड प्रत्यय (उपपद०), "समम्" पदके योगमें तृतीया। तुलाऽभिलाषिणः=तुलाम् अभिलषतीति तच्छीलः, तस्य तुला + अभि + लष् + णिनिः + ङस् (उपप०)। स्ववालभारस्य = स्वस्य वालाः (ष० त०), "चिकुरः कुन्तलो वालः कचः केशः शिरोरुहः।" इत्यमरः। स्ववालानां भारः, तस्य (ष० त०)। अनागसे = न आगः अनागः, तस्मै "क्रियाऽर्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" इससे चतुर्थी। पुच्छविलोलनच्छलात् = पुच्छस्य विलोलनं (ष० त०), तस्य छलं, तस्मात् (प० त०)। वालचापलं = वालानां चापलम् एव वालस्य चापलं तत् (ष० त०)। शंसति = "शंसु स्तुतौ" धातुसे लट्। इस पद्यमें श्लेष और कैतवापह्नुति दो अलङ्कारोंका सङ्कर है ।।२५।।

महीभृतस्तस्य च मन्मथश्रिया, निजस्य चित्तस्य च तं प्रतीच्छया।
द्विधा नृपे तत्र जगत्त्रयीभुवां नतभ्रुवां मन्मथविभ्रमोऽभवत् ।। २६ ।।

अन्वयः—तस्य महीभृतः मन्मथश्रिया तं प्रति निजस्य चित्तस्य इच्छया च तत्र नृपे जगत्त्रयीभुवां नतभ्रुवां द्विधा मन्मथविभ्रमः अभवत् ।। २६ ।।

व्याख्या—तस्य = पूर्वोक्तस्य, महीभृतः = राज्ञः, नलस्येति भावः। मन्मथश्रिया = कामसदृशशोभया, तं प्रति = नलं प्रति, निजस्य = स्वस्य, चित्तस्य = मनसः, इच्छया च = स्पृहया च, तत्र = तस्मिन्, नृपे = राजनि, नल इति भावः। जगत्त्रयीभुवां = लोकत्रितयोत्पन्नानां, नतभ्रुवां = सुन्दरीणां, द्विधा = द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां, मन्मथविभ्रमः = कामभ्रान्तिः, कामविलासश्च। अभवत् = अभूत्। लोकत्रितयसुन्दरीणां कामसदृशे नले अयं मन्मथ इति भ्रमो मन्मथविलासश्चाऽभवदिति भावः ।। २६ ।।

अनुवादः—राजा नलकी कामदेवकी समान शोभासे और उनके प्रति अपने चित्तकी इच्छासे उनके विषयमें तीन लोकोंमें विद्यमान स्त्रियोंमें दो प्रकारोंसे कामविभ्रम (ये कामदेव हैं ऐसी भ्रान्ति और कटाक्ष आदि कामविलास भी) हो गया ।। २६ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—महीभृतः = महीं बिभर्तीति महीभृत्, तस्य मही + भृ + क्विप् + ङस् (उपपद०)। मन्मथश्रिया = मन्मथस्य श्रीः, तया (ष० त०)। तं = "प्रति" के योगमें "अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि" इस वार्तिकसे द्वितीया। तत्र = तस्मिन्निति तद् + त्रल्। नृपे = नॄन् पातीति नृपः, तस्मिन्, नृ + पा + कः (उपपद०)। जगत्त्रयीभ्रुवां = जगतां त्रयी (ष० त०); तस्यां भवन्तीति जगत्त्रयीभ्रुवः, तासाम्, जगत्त्रयी + भू + क्विप्। नतभ्रुवां = नते भ्रुवौ यासां ता नतभ्रुवः, तासाम् (बहु०)। द्विधा = द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्, द्विशब्दसे "संख्याया विधार्थे धा" इस सूत्रसे धा प्रत्यय (अव्यय)। मन्मथविभ्रमः = मन्मथस्य विभ्रमः (ष० त०)। "भ्रान्तिर्मिथ्यामतिभ्रमः" इति—

> "स्त्रीणां विलासबिब्वोकविभ्रमा ललितं तथा।
> हेला लीलेत्यमी भावाः क्रियाः शृङ्गारभावजाः॥"

इत्यमरः। अभवत् = भू + लङ् + तिप्। यहाँपर तीन भुवनोंकी स्त्रियोंमें वैसे दो मन्मथविभ्रमोंके न होनेपर भी वैसे सम्बन्धकी उक्ति होनेसे अतिशयोक्ति और "मन्मथविभ्रम" पदमें श्लेष अलङ्कार है इस प्रकारसे दो अलङ्कारोंकी परस्परमें निरपेक्ष स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है॥ २६॥

> **निमीलनभ्रंशजुषा दृशा भृशं निपीय तं यस्त्रिदशीभिरर्जितः।**
> **अमूस्तमभ्यासभरं विवृण्वते निमेषनिःस्वैरधुनाऽपि लोचनैः॥ २७॥**

अन्वयः—त्रिदशीभिः निमीलनभ्रंशजुषा दृशा तं भृशं निपीय यः अर्जितः। अमूः अधुना अपि निमेषनिःस्वैः लोचनैः तम् अभ्यासभरं विवृण्वते॥ २७॥

व्याख्या—त्रिदशीभिः = देवीभिः, निमीलनभ्रंशजुषा = मुद्रणनिवृत्तिसेविन्या, निमेषव्यापारशून्यया इति भावः। एतादृश्या दृशा = दृष्ट्या, तं = नलं, भृशम् = अत्यर्थं, निपीय = पानं कृत्वा, प्रणयाऽतिशयेन दृष्ट्वेति भावः। यः = अभ्यासभरः, अर्जितः = उपार्जितः। अमूः = त्रिदश्यः, देव्य इत्यर्थः। अधुना अपि = इदानीम् अपि, निमेषनिःस्वैः = निमेषव्यापाररहितैः, लोचनैः = नेत्रैः, तम् = पूर्वोपार्जितम्, अभ्यासभरम् = अनुशीलनोत्कर्षं, विवृण्वते = प्रकटयन्ति॥ २७॥

अनुवादः—देवियोंने निर्निमेष दृष्टिसे उनको देखकर जो अतिशय अभ्यासको अर्जित किया था। वे लोग अभी भी निमेषरहित दृष्टियोंसे उसको अभिव्यक्त कर रही हैं॥ २७॥

टिप्पणी—त्रिदशीभिः = तिस्रो (बाल्यकौमारयौवनाख्या) दशा येषां ते त्रिदशाः (बहु०)। त्रिदशानां स्त्रियः त्रिदश्यः, ताभिः "पुंयोगादाख्यायाम्"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस सूत्रसे ङीप् प्रत्यय वा त्रिदशजातौ भवास्त्रिदश्यः, ताभिः "जातेरस्त्रीविषया-दयोपधात्" इस सूत्रसे ङीप् प्रत्यय। निमीलनभ्रंशजुषा = निमीलनस्य भ्रंशः (ष० त०), तं जुषत इति निमीलनभ्रंशजुट्, तया, निमीलभ्रंश + जुष् + क्विप् + टा (उपपद०)। निपीय = नि + पा + क्त्वा (ल्यप्)। अर्जितः = "अर्ज अर्जने" धातुसे कर्ममें क्त प्रत्यय। निमेषनिःस्वैः = निर्गतः स्वः (धनम्) येभ्यः तानि (बहु०)। निमेषेषु निःस्वानि, तैः (स० त०)। अभ्यासभरम्=अभ्यासस्य भरः, तम् (ष० त०)। "अथाऽतिशयो भरः" इत्यमरः। विवृण्वते = वि-उपसर्गपूर्वक "वृञ् वरणे" धातुसे लट् + झ। इस पद्यमें देवियोंकी नलको देखनेकी अभ्यासवासनासे निर्निमेपताकी उत्प्रेक्षा है, वह इव आदि शब्दोंका प्रयोग न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥ २७॥

अदस्तदार्कणि फलाढ्यजीवितं दृशोर्द्वयं नस्तदवीक्षि चाऽफलम्।
इति स्म चक्षुःश्रवसां प्रिया नले स्तुवन्ति निन्दन्ति हृदा तदाऽऽत्मनः॥ २८॥

अन्वयः—चक्षुःश्रवसां प्रियाः अदः नः दृशोः द्वयं तदार्कणि (सत्) फलाढ्य-जीवितं, तदवीक्षि (सत्) अफलं च इति नले आत्मनः हृदा तत् स्तुवन्ति स्म निन्दन्ति स्म च॥ २८॥

व्याख्या—चक्षुःश्रवसां = सर्पाणां, प्रियाः = वल्लभाः सर्प्यं इत्यर्थः। अदः = इदं, नः = अस्माकं, दृशोः = नेत्रयोः, द्वयं = द्वितयं, दृग्द्वयमित्यर्थः। तदार्कणि = नलश्रवणशीलं सत्, फलाढ्यजीवितं = सफलजीवितं, वर्तत इति शेषः। एवं च तदवीक्षि = नलाऽवेक्षणरहितं सत्, अफलं च = निष्फलं च, इति = अस्माद्धेतोः, नले = नैषधविषये, आत्मनः = स्वस्य, तत् = दृशोर्द्वयं, स्तुवन्ति स्म = प्रशंसन्ति स्म, नलार्कणित्वेनेति शेषः। निन्दन्ति स्म च = जुगुप्सन्ते च नलाऽवीक्षित्वे-नेति शेषः॥ २८॥

अनुवादः—सर्पोंकी स्त्रियाँ ये हमारी दो आँखें नलके गुणोंको सुनती हैं, इसलिए इनका जीवन सफल है, नलको न देखनेसे ये निष्फल भी हैं इस प्रकारसे वे (सर्पोंकी स्त्रियाँ) नलके विषयमें अपनी आँखोंकी स्तुति और निन्दा भी करती हैं॥ २८॥

टिप्पणी—चक्षुःश्रवसां = चक्षुषी एव श्रवसी येषां ते चक्षुःश्रवसः, तेषाम् (बहु०)। सर्पके चक्षु (नेत्र) ही कान हैं, इसलिए उन्हें "चक्षुःश्रवाः" कहा गया है। परन्तु जब वे चक्षुसे देखते हैं तब सुनते नहीं, जब सुनते हैं तो देखते नहीं, इसी बातको लेकर उनकी नलके विषयमें स्तुति और निन्दाका प्रकाशन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किया गया है। "कुण्डली गूढपाच्चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी।" इत्यमरः। नः = अस्मद् + आम् (नस्), "बहुवचनस्य वस्नसौ" इससे नस् आदेश। द्वयं = द्वि + तयप् (अयच्)। तदाकर्णि = तम् आकर्णयतीति, तद् + अम् + आङ् + कर्ण + णिनि + सु। फलाढ्यजीवितं = फलेन आढ्यम् (तृ० त०), तादृशं जीवितं यस्य तत् (बहु०)। तदवीक्षि = वीक्षते तच्छीलं वीक्षि, वि + ईक्ष + णिनिः (उपपद०) न वीक्षि अवीक्षि (नञ्०)। तस्य अवीक्षि (ष० त०)। अफलम् = अविद्यमानं फलं यस्य तत् (नञ् बहु०)। नले = विषयमें सप्तमी। आत्मनः = आत्मन् + शस् (कर्म)। स्तुवन्ति = स्म = "ष्टुञ् स्तुतौ" धातुसे "स्म"के योगमें "लट् स्मे" इससे भूतकालमें लट्। निन्दन्ति स्म = "णिदि कुत्सायाम्" धातुसे 'स्म'के योगमें पहलेके समान लट्। इस पद्यमें यथासंख्य और वैसी स्तुति औरनिन्दाके सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति इस प्रकार इन दोनों अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ २८ ॥

विलोकयन्तीभिरजस्रभावनाबलादमुं नेत्रनिमीलनेष्वपि ।
अलम्भि मर्त्याभिरमुष्य दर्शने न विघ्नलेशोऽपि निमेषनिर्मितः ॥ २९ ॥

अन्वयः—अजस्रभावनाबलात् नेत्रनिमीलनेषु अपि अमुं विलोकयन्तीभिः मर्त्याभिः अमुष्य दर्शने निमेषनिर्मितः विघ्नलेशः अपि न अलम्भि ॥ २९ ॥

व्याख्या—अजस्रभावनाबलात् = निरन्तरचिन्तनशक्तेः, नेत्रनिमीलनेषु अपि = नयनमुद्रणेषु अपि अमुं = नलं, विलोकयन्तीभिः = पश्यन्तीभिः, मनसेति शेषः। तादृशीभिः मर्त्याभिः = मानुषीभिः स्त्रीभिः, अमुष्य = नलस्य, दर्शने = विलोकने, निमेषनिर्मितः = नेत्रनिमीलनरचितः, विघ्नलेशः अपि = अन्तरायलवः अपि, न अलम्भि = नो लब्धः ॥ २९ ॥

अनुवादः—निरन्तर चिन्तनकी शक्तिसे आँखोंको मूँदनेपर भी नलको देखनेवाली मर्त्यलोककी स्त्रियोंने नलको देखनेमें निमेषसे उत्पन्न विघ्नका लेश भी नहीं पाया ॥ २९ ॥

टिप्पणी—अजस्रभावनाबलात् = भावनाया बलम् (ष० त०)। अजस्रं (यथा तथा) भावनाबलं, तस्मात् (सुप्सुपा०)। हेतुमें पञ्चमी। नेत्रनिमीलनेषु = नेत्रयोः निमीलनानि, तेषु (ष० त०)। विलोकयन्तीभिः = वि + लोक + णिच् + लट् (शतृ) + ङीप्। मर्त्याभिः = मर्त्य शब्दके योपध होनेसे "जातेरस्त्री०" इत्यादि सूत्रसे ङीप् न होकर सामान्य स्त्रीत्वमें टाप् प्रत्यय। दर्शने = दृश् + ल्युट् + ङि निमेषनिर्मितः = निमेषेण निर्मितः (तृ० त०)। विघ्नलेशः = विघ्नस्य लेशः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ष० त०) । "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूहः" इत्यमरः । अलम्भि = "डुलभष् प्राप्तौ" धातुसे कर्ममें लुङ्, "विभाषा चिरणमुलोः" इस सूत्रसे नुम् हुआ है । इस पद्यमें मनुष्यस्त्रियोंकी सब अवस्थाओंमें नलदर्शनका सम्बन्ध न होनेपर भी उसका वर्णन करनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।। २९ ।।

न का निशि स्वप्नगतं ददर्श तं, जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम् ।
तदात्मताध्यातधवा रते च का चकार वा न स्वमनोभवोद्भवम् ।। ३० ।।

अन्वयः—का निशि स्वप्नगतं तं न ददर्श । का च गोत्रस्खलिते तं न जगाद । का च रते तदात्मताध्यातधवा (सती) स्वमनोभवोद्भवं न चकार ।। ३० ।।

व्याख्या—का = स्त्री, निशि = रात्रौ, स्वप्नगतं = स्वापप्राप्तं, तं = नलं, न ददर्श = नो दृष्टवती, अपि तु सर्वा अपि ददर्शेति भावः । का च=स्त्री, गोत्रस्खलिते= नामविपर्यासे, तं = नलं, न जगाद = नो बभाषे, अपि तु सर्वा एव जगाद इति भावः । का च = स्त्री, रते = सुरतकेलौ, तदात्मताध्यातधवा = नलरूपचिन्तित-भर्तृका सती, स्वमनोभवोद्भवं = निजचित्तकामोत्पत्तिं, न चकार = न कृतवती, अपि तु सर्वा एव चकारेति भावः ।। ३० ।।

अनुवादः—किस स्त्रीने रातमें स्वप्नमें उन्हें नहीं देखा ? किस स्त्रीने नामके उच्चारणकी भ्रान्तिसे उनका नाम नहीं लिया ? किस स्त्रीने रतिक्रीडामें नलके रूपमें अपने पतिकी चिन्ता कर अपने चित्तमें कामदेवको प्रकट नहीं किया ? ।।३०।।

टिप्पणी—स्वप्नगतं = स्वप्नं गतः, तम् (द्वि० त०) । ददर्श = दृश् + लिट् + तिप् । गोत्रस्खलिते = गोत्रस्य स्खलितं, तस्मिन् (ष० त०) । "गोत्रं नाम्न्यचले कुले" इत्यमरः । तदात्मताध्यातधवा = तस्य (नलस्य) आत्मा (स्वरूपम्) यस्य सः तदात्मा (व्यधिकरण-बहु०) । तदात्मनो भावस्तदात्मता, तदात्मन् + तल् + टाप् । ध्यातः धवः यया सा (बहु०) । "धवः प्रियः पतिर्भर्त्ता" इत्यमरः । तदात्मतया ध्यातधवा (तृ० त०) स्वमनोभवोद्भवं = स्वस्य मनोभवः (ष० त०) । तस्य उद्भवः, तम् (ष० त०) । चकार = कृ + लिट् + तिप् । इस पद्यमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।। ३० ।।

श्रियाऽस्य योग्याऽहमिति स्वमीक्षितुं करे तमालोक्य सुरूपया धृतः ।
विहाय भैमीमपदर्पया कया न दर्पणः श्वासमलीमसः कृतः ।। ३१ ।।

अन्वयः—भैमीं विहाय कया सुरूपया तम् आलोक्य "श्रिया अहम् अस्य योग्या" इति स्वम् ईक्षितुं करे धृतः दर्पणः अपदर्पया (सत्या) श्वासमलीमसः न कृतः ? ।। ३१ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या— भैमीं = दमयन्तीं, विहाय = त्यक्त्वा, कया, सुरूपया = सुन्दर्या, तं = नलम्, आलोक्य, श्रिया = शोभया, अहम्, अस्य = नलस्य, योग्या = अनुरूपा, इति = एवं, विचार्येति शेषः स्वम् = आत्मानम्, ईक्षितुं = द्रष्टुं, करे = हस्ते, धृतः = गृहीतः, दर्पणः = आदर्शः, अपदर्पया = गताऽभिमानया सत्या, श्वासमलीमसः = निःश्वासमलिनः, न कृतः = नो विहितः, भैमीं विहाय सर्वया निःश्वासवातेन दर्पणो मलिनीकृत इति भावः ॥ ३१ ॥

अनुवादः—दमयन्तीको छोड़कर किस सुन्दरीने नलको देखकर "शोभासे मैं इनकी अनूरूप हूँ" ऐसा विचार कर अपने रूपको देखनेके लिए हाथमें लिए हुए दर्पणको दर्पहीन होकर निःश्वास वायुसे मलिन नहीं बनाया ? ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—भैमीं = भीमस्य अपत्यं स्त्री भैमी, ताम् भीम + अण् + ङीप् । विहाय = वि = हा + क्त्वा (ल्यप्) । सुरूपया = शोभनं रूपं यस्याः सा सुरूपा, तया (बहु०) । आलोक्य = आङ् + लोक् + क्त्वा (ल्यप्) । योग्या = योगाय प्रभवतीति, योग शब्दसे "योगाद्यच्च" इति सूत्रसे यत् प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें "अजाद्यतष्टाप्" इस सूत्रसे टाप् प्रत्यय । ईक्षितुम् = ईक्ष + तुमुन् । धृतः = धृञ् + क्तः । दर्पणः = "दर्पणे मुकुरादर्शौ" इत्यमरः । अपदर्पया = अपगतः दर्पः यस्या सा तया (बहु०) श्वासमलीमसः = श्वासैः मलीमसः (तृ० त०) । "मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम् ।" इत्यमरः । कृतः = कृ + क्तः (कर्ममें) । इस पद्यमें भी अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥ ३१ ॥

यथोह्यमानः खलु भोगभोजिना प्रसह्य वैरोचनिजस्य पत्तनम् ।
विदर्भजाया मदनस्तथा मनो नलाऽवरुद्धं वयसैव वेशितः ॥ ३२ ॥

अन्वयः—यथा भोगभोजिना वयसा एव उह्यमानः मदनः अनलाऽवरुद्धं वैरोचनिजस्य पत्तनं प्रसह्य वेशितः खलु । तथा भोगभोजिना वयसा एव ऊह्यमानः मदनः नलाऽवरुद्धं विदर्भजाया मनः प्रसह्य वेशितः खलु ॥ ३२ ॥

"आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः पुंसः पश्चात्तदिङ्गितैः" इति नियमेन नले भैम्याः पूर्वरागं प्रस्तौति यथेति ।

व्याख्या—यथा = येन प्रकारेण, भोगभोजिना = सर्पशरीरभोक्त्रा, वयसा एव = पक्षिणा एव, गरुडेनेत्यर्थः । उह्यमानः = प्राप्यमाणः, मदनः = कामः प्रद्युम्न इत्यर्थः । अनलाऽवरुद्धम् = अग्निपरिवृतं, वैरोचनिजस्य = बाणाऽसुरस्य, पत्तनं = नगरं, शोणितपुरमिति भावः । प्रसह्य = बलेन, वेशितः = प्रवेशितः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

खलु = निश्चयेन । तथा = तेन प्रकारेण, भोगभोजिना = सुखाऽनुभाविना, वयसा एव = अवस्थया एव, तारुण्येन एवेत्यर्थः । ऊह्यमानः = वितर्क्यमाणः, मदनः = कामः, नलाऽवरुद्धं = नैषधसम्बद्धं, विदर्भजायाः = वैदर्भ्याः, दमयन्त्या इति भावः । मनः = चित्तं, प्रसह्य = बलेन । वेशितः, = प्रवेशितः, खलु = निश्चयेन । नलस्य गुणगणश्रवणोत्तरं दमयन्त्या मनसि यौवनेनैव नलविषयकः कामावेशः प्रापित इति भावः ।। ३२ ।।

अनुवादः—जैसे सर्पके शरीरको खानेवाले पक्षी गरुडने ही अग्निसे परिवेष्टित बाणाऽसुरके नगर (शोणितपुर)में प्रद्युम्न (कामदेव)को बलसे प्रवेश कराया वैसे ही सुखका अनुभव करनेवाली अवस्था (जवानी)ने ही सखी-जनोंसे तर्कित कामदेवको नलकी चिन्ता करनेवाली दमयन्तीके मनमें बलसे प्रवेश कराया ।। ३२ ।।

टिप्पणी—इस पद्यमें "आदौ वाच्यः स्त्रिया रागः पुंसः पश्चात्तदिङ्गितैः ।" अलङ्कारशास्त्रके इस नियमके अनुसार नलमें दमयन्तीके पूर्वरागको पहले प्रस्तुत किया है । भोगभोजिना = भोगम् (सर्पशरीरम्) भुनक्तीति भोगभोजी, तेन, भोग + भुज् + णिनिः (उपपद०) । "अहेः शरीरं भोगः स्यात्" इति "भोगः सुखे स्त्र्यादिभृतावहेश्च फणकाययोः ।" इति चाऽमरः । वयसा = "खग-बाल्यादिनोर्वयः" इत्यमरः । उह्यमानः = उह्यत इति, "वह प्रापणे" धातुसे कर्ममें लट् (शानच्) । अनलाऽवरुद्धम् = अनलेन अवरुद्धम्, तत् (तृ० त०) । वैरोचनिजस्य = विरोचनस्य (प्रह्लादपुत्रस्य) अपत्यं पुमान् वैरोचनिः (बलिः), विरोचन + इञ् । वैरोचनेः जातः वैरोचनिजः, तस्य । पञ्चम्यामजातौ" इस सूत्रसे वैरोचनि-उपपदपूर्वक जन् धातुसे ड प्रत्यय (उपपद०) । पत्तनं = "पूः स्त्री पुरीनगर्यौ वा पत्तनं पुटभेदनम् ।" इत्यमरः । यह कर्म है । प्रसह्य = प्र + सह + क्त्वा (ल्यप्) । वेशितः = विश् + णिच् + क्तः । ऊह्यमानः = ऊह्यत इति, "ऊह वितर्के" इस धातुसे कर्ममें लट् (शानच्) । नलाऽवरुद्धं = नलेन अवरुद्धं, तत् (तृ० त०) । विदर्भजायाः = विदर्भेषु जायत इति विदर्भजा, तस्याः, विदर्भ + जन् + ड + टाप् + ङस् । (उपपद०) । इस पद्यमें "यथोह्य-मानः" "मनोनलः०" यहाँपर शब्दश्लेष और अन्यत्र "भोगभोजिना" "वयसा" यहाँपर अर्थश्लेष है । श्लिष्ट विशेषणवाली यह उपमा" वयोरूप द्व्यर्थक दो पदोंका अभेदाऽध्यवसायमूलक अतिशयोक्तिसे अनुप्राणित है अतः सङ्कर अलङ्कार है ।

पौराणिक कथा—उषाकी सखी चित्रलेखाने बाणाऽसुरकी कुमारी उषासे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वप्नमें देखे गये अनिरुद्धको योगवलसे लाकर उषासे समागम कराया । वाणाऽसुरने यह वृत्तान्त जानकर अनिरुद्धको वन्दी वनाया । नारदसे इस वातको जानकर कृष्ण, वलराम और प्रद्युम्नने गरुडपर सवार होकर शोणितपुरमें प्रवेश कर वाणाऽसुरको संग्राममें जीतकर अनिरुद्धको छुड़ाया यह कथा श्रीमद्भागवत महापुराणमें है ॥ ३२ ॥

नृपेऽनुरूपे निजरूपसम्पदां दिदेश तस्मिन्वहुशः श्रुतिं गते ।
विशिष्य सा भीमनरेन्द्रनन्दना मनोभवाज्ञैकवशंवदं मनः ॥ ३३ ॥

अन्वयः—सा भीमनरेन्द्रनन्दना निजरूपसम्पदाम् अनुरूपे तस्मिन् नृपे वहुशः श्रुतिंगते विशिष्य मनोभवाज्ञैकवशंवदं मनः दिदेश ॥ ३३ ॥

सम्प्रति दमयन्त्याश्चित्तासङ्गाख्यां द्वितीयावस्थां प्रतिपादयति—नृप इति ।

व्याख्या—सा = पूर्वोक्ता, भीमनरेन्द्रनन्दना = भीमभूपतनया, दमयन्तीत्यर्थः, निजरूपसम्पदां = स्वसौन्दर्यसम्पत्तीनाम्, अनुरूपे = योग्ये, तस्मिन् = पूर्वोक्ते, नृपे = राजनि, नल इत्यर्थः । वहुशः = अनेकवारं, श्रुतिं = श्रवणगोचरं, गते = प्राप्ते सति । विशिष्य = अतिशयेन, मनोभवाज्ञैकवशंवदं = कामदेवादेशैकाधीनं, मनः = चित्तं, दिदेश = अर्पितवती, नलं प्रति चित्तं निदधाविति भावः ॥ ३३ ॥

अनुवादः—दमयन्तीने अपनी रूपसम्पत्तियोंके योग्य नलके वारंवार कर्णगोचर होनेपर विशेषतया कामदेवकी आज्ञाके एकमात्र अधीन अपने मनको उनमें लगाया ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—भीमनरेन्द्रनन्दना = नन्दयतीति नन्दना, "टुनदि समृद्धौ" धातुसे णिच् होकर "नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः" इस सूत्रसे ल्यु (अन) प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् । भीमश्चाऽसौ नरेन्द्रः (क० धा०) । भीमनरेन्द्रस्य नन्दना (ष० त०) । निजरूपसम्पदां = रूपं च सम्पदश्च (द्वन्द्वः) । निजाश्च ता रूपसम्पदः तासाम् (क० धा०) । अनुरूपे = रूपस्य योग्यम् अनुरूपम्, "अव्ययं विभक्ति०" इत्यादि सूत्रस्थे योग्यता-रूप यथाके अर्थमें समास होकर, अनुरूपम् अस्याऽस्ति इति "अर्शआदिभ्योऽच्" इससे अच् प्रत्यय । नृपे = नॄन् पातीति नृपः, तस्मिन्, नृ + पा + कः । (उपपद०) । वहुशः = बहून् वारान्, वहु शब्दसे "संख्यैकवचनाच्च वीप्सायाम्" इस सूत्रसे शस् प्रत्यय । यह पद अव्यय है । विशिष्य = वि–उपसर्गपूर्वक "शिष्लृ विशेषणे" धातुसे क्त्वाके स्थानमें ल्यप् आदेश । मनोभवाज्ञैकवशंवदं = मनोभवस्य आज्ञा (ष० त०) । वशं वदतीति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वशंवदं, वश–उपपद पूर्वक वद–धातुसे "प्रियवशे वदः खच्" इससे खच् प्रत्यय और "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इस सूत्रसे मुम् आगम हुआ है (उपपद०)। एकं च तद् वशंवदम् (क० धा०)। मनोभवाज्ञाया एकवशंवदं, तत् (ष० त०)। इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें छेकाऽनुप्रास और वृत्यनुप्रासका एक आश्रयमें अनुप्रवेशरूप सङ्कर अलङ्कार है ॥ ३३ ॥

उपासनामेत्य पितुः स्म रज्यते दिने दिने साऽवसरेषु वन्दिनाम् ।
पठत्सु तेषु प्रति भूपतीनलं विनिद्ररोमाऽजनि शृण्वती नलम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—सा दिने दिने वन्दिनाम् अवसरेषु पितुः उपासनाम् एत्य रज्यते स्म । तेषु भूपतीन् प्रति पठत्सु नलं शृण्वती अलं विनिद्ररोमा अजनि ॥ ३४ ॥

अथ दमयन्त्याः श्रवणाऽनुरागं श्लोकचतुष्टयेन प्रतियादयति—उपासनामिति

व्याख्या—सा = दमयन्ती, दिने दिने = प्रतिदिनम्, वन्दिनां = स्तुतिपाठकानाम्, अवसरेषु = प्रसङ्गेषु, स्तुतिपाठस्येति शेषः । पितुः = जनकस्य, भीमभूपालस्येति भावः, उपासनां = सेवाम्, एत्य = प्राप्य, रज्यते स्म = अनुरक्ता बभूव । तेषु = वन्दिषु, भूपतीन् = राज्ञः, प्रति पठत्सु = वदत्सु, स्तुतिकर्मत्वेनेति शेषः । नलं = नैषधं, शृण्वती = आकर्णयन्ती सती, अलम् = अत्यर्थं, विनिद्ररोमा = रोमाञ्चयुक्ता, अजनि = जाता, दमयन्ती नलगुणाकर्णनाऽनन्तरं साऽतिशयं सञ्जातपुलकाऽभूदिति भावः । एतेन भैम्या बन्दिमुखेभ्यो नायकगुणगणाकर्णनं वर्णितम् ।

अनुवादः—दमयन्ती प्रतिदिन स्तुतिपाठकोंके स्तुतिपाठके अवसरोंमें पिताको सेवाके लिए उपस्थित होकर नलके प्रति अनुरक्त होती थीं; जब वे राजाओंका स्तुतिपाठ करते थे उस समय नलके गुणोंको सुननेपर दमयन्ती अतिशय रोमाञ्चयुक्त हो जाती थीं ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—दिने दिने = वीप्सामें द्विरुक्ति । वन्दिनां = वन्दन्ते (स्तुवन्ति) इति वन्दिनः, तेषां "वदि अभिवादनस्तुत्योः" इस धातुसे ग्रह्यादिगणमें पठित होनेसे णिनि । "वन्दिनः स्तुतिपाठकाः" इत्यमरः अवसरेषु = "प्रसङ्गः स्यादवसरः" इत्यमरः । उपासनाम् = उपासनम् उपासना, ताम् "उप–उपसर्गपूर्वक "आस" धातुसे "ण्यासश्रन्थो युच्" इससे युच् और टाप् । एत्य = आङ् + इण् + क्त्वा (ल्यप्)। रज्यते स्म = "रञ्ज रागे" धातुसे लट्, "अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति "इस सूत्रसे नकारका लोप । 'स्म'का योग होनेसे "लट् स्मे" इस सूत्रसे भूतार्थमें लट् । भूपतीन् = भुवः पतयः, तान् (ष० त०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"प्रति"के योगमें "अभितः–परितः समया निकषा हा प्रतियोगेऽपि" इससे द्वितीया। पठत्सु = पठन्तीति पठन्तः, तेषु, पठ् + लट् (शतृ) + सुप्। "यस्य च भावेन भावलक्षणाम्" इससे सप्तमी। शृण्वती = शृणोतीति, श्रु + लट् (शतृ) + ङीप्। अलं = "अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्।" इत्यमरः। विनिद्ररोमा = विगता निद्रा येभ्यस्तानि विनिद्राणि (बहु०)। विनिद्राणि रोमाणि यस्याः सा (बहु०)। अजनि = "जनी प्रादुर्भावे" धातुसे लुङ्, "दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्" इससे 'च्लि'के स्थानमें चिण्। "जनिवध्योश्च" इससे वृद्धिका निषेध। इस पद्यमें विनिद्ररोमत्व (रोमाञ्च)-रूप सात्त्विक भावके उदयसे भावोदय अलङ्कार है॥ ३४॥

कथाप्रसङ्गेषु मिथः सखीमुखात्तृणेऽपि तन्व्या नलनामनि श्रुते।
द्रुतं विधूयान्यदभूयताऽनया मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया॥ ३५॥

अन्वयः—तन्व्या अनया मिथः कथाप्रसङ्गेषु सखीमुखात् नलनामनि तृणे अपि श्रुते द्रुतम् अन्यत् विधूय मुदा तदाकर्णनसज्जकर्णया अभूयत॥ ३५॥

व्याख्या—तन्व्या = कृशशरीरया, अनया = दमयन्त्या, मिथः = रहसि परस्परं वा, कथाप्रसङ्गेषु = वार्तालापाऽवसरेषु, सखीमुखात् = वयस्याऽऽननात्, नलनामनि = नलनामधेये, तृणे अपि = अर्जुने अपि, श्रुते = आकर्णिते, द्रुतं = शीघ्रम्, अन्यत् = अपरं, कार्यं कथान्तरं वा, विधूय = परित्यज्य, मुदा = हर्षेण, तदाकर्णनसज्जकर्णया = नलश्रवणतत्परश्रोत्रया, अभूयत = भूतम्॥ ३५॥

अनुवादः—कृश शरीरवाली दमयन्तीने परस्परमें वार्तालापके अवसरोंमें सखीके मुखसे "नल" नाम वाले तृण (खश-खश) के सुननेपर भी झट पट सब काम छोड़कर हर्षसे नलके श्रवणमें कर्णोंको तत्पर बनाया॥ ३५॥

टिप्पणी—तन्व्या = "तनु" शब्दसे "वोतो गुणवचनात्" इस सूत्रसे विकल्पसे ङीष्। कथाप्रसङ्गेषु = कथायाः प्रसङ्गाः, तेषु, (ष० त०)। सखीमुखात् = सख्या मुखं, तस्मात् (ष० त०)। नलनामनि = नलं नाम यस्य तत् नलनाम, तस्मिन् (बहु०)। "नलः पोटगले राज्ञि" इति विश्वः। तृणे = "तृणमर्जुनम्" इत्यमरः। श्रुते = श्रु + क्त + ङि। द्रुतं = "लघु क्षिप्रमरं द्रुतम्" इत्यमरः। अन्यत् = "अन्य" शब्दसे अम्में "अद्डुतरादिभ्यः पञ्चभ्यः" इस सूत्रसे अद्ड् आदेश। विधूय = वि + धू + क्त्वा (ल्यप्)। तदाकर्णनसज्जकर्णया = तस्य आकर्णनम् (ष० त०)। सज्जौ कर्णौ यस्याः सा सज्जकर्णा (बहु०)। तदाकर्णने सज्जकर्णा, तया (स० त०)। अभूयत = "भू सत्तायाम्" धातुसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावमें लङ् "सार्वधातुके यक्" इससे यक् । इस पद्यमें औत्सुक्य और हर्ष ये दो व्यभिचारिभाव नलविषयक रति भावके अङ्ग हुए हैं, इस कारणसे भावसन्धि अलङ्कार है ॥ ३५ ॥

स्मरात्परासोरनिमेषलोचनाद् बिभेमि तद्भिन्नमुदाहरेति सा ।
जनेन यूनः स्तुवता तदास्पदे निदर्शनं नैषधमभ्यषेचयत् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—"परासोः अनिमेषलोचनात् स्मरात् बिभेमि, तद्भिन्नम् उदाहर" इति सा यूनः स्तुवता जनेन तदास्पदे निदर्शनं नैषधम् अभ्यषेचयत् ॥ ३६ ॥

व्याख्या—पराऽसोः = मृतात्, अत एव अनिमेषलोचनात् = निमेषरहितनेत्रात्, देवाच्चेति गम्यते, स्मरात् = कामात्, बिभेमि = भीता भवामि, अतः तद्भिन्नं = स्मरभिन्नं जनम्, उदाहर = वद, इति = इत्थं, सा = दमयन्ती, यूनः = तरुणान् जनान्, स्तुवता = प्रशंसता, जनेन = सखीजनेन, तदास्पदे = स्मरस्थाने, निदर्शनं = दृष्टान्तभूतं, नैषधं = नलम्, अभ्यषेचयत् = अभिषेचितवती, दमयन्ती स्मरस्थाने परमसुन्दरनरत्वेन नलं स्थापयामासेति भावः ॥ ३६ ॥

अनुवादः—"मरे हुए अत एव निमेषहीन नेत्रोंवाले कामदेवसे मैं डर जाती हूँ, इसलिए कामदेवसे भिन्न पुरुषका उदाहरण दो" ऐसा कहकर दमयन्तीने सुन्दर तरुणोंकी तारीफ करनेवाली सखीके द्वारा कामदेवके स्थानमें दृष्टान्तभूत नलको स्थापित किया ॥ ३६ ॥

टिप्पणी—पराऽसोः = परागता असवो यस्मात्स पराऽसुः, तस्मात् (बहु०) । अनिमेषलोचनात् = अविद्यमानौ निमेषौ ययोस्ते अनिमेषे (नञ् बहु०) । अनिमेषे लोचने यस्य, तस्मात् (बहु०) । स्मरात् = "कामः पञ्चशरः स्मरः" इत्यमरः । "भीत्रार्थानां भयहेतुः" इससे अपादान संज्ञा होनेसे पञ्चमी । बिभेमि = "ञिभी भये" इस धातुसे लट् + मिप् । तद्भिन्नं = तस्मात् भिन्नः, तम् (ष० त०) । उदाहर = उद् + आङ्–उपसर्गपूर्वक "हृञ् हरणे" धातुसे लोट् + सिप् । यूनः = युवन् + शस्, "श्वयुवमघोनामतद्धिते" इस सूत्रसे सम्प्रसारण, "वयःस्थस्तरुणो युवा" इत्यमरः । स्तुवता = स्तौति इति स्तुवन्, तेन "ष्टुञ् स्तुतौ" इस धातुसे लट्के स्थानमें शतृ + टा । तदास्पदे = तस्य आस्पदं, तस्मिन् (ष० त०) । "आस्पदम्" इसमें "आस्पदं प्रतिष्ठायाम्" इस सूत्रसे सुट्का निपातन । निदर्शनं = नि + दृश् + ल्युट् । नैषधं = निषधानामयं नैषधः, तम् "तस्येदम्" इससे अण् प्रत्यय और "तद्धितेष्वचामादेः" इससे आदि वृद्धि । यहाँपर निषधानां राजा ऐसा विग्रह करेंगे तो न आदिमें होनेसे "जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्" इस सूत्रको बाधित

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कर "कुरुनादिभ्यो ण्यः" इससे ण्य प्रत्यय होकर "नैषध्यः" ऐसा रूप बनेगा। अभ्यषेचयत् = अभि—उपसर्गपूर्वक णिजन्त "षिच क्षरणे" धातुसे लङ् + तिप् "प्राक् सितादड्व्यवायेऽपि" इससे षत्व हुआ है। इस पद्यमें अतिशयोक्ति अलङ्कार है॥ ३६॥

नलस्य पृष्टा निषधागता गुणान्मिषेण दूतद्विजवन्दिचारणाः।
निपीय तत्कीर्तिकथामथाऽनया चिराय तस्थे विमनायमानया॥ ३७॥

अन्वयः—अनया निषधागता दूतद्विजवन्दिचारणाः मिषेण नलस्य गुणान् पृष्टाः। अथ तत्कीर्तिकथां निपीय चिराय विमनायमानया तस्थे॥ ३७॥

व्याख्या—अनया = दमयन्त्या, निषधागताः = निषधेभ्यः आयाताः, दूतद्विजवन्दिचारणाः = सन्देशहरब्राह्मणस्तुतिपाठकनटाः, मिषेण = व्याजेन, नलस्य = नैषध्यस्य, गुणान् = सौन्दर्यशौर्यादीन्, पृष्टाः = अनुयुक्ताः, अथ = अनन्तरं, तत्कीर्तिकथां = नलयशोवर्णनं, निपीय = पानं कृत्वा, प्रणयाऽतिशयेन श्रुत्वेति भावः। चिराय = बहुकालपर्यन्तं, विमनायमानया = अन्तर्मनायमानया सत्या, तस्थे = स्थितम्॥ ३७॥

अनुवादः—दमयन्तीने निषध देशसे आये हुए दूत, ब्राह्मण, स्तुतिपाठक और नटोंसे किसी बहानेसे नलके गुणोंको पूछा, तब नलकी कीर्ति कथाका पानकर वे बहुत समय तक अनमनी-सी हो जाती थीं॥ ३७॥

टिप्पणी—अनया = अनुक्त कर्तामें तृतीया। निषधागताः = निषधेभ्य आगताः (प० त०)। दूतद्विजवन्दिचारणाः = दूतांश्च द्विजाश्च वन्दिनश्च चारणाश्च (द्वन्द्वः)। यह गौणकर्म है "स्यात्सन्देशहरो दूतः" इति "भरता इत्यपि नटाश्चारणाश्च कुशीलवाः।" इत्यप्यमरः। पृष्टाः = प्रच्छ + क्तः। कर्ममें क्त प्रत्यय। तत्कीर्तिकथां=तस्य कीर्तिः (प० त०), तस्याः कथा, ताम् (प० त०)। निपीय = नि + पा + क्त्वा (ल्यप्)। चिराय="चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिराऽर्थकाः।" इत्यमरः। यह अव्यय है। विमनायमानया = विगतं मनो यस्याः सा (बहु०)। "दुर्मना विमना अन्तर्मनाः स्यात्" इत्यमरः। विमना इव आचरतीति विमनायमाना, तया। विमनस्-शब्दसे "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इस सूत्रसे क्यङ् प्रत्यय 'स' का लोप, "अकृत्सार्वधातुकयोर्दीर्घः" इससे दीर्घत्व और ङित् होनेसे "अनुदात्तङित आत्मनेपदम्" इससे आत्मनेपद होकर लट्के स्थानमें शानच् + टाप् + टा। तस्थे = स्था धातुसे भावमें लिट्। इस पद्यमें चिन्ता-नामक व्यभिचारि भावका उदय होनेसे भावोदय अलङ्कार है॥ ३७॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रियं प्रियां च त्रिजगज्जयिश्रियौ लिखाऽधिलीलागृहभित्ति कावपि।
इति स्म सा कारुतरेण लेखितं नलस्य च स्वस्य च सख्यमीक्षते ॥ ३८ ॥

अन्वयः—"अधिलीलागृहभित्ति कौ अपि त्रिजगज्जयिश्रियौ प्रियं प्रियां च लिख" इति सा कारुतरेण लेखितं नलस्य स्वस्य च सख्यम् ईक्षते स्म ॥ ३८ ॥

अथ दमयन्त्याः कान्तप्रतिकृतिदर्शनरूपं विनोदोपायमुपस्थापयति प्रियमिति—

व्याख्या—अधिलीलागृहभित्ति = विलासभवनकुडचे, कौ अपि = कौ चित्, अनिर्दिष्टनामधेयौ, त्रिजगज्जयिश्रियौ = लोकत्रयविजयिशोभौ, प्रियं = नायकं, प्रियां = नायिकां च, लिख = चित्रीकुरु, इति = इत्थम्, आदिश्येति शेषः। सा = दमयन्ती, कारुतरेण = कुशलचित्रकरेण, लेखितं = चित्रितं, नलस्य = नैषधस्य, स्वस्य च = आत्मनश्च, सख्यं = सखित्वं, चित्ररूपे सहस्थितिमिति भावः। ईक्षते स्म = अद्राक्षीत् ॥ ३८ ॥

अनुवादः—"विलास-भवनकी दीवारपर तीन लोकोंको जीतनेवाली शोभा-वाले किन्हीं नायिका और नायकको लिखो" इस प्रकार आज्ञा देकर दमयन्ती कुशल चित्रकरसे लिखे गये चित्रमें नल और अपनी सहस्थितिको देखती थीं ॥३८॥

टिप्पणी—अधिलीलागृहभित्ति = लीलाया गृहं (ष० त०), तस्य भित्तिः (ष० त०), भित्तिः स्त्री कुडचम्" इत्यमरः। लीलागृहभित्तौ इति अधिलीला-गृहभित्ति, "अव्ययं विभक्ति०" इत्यादि सूत्रसे विभक्तिके अर्थमें अव्ययीभाव०। कौ = का च कश्च कौ, तौ, "पुमान् स्त्रिया" इससे एकशेष। त्रिजगज्जयिश्रियौ = त्रयाणां जगतां समाहारः त्रिजगत्, "तद्धिताऽर्थोत्तरपदसमाहारे च" इस सूत्रसे समास, उसकी "संख्यापूर्वो द्विगुः" इस सूत्रसे द्विगुसंज्ञा। त्रिजगत् जयतीति तच्छीला त्रिजगज्जयिनी, त्रिजगत्-उपपदपूर्वक "जि जये" धातुसे "जिदृक्षिवि-श्रीण्वमाव्यथाम्यमपरिभूप्रसूभ्यश्च" इस सूत्रसे इनि प्रत्यय। त्रिजगज्जयिनी श्रीर्ययोस्तौ, तौ (बहु०)। प्रियं = प्रीणातीति प्रियः, तं, "प्रीञ् तर्पणे" धातुसे "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इस सूत्रसे क प्रत्यय। लिख = "लिख अक्षरविन्यासे" धातुसे विधि अर्थमें लोट् + सिप्। कारुतरेण = कुर्वन्तीति कारवः, कृ धातुसे "कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्" इस उणादिसूत्रसे उण् प्रत्यय, "कारुः शिल्पी" इत्यमरः। अतिशयेन कारुः कारुतरः (तरप् प्रत्यय) तेन, लेखितं, लिख + णिच् + क्तः। सख्यं = सख्युर्भावः, तद्, "सख्युर्यः" इस सूत्रसे सखि शब्दसे य प्रत्यय। ईक्षते स्म = ईक्ष + लट् + त, "स्मे लट्" इस सूत्रसे 'स्म'के योगमें भूत अर्थमें लट् ॥ ३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं निशि क्व सा न स्वपती स्म पश्यति ?
अदृष्टमप्यर्थमदृष्टवैभवात्करोति सुप्तिर्जनदर्शनाऽतिथिम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः—स्वपती सा मनोरथेन स्वपतीकृतं नलं क्व निशि न पश्यति स्म ? सुप्तिः अदृष्टवैभवात् अदृष्टम् अपि अर्थं जनदर्शनाऽतिथिं करोति ॥ ३६ ॥

व्याख्या—स्वपती = निद्राती, सा = दमयन्ती, मनोरथेन = अभिलाषेण, स्वपतीकृतम् = निजनाथीकृतं, नलं = नैषधं, क्व = कुत्र, निशि = रात्रौ, न पश्यति स्म = नो दृष्टवती, सर्वस्यां रात्रावपि ददर्शेति भावः। उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति। सुप्तिः = स्वप्नः, अदृष्टवैभवात् = धर्माऽधर्मप्रभावात्, अदृष्टम् अपि = अविलोकितम् अपि, अर्थं = पदार्थं, जनदर्शनाऽतिथिं = लोकविलोकनगोचरं, करोति = विदधाति, स्वप्नरूपेण दर्शयतीति भावः ॥ ३६ ॥

अनुवादः—सोती हुई वे (दमयन्ती) अभिलाषसे अपने पति बनाये गये नलको किस रातमें नहीं देखती थीं। स्वप्न धर्म और अधर्मके प्रभावसे नहीं देखे गये पदार्थको भी जनोंका दर्शनगोचर बनाता है ॥ ३६ ॥

टिप्पणी—स्वपती = "ञिष्वप् शये" धातुसे लट्के स्थानमें शतृ आदेश और स्त्रीत्वविवक्षामें ङीप्। स्वपतीकृतं = स्वस्य पतिः (ष० त०)। अस्वपतिः स्वपतिर्यथासंपद्यते तथा कृतः स्वपतीकृतः तम्। स्वपति + च्वि + कृ + क्तः। क्व = कस्यामिति, "किमोऽत्" इस सूत्रसे 'किम्' शब्दसे अत् और "क्वाऽति" इससे 'किम्' के स्थानमे क्व आदेश। पश्यति स्म = दृश् (पश्य) + लट् + तिप्, 'स्म' के योगमें भूतकालमें लट्। सुप्तिः = स्वपनं, "ञिष्वप् शये" धातुसे "स्त्रियां क्तिन्" इससे क्तिन् और सम्प्रसारण। अदृष्टवैभवात् = न दृष्टम् अदृष्टम् (नञ्०) धर्म और अधर्म। अदृष्टस्य वैभवं, तस्मात् (ष० त०)। अदृष्टं = न दृष्टः, तम् (नञ्०)। अर्थम् = "अर्थोऽभिधेयरैवस्तुप्रयोजननिवृत्तिषु।" इत्यमरः। जन-दर्शनाऽतिथिं = जनानां दर्शनम् (ष० त०), तस्य अतिथिः, तम् (ष० त०)। करोति = कृ + लट् + तिप्। इस पद्यमें सामान्यसे विशेषका समर्थनरूप अर्थान्तर-न्यास अलङ्कार है ॥ ३६ ॥

निमीलितादक्षियुगाच्च निद्रया हृदोऽपि बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात्।
अदर्शि संगोप्य कदाऽप्यवीक्षितो रहस्यमस्याः स महन्महीपतिः ॥ ४० ॥

अन्वयः—निद्रया निमीलितात् अक्षियुगात् बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् हृदः अपि संगोप्य कदाऽपि अवीक्षितः अस्या महत् रहस्यं स महीपतिः अदर्शि ॥ ४० ॥

व्याख्या—निद्रया = स्वापेन, निमीलितात् = मुद्रितात्, अक्षियुगात् = नेत्र-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युगलात्, वाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् = वहिरिन्द्रियाऽव्यापारनिमीलितात्, हृदः अपि = मनसः अपि, संगोप्य = सम्यग् गोपयित्वा, कदाऽपि = कस्मिन्नपि काले, अवीक्षितः = अदृष्टः, अस्याः = दमयन्त्याः, महत् = महत्त्वपूर्णं, रहस्यं = गोपनीयं वस्तु, सः = पूर्वोक्तः, महीपतिः = राजा, नल इत्यर्थः। अदर्शि = दर्शितः ॥ ४० ॥

अनुवादः—नींदसे मूँदे गये दो नेत्रोंसे वाह्य इन्द्रियके व्यापाराभावसे निष्क्रिय अन्तःकरण (मन) से भी छिपा कर कभी भी नहीं देखे गये इन (दमयन्ती) के अत्यन्त गोपनीय महाराज नलको निद्रान दमयन्तीको दिखाया।

टिप्पणी—निमीलितात् = नि + मील + क्तः (कर्ममें)। अक्षियुगात् = अक्ष्णोः युगं, तस्मात् (ष० त०)। बाह्येन्द्रियमौनमुद्रितात् = वहिर्भवानि वाह्यानि, वहिस् शब्दसे "वहिषष्टिलोपो यञ्च" इस सूत्रसे यञ् प्रत्यय और 'टि' (इस्) का लोप हुआ है। बाह्यानि च तानि इन्द्रियाणि (क० धा०)। मुनेर्भावो मौनम्, 'मुनि' शब्दसे "इगन्ताच्च लघुपूर्वात्" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय। वाह्येन्द्रियाणां मौनम् (ष० त०), तेन मुद्रितं, तस्मात् (तृ० त०)। हृदः = "चित्तं तु चेतो हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मनः।" इत्यमरः। संगोप्य = सम्–उपसर्गपूर्वक "गुपू-रक्षणे" धातुसे 'क्त्वा' के स्थानमें ल्यप्। अवीक्षितः = न वीक्षितः (नञ्०)। रहस्यं = रहसि भवं, रहस्–शब्दसे "तत्र भवः" इस सूत्रसे यत्। महीपतिः = मह्याः पतिः (ष० त०)। अदर्शि = दृश् + णिच् + लुङ् ॥ ४० ॥

अहो ! अहोभिर्महिमा हिमागमेऽप्यतिप्रपेदे प्रति तां स्मरार्दिताम्।
तपर्तुपूर्तावपि मेदसां भरा विभावरीभिर्विभराम्बभूविरे ॥ ४१ ॥

अन्वयः—अहो ! स्मरार्दितां तां प्रति हिमागमे अपि अहोभिः महिमा अतिप्रपेदे; तपर्तुपूर्तौ अपि विभावरीभिः मेदसां भरा बिभराम्बभूविरे ॥ ४१ ॥

दमयन्त्याश्चिन्ताजागरौ प्रतिपादयति—अहो इति।

व्याख्या—अहो = आश्चर्यम्, स्मरार्दितां = कामपीडितां, तां प्रति = दमयन्तीं प्रति, हिमागमे अपि = हेमन्ते अपि। अहोभिः = दिनैः, महिमा = महत्त्वं, दैर्घ्यमिति भावः। अतिप्रपेदे = अतिशयेन प्राप्तः, तपर्तुपूर्तौ अपि = ग्रीष्मर्तुपूरणे अपि, विभावरीभिः = रात्रिभिः, मेदसां = वसानां, भराः = अतिशयाः, दैर्घ्यरूपा इति भावः। बिभराम्बभूविरे = धृताः। हेमन्ते दिनानि ह्रस्वानि, ग्रीष्मे रात्रयो ह्रस्वा भवन्ति परं नलवियोगपीडिताया दमयन्त्याः कृते हेमन्ते दिनानि दीर्घाणि, ग्रीष्मर्तौ रात्रयो दीर्घरूपाः प्रतीयन्ते स्मेति भावः ॥ ४१ ॥

अनुवादः—आश्चर्य है ! कामदेवसे पीडित दमयन्तीके लिए हेमन्त ऋतुमें भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिन लम्बेसे प्रतीत होते थे, ग्रीष्म ऋतुमें भी रात्रियोंसे दीर्घताका धारण किया जाता था ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—अहो = "अहो हीति विस्मये" इत्यमरः। ओकाराऽन्त निपात है, इसलिए "अहो अहोभिः" यहां पर "ओत्" इस सूत्रसे 'अहो' पदको प्रगृह्यसंज्ञा होकर प्रकृतिभाव होनेसे पूर्वरूप नहीं हुआ। स्मरार्दितां = स्मरेण अर्दिता, ताम् (तृ० त०)। तां = "प्रति", इस पदके योगमें "अभितः परितः समया निकषा हा-प्रतियोगेऽपि" इससे द्वितीया हुई है। हिमाऽऽगमे = हिमस्य आगमः, तस्मिन् (ष० त०)। अहोभिः = "घस्रो दिनाऽहनी वा तु क्लीबे दिवसवासरौ।" इत्यमरः। महिमा = महतः भावः, महत्-शब्दसे "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" इस सूत्रसे इमनिच् प्रत्यय, यह पुंलिङ्गी शब्द है। अतिप्रपेदे = अति + प्र + पद् + लिट् + त (कर्ममें)। तपर्तुपूर्तौ = तपश्चाऽसौ ऋतुः तपर्तुः (क० धा०), "आद्गुणः" इससे "उरण् रपरः" इसके सहकारमें अर् गुण। "निदाघ उष्णोपगम उष्ण ऊष्मागमस्तपः।" इत्यमरः। तपर्तोः पूर्तिः, तस्याम् (ष० त०)। विभावरीभिः = "विभावरीतमस्विन्यौ रजनी यामिनी तमी।" इत्यमरः। मेदसां = "मेदस्तु वपा वसा" इत्यमरः। "मेद" पदसे चरबीका बोध होता है। बिभराम्बभूविरे = "डुभृञ् धारणपोषणयोः" इस धातुसे कर्ममें लिट् + झ, "भीह्री-भृहुवां श्लुवच्च" इससे श्लुवद्भाव होनेसे द्वित्व हुआ है। इस पद्यमें पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें दो विरोधाभास हैं निरपेक्षतासे उनकी स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है। इस पद्यसे दमयन्तीकी निरन्तर चिन्ता और रातमें जागरण प्रतीत होता है ॥ ४१ ॥

साम्प्रतं नलस्यापि दमयन्त्यामनुरागं सूचयति—

> स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः श्रयन्तमन्तर्घटनागुणश्रियम्।
> कदाचिदस्या युवधैर्यलोपिनं नलोऽपि लोकादशृणोद् गुणोत्करम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—नलः अपि कदाचित् लोकात् स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः अन्तर्घटनागुणश्रियं श्रयन्तं युवधैर्यलोपिनम् अस्या गुणोत्करम् अश्रृणोत् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—नलः अपि = नैषधः अपि, कदाचित् = जातुचित्, लोकात् = जनात्, स्वकान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः=आत्मसौन्दर्ययशःसमूहमुक्तामालायाः, अन्तर्घटना-गुणश्रियम् = अभ्यन्तरगुम्फनसूत्रशोभां, श्रयन्तम् = आश्रयन्तं, युवधैर्यलोपिनं = तरुणधीरत्वनाशकम्, अस्याः = दमयन्त्याः, गुणोत्करं = सौन्दर्यसौशील्यादिगुण-समूहम्, अश्रृणोत् = श्रुतवान् ॥ ४२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—नलने भी किसी समय लोगोंसे अपनें सौन्दर्यके यशःसमूहरूप हारके भीतर गुम्फनके लिए सूत्रकी शोभा करनेवाले और युवकोंके धैर्यको हटाने-वाले दमयन्तीके गुणगणको सुना ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—लोकात् = हेतुमें पञ्चमी "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः। स्व-कान्तिकीर्तिव्रजमौक्तिकस्रजः = स्वस्य कान्तिः (ष० त०) कीर्तीनां व्रजः (ष० त०)। स्वकान्तेः कीर्तिव्रजः (ष० त०)। मौक्तिकानां स्रक् (ष० त०)। स्वकान्तिकीर्तिव्रज एव मौक्तिकस्रक् (रूपक०), तस्याः। अन्तर्घटनागुण-श्रियम् = अन्तः घटना (सुप्सुपा०)। अन्तर्घटनायाः गुणः (ष० त०), तस्य श्रीः, ताम् (ष० त०)। श्रयन्तं = श्रयतीति श्रयन्, तम्, श्रि + लट् + शतृ + अम्। युवधैर्यलोपिनं = यूनां धैर्यम् (ष० त०)। युवधैर्यं लुम्पतीति युवधैर्यलोपी, तम्। युवधैर्य + लुप् + णिनिः (उपपद०)। गुणोत्करं = गुणानाम् उत्करः, तम् (ष० त०)। अश्रृणोत् = "श्रु श्रवणे" धातुसे लङ् + तिप्। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ ४२ ॥

तमेव लब्ध्वाऽवसरं ततः स्मरः शरीरशोभाजयजातमत्सरः।
अमोघशक्त्या निजयेव मूर्तया तया विनिर्जेतुमियेष नैषधम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः—ततः शरीरशोभाजयजातमत्सरः स्मरः तम् एव अवसरं लब्ध्वा मूर्तया निजया अमोघशक्त्या इव तया नैषधं विनिर्जेतुम् इयेष ॥ ४३ ॥

अथ नलस्य दमयन्त्यां रागोदयं वर्णयति—तमेवेति।

व्याख्या—ततः = अनन्तरं, नलकर्तृकदमयन्तीगुणश्रवणाऽनन्तरमिति भावः। शरीरशोभाजयजातमत्सरः = स्वदेहसौन्दर्यविजयोत्पन्नविद्वेषः, स्मरः = कामः, तम् एव = नलकृतदमयन्तीगुणश्रवणात्मकम् एव, अवसरं = प्रसङ्गं, लब्ध्वा = प्राप्य, मूर्तया = मूर्तिमत्या, निजया = स्वकीयया, अमोघशक्त्या इव = अकुण्ठसामर्थ्येन इव, तया = दमयन्त्या, करणभूतयेति भावः। नैषधं = नलं, विनिर्जेतुं = पराभवितुम्, इयेष = ऐच्छत्, शत्रवो रन्ध्राऽन्वेषणपरायणा भवन्तीति भावः ॥ ४३ ॥

अनुवादः—तव अपने शरीरके सौन्दर्यको जीतनेसे विद्वेषसे युक्त कामदेवने उसी अवसरको पाकर मूर्तिमती अपनी सफल शक्तिकी समान दमयन्तीके द्वारा ही नलको जीतनेकी इच्छा की ॥ ४३ ॥

टिप्पणी—शरीरशोभाजयजातमत्सरः = शरीरस्य शोभा (ष० त०)। तस्या जयः (ष० त०)। जातः मत्सरः यस्य सः (बहु०)। शरीरशोभाजयेन जातमत्सरः (हेतुमें तृतीया, और तृ० त०)। लब्ध्वा = लभ् + क्त्वा। अमोघ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शक्त्या = अमोघा चाऽसौ शक्तिः, तया (क० धा०)। नैषधं = निषध + अण्। विनिर्जेतुम् = वि + निर् + जि + तुमुन्। इयेष = "इषु इच्छायाम्" धातुसे लिट् + तिप्। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ४३ ॥

अकारि तेन श्रवणाऽतिथिर्गुणः क्षमाभुजा भीमनृपात्मजाश्रयः।
तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा स्मरेण च स्वात्मशरासनाश्रयः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—तेन क्षमाभुजा भीमनृपात्मजाश्रयः गुणः श्रवणाऽतिथिः अकारि; तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा स्मरेण च स्वात्मशरासनाश्रयः गुणः श्रवणाऽतिथिः अकारि ॥ ४४ ॥

व्याख्या—तेन = पूर्वोक्तेन, क्षमाभुजा=राज्ञा, नलेनेत्यर्थः। भीमनृपात्मजाऽऽश्रयः = दमयन्तीनिष्ठः, गुणः = सौन्दर्यवैदुष्याऽऽदिः, श्रवणाऽतिथिः = श्रोत्रेन्द्रियागन्तुकः, कर्णविषय इति भावः। अकारि = कृतः, नलेन दमयन्त्या गुणगणः श्रुतः इति भावः। ततः तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा = नलोन्नतधीरताविनाशार्थं संयोजितवाणेन, स्मरेण च = कामदेवेन च, स्वात्मशरासनाश्रयः = निजदृढधनुर्निष्ठः, गुणः = मौर्वी, श्रवणाऽतिथिः = श्रोत्रेन्द्रियागन्तुकः, अकारि = कृतः, कामदेवेन नलविजयार्थं स्वचापारोपितो गुण आकर्णं कृष्ट इति भावः ॥ ४४ ॥

अनुवादः—महाराज नलने दमयन्तीमें रहनेवाले सौन्दर्य और वैदुष्य आदि गुणोंको अपने कानोंका अतिथि बनाया, अर्थात् दमयन्तीके गुणोंको सुना। नलके उन्नत धैर्यका नाश करनेके लिए धनुमें वाणका सन्धान करनेवाले कामदेवने अपने दृढ धनुमें चढ़ाई गई प्रत्यञ्चाको कानोंतक खींचा ॥ ४४ ॥

टिप्पणी—क्षमाभुजा = क्षमां भुनक्तीति क्षमाभुक्, तेन, क्षमा + भुज् + क्विप्। भीमनृपात्मजाश्रयः = भीमश्चाऽसौ नृपः (क० धा०), तस्य आत्मजा (ष० त०)। भीमनृपात्मजा आश्रयः यस्य सः (बहु०)। श्रवणाऽतिथिः = श्रवणयोः अतिथिः (ष० त०)। अकारि = कृ + लुङ् (कर्ममें)। तदुच्चधैर्यव्ययसंहितेषुणा = उच्चं च तत् धैर्यम् (क० धा०)। उच्चधैर्यस्य व्ययः (ष० त०)। तस्य उच्चधैर्यव्ययः (ष० त०)। संहित इषुः येन सः (बहु०)। तदुच्चधैर्यव्ययाय संहितेषुः, तेन (च० त०)। स्वात्मशरासनाश्रयः = आत्मनः शरासनम् (ष० त०)। शोभनम् आत्मशरासनम् "कुगतिप्रादयः" इससे गतिसमास। स्वात्मशरासनम् आश्रयः यस्य सः (बहु०)। गुणः = "मौर्वीज्या शिञ्जिनी गुणः" इत्यमरः। श्रवणाऽतिथिः = श्रवणयोः अतिथिः (ष० त०)। अकारि = कृ + लुङ् + त (कर्ममें)। इस पद्यमें "अकारि"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस एक क्रियाके साथ नल और स्मर इन दोनों प्रस्तुतोंकी कर्तृतासे सम्बन्ध होनेसे तुल्ययोगिता अलङ्कार है और "स्वात्मशरासनाश्रयः" इस पदमें स्व और आत्मन् शब्दके प्रयोगसे पहले पुनरुक्ति प्रतीत होती है, पीछेसे सु-(शोभन) आत्मशरासन ऐसे अर्थकी प्रतीति होनेसे पुनरुक्तवदाभास अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

आपाततो यदर्थस्य पौनरुक्त्याऽवभासनम् ।
पुनरुक्तवदाभासः स भिन्नाकारशब्दगः ॥ १०–२ (सा० द०) ।

इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ ४४ ॥

अमुष्य धीरस्य जयाय साहसी तदा खलु ज्यां विशिखैः सनाथयन् ।
निमज्जयामास यशांसि संशये स्मरस्त्रिलोकीविजयार्जितान्यपि ॥ ४५ ॥

अन्वयः—साहसी स्मरः धीरस्य अमुष्य जयाय तदा ज्यां विशिखैः सनाथयन् त्रिलोकीविजयाऽर्जितानि अपि यशांसि संशये निमज्जयामास खलु ॥ ४५ ॥

व्याख्या—साहसी = साहसकरः, स्मरः = कामदेवः, धीरस्य = धैर्ययुक्तस्य, अमुष्य = नलस्य, जयाय = विजयाय, तदा = तस्मिन् समये, ज्यां = मौर्वीं, विशिखैः = बाणैः, सनाथयन् = सनाथां कुर्वन्, संयोजयन्नित्यर्थः । त्रिलोकीविजयाऽर्जितानि अपि = त्रिभुवनजयोपार्जितानि अपि, यशांसि = कीर्तीः, संशये = सन्देहे, निमज्जयामास = स्थापयामास, खलु = निश्चयेन, त्रिभुवनविजेताऽपि कामः नलविजयार्थं प्रवर्तमानः सन् "सोऽयं कामः नलविजये समर्थो भवेन्नवेति संशयपात्रं बभूवे"ति भावः ॥ ४५ ॥

अनुवादः—साहसी कामदेवने धैर्यशाली नलको जीतनेके लिए उस समय प्रत्यञ्चामें बाणोंको चढ़ाकर तीन लोकोंको जीतकर उपार्जित अपने यशको संशयमें डाल दिया ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—साहसी = साहसम् अस्याऽस्तीति, साहस शब्दसे "अत इनिठनौ" इससे इनि प्रत्यय । "न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति" इस न्यायसे विलम्ब नहीं करता हुआ यह तात्पर्य है । जयाय = "क्रियाऽर्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" इससे चतुर्थी । सनाथयन् = नाथैः सहिता सनाथा (तुल्ययोग-बहु०) । सनाथां कुर्वन्, "तत्करोति तदाचष्टे" इस सूत्रसे णिच् प्रत्यय होकर लट्के स्थानमें शतृ आदेश । त्रिलोकीविजयाऽर्जितानि = त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी, "तद्धिताऽर्थोत्तरपदसमाहारे च" इससे समास, "संख्यापूर्वो द्विगुः" इससे उसकी द्विगुसंज्ञा और "अकाराऽन्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः" इससे स्त्रीलिङ्ग होनेसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"द्विगोः" इस सूत्रसे ङीष्। त्रिलोक्या विजयः (ष० त०)। तेन अर्जितानि, तानि (तृ० त०)। निमज्जयामास = नि-उपसर्गपूर्वक "टुमस्जो शुद्धौ" इस धातुसे णिच् होकर लिट् + तिप्। कामदेवके उक्तसंशयसे सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धका प्रतिपादन होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥ ४५ ॥

अनेन भैमीं घटयिष्यतस्तथा विधेरवन्ध्येच्छतया व्यलासि तत्।
अभेदि तत्तादृगनङ्गमार्गणैर्यदस्य पौष्पैरपि धैर्यकञ्चुकम् ॥ ४६ ॥

अन्वयः—दैवयोगात्कामस्य नलविजयोद्यमः सफल इति प्रतिपादयति—अनेनेति। अनेन भैमीं घटयिष्यतः विधेः अवन्ध्येच्छतया तत् तथा व्यलासि। यत् पौष्पैः अपि अनङ्गमार्गणैः अस्य तादृक् तत् धैर्यकञ्चुकम् अभेदि ॥ ४६ ॥

व्याख्या—अनेन = नलेन सह, भैमीं = दमयन्तीं, घटयिष्यतः=संयोजयिष्यतः, विधेः = ब्रह्मणः, अवन्ध्येच्छतया = अमोघाऽभिलाषत्वेन, तत्, तथा = तेन प्रकारेण, व्यलासि = विलसितम्। यत् पौष्पैः अपि = पुष्पमयैः अपि, न तु कठिनैरिति भावः। अनङ्गमार्गणैः = अनङ्गवाणैः, न तु अङ्गिवाणैः, अस्य = नलस्य तादृक् = अतिकठोरम्, तत् = प्रसिद्धं, धैर्यकञ्चुकं = धीरत्वकवचम्, अभेदि = भिन्नम्। विधेरभिलाषसाफल्येनाऽनङ्गस्य कुसुमरूपैरपि वाणैर्नलस्य धैर्यकवचं भिन्नमिति भावः ॥ ४६ ॥

अनुवादः—नलके साथ दमयन्तीका संयोग करानेवाले ब्रह्माजीकी इच्छाके अमोघ होनेसे ऐसा हुआ कि कामदेवके वैसे पुष्पमय वाणोंसे भी नलका धैर्यरूप कवच भिन्न हो गया ॥ ७६ ॥

टिप्पणी—अनेन = "सह युक्तेऽप्रधाने" इस सूत्रसे सहका योग गम्यमान होने-पर भी तृतीया। भैमीं = भीमस्य अपत्यं स्त्री भैमी, ताम्, भीम + अण् + ङीप् + अम्। घटयिष्यतः = घट + णिच् + लृट् + (शतृ) + ङस्। अवन्ध्येच्छतया = न वन्ध्या (नञ् तत्पु०)। अवन्ध्या इच्छा यस्य सः (बहु०)। अवन्ध्येच्छस्य भावः अवन्ध्येच्छता, तया (अवन्ध्येच्छ + तल् + टाप् + टा)। व्यलासि = वि + लस् + लुङ् (भावमें)। पौष्पैः = पुष्पाणाम् इमे, तैः, (पुष्प + अण् + भिस्)। अनङ्ग मार्गणैः = अविद्यमानानि अङ्गानि यस्य सः अनङ्गः, (नञ् वहु०)। "कन्दर्पो-दर्पकोऽनङ्गः कामः पञ्चशरः स्मरः।" इत्यमरः। अनङ्गस्य मार्गणाः, तैः (ष० त०)। तादृक् = तदिव दृश्यते इति, तद्-उपपदपूर्वक दृश् धातुसे "त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च" इस सूत्रसे क्विन् प्रत्यय और "आ सर्वनाम्नः" इस सूत्रसे आत्व। धैर्यकञ्चुकं = धैर्यम् एव कञ्चुकम्, "मयूरव्यंसकादयश्च" इस सूत्रसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

015,1D60,1
1521.6.1

रूपकसमास। "कञ्चुको वारवाणोऽस्त्री" इत्यमरः। अभेदि = "भिदिर् विदारणे" इस धातुसे कर्ममें लुङ्। इस पद्यमें पुष्पमय बाणोंसे कञ्चुकके भेदमें विरोधकी प्रतीति होती है, विधिकी अवन्ध्य इच्छासे उसका परिहार होनेसे विरोधाभास अलङ्कार है। धैर्यमें कञ्चुकका आरोप होनेसे रूपक अलङ्कार है। इस प्रकार रूपक और विरोधाभासका अङ्गाऽङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है॥ ४६॥

किमन्यदद्यापि यदस्त्रतापितः पितामहो वारिजमाश्रयत्यहो!।
स्मरं तनुच्छायतया तमात्मनः शशाक शङ्के स न लङ्घितुं नलः॥ ४७॥

अन्वयः—अहो! अन्यत् किम्? यदस्त्रतापितः पितामहः अद्याऽपि वारिजम् आश्रयति। स नलः आत्मनः तनुच्छायतया तं स्मरं लङ्घितुं न शशाक (इति) शङ्के॥ ४७॥

व्याख्या—अहो = आश्चर्यम्, अन्यत् = अपरं, किं = किम् उच्यते, यदस्त्रतापितः = यस्य (स्मरस्य) आयुधसन्तापितः, पितामहः = ब्रह्मा, अद्यापि = इदानीम् अपि, वारिजं = कमलम्, आश्रयति = अवलम्बते, कामसन्तापाऽपनयनार्थं कमलासनमधिवसतीति भावः। सः = पूर्वोक्तः, नलः, आत्मनः = स्वस्य, तनुच्छायतया = शरीरकान्तिमत्त्वेन अथवा शरीरच्छायत्वेन, तं = पूर्वोक्तं, स्मरं = कामदेवं, लङ्घितुम् = अतिक्रमितुं, न शशाकः न समर्थो बभूव, इति, शङ्के=शङ्कां करोमि, स्वसदृशः आत्मच्छाया वा लङ्घितुं न शक्यत इति भावः॥ ४७॥

अनुवादः—आश्चर्य है! और क्या कहना है? जिस कामदेवके अस्त्रसे तापित ब्रह्माजी आज भी कमलका आश्रय ले रहे हैं। महाराज नल अपने शरीरकी कान्तिके सदृश होनेसे वा अपने शरीरकी छाया होनेसे कामदेवको लङ्घन करनेके लिए समर्थ नहीं हुए मैं ऐसा समझता हूँ॥ ४७॥ 1597

टिप्पणी—यदस्त्रतापितः = यस्य (स्मरस्य) अस्त्राणि (ष० त०), तैः तापितः (तृ० त०)। पितामहः=पितुः पिता, "पितृव्यमातुलमातामहपितामहाः" इससे निपातन, "मातृपितृभ्यां पितरि डामहच्" इस वार्तिकसे पितृ शब्दसे डामहच् प्रत्यय। वारिजं = वारिणि जातं तत्, वारि + जन् + ड + अम्। आश्रयति = आङ् + श्रिञ् + लट् + तिप्। तनुच्छायतया = तनोः इव छाया (कान्तिः) यस्य सः (व्यधिकरण बहु०)। अथवा आत्मनः छाया आत्मच्छायं, "विभाषा सेनासुराच्छायाशालानिशानाम्" इससे विकल्पसे नपुंसकलिङ्गता। "छाया त्वनातपे कान्तौ" इति वैजयन्ती। तनुच्छायस्य भावः, तत्ता, तया, तनुच्छाय + तल् + टाप् + टा। लङ्घितुं = लघि + तुमुन्। शशाक = शक + लिट् + तिप्।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शङ्के = शकि + लट् + त । इस पद्यमें अर्थापत्ति, उत्प्रेक्षा और अतिशयोक्ति इन तीनों अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ ४७ ॥

उरोभुवा कुम्भयुगेन जृम्भितं नवोपहारेण वयःकृतेन किम् ।
त्रपासरिद्दुर्गमपि प्रतीर्य सा नलस्य तन्वी हृदयं विवेश यत् ॥ ४८ ॥

अन्वयः—तन्वी सा त्रपासरिद्दुर्गम् अपि प्रतीर्य नलस्य हृदयं यत् विवेश, तत् वयःकृतेन नवोपहारेण उरोभुवा कुम्भयुगेन जृम्भितं किम् ? ॥ ४८ ॥

व्याख्या—तन्वी = कृशाऽङ्गी, सा = दमयन्ती, त्रपासरिद्दुर्गम् अपि = लज्जा-नदीदुर्गमस्थलम् अपि, प्रतीर्य = प्रकर्षेण तीर्त्वा, नलस्य = नैषधस्य, हृदयं = मनः, यत्, विवेश = प्रविष्टवती, तत् = नलहृदयप्रवेशनं, वयःकृतेन = यौवनविहितेन, नवोपहारेण = नूतनोपायनरूपेण, उरोभुवा = वक्षःस्थलोत्पन्नेन, कुम्भयुगेन = कलशयुग्मेन, कुचयुगलरूपेणेति शेषः, जृम्भितं किम् = विलसितं किमु ॥ ४८ ॥

अनुवादः—कृशाऽङ्गी दमयन्तीने लज्जारूप नदी दुर्गको भी पार कर नलके हृदयमें जो प्रवेश किया, वह यौवनसे किये गये उपहाररूप छातीमें उत्पन्न दो कुचकलशोंने विलास किया है क्या ? ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—त्रपासरिद्दुर्गं = त्रपा एव सरित् (रूपक०), "मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा" इत्यमरः । त्रपासरित् एव दुर्गं, तत् (रूपक०) । प्रतीर्य = प्र + तॄ + क्त्वा (ल्यप्) । विवेश = "विश प्रवेशने" धातुसे लिट् + तिप् । वयः-कृतेन = वयसा कृतं, तेन (तृ० त०) । नवोपहारेण = नवश्चाऽसौ उपहारः, तेन (क० धा०) । "उपायनमुपग्राह्यमुपहारस्तथोपदा ।" इत्यमरः, उरोभुवा = उरसि भवतीति, तेन, उरस् + भू + क्विप् (उपपद०) । कुम्भयुगेन = कुम्भयोः युगं, तेन (ष० त०) । जृम्भितं = "जृभि गात्रविनामे" इस धातुसे क्त प्रत्यय (भावमें) । इस पद्यमें अतिशयोक्ति, उत्प्रेक्षा और रूपक इनकी निरपेक्षतासे स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है ॥ ४८ ॥

अपह्नुवानस्य जनाय यन्निजामधीरतामस्य कृतं मनोभुवा ।
अबोधि तज्जागरदुःखसाक्षिणी निशा च शय्या च शशाऽङ्ककोमला ॥४९॥

अन्वयः—निजाम् अधीरतां जनाय अपह्नुवानस्य अस्य मनोभुवा यत् कृतं, तत् जागरदुःखसाक्षिणी शशाऽङ्ककोमला निशा शय्या च अबोधि ॥ ४९ ॥

अधुना नलस्य जागराऽवस्थां प्रतिपादयति—अपह्नुवानस्येति ।

व्याख्या—निजां = स्वकीयाम्, अधीरताम् = अधैर्यं, चपलतामिति भावः । जनाय = लोकाय, अपह्नुवानस्य = अपलपतः, अस्य = नलस्य, मनोभुवा = काम-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

देवेन, यत् = जागरप्रलापादिकं, कृतं = विहितं, तत्, जागरदुःखसाक्षिणी = अनिद्रापीडायाः साक्षाद्द्रष्ट्री, शशाऽङ्ककोमला = चन्द्रमृदुला, शीतलेति भावः। निशा = रात्रिः, शशाऽङ्ककोमला, शय्या च = शयनीयं च, अबोधि = ज्ञातवती। निशा शय्या च नलजागरदुःखसाक्षिणीति भावः ॥ ४९ ॥

अनुवादः—अपनी अधीरताको लोकसे छिपानेवाले राजा नलका कामदेवने जो किया, उसको उनके जागरणके दुःखकी साक्षिणी चन्द्रसे कोमल (शीतल) रात और चन्द्रकी समान कोमल शय्या भी जानती थी ॥ ४९ ॥

टिप्पणी—अधीरतां = न धीरता, ताम् (नञ् त०)। जनाय = "अपह्नुवानस्य" इस ह्नुङ् धातुके योगमें "श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः" इस सूत्रसे संप्रदानसंज्ञा होनेसे चतुर्थी। अपह्नुवानस्य = अपह्नुत इति अपह्नुवानः, तस्य, अप-उपसर्गपूर्वक "ह्नुङ् अपनयने" इस धातुसे लट्के स्थानमें शानच् आदेश। मनोभुवा = मनसि भवतोति मनोभूः, तेन, मनस् + भू + क्विप् + टा। जागरदुःखसाक्षिणी = जागरणं जागरः, "जागृ निद्राक्षये" धातुसे घञ् प्रत्यय। जागरे दुःखम् (स० त०)। साक्षाद्द्रष्ट्री साक्षिणी, 'साक्षात्' शब्दसे "साक्षाद्द्रष्टरि संज्ञायाम्" इससे इनि प्रत्यय और स्त्रीत्वविवक्षामें "ऋन्नेभ्यो ङीप्" इस सूत्रसे ङीप्। जागरदुःखस्य साक्षिणी (ष० त०)। शशाऽङ्ककोमला = शशः अङ्कः यस्य सः शशाङ्कः (बहु०)। शशाङ्केन कोमला (तृ० त०), यह विग्रह निशाके विशेषणमें है। शशाऽङ्क इव कोमला, "उपमानानि सामान्यवचनैः" इससे समास। यह विग्रह शय्याके विशेषणमें है। शय्या = शेते अस्याम् इति, "शीङ् स्वप्ने" धातुसे "संज्ञायां समजनिषदनिपतमनविदषुञ्शीङ्भृञिणः" इस सूत्रसे क्यप् प्रत्यय और "अयङ् यि क्ङिति" इससे अयङ् आदेश। अबोधि = बुध् + लुङ् + त (कर्तामें)। यहाँ तुल्ययोगिता और उपमा अलङ्कार है ॥ ४९ ॥

स्मरोपतप्तोऽपि भृशं न स प्रभुर्विदर्भराजं तनयामयाचत।
त्यजन्त्यसूञ्शर्म च मानिनो वरं त्यजन्ति न त्वेकमयाचितव्रतम् ॥५०॥

अन्वयः——प्रभुः स भृशं स्मरोपतप्तः अपि विदर्भराजं तनयां न अयाचत। मानिनः असून् शर्म च त्यजन्ति वरम्, तु एकम् अयाचितव्रतं न त्यजन्ति ॥ ५० ॥

व्याख्या—प्रभुः = समर्थः, सः = नलः, भृशम् = अत्यर्थं, स्मरोपतप्तः अपि = कामसन्तप्तः अपि, विदर्भराजं = भीमनृपं, तनयां = पुत्रीं, तत्पुत्रीं दमयन्तीमिति भावः, न अयाचत = नो याचितवान्। तथा हि—मानिनः = अभिमानिनः, मनस्विन इत्यर्थः। असून् = प्राणान्, शर्म च = सुखं च, त्यजन्ति = जहति, वरं =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणसुखत्यागोऽपि मनाक् प्रियः, तु = किन्तु, एकम् = अद्वितीयम्, अयाचित-व्रतम् = अयाचनानियमं तु, न त्यजन्ति = नो जहति, मनस्विनां प्राणादित्याग-दुःखादपि याचनादुःखं दुःसहं भवतीति भावः ॥ ५० ॥

अनुवादः—समर्थ महाराज नलने अतिशय कामपीडित होकर भी विदर्भराज भीमसे उनकी पुत्री दमयन्तीको नहीं माँगा। क्योंकि मनस्वी पुरुष प्राणोंको और सुखको भी छोड़ देते हैं, यह त्याग भी कुछ उत्कर्ष ही है परन्तु एक अयाचित व्रतको नहीं छोड़ते हैं ॥ ५० ॥

टिप्पणी—स्मरोपतप्तः = स्मरेण उपतप्तः (तृ० त०)। विदर्भराजं = विदर्भाणां राजा विदर्भराजः, तम् (ष० त०)। "राजाऽहःसखिम्भष्टच्" इस सूत्रसे समासाऽन्त टच् प्रत्यय। "अयाचत" इस "याच्" धातुका "अकथितं च" इससे कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया। वह गौण कर्म है। तनयाम् = यह मुख्य कर्म है। अयाचत = "याचृ याच्आयाम्" धातुसे लङ् + त। मानिनः = मान + इनि + जस्। असून् = "पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः" इत्यमरः। वरं = "देवाद् वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीवे मनाक् प्रिये।" इत्यमरः। अयाचितव्रतं = याचनं याचितम्, 'याच' धातुसे "नपुंसके भावे क्तः" इससे क्त प्रत्यय। न याचितम् (नञ् तत्पु०)। अयाचितं च तद् व्रतम् (क० धा०)। त्यजन्ति = त्यज् + लट् + झि। इस पद्यमें सामान्यसे विशेषका समर्थनरूप अर्थान्तरन्यास अलङ्कार और तुल्ययोगिताका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ५० ॥

मृषाविषादाऽभिनयादयं क्वचिज्जुगोप निःश्वासततिं वियोगजाम्।
विलेपनस्याऽधिकचन्द्रभागताविभावनाच्चापललाप पाण्डुताम् ॥ ५१ ॥

अन्वयः—अयं क्वचित् मृषाविषादाऽभिनयात् वियोगजां निःश्वासततिं जुगोप। विलेपनस्य अधिकचन्द्रभागताविभावनात् पाण्डुतां च अपललाप ॥ ५१ ॥

व्याख्या—अयं = नलः, क्वचित् = कुत्रचित् विषये, मृषाविषादाऽभिनयात् = मिथ्याखेदप्रकाशनात्, वियोगजां = भैमीविरहोत्पन्नां, निःश्वासततिं = निःश्वासपरम्परां, जुगोप = गोपितवान्, संववारेत्यर्थः। विलेपनस्य = चन्दनादिलेपन–द्रव्यस्य, अधिकचन्द्रभागताविभावनात् = अतिरिक्तकर्पूरांऽशताज्ञापनात्, पाण्डुतां च = शरीर-पाण्डिमानं च, अपललाप = अपलपितवान् ॥ ५१ ॥

अनुवादः—नलने किसी विषयमें मिथ्याखेदको प्रकाशित करके दमयन्तीके वियोगसे उत्पन्न निःश्वासपरम्पराको छिपाया। चन्दन आदि लेपनद्रव्यमें ज्यादा कर्पूरका भाग पड़ गया है ऐसा कहकर शरीरकी पाण्डुताको छिपाया ॥ ५१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—मृषाविषादाऽभिनयात् = मृषा चाऽसौ विषादः (क० धा०)। 'मृषा' यह अव्यय है। मृषाविषादस्य अभिनयः, तस्मात् (ष० त०), "विभाषा गुणेऽस्त्रियाम्" इस सूत्रसे हेतुमें पञ्चमी। वियोगजां = वियोगात् जाता, ताम्, वियोग-उपपदपूर्वक 'जन्' धातुसे "पञ्चम्यामजातौ" इस सूत्रसे ड प्रत्यय होकर स्त्रीत्वविवक्षामें टाप्। निःश्वासततिं = निःश्वासानां ततिः, ताम् (ष० त०)। जुगोप = "गुपूरक्षणे" धातुसे लिट् + तिप्। अधिकचन्द्रभागताविभावनात् = चन्द्रस्य भागः (ष० त०)। "घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताभ्रो हिमवालुका।" इत्यमरः। अधिकश्चाऽसौ चन्द्रभागः (क० धा०), तस्य भावः तत्ता अधिक-चन्द्रभाग + तल् + टाप्। अधिकचन्द्रभागताया विभावनं, तस्मात् (ष० त०), पहलेके सूत्रसे हेतुमें पञ्चमी। पाण्डुतां = पाण्डोर्भावः, तां, पाण्डु + तल् + टाप् + अम्। "हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः" इत्यमरः। अपललाप = अप-उपसर्गपूर्वक "लप व्यक्तायां वाचि" धातुसे लिट् + तिप्। "अपलापस्तु निह्नवः" इत्यमरः। इस पद्यमें व्याजोक्ति अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"व्याजोक्तिर्गोपनं व्याजादुद्भिन्नस्याऽपि वस्तुनः।" सा० द० १०–१२०।

शशाक निह्नोतुमयेन तत्प्रियामयं बभाषे यदलीकवीक्षिताम्।
समाज एवाऽऽलपितासु वैणिकैर्मुमूर्च्छ यत्पञ्चममूर्च्छनासु च॥ ५२॥

अन्वयः—अयम् अलीकवीक्षितां प्रियां यत् बभाषे, वैणिकैः पञ्चममूर्च्छनासु आलपितासु समाज एव च यत् मुमूर्च्छ; तत् अनेन निह्नोतुं शशाक॥ ५२॥

व्याख्या—नलस्य प्रलापाख्यां कामदशां प्रतिपादयति—शशाकेति। अयं = नलः, अलीकवीक्षितां = मिथ्याऽवलोकितां, प्रियां = वल्लभां, दमयन्तीमित्यर्थः। यत्, बभाषे = भाषितवान्, निरन्तरध्यानवशात्पुरः संप्राप्तां विदित्वेति शेषः। वैणिकैः = वीणावादकैः, पञ्चममूर्च्छनासु = पञ्चमस्वरमूर्च्छासु, आलपितासु = पुनः पुनर्गीतासु सतीषु, समाजे एव च = सभास्थितजनसमूहे एव च, यत् = यस्मात्कारणात्, मुमूर्च्छ = मूर्च्छां प्राप, स्फुटतां न प्रापेति भावः। तत् = भाषणम्, अनेन = प्रकारेण, निह्नोतुं = गोपायितुं, शशाक = समर्थो बभूव॥ ५२॥

अनुवादः—इन्होंने भ्रमसे देखी गई प्रिया (दमयन्ती) को जो कहा, बीन बजानेवालोंके पञ्चम स्वरकी मूर्च्छनाओंके आलाप करनेपर जनसमूहमें ही जिससे स्फुट नहीं हुआ इस कारणसे उसे छिपानेके लिए नल समर्थ हुए॥ ५२॥

टिप्पणी—अलीकवीक्षिताम् = अलीकम् (यथा तथा) वीक्षिता, ताम् (सुप्सुपा०)। बभाषे=भाष + लिट् + त। वैणिकैः=वीणावादनं शिल्पं (क्रिया-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कौशलम्) येषां ते वैणिकाः, तैः, "शिल्पम्" इस सूत्रसे ठञ् । पञ्चममूर्च्छनासु = पञ्चमस्य मूर्च्छनाः, तासु (ष० त०) । तन्त्री (तार) और कण्ठसे उत्पन्न होनेवाले शुद्ध स्वर सात प्रकारके होते हैं, जैसे कि--षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद । स्वरोंके आरोह और अवरोहके क्रमको "मूर्च्छना" कहते हैं । मूर्च्छनाके इक्कीस भेद होते हैं । आलपितासु = आङ् + लप + क्त + टाप् + सुप् । यत्=यद्-शब्दका प्रतिरूपक अव्यय । मुमूर्च्छ = "मुर्च्छा मोहसमुच्छ्राययोः" इस धातुसे लिट् + तिप् । निह्नोतुं = नि-उपसर्गपूर्वक "ह्नुङ् अपनयने" धातुसे "समानकर्तृकेषु तुमुन्" इस सूत्रसे तुमुन् प्रत्यय । शशाक = "शक्लृ मर्षणे" धातुसे लिट् + तिप् । इस पद्यमें···"मूर्च्छ"·····"मूर्च्छ" इस प्रकारसे व्यञ्जनसमुदायका एक वार अनेक प्रकारसे समता होनेसे छेकाऽनुप्रास अलङ्कार है । उसका लक्षण है--

"छेको व्यञ्जनसङ्घस्य सकृत्साम्यमनेकधा ।" सा० द० १०-४ ॥ ५२ ॥

अवाप साऽपत्रपतां स भूपतिर्जितेन्द्रियाणां धुरि कीर्तितस्थितिः ।
असंवरे शम्बरवैरिविक्रमे क्रमेण तत्र स्फुटतामुपेयुषि ॥ ५३ ॥

अन्वयः--जितेन्द्रियाणां धुरि कीर्तितस्थितिः स भूपतिः तत्र असंवरे शम्बरवैरिविक्रमे क्रमेण स्फुटताम् उपेयुषि साऽपत्रपताम् अवाप ॥ ५३ ॥

व्याख्या--जितेन्द्रियाणां = वशीकृत-हृषीकाणां जनानां, धुरि = अग्रे, कीर्तितस्थितिः = स्तुतमर्यादः, सः = पूर्वोक्तः, भूपतिः = राजा, नल इत्यर्थः । तत्र = तस्मिन्, समाज इति शेषः । असंवरे = निरोद्धुम् अशक्ये, शम्बरवैरिविक्रमे = मदनपराक्रमे, मदननानाविधविकार इति भावः, क्रमेण = परिपाट्या, स्फुटतां = व्यक्तताम्, उपेयुषि = प्राप्तवति सति, साऽपत्रपताम्=अन्येभ्यो लज्जितताम्, अवाप= प्राप, जनसमाजे कामविकारे व्यक्ते सति नलो लज्जितो बभूवेति भावः ॥ ५३ ॥

अनुवादः--जितेन्द्रियोंके अग्रभागमें वर्णित मर्यादावाले महाराज नल समाजमें कामविकारके रोकनेमें अशक्य होकर क्रमसे व्यक्त हो जानेपर अन्य लोगोंके सम्मुख लज्जित हुए ॥ ५३ ॥

टिप्पणी--जितेन्द्रियाणां = जितानि इन्द्रियाणि यैस्ते, तेषाम् (बहु०) । कीर्तितस्थितिः = कीर्तिता स्थितिः येषां ते (बहु०) । "संस्था तु मर्यादा धारणा स्थितिः" इत्यमरः । भूपतिः = भुवः पतिः (ष० त०), तत्र = तस्मिन्निति, तद् + त्रल् । असंवरे = संवरणं संवरः, सम्-उपसर्गपूर्वक "वृञ् वरणे" धातुसे "ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च" इस सूत्रसे अप् प्रत्यय । अविद्यमानः संवरो यस्य सः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मिन् (नञ् बहु०) । शम्बरवैरिविक्रमे = शम्बरस्य वैरी (ष० त०), "शम्बराऽरिर्मनसिजः" इत्यमरः । शम्बरवैरिणः विक्रमः, तस्मिन् (ष० त०) । स्फुटतां = स्फुट + तल् + टाप् । उपेयुषि = उप-उपसर्गपूर्वक इण् धातुसे "उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च" इस सूत्रसे क्वसु प्रत्यय + ङि । साऽपत्रपताम् = अन्यतः लज्जा अपत्रपा, "लज्जा साऽपत्रपाऽन्यतः" इत्यमरः । अपत्रपया सहितः सापत्रपः, "तेन सहेति तुल्ययोगे" इससे तुल्ययोगबहुव्रीहि, "वोपसर्जनस्य" इस सूत्रसे 'सह' के स्थानमें विकल्पसे 'स' भाव । साऽपत्रपस्य भावः सापत्रपता, ताम्, साऽपत्रप + तल् + टाप् + अम् । अवाप = अव-उपसर्गपूर्वक "आप्लृ व्याप्तौ" धातुसे लिट् + तिप् । इस पद्यमें प्रथमचरणमें 'प'कारका वारंवार साम्य होनेसे वृत्यनुप्रास अलङ्कार है, उसका लक्षण है--

"अनेकस्यैकधा साम्यमसकृद्वाऽप्यनेकधा ।
एकस्य सकृदप्येष वृत्यनुप्रास उच्यते ।।" सा० द० १०-५

पूर्वार्द्धमें अन्त्याऽनुप्रास है । उसका लक्षण है--

"व्यञ्जनं चेद्यथाऽऽवस्थं सहाद्येन स्वरेण तु ।
आवर्त्यतेऽन्त्ययोज्यत्वादन्त्याऽनुप्रास एव तत् ।।" १०-७ ।

उत्तरार्द्धमें "वरे…म्बर" "क्रमे क्रमे…" इस प्रकार व्यञ्जनसमुदायका अनेक प्रकारसे साम्य होनेसे छेकाऽनुप्रास है, इस प्रकार वृत्यनुप्रास, अन्त्याऽनुप्रास और छेकाऽनुप्रास इन अलङ्कारोंकी निरपेक्षतया स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है ।। ५३ ।।

अलं नलं रोद्धुममी किलाऽभवन्गुणा विवेकप्रभवा न चापलम् ।
स्मरः स रत्यामनिरुद्धमेव यत्सृजत्ययं सर्गनिसर्ग ईदृशः ।। ५४ ।।

अन्वयः—अमी विवेकप्रभवा गुणा नलं चापलं रोद्धुम् अलं न अभवन् किल । यत् स स्मरः रत्याम् अनिरुद्धम् एव सृजति; ईदृशः अयं सर्गनिसर्गः ।

व्याख्या—विवेकादयो गुणा नलचापलं निवारयितुं कथं न समर्था जाता इत्यत्राऽऽह—अलं नलमिति । अमी = एते, विवेकप्रभवाः = पृथगात्मतोत्पन्नाः, गुणाः = धैर्यादय इत्यर्थः । नलं = नैषधं, नलादिति भावः, चापलं = चाञ्चल्यं, कामजनितमिति शेषः । रोद्धुं = निवारयितुम्, अलं = समर्थाः, न अभवन् = नो जाताः, किल = निश्चयेन । अत्र हेतुमुपपादयति—स्मर इति । यत् = यस्मात्कारणात्, सः = प्रसिद्धः, स्मरः = कामदेवः, रत्याम् = अनुरागे सति, अथवा रतिनामस्वप्रियायाम्, अनिरुद्धम् एव = अनिवारितम् एव, चापलम् एव, पुरुषमिति शेषः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्षान्तरे—अनिरुद्धनामकं पुत्रम् एव, सृजति = करोति, ईदृशः = एतादृशः, अयम् = एषः, सर्गनिसर्गः = सृष्टिस्वभावः, कामः रतौ = अनुरागे सति पुरुषं चपलमेव करोति अथवा कामः रतौ = स्वप्रियायाम्, अनिरुद्धम् एव = अनिरुद्धनामकं पुत्रम् एव उत्पादयति, एतादृशः सृष्टिस्वभाव इत्यर्थः ॥ ५४ ॥

अनुवादः—ये विवेकसे उत्पन्न धैर्य आदि गुण नलकी कामचञ्चलताको रोकनेके लिए समर्थ नहीं हुए। जो कि कामदेव अनुराग उत्पन्न होनेपर मनुष्यको चञ्चल ही कर देता है अथवा कामदेव प्रद्युम्न रति (पत्नी) में अनिरुद्ध (पुत्र) को उत्पन्न करते हैं। ऐसा यह सृष्टिका स्वभाव है ॥ ५४ ॥

टिप्पणी—विवेकप्रभवाः = विवेकः प्रभवः येषां ते (बहु०)। "विवेकः पृथगात्मता" इत्यमरः। नलम् = अधिकरण वा सम्बन्धकी विवक्षा न करके "अकथितं च" इस सूत्रसे कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया। चापलं = चपलस्य भावः चापलं, तत्, "चपल" शब्दसे युवादिगणमें पठित होनेसे "हायनाऽन्तयुवादिभ्योऽण्" इस सूत्रसे अण्, ब्राह्मणादिगणमें पठित होनेसे ष्यञ् प्रत्यय होकर "चापल्यम्" ऐसा रूप भी बनता है। यह मुख्य कर्म है। रोद्धुम् = "अलम्" इस पदका योग होनेसे "पर्याप्तिवचनेष्वलमर्थेषु" इससे तुमुन् प्रत्यय। अलम् = "अलं भूषणपर्याप्तिशक्तिवारणवाचकम्।" इत्यमरः। अभवन् = भू + लङ् + झि। रत्याम् = रम् + क्तिन् + ङि। अनिरुद्धम् = न निरुद्धम्, तद् (नञ् त०)। अथवा अनिरुद्धम् = प्रद्युम्नपुत्रम्। सृजति = सृज् + लट् + तिप्। सर्गविसर्गः = सर्गस्य निसर्गः (ष० त०)। "सर्गः स्वभावनिर्मोक्षनिश्चयाऽध्यायसृष्टिषु।" इति "स्वरूपं च स्वभावश्च निसर्गश्च" इत्यप्यमरः। इस पद्यमें उत्तरार्धस्थित सामान्यसे पूर्वार्द्धस्थित विशेष अर्थका समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है। उसका लक्षण है—

> "सामान्यं वा विशेषेण, विशेषस्तेन वा यदि।
> कार्यं च कारणेनेदं, कार्येण च समर्थ्यते ॥
> साधर्म्येणेतरेणाऽर्थान्तरन्यासोऽष्टधा ततः।" सा० द० १०-८० ॥५४॥

> **अनङ्गचिह्नं स विना शशाक नो यदासितुं संसदि यत्नवानपि।**
> **क्षणं तदाऽऽरामविहारकैतवान्निषेवितुं देशमियेष निर्जनम् ॥ ५५ ॥**

अन्वयः—स यत्नवान् अपि संसदि यदा अनङ्गचिह्नं विना आसितुं नो शशाक, तदा क्षणम् आरामविहारकैतवात् निर्जनं देशं निषेवितुम् इयेष ॥ ५५ ॥

अथ नलस्याऽभीष्टपूर्त्तिसहायकहंससमागमहेतुकोपवनविहारं प्रस्तौति अनङ्गेति।

व्याख्या—सः = नलः, यत्नवान् अपि = प्रयत्नसम्पन्नः अपि, अनङ्गचिह्न-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गूहन इति शेषः । संसदि = सभायां, यदा = यस्मिन् समये, अनङ्गचिह्नं विना = स्तम्भादिकामलक्षणं विना, आसितुम् = उपवेष्टुं, नो शशाक = न समर्थो बभूव । तदा = तस्मिन् समये, क्षणं = कञ्चित्कालं यावत्, आरामविहारकैतवात् = उपवन-क्रीडाच्छलात्, निर्जनं = जनरहितं, देशं = स्थानं, निषेवितुम् = आश्रयितुम्, इयेष = इष्टवान्, लज्जापरिहारार्थमिति शेषः ॥ ५५ ॥

अनुवादः—नल प्रयत्न करनेपर भी सभामें जब काम लक्षणके विना रहनेको समर्थ नहीं हुए: तब कुछ समय तक बगीचेमें क्रीडाके वहानेसे उन्होंने निर्जन स्थानका आश्रय लेनेके लिए इच्छा की ॥ ५५ ॥

टिप्पणी—यत्नवान् = यत्नः अस्याऽस्तीति यत्नवान्, "यत्न" शब्दसे "तद-स्याऽस्त्यस्मिन्निति मतुप्" इस सूत्रसे मतुप्, 'म' कारके स्थानमें "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभः" इससे वकार आदेश । संसदि = "समज्या परिषद्गोष्ठी सभा-समितिसंसदः ।" इत्यमरः । अनङ्गचिह्नं विना = अविद्यमानानि अङ्गानि यस्य सः अनङ्गः (नञ् बहु०) । अनङ्गस्य चिह्नं, तत् (ष० त०), "विना" इस पदके योगमें "पृथग्विनानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" इससे तृतीया, पञ्चमी और द्वितीया होती है, यहाँपर द्वितीया । आसितुम् = आस + तुमुन् । शशाक = शक + लिट् + तिप् । क्षणं="कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इस सूत्रसे द्वितीया, "निर्व्यापार-स्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः" इत्यमरः । "आरामविहारकैतवात् = आराम-स्य विहारः (ष० त०), "आरामः स्यादुपवनम्" इत्यमरः । आरामविहारस्य कैतवं, तस्मात् (ष० त०) "कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे ।" इत्यमरः । निर्जनं = निर्गता जना यस्मात्, तम् (बहु०) । निषेवितुं = नि + सेव + तुमुन् । "परिनिविभ्यः सेवसितसयसिवुसहसुट्स्तुस्वञ्जाम्" इससे मूर्धन्य षकार । इयेष = इष् + लिट् + तिप् । यहाँपर वृत्यनुप्रास अलङ्कार है ॥ ५५ ॥

अथ श्रिया भर्त्सितमत्स्यकेतनः समं वयस्यैः स्वरहस्यवेदिभिः ।
पुरोपकण्ठोपवनं किलेक्षिताऽऽदिदेश यानाय निदेशकारिणः ॥ ५६ ॥

अन्वयः—अथ श्रिया भर्त्सितमत्स्यकेतनः स्वरहस्यवेदिभिः वयस्यैः समं पुरोपकण्ठोपवनम् ईक्षिता (सन्) यानाय निदेशकारिणः आदिदेश किल ॥ ५६ ॥

व्याख्या—अथ = अनन्तरं, निर्जनदेशनिषेवणेच्छानन्तरमिति भावः । श्रिया = स्वशरीरकान्त्या हेतुना, भर्त्सितमत्स्यकेतनः = तिरस्कृतकामः, नल इति भावः । स्वरहस्यवेदिभिः = आत्मगोप्यविषयाऽभिज्ञैः, वयस्यैः = तुल्यवयस्कैः मित्रैः, समं = सह, पुरोपकण्ठोपवनं = नगरनिकटारामम्, ईक्षिता = अवलोकिता सन्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यानाय = यानम्, वाहनमानेतुं, गमनाय वा, निदेशकारिणः = आज्ञाकारिणो जनान्, आदिदेश = आज्ञापयामास ॥ ५६ ॥

अनुवादः—तव शरीरकी शोभासे कामदेवको तिरस्कृत करनेवाले नलने अपने रहस्यके जानकार मित्रोंके साथ शहरके निकटस्थ बगीचेको देखनेके लिए वाहन लानेके लिए कर्मचारियोंको आज्ञा दी ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—श्रिया = "हेतौ" इससे तृतीया। भर्त्सितमत्स्यकेतनः = मत्स्यः केतनं (चिह्नम्) यस्य सः (बहु०)। "भर्त्सितमत्स्यलाञ्छनः" "भर्त्सितमीनकेतनः" ऐसे पाठान्तरोंमें भी अर्थमें भेद नहीं है। "मदनो मन्मथो मारः प्रद्युम्नो मीनकेतनः" इत्यमरः। स्वरहस्यवेदिभिः = रहसि (एकान्ते) भवं रहस्यम्, रहस् + यत्। स्वरहस्यं विदन्तीति तच्छीलाः, तैः, स्वरहस्य + विद् + णिनिः + भिस् (उपपद०)। वयस्यैः = वयसा तुल्या वयस्याः, तैः "वयस्" शब्दसे नौवयोधर्म०" इत्यादि सूत्रसे यत् प्रत्यय। "समम्" इस पदके योगमें तृतीया। पुरोपकण्ठोपवनं = पुरस्य उपकण्ठः (ष० त०), "उपकण्ठाऽन्तिकाऽभ्यर्णाऽभ्यग्रा अप्यभितोऽव्ययम्।" इत्यमरः। पुरोपकण्ठे उपवनं, तत् (स० त०)। "ईक्षिता" इस तृन् प्रत्ययान्तपदके योगमें "कर्तृकर्मणोः कृति" इस सूत्रसे कर्ममें षष्ठीकी प्राप्ति थी, पर "न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्" इससे निषेध हुआ है। ईक्षिता = ईक्षत इति; ईक्ष + तृन्। यानाय = "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" इस सूत्रसे चतुर्थी। निदेशकारिणः = निदेशं कुर्वन्तीति तच्छीलाः, तान्, निदेश + कृ + णिनिः (उपपद०)। आदिदेश = आङ् + दिश + लिट् + तिप्। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ५६ ॥

अमी ततस्तस्य विभूषितं सितं जवेऽपि मानेऽपि च पौरुषाऽधिकम्।
उपाहरन्नश्वमजस्रचञ्चलैः　खुराञ्चलैः　क्षोदितमन्दुरोदरम् ॥ ५७ ॥

अन्वयः—ततः अमी तस्य विभूषितं सितं जवे अपि माने अपि पौरुषाऽधिकम् अजस्रचञ्चलैः खुराऽञ्चलैः क्षोदितमन्दुरोदरम् अश्वम् उपाहरन् ॥ ५७ ॥

व्याख्या—ततः = आदेशनाऽनन्तरम्, अमी = निदेशकारिणो जनाः, तस्य = नलस्य, विभूषितम् = अलङ्कृतं, सितं = श्वेतवर्णं, जवे अपि = वेगे अपि, माने अपि = प्रमाणे अपि, पौरुषाऽधिकं = पुरुषप्रमाणाऽतिरिक्तम्, एवं च अजस्रचञ्चलैः = निरन्तरचपलैः, खुराऽञ्चलैः = शफाऽग्रभागैः, क्षोदितमन्दुरोदरं = विदारितवाजिशालामध्यम्, अश्वं = हयम्, उपाहरन् = उपानीतवन्तः ॥ ५७ ॥

अनुवादः—तव आज्ञाकारी भृत्य अलङ्कृत, सफेद, वेग और प्रमाणमें भी

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरुषके प्रमाणसे अधिक तथा निरन्तर चलनेवाले खुरोंके अग्रभागोंसे घुड़शालके मध्यभागको विदारित करनेवाले घोड़ेको नलके पास ले आये ॥ ५७ ॥

टिप्पणी—विभूषितं = वि + भूष + क्तः (कर्ममें)। पौरुषाऽधिकं = पुरुषस्य भावः पौरुषं, पुरुष + अण्, युवादिगणमें पठित होनेसे अण्। जवके पक्षमें यह व्युत्पत्ति है। मानके पक्षमें—पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषं, "पुरुषहस्तिभ्यामण् च" इससे अण्। पौरुषात् अधिकः, तम् (पं० त०)। अजस्रचञ्चलैः = अजस्रं (यथा तथा) चञ्चलाः, तैः (सुप्सुपा०)। खुराऽञ्चलैः = खुराणाम् अञ्चलाः, तैः (ष० त०), क्षोदितमन्दुरोदरं = मन्दुराया उदरम् (ष० त०)। "वाजिशाला तु मन्दुरा।" इत्यमरः। क्षोदितं मन्दुरोदरं येन सः, तम् (बहु०)। उपाहरन् = उप-उपसर्गपूर्वक "हृञ् हरणे" धातुसे लङ् + झि। इस पद्यमें वृत्यनुप्रास और छेकाऽनुप्रासकी संसृष्टि अलङ्कार है ॥ ५७ ॥

> अथाऽन्तरेणाऽवटुगामिनाऽध्वना निशीथिनीनाथमहःसहोदरैः।
> निगालगाद्देवमणेरिवोत्थितैर्विराजितं केशरकेशरश्मिभिः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—अथ निशीथिनीनाथमहःसहोदरैः निगालगात् देवमणेः आन्तरेण अवटुगामिना अध्वना उत्थितैः इव केशरकेशरश्मिभिः विराजितम् ("तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह" इति चतुःषष्टितमश्लोकस्थैः पदैः सम्बन्धः) ॥ ५८ ॥

अथ अश्ववर्णनप्रसङ्गे सप्तभिः कुलकमाह अथेति।

व्याख्या—अथ = अश्वोपहाराऽनन्तरं, निशीथिनीनाथमहःसहोदरैः = चन्द्रकिरणसदृशैः, शुक्लैरिति भावः। निगालगात् = गलोद्देशस्थात्, देवमणेः = देवमणिनामकदक्षिणावर्तात्, आन्तरेण = कण्ठमध्यवर्तिना, अवटुगामिना = कृकाटिकापर्यन्तगतेन, अध्वना = मार्गेण, उत्थितैः इव = उद्गतैः इव, स्थितैरिति शेषः। तादृशैः केशरकेशरश्मिभिः = केशररूपचिकुरकिरणैः, विराजितं = शोभितम् (तं = तादृशं, हयम् = अश्वं, क्षितिपाकशासनः = भूमहेन्द्रः, सः = नलः आरुरोह = आरूढवान्, इति चतुःषष्टितमश्लोकस्थैः पदैः सन्बन्धः, एवं परत्राऽपि) ॥ ५८ ॥

अनुवादः—तब घोड़ेको लानेके अनन्तर (सफेद) गलेके निकटवर्ती देवमणिनामक दक्षिण आवर्तसे कण्ठके बीचमें रहनेवाले कृकाटिका तक गये हुए मार्गसे उठे हुएके समान चन्द्रकिरणोंके सदृश केशररूप केशोंकी किरणोंसे शोभित (उस घोड़ेके ऊपर नल सवार हुए) ॥ ५८ ॥

टिप्पणी—निशीथिनीनाथमहःसहोदरैः = निशीथः (अर्धरात्रः) अस्याः अस्तीति निशीथिनी (रात्रिः), निशीथ शब्दसे "अत इनि ठनौ" इस सूत्रसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इनि प्रत्यय और तदन्तसे स्त्रीत्वविवक्षामें "ऋन्नेभ्यो ङीप्" इस सूत्रसे ङीप्, निशीथ + इनि + ङीप्। "अर्धरात्रनिशीथौ द्वौ" इति "निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा।" इत्यमरः। निशीथिन्या नाथः (ष० त०), तस्य महांसि (ष० त०), "महश्चोत्सवतेजसोः" इत्यमरः। सह (समानम्) उदरं येषां ते सहोदराः (बहु०)। "वोपसर्जनस्य" इसके "स" भावकी विकल्पतासे एक पक्षमें न होनेसे यह रूप होता है। प्रायः सहोदर भाइयोंमें तुल्यरूपता होती है इसलिए यहाँपर 'सहोदर' शब्दका सदृश अर्थ लक्षित होता है। निशीथिनीनाथमहसां सहोदराः, तैः (ष० त०)। महस् और मह अकारान्त भी शब्द देखा जाता है। निगालगात् = निगालं गच्छतीति, निगालगः, तस्मात्, निगाल + गम् + ड + ङसिः, देवमणेः = "देवमणिः शिवेश्वस्य कण्ठावर्ते च कौस्तुभे।" इति विश्वः। आन्तरेण = अन्तरे भवः आन्तरः, तेन, अन्तर + अण् + टा। अवटुगामिना = अवटुं गच्छतीति तच्छीलः, तेन अवटु + गम् + णिनिः + टा। "अवटुर्घाटा कृकाटिका" इत्यमरः। उत्थितैः = उद् + स्था + क्तः + भिस्। केशरकेशरश्मिभिः = केशरा एव केशाः (रूपक०)। घोड़के स्कन्धके वालोंको "केशर" कहते हैं। त एव रश्मयः, तैः (रूपक०)। विराजितं = वि + राज् + क्तः। इस पद्यमें द्वितीय चरणमें उपमा, तृतीय चरणमें उत्प्रेक्षा और चतुर्थ चरणमें रूपक इस प्रकार इन तीनों अलङ्कारोंकी निरपेक्ष रूपसे स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है॥ ५८॥

अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैरुपास्यमानं चरणेषु रेणुभिः।
रयप्रकर्षाऽध्ययनाऽर्थमागतैर्जनस्य चेतोभिरिवाऽणिमाङ्कितैः॥ ५९॥

अन्वयः—रयप्रकर्षाऽध्ययनाऽर्थम् आगतैः अणिमाङ्कितैः जनस्य चेतोभिः इव अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः रेणुभिः चरणेषु उपास्यमानम् इव (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)॥ ५९॥

व्याख्या—रयप्रकर्षाऽध्ययनार्थं = वेगाऽतिशयपठनाऽर्थम्, आगतैः = आयातैः, अणिमाङ्कितैः = अणुभावचिह्नितैः, जनस्य = लोकस्य, चेतोभिः इव = मनोभिः इव "अयौगपद्याज्ज्ञानानां तस्याऽणुत्वमिहेष्यते।" इति नैयायिकसिद्धान्ते मनसोऽणु परिमाणत्वं स्वीकृतम्। अजस्रभूमीतटकुट्टनोद्गतैः = निरन्तरधरातलविदारणोत्थितैः, रेणुभिः = धूलिभिः, चरणेषु = पादेषु, उपास्यमानम् इव = सेव्यमानम् इव (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह)। यथा शिष्यो गुरुचरणयोरुपास्ते तथैवाऽणुपरिमाणैर्जनमनोभिश्चरणेषूपास्यमानमिव तं हयं राजाऽऽरूढवानिति भावः॥ ५९॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—वेगके उत्कर्षके अध्ययनके लिए आये हुए अणुपरिमाणवाले लोगों-के मनोंके तुल्य, लगातार जमीनको विदारण करनेसे उत्पन्न धूलियोंसे चरणोंमें सेवित (उस घोड़के ऊपर राजाने आरोहण किया) ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—रयप्रकर्षाऽध्ययनाऽर्थम् = रयस्य प्रकर्षः (ष० त०) "रंहस्तरसी तु रयः स्मयः जवः" इत्यमरः। रयप्रकर्षस्य अध्ययनम् (ष० त०)। रय-प्रकर्षाऽध्ययनाय इदं, "चतुर्थी तदर्थार्थवलिहितसुखरक्षितैः" इस सूत्रसे "अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्" इस वार्तिकके सहकारसे चतुर्थी-तत्पुरुष, यह "आगतैः" इसका क्रियाविशेषण है। आगतैः = आङ् + गम् + क्तः + भिस्, अणिमाङ्कितैः = अणोर्भावः अणिमा, "अणु" शब्दसे "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" इस सूत्रसे इमनिच्। अणिम्ना अङ्कितानि, तैः (तृ० त०)। जनस्य = "जात्या-ख्यायामेकस्मिन् बहुवचनमन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे जातिमें एकवचन। अजस्रभूमी-तटकुट्टनोद्गतैः = भूम्याः तटम् (ष० त०)। 'भूमि' शब्दसे "कृदिकारादक्तिनः" इस गणसूत्रसे ङीष्। भूमीतटस्य कुट्टनम् (ष० त०) अजस्रं (यथा तथा) भूमीतटकुट्टनम् (सुप्सुपा०)। अजस्रभूमीतटकुट्टनेन उत्थिताः, तैः (तृ० त०)। उपास्यमानम् = उपास्यत इति, उप + आस् + लट् (कर्ममें) + यक् + शानच् + अम्। जैसे अध्ययनके लिए शिष्य गुरुचरणोंमें उपासना करते हैं वैसे ही अतिशय वेगके अध्ययनके लिए आये हुए अणुपरिमाण मनुष्योंके मनोंके समान धूलियोंसे चरणोंमें उपासना किये गये घोड़े पर राजा आरूढ हुए यह भाव है। नलका अश्व मनके समान वेगवाला है यह अर्थ व्यङ्ग्य होता है। इस पद्यमें चित्तोंमें शिष्य-व्यवहारका समारोप होनेसे समासोक्ति अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"समासोक्तिः समैर्यत्र कार्यलिङ्गविशेषणैः।
व्यवहारसमारोपः प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुनः॥" सा० द० १०-७४।

"चेतोभिरिव" यहाँपर उत्प्रेक्षा है, इन दोनोंका एकाश्रयाऽनुप्रवेशरूप सङ्कर अलङ्कार है। उसका लक्षण है—

"अङ्गाऽङ्गित्वेऽलङ्कृतीनां तद्वदेकाश्रयस्थितौ।
सन्दिग्धत्वे च भवति सङ्करस्त्रिविधः पुनः॥" सा० द० १०-१२८।

चलाचलप्रोथतया महीभृते स्ववेगदर्पानिव वक्तुमुत्सुकम्।
अलं गिरा, वेद किलाऽयमाशयं स्वयं हयस्येति च मौनमास्थितम्॥ ६०॥

अन्वयः—चलाचलप्रोथतया महीभृते स्ववेगदर्पान् वक्तुम् उत्सुकम् इव, अयं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वयं हयस्य आशयं वेद किल; "गिरा अलम्" इति मौनम् आस्थितं च (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह) ॥ ६० ॥

व्याख्या—चलाचलप्रोथतया = अतिचञ्चलनासिकत्वेन, महीभृते = राज्ञे, नलायेत्यर्थः । स्ववेगदर्पान् = आत्मजवगर्वान्, वक्तुं = प्रतिपादयितुम्, उत्सुकम् इव = उत्कण्ठितम् इव, तर्हि किमर्थं स्ववेगदर्पो न प्रतिपादित इत्याशङ्क्याह—अलमिति । अयं = महीभृत्, नल इत्यर्थः । स्वयम् = आत्मना एव, हयस्य = अश्वस्य, आशयम् = अभिप्रायं, वेद = जानाति, किल = निश्चयेन, अतः गिरा = वाण्या, वेगदर्पप्रकाशनकारिण्येति शेषः । अलं = पर्याप्तं, राज्ञः स्वयमभिज्ञत्वाद् गिरा साध्यं नाऽस्तीति भावः । इति = अनेन कारणेन, मौनं = तूष्णीकत्वम्, आस्थितं च = आश्रितं च (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह) ॥ ६० ॥

अनुवादः—अत्यन्त चञ्चल नाक होनेसे राजाको अपने वेगके दर्पको कहनेमें उत्कण्ठितके समान परन्तु ये (राजा) स्वयम् घोड़का अभिप्राय जानते हैं, वाणीसे क्या ? इस कारण मौनको धारण करनेवाले (घोड़के ऊपर राजा आरूढ हुए) ॥ ६० ॥

टिप्पणी—चलाचलप्रोथतया = चलनशीलं चलाचलं, 'चल' धातुसे "चरिचलिपतिवदीनां वा द्वित्वमच्याक् चाभ्यासस्येति वक्तव्यम्" इस वार्तिकसे अच् प्रत्यय, विकल्पसे द्वित्व और आक् आगम । "चलनं कम्पनं कम्प्रं चलं लोलं चलाचलम् ।" इत्यमरः । चलाचलं प्रोथं यस्य सः (बहु०) । "घोणा तु प्रोथमस्त्रियाम्" इत्यमरः । चलाचलप्रोथस्य भावश्चलाचलप्रोथता, तया, चलाचलप्रोथ + तल् + टाप् + टा । महीभृते=महीं बिभर्तीति महीभृत्, तस्मै, मही + भृ + क्विप् + ङे । "क्रियया यमभिप्रैति सोऽपि सम्प्रदानम्" इससे संप्रदानसंज्ञा होकर चतुर्थी । स्ववेगदर्पान्=स्वस्य वेगः (ष० त०), तस्य दर्पाः, तान् (ष० त०) । वक्तुं = वच् + तुमुन् । आशयम् = "अभिप्रायश्छन्द आशयः" इत्यमरः । वेद = "विद ज्ञाने" धातुसे लट्, "विदो लटो वा" इस सूत्रसे तिप्के स्थानमें णल् । गिरा = "गम्यमानाऽपि क्रिया कारकविभक्तौ प्रयोजिका" इससे तृतीया । मौनं= मुनेर्भावो मौनम्, तत्, मुनि + अण् + अम् । आस्थितम् = आङ् + स्था + क्तः + अम् । इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें वाच्या उत्प्रेक्षा ओर उत्तरार्द्धमें प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा है, इस प्रकार दो उत्प्रेक्षाओंकी निरपेक्षतासे स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है । नलकी अश्वशास्त्रमें अभिज्ञता महाभारतके वनपर्वमें उल्लिखित है ॥ ६० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महारथस्याऽध्वनि चक्रवर्तिनः पराऽनपेक्षोद्वहनाद्यशःसितम् ।
रदाऽवदातांऽशुमिषादनीदृशां हसन्तमन्तर्बलमर्वतां रवेः ॥ ६१ ॥

अन्वयः—अध्वनि महारथस्य चक्रवर्तिनः पराऽनपेक्षोद्वहनात् यशःसितं रदाऽवदातांऽशुमिषात् अनीदृशां रवेः अर्वतां बलम् अन्तःहसन्तम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह) ॥ ६१ ॥

व्याख्या —अध्वनि = मार्गे, महारथस्य = बृहत्स्यन्दनस्य, अयुतयोधिनो वा, चक्रवर्तिनः = सार्वभौमस्य, नलस्येति भावः । पराऽनपेक्षोद्वहनात् = अन्याऽश्वाऽपेक्षाऽभावेन वहनात्, एकाकित्वेन धारणादिति भावः । यशःसितं = कीर्तिशुभ्रं, रदाऽवदातांऽशुमिषात् = दन्तोज्ज्वलकिरणच्छलात्, अनीदृशाम् = अनेतादृशानां, पराऽनपेक्षोद्वहनाऽसमर्थानामिति भावः । रवेः = सूर्यस्य, अर्वताम् = अश्वानां, सप्तसंख्यकानामिति भावः । बलं = शक्तिम्, अन्तः = अन्तःकरणे, हसन्तम् = उपहसन्तम् इव स्थितम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह) ॥ ६१ ॥

अनुवादः—मार्गमें बड़े रथवाले अथवा दश हजार धनुर्धारियोंसे युद्ध करनेवाले चक्रवर्ती महाराज नलको दूसरे घोड़ोंकी अपेक्षा न रखकर ढोनेसे कीर्तिसे शुभ्र, दाँतोंकी उज्ज्वल किरणोंके बहानेसे अन्य घोड़ोंकी अपेक्षाके विना ढोनेमें असमर्थ सूर्यके (सात) घोड़ोंके बलको मन ही मन उपहास करते हुए (उस घोड़के ऊपर महाराज नलने आरोहण किया) ॥ ६१ ॥

टिप्पणी—महारथस्य = महान् रथो यस्य स महारथः, तस्य (बहु०), "आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः" इस सूत्रसे "महत्" शब्दका आत्व । महारथ शब्दका लक्षण है—

"एको दश सहस्राणि योधयेद्यस्तु धन्विनाम् ।
शस्त्रशास्त्रप्रवीणश्च विज्ञेयः स महारथः ॥"

चक्रवर्तिनः = चक्रे (राजमण्डले) मुख्यत्वेन वर्तते तच्छीलः चक्रवर्ती, तस्य, चक्र + वृत् + णिनि + ङस् । "चक्रवर्ती सार्वभौमः" इत्यमरः । पराऽनपेक्षोद्वहनात् = न अपेक्षा अनपेक्षा, (नञ्त०) । परेषाम् अनपेक्षा (ष० त०) । पराऽनपेक्षया उद्वहनं, तस्मात् (तृ० त०) । यशःसितं = यशसा सितः, तम् (तृ० त०) । रदाऽवदातांऽशुमिषात् = अवदाताश्च ते अंशवः (क० धा०), "अवदातः सितो गौरोऽवलक्षो धवलोऽर्जुनः ।" इत्यमरः । रदानाम् अवदातांऽशवः (ष० त०) । रदाऽवदातांऽशूनां मिषं, तस्मात् (ष० त०) । अनीदृशां = न ईदृशः, तेषाम् (नञ्०) । अर्वताम् = "अर्वणस्त्रसावनञः" इस सूत्रसे "तृ"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्तादेश । "वाजिवाहार्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः ।" इत्यमरः । सूर्यके सात घोड़े हैं, जैसे कि—

"जयोऽजयश्च विजयो जितप्राणो जितश्रमः ।
मनोजवो जितक्रोधो वाजिनः सप्त कीर्तिताः ॥"

(भविष्योत्तरपुराण, आदित्यहृदयस्तोत्र) ।

"हरितः सूर्यस्य" निघण्टुकी इस उक्तिके अनुसार सूर्यके घोड़ोंका वर्ण हरा है । बलम् = "हसे हसने" धातु अकर्मक है, अतः, "बलम्" इस पदके अनन्तर "उद्दिश्य" इस पदका ऊह करना चाहिए । सूर्यके घोड़ोंके बलको उद्देश्य करके भीतर हँसनेवाले ऐसा अर्थ करना चाहिए । हसन्तं = हस + लट् + शतृ + अम् । इस पद्यमें अपह्नुतिके साथ "हसन्तम्" इस पदमें "इव" के गम्यमान होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा है और सूर्यके घोड़ोंसे नलके घोड़ेका उत्कर्ष प्रतीत होनेसे व्यतिरेक अलङ्कार है, इस प्रकार इनका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ६१ ॥

सितत्विषश्चञ्चलतामुपेयुषो मिषेण पुच्छस्य च केसरस्य च ।
स्फुटां चलच्चामरयुग्मचिह्नकैरनिह्नुवानं निजवाजिराजताम् ॥ ६२ ॥

अन्वयः—सितत्विषः चञ्चलताम् उपेयुषः पुच्छस्य केसरस्य च मिषेण चलच्चामरयुग्मचिह्नकैः स्फुटां निजवाजिराजताम् अनिह्नुवानम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह) ॥ ६२ ॥

व्याख्या—सितत्विषः = शुक्लकान्तियुक्तस्य, चञ्चलतां = चपलताम्, उपेयुषः = प्राप्तवतः, पुच्छस्य = लाङ्गूलस्य, केसरस्य च = ग्रीवावालसमूहस्य च, मिषेण = छलेन, चलच्चामरयुग्मचिह्नकैः = वलत्प्रकीर्णकयुगललक्षणैः, स्फुटां = प्रसिद्धां, निजवाजिराजताम् = स्वहयराजताम्, अनिह्नुवानम् = अनिषेधन्तं, प्रकटयन्तमिति भावः । (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह) ॥ ६२ ॥

अनुवादः—सफेद कान्तिवाले, चञ्चलभावको प्राप्त करनेवाले पूछ और कन्धेके बालोंके छलसे चलते हुए दो चँवरोंके चिह्नोंसे प्रसिद्ध अपने अश्वराजत्वको प्रकट करते हुए (उस घोड़ेपर राजा नलने आरोहण किया) ॥ ६२ ॥

टिप्पणी—सितत्विषः = सिता त्विट् यस्य, तस्य (बहु०) । चञ्चलतां = चञ्चल + तल् + टाप् + अम् । उपेयुषः = उप + इण् + क्वसुः + ङस् । चलच्चामरयुग्मचिह्नकैः = चलत इति चलती । चल् + लट् (शतृ) + औ । चलती च ते चामरे (क० धा०), "चामरं तु प्रकीर्णकम्" इत्यमरः । चलच्चामरयोर्युग्मम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ष० त०)। चिह्नानि एव चिह्नकानि, "स्वार्थमें क प्रत्यय। चलच्चामरयुग्म-योश्चिह्नकानि, तैः (ष० त०)। निजवाजिराजतां = वाजिनां राजा वाजिराजः (ष० त०), "राजाऽहःसखिभ्यष्टच्" इससे समासाऽन्त टच्। वाजिराजस्य भावो वाजिराजता, वाजिराज + तल् + टाप्। निजा चाऽसौ वाजिराजता, ताम् (क० धा०)। अनिह्नुवानं = निह्नुत इति निह्नुवानः, नि + ह्नुङ् + लट् (शानच्), न निह्नुवानः, तम् (नञ्०) इस पद्यमें अपह्नुति और उत्प्रेक्षा इन दोनोंकी संसृष्टि है ॥ ६२ ॥

अपि द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे मुखाऽनुषक्तायतवल्गुवल्गया।
उपेयिवांसं प्रतिमल्लतां रयस्मये जितस्य प्रसभं गरुत्मतः ॥ ६३ ॥

अन्वयः—रयस्मये प्रसभं जितस्य गरुत्मतः द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे अपि मुखाऽनुषक्तायतवल्गुवल्गया प्रतिमल्लताम् उपेयिवांसम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह) ॥ ६३ ॥

व्याख्या—रयस्मये = वेगाहङ्कारे, प्रसभं = बलात्कारेण, जितस्य = पराजितस्य, गरुत्मतः = गरुडस्य, द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे अपि = सर्पभक्षणपुरुषाऽर्थेऽपि, मुखाऽनुषक्तायतवल्गुवल्गया = आननलग्नदीर्घमनोहररज्ज्वा, प्रतिमल्लतां = प्रतिद्वन्द्विताम्, उपेयिवांसं=प्राप्तवन्तम् (तं हयं क्षितिपाकशासनः स आरुरोह) ॥६३॥

अनुवादः—वेगके अहङ्कारमें बलपूर्वक जीते गये गरुडके सर्पभक्षणरूप पुरुषाऽर्थमें भी मुखमें लगी हुई लम्बी और सुन्दर लगामसे प्रतिद्वन्द्विभावको प्राप्त करनेवाले (उस घोड़ेपर राजा नलने आरोहण किया) ॥ ६३ ॥

टिप्पणी—रयस्मये = रयस्य स्मयः, तस्मिन् (ष० त०)। "दर्पोऽवलेपोऽवष्टम्भश्चित्तोद्रेकः स्मयो मदः।" इत्यमरः। प्रसभम् = यह क्रियाविशेषण है। गरुत्मतः = गरुतः सन्ति यस्य स गरुत्मान्, तस्य (गरुत् + मतुप् + ङस्)। यवादिगणमें 'गरुत्' शब्दका पाठ होनेसे "झयः" इस सूत्रसे वत्व नहीं हुआ। यह शब्द योगरूढ है, "गरुत्मान्गरुडस्तार्क्ष्यो वैनतेयः खगेश्वरः।" इत्यमरः। द्विजिह्वाऽभ्यवहारपौरुषे = द्वे जिह्वे येषां ते द्विजिह्वाः (बहु०)। "द्विजिह्वौ सर्पसूचकौ" इत्यमरः। द्विजिह्वानाम् अभ्यवहारः (ष० त०), स एव पौरुषं, तस्मिन् (रूपक०)। मुखाऽनुषक्तायतवल्गुवल्गया = मुखे अनुषक्ता (स० त०)। आयता चाऽसौ वल्गुः (क० धा०)। आयतवल्गुश्चाऽसौ वल्गा (क० धा०)। मुखाऽनुषक्ता चाऽसौ आयतवल्गुवल्गा, तया (क० धा०)। प्रतिमल्लतां = प्रतिकूलो मल्लः प्रतिमल्लः, "कुगतिप्रादयः" इस सूत्रसे समास। प्रतिमल्लस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भावः प्रतिमल्लता, ताम्। प्रतिमल्ल + तल् + टाप् + अम् । उपेयिवांसम् = उप + इण् + क्वसुः + अम्। इस पद्यमें गरुडके जयका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति और "प्रतिमल्लताम् उपेयिवांसम्" यहाँपर सादृश्यका आक्षेप होनेसे उपमा इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी निरपेक्षतया स्थिति होनेसे संसृष्टि है॥ ६३॥

स सिन्धुजं शीतमहःसहोदरं हरन्तमुच्चैःश्रवसः श्रियं हयम्।
जिताऽखिलक्ष्माभृदनल्पलोचनस्तमारुरोह क्षितिपाकशासनः॥ ६४॥

अन्वयः—जिताऽखिलक्ष्माभृत् अनल्पलोचनः क्षितिपाकशासनः सः सिन्धुजं शीतमहःसहोदरम् उच्चैःश्रवसः श्रियं हरन्तं तं हयम् आरुरोह॥ ६४॥

व्याख्या—जिताऽखिलक्ष्माभृत् = वशीकृतसकलभूभृत्, अनल्पलोचनः=विशाल-नयनः, क्षितिपाकशासनः = महीमहेन्द्रः, सः = नलः, सिन्धुजं = सिन्धुदेशोत्पन्नं समुद्रोत्पन्नं वा, शीतमहःसहोदरं चन्द्रसहोदरं, चन्द्रसदृशं शुक्लवर्णमित्यर्थो वा, एवं च उच्चैःश्रवसः = इन्द्रहयस्य, श्रियं = शोभां, हरन्तं = गृह्णन्तं, तं = पूर्वोक्तं, हयम् = अश्वम्, आरुरोह = आरूढवान्॥ ६४॥

अनुवादः—सम्पूर्ण राजाओंको जीतनेवाले, दीर्घ नेत्रोंवाले, पृथ्वीके इन्द्र महाराज नल सिन्धुदेशमें वा समुद्रमें उत्पन्न चन्द्रमाके सदृश (श्वेत वर्णवाले) और इन्द्रके अश्व उच्चैःश्रवाकी शोभाको हरण करनेवाले ऐसे घोड़ेपर आरूढ़ हुए॥ ६४॥

टिप्पणी—जिताऽखिलक्ष्माभृत् = क्ष्मां बिभ्रतीति क्ष्माभृतः क्ष्मा + भृ + क्विप् + जस् (उपपद०)। जिताः अखिलाः क्ष्माभृतः (राजानः) येन, सः (बहु०)। अनल्पलोचनः = न अल्पे अनल्पे (नञ्०)। अनल्पे लोचने यस्य सः (बहु०), क्षितिपाकशासनः = शास्तीति शासनः, "शासु अनुशिष्टौ" धातुसे "कृत्यल्युटो बहुलम्" इस सूत्रमें बहुलग्रहण करनेके सामर्थ्यसे कर्तामें ल्युट्। पाकस्य (दैत्य-भेदस्य) शासनः (ष० त०)। "इन्द्रो मरुत्वान्मघवा बिडौजाः पाकशासनः।" इत्यमरः। क्षितौ पाकशासनः (स० त०)। पूर्वोक्त दो पदोंसे इन्द्र और नलका उपमानोपमेयभाव व्यङ्ग्य होता है। इन्द्रके पक्षमें "जिताऽखिलक्ष्माभृत्" इस पदमें विद्यमान 'क्ष्माभृत्' पदसे पर्वतरूप अर्थ भी व्यङ्ग्य होता है। इन्द्रने सब पर्वतोंके पक्षोंको काट दिया था। "अनल्पलोचनः" इस पदमें इन्द्रके पक्षमें न अल्पानि अनल्पानि (नञ्०), प्रचुराणि इत्यर्थः, अनल्पानि लोचनानि यस्य सः (बहु०)। अनल्पलोचन अर्थात् हजार नेत्रोंवाले इन्द्र यह अर्थ है। सिन्धुजं = सिन्धौ देशे जायते इति सिन्धुजः, तम्, "सप्तम्यां जनेर्डः" इस सूत्रसे सिन्धु-उपपदपूर्वक जन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातुसे ड प्रत्यय। उच्चैःश्रवाका भी यह पद विशेषण हो सकता है। उस पक्षमें सिन्धौ (समुद्रे) जायत इति। शीतमहःसहोदरं = शीतं महः (कान्तिः) यस्य सः शीतमहाः (बहु०), शीतमहसः सहोदरः, तम् (ष० त०)। चन्द्रमा और इन्द्रका घोड़ा दोनों ही समुद्रसे उत्पन्न हैं, इसलिए वे सहोदर भाई हो गये हैं, यह तात्पर्य है। हरन्तं = हृञ् + लट् (शतृ) + अम्। आरुरोह = आङ् + रुह् + लिट् + तिप्। इस पद्यमें श्लेष, उपमा और "श्रियं हरन्तम्" इस अंशमें अन्यकी श्री (शोभा) को अन्य कैसे हरण करेगा इस प्रकार सादृश्यका बोधन करनेसे निदर्शना अलङ्कार है, अतः संसृष्टि है। अट्ठावनवें श्लोकसे चौसठवें श्लोक तक कुल सात श्लोकोंमें परस्पर सम्बन्ध होनेसे कुलक हो गया है, जैसे कि—

"छन्दोबद्धपदं पद्यं, तेनैकेन च मुक्तकम्।
द्वाभ्यां तु युग्मकं, सन्दानितकं त्रिभिरिष्यते॥
कलापकं चतुर्भिश्च, पञ्चभिः कुलकं मतम्॥" सा० द० ६-३०२

अर्थात् छन्दोबद्ध पदवालोंको "पद्य" कहते हैं। दूसरे पद्यसे असम्बद्ध एक पद्यको "मुक्तक", दो पदोंमें परस्पर सम्बन्ध होनेसे "युग्मक" तीन पद्योंमें "सन्दानितक" कहते हैं। सन्दानितकको ही कोई विशेषक और कोई "तिलक" भी कहते हैं। चार श्लोकोंमें परस्पर सम्बन्ध रहनेसे "कलापक" और पाँच श्लोकोंमें वा उनसे अधिक श्लोकोंमें परस्पर सम्बन्ध रहनेसे "कुलक" कहते हैं॥ ६४॥

निजा मयूखा इव तीक्ष्णदीधितिं स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपङ्कजम्।
तमश्ववारा जवनाऽश्वयायिनं प्रकाशरूपा मनुजेशमन्वयुः॥६५॥

अन्वयः—प्रकाशरूपा निजा मयूखाः स्फुटाऽरविन्दाङ्कितपाणिपङ्कजं जवनाऽश्वयायिनं तीक्ष्णदीधितम् इव प्रकाशरूपा निजा अश्ववाराः स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपङ्कजं जवनाऽश्वयायिनं तं मनुजेशम् अन्वयुः॥ ६५॥

व्याख्या—प्रकाशरूपाः = द्योतस्वरूपाः, निजाः = स्वकीयाः, मयूखाः = किरणाः, स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपल्लवं = विकसितरक्तकमलचिह्नितकरकमलं, जवनाऽश्वयायिनं = वेगयुक्तसप्तहयगामिनं, तीक्ष्णदीधितिम् इव = सूर्यम् इव, प्रकाशरूपाः = प्रसिद्धसौन्दर्याः, निजाः = आत्मीयाः, अश्ववाराः = हयारोहाः, स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपङ्कजं = व्यक्तरेखारूपकमलचिह्नितकरकमलं, जवनाऽश्वयायिनं = वेगवद्धयगामिनं, तं = पूर्वोक्तं, मनुजेशं = नरपतिं, नलमित्यर्थः। अन्वयुः = अनुगतवन्तः॥ ६५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—प्रकाश स्वरूपवाले अपने किरणसमूह जैसे विकसित रक्तकमलोंसे चिह्नित करकमलवाले तथा वेगवाले सात घोड़ोंसे गमन करनेवाले सूर्यका अनुगमन करते हैं उसी प्रकार प्रसिद्ध सौन्दर्यवाले नलके घुड़सवारोंने स्पष्ट रेखारूप कमलोंसे चिह्नित करकमलोंवाले तथा वेगवाले घोड़ेसे यात्रा करनेवाले राजा नलका अनुगमन किया ॥ ६५ ॥

टिप्पणी—प्रकाशरूपाः = प्रकाशः रूपं येषां ते (बहु०) । "प्रकाशो द्योत आतपः" इत्यमरः । स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितपाणिपल्लवं = स्फुटे च ते अरविन्दे (क० धा०), ताभ्याम् अङ्कितम् (तृ० त०), पाणिः पङ्कजम् इव, पाणिपल्लवम्, "उपमितं व्याघ्रादिभिः, सामान्याऽप्रयोगे" इससे समास । स्फुटाऽरविन्दाऽङ्कितं पाणिपङ्कजं यस्य, तम् (बहु०) । मनुजेश पक्षमें—स्फुटानि च तानि अरविन्दानि (क० धा०) । और अंश पहलेके समान । जवनाऽश्वयायिनं = जवशीलाः जवनाः, "जु" यह सौत्र (सूत्रपठित) धातु गति और वेग अर्थमें है, उससे "जुचङ्क्रम्यदन्द्रम्यसृगृधिज्वलशुचलषपतपदः:" इस सूत्रसे युच् प्रत्यय, "जवनस्तु जवाऽधिकः" इत्यमरः । जवनाश्च ते अश्वाः (क० धा०), तैः यातीति तच्छीलः, तम्, जवनाऽश्व + या + णिनिः + तम् (उपपद०) । मनुजेशपक्षमें—जवशीलः जवनः, स चाऽसौ अश्वः (क० धा०) । और पहलेके तुल्य । तीक्ष्णदीधितिं = तीक्ष्णा दीधितिर्यस्य, तम् (बहु०) । "भानुः करो मरीचिः स्त्रीपुंसयोर्दीधितिः स्त्रियाम् ।" इत्यमरः । प्रकाशरूपाः = प्रकाशं रूपं येषां ते (बहु०) । अश्ववाराः = अश्वान् वृण्वत इति, अश्व-उपपदपूर्वक "वृञ् वरणे" धातुसे "कर्मण्यण्" इस सूत्रसे अण् (उपपद०) । इसी 'अश्ववार' शब्दका अपभ्रंश हिन्दी भाषाका "सवार" शब्द है । मनुजेशम् = मनौ जाता मनुजाः, मनु + जन् + डः (उपपद०) । मनुजानाम् ईशः, तम् (ष० त०) । अन्वयुः = अनु-उपसर्गपूर्वक "या प्रापणे" धातुसे लङ्के 'झि' के स्थानमें "लङः शाकटायनस्यैव" इस सूत्रसे विकल्पसे जुस् आदेश । एक पक्षमें "अन्वयान्" ऐसा रूप भी बनता है । इस पद्यमें पूर्णोपमा अलङ्कार है ॥ ६५ ॥

चलन्नलङ्कृत्य महारयं हयं स वाहवाहोचितवेषपेशलः ।
प्रमोदनिःष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मभिर्व्यलोकि लोकैर्नगरालयैर्नलः ॥ ६६ ॥

अन्वयः—वाहवाहोचितवेषपेशलः स नलः महारयं हयम् अलङ्कृत्य चलन् प्रमोदनिष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मभिः नगरालयैः लोकैः व्यलोकि ॥ ६६ ॥

व्याख्या—वाहवाहोचितवेषपेशलः=अश्वारोहणयोग्यनेपथ्यसुन्दरः सः=पूर्वोक्तः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नलः = नैषध्यः, महारयम् = अतिशयजवं, हयम् = अश्वम्, अलङ्कृत्य = भूषयित्वा, चलन् = गच्छन्, भूषणीभूय गच्छन्निति भावः, प्रमोदनिष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मभिः = हर्षनिश्चलतरनेत्रलोमभिः, नगराऽऽलयैः = पुरनिवासिभिः, लोकैः = जनैः, व्यलोकि = विलोकितः, विस्मयहर्षाभ्यामिति शेषः ॥ ६६ ॥

अनुवादः—घुड़सवारीके योग्य वेशसे सुन्दर और बड़े वेगवाले घोड़ेको अलङ्कृत कर चलते हुए नलको हर्षसे निश्चेष्ट नेत्रलोमवाले नगरवासी लोगोंने देखा ॥ ६६ ॥

टिप्पणी—वाहवाहोचितवेषपेशलः = उह्यते अनेन इति वाहः, "वह प्रापणे" धातुसे "हलश्च" इस सूत्रसे करणमें घञ् । "वाजिवाहाऽर्वगन्धर्वहयसैन्धवसप्तयः ।" इत्यमरः । वहनं वाहः, "वह" धातुसे "भावे" सूत्रसे भावमें घञ् । वाहस्य वाहः (ष० त०), तस्मिन् उचितः (स० त०) । वाहवाहोचितश्चाऽसौ वेषः (क० धा०), तेन पेशलः (तृ० त०) । "चारौ दक्षे च पेशलः" इत्यमरः । महारयं = महान् रयो यस्य सः महारयः, तम् (बहु०) । अलङ्कृत्य = अलं + कृ + क्त्वा (ल्यप्) । चलन् = चल + लट् (शतृ) । प्रमोदनिष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्मभिः = निर्गतः स्पन्दो येभ्यस्तानि निष्पन्दानि (बहु०) । अतिशयेन निष्पन्दानि निष्पन्दतराणि, 'निष्पन्द' शब्दसे "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इस सूत्रसे तरप् प्रत्यय । अक्ष्णोः पक्ष्माणि (ष० त०) । निष्पन्दतराणि अक्षिपक्ष्माणि येषां ते निष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्माणः (बहु०) । प्रमोदेन निष्पन्दतराऽक्षिपक्ष्माणः, तैः (तृ० त०) । नगराऽऽलयैः = नगाः सन्ति अस्मिन्निति नगरम्, 'नग' शब्दसे "नगपांसुपाण्डुभ्यश्च" इससे र प्रत्यय । नगरम् आलयो येषां ते, तैः (बहु०) । व्यलोकि = वि-उपसर्गपूर्वक "लोकृ दर्शने" धातुसे लुङ् + त (कर्ममें) इस पद्यमें वृत्यनुप्रास अलङ्कार है ॥ ६६ ॥

क्षणादथैष क्षणदापतिप्रभः प्रभञ्जनाऽध्येयजवेन वाजिना ।
सहैव ताभिर्जनदृष्टिवृष्टिभिर्बहिः पुरोऽभूत्पुरुहूतपौरुषः ॥ ६७ ॥

अन्वयः—अथ क्षणदापतिप्रभः पुरुहूतपौरुषः एषः प्रभञ्जनाऽध्येयजवेन वाजिना क्षणात् ताभिः, जनदृष्टिवृष्टिभिः सह एव पुरः बहिः अभूत् ॥ ६७ ॥

व्याख्या—अथ = लोकविलोकनाऽनन्तरं, क्षणदापतिप्रभः = चन्द्रसदृशः, सुन्दर इत्यर्थः, पुरुहूतपौरुषः = इन्द्रसमपुरुषाऽर्थयुक्तः, एषः = अयं, नल इत्यर्थः । प्रभञ्जनाऽध्येयजवेन = वायुशिक्षणीयवेगेन, वाजिना = अश्वेन, क्षणात् = अल्प-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालात्, ताभिः = पूर्वोक्ताभिः, जनदृष्टिवृष्टिभिः = लोकदृष्टिपातैः, सह एव = समम् एव, पुरः = नगरात् = वहिः = बहिर्गतः, अभूत् = अवर्तिष्ट ॥ ६७ ॥

अनुवादः—अनन्तर चन्द्रमाके सदृश कान्तिसे सम्पन्न, इन्द्रके समान पराक्रमी नल वायुसे पढ़नेके योग्य वेगवाले घोड़ेपर आरूढ होकर अल्प क्षणमें ही जनोंके दृष्टिपातोंके साथ ही शहरसे वाहर हो गये ॥ ६७ ॥

टिप्पणी—क्षणदापतिप्रभः = क्षणं ददातीति क्षणदा, क्षण-उपपदपूर्वक "डुदाञ् दाने" धातुसे "आतोऽनुपसर्गे कः" इस सूत्रसे क प्रत्यय और टाप्। (उपपद०)। "निशा निशीथिनी रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपा।" इत्यमरः। क्षणदायाः पतिः (ष० त०)। क्षणदापतेरिव प्रभा (कान्तिः) यस्य सः (व्यधिकरणबहु०)। पुरुहूतपौरुषः = पुरुभिः (बहुभिः) हूतः (आकारितः), इति पुरुहूतः (तृ० त०) "पुरुहूतः पुरन्दरः" इत्यमरः। प्रभञ्जनाऽध्येयजवेन = अध्येयः जवः यस्य सः (बहु०) प्रभञ्जनेन अध्येयजवः, तेन (तृ० त०)। वाजिना = बहिर्भवन क्रियामें "साधकतमं करणम्" इस सूत्रसे करणसंज्ञा होकर तृतीया। जनदृष्टिवृष्टिभिः = दृष्टीनां वृष्टयः (ष० त०)। जनानां दृष्टिवृष्टयः, ताभिः (ष० त०)। "सह" पदके योगमें तृतीया। पुरः = "अपपरिवहिरञ्चवः पञ्चम्या" इस सूत्रमें पञ्चमी समासका विधान होनेसे पञ्चमी। अभूत् = भू + लुङ् + तिप्। इस पद्यमें "क्षणदापतिप्रभः" "पुरुहूतपौरुषः" इन दो स्थलोंमें उपमा और अश्ववेगका प्रभञ्जनसे अध्येयजवत्वका सम्वन्ध न होकर भी सम्वन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति इन दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ ६७ ॥

ततः प्रतीच्छ प्रहरेति भाषिणी परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे।
मृषामृधं सादिवले कुतूहलान्नलस्य नासीरगते वितेनतुः ॥ ६८ ॥

अन्वयः—ततः "प्रतीच्छ प्रहर" इति भाषिणी परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे नलस्य नासीरगते सादिवले कुतूहलात् मृषामृधं वितेनतुः ॥ ६८ ॥

व्याख्या—ततः = पुरादवहिर्गमनाऽन्तरं, प्रतीच्छ = गृहाण, मच्छस्त्रप्रहारं स्वाऽङ्गे स्वीकुर्विति भावः, प्रहर = मयि प्रहारं कुरु, इति = एवं, भाषिणी = भाषमाणे, परस्परोल्लासितशल्यपल्लवे = अन्योन्यप्रसारिततोमराऽग्रे, नलस्य = नैषध्यस्य, नासीरगते = सेनामुखप्राप्ते, सादिवले = तुरङ्गसैन्ये, कुतूहलात् = कौतुकात्, मृषामृधं = मिथ्यायुद्धं, युद्धनाटकमित्यर्थः, वितेनतुः = चक्रतुः ॥ ६८ ॥

अनुवादः—नगरसे वाहर निकलनेके अनन्तर "मेरा शस्त्रप्रहार ले लो, प्रहार करो" ऐसा भाषण करते हुए परस्पर पल्लवके समान तोमरको उठाते हुए नलके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेनामुखमें स्थित नलके घुड़सवारोंकी दो सेनाओंने कुतूहलसे मिथ्या युद्धका अभिनय किया ॥ ६८ ॥

टिप्पणी—प्रतीच्छ = प्रति + इष् + लोट् + सिप् । प्रहर=प्र = हृ + लोट् + सिप् । भाषिणी = भाषते तच्छीले, भाष + णिनि + औ । परस्परोल्लासितशल्य-पल्लवे = "परस्परम्" यहाँपर पर शब्दसे वीप्सामें द्वित्व होकर "कस्कादिषु च" इससे सत्व हुआ है । परस्परम् उल्लासितानि (सुप्सुपा०) । शल्यानि पल्लवानि इव (उपमित०) "शल्यं तोमरम्" इत्यमरः । परस्परोल्लासितानि शल्यपल्लवानि याभ्यां ते (बहु०) । नासीरगते = नासीरं गते (द्वि० त०), "सेनामुखं तु नासीरम्" इत्यमरः । सादिबले=अवश्यं सीदन्तीति सादिनः, "षद्लृ विशरण-गत्यवसादनेषु" धातुसे "आवश्यकाऽधमर्ण्ययोर्णिनिः" इससे णिनि । "अश्वारोहास्तु सादिनः" इत्यमरः । सादिनां बले (ष० त०) । मृषामृधं = "मृधमास्कन्दनं संख्यम्" इत्यमरः । वितेनतुः = वि–उपसर्गपूर्वक "तनु विस्तारे" धातुसे लिट् + तस् (अतुस्), एत्व और अभ्यास लोप । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ६८ ॥

प्रयातुमस्माकमियं कियत्पदं धरा तदाम्भोधिरपि स्थलायताम् ।
इतीव वाहैर्निजवेगदर्पितैः पयोधिरोधक्षममुत्थितं रजः ॥ ६९ ॥

अन्वयः—इयं धरा अस्माकं प्रयातुं कियत्पदम्, तत् अम्भोधिः अपि स्थलायताम् इति इव निजवेगदर्पितैः वाहैः पयोधिरोधक्षमं रज उत्थितम् ॥ ६९ ॥

व्याख्या—इयम् = एषा, धरा = भूः, अस्माकं = धावताम् अश्वानाम्, प्रयातुं = प्रस्थातुं, कियत्पदं = किंपरिमाणं स्थानं, भवेदिति शेषः । न किञ्चित्पर्याप्तमित्यर्थः । तत् = तस्मात् कारणात्, अम्भोधिः अपि = समुद्रः अपि, स्थलायतां = स्थलवत् आचरतु, भूरेव भवतु इति भावः । इति इव = इति मत्वा इव, निजवेगदर्पितैः = स्वजवदर्पयुक्तैः, वाहैः = अश्वैः, पयोधिरोधक्षमं = समुद्राच्छादनसमर्थं, रजः = धूलिः, उत्थितम् = उत्थापितम् । "उद्धतम्, उद्धृतम्" इति पाठान्तरयोरपि अयमेवाऽर्थः ॥ ६९ ॥

अनुवादः—"यह पृथ्वी हमलोगोंके प्रस्थानके लिए कितने पगोंके लिए होगी ?" इस कारणसे समुद्र भी स्थल हो जाय मानों ऐसा विचार कर अपने वेगसे दर्प करनेवाले घोड़ोंने समुद्रको आच्छादन करनेके लिए पर्याप्त धूल उठा दी ॥ ६९ ॥

टिप्पणी—प्रयातुं = प्र + या + तुमुन् । कियत्पदं = कियन्ति पदानि यस्मिन् (कर्मणि) तद्यथा तथा (बहु०) । अम्भोधिः = अम्भांसि धीयन्ते अत्र इति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अम्भस् + धा + किः। स्थलायतां = स्थलवत् आचरतु "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इससे क्यङ्, स्थल + क्यङ् + लोट् + त। निजवेगदर्पितैः = दर्पः संजातो येषां ते दर्पिताः, "दर्प" शब्दसे "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इससे इतच्प्रत्यय। निजश्चाऽसौ वेगः (क० धा०), तेन दर्पिताः, तैः (तृ० त०)। पयोधिरोधक्षमं = पयांसि धीयन्ते अस्मिन् पयोधिः, पयस् + धा + किः। पयोधे रोधः (ष० त०), तस्मिन् क्षमम् (स० त०)। रजः = "पांशुर्ना न द्वयोरजः" इत्यमरः। उत्थितम् = उद् + स्था + क्तः, यहाँ णिच्का अर्थ अन्तर्भावित है। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ६९ ॥

हरेर्यदक्रामि पदैककेन खं पदैश्चतुर्भिः क्रमणेऽपि तस्य नः।
त्रपा हरीणामिति नम्रिताऽऽननैर्न्यवर्ति तैरर्धनभःकृतक्रमैः ॥ ७० ॥

अन्वयः—"यत् खं हरेः एककेन पदा अक्रामि, तस्य चतुर्भिः पदैः क्रमणे अपि हरीणां नः त्रपा" इति नम्रिताऽऽननैः अर्धनभःकृतक्रमैः तैः न्यवर्ति ॥ ७० ॥

व्याख्या—यत्, खम् = आकाशं, हरेः = विष्णोः, एककेन=एकाकिना, असहायेन एकेनेति भावः, पदा = पादेन, अक्रामि = अलङ्घि, तस्य = खस्य, चतुर्भिः = चतुःसंख्यकैः, पदैः = पादैः, क्रमणे अपि = लङ्घने कृते अपि, हरीणां = वाजिनां, विष्णूनां चेति गम्यते, नः = अस्माकं, त्रपा = लज्जा, एकस्य हरेः एकाकिना पदेन यत् खं लङ्घितं, तस्य वहूनां हरीणाम् (अश्वानां, विष्णूनां वा) चतुर्भिः पदैर्लङ्घने लज्जेति भावः। इति = अस्मात् कारणात् इव, नम्रिताऽऽननैः = अवनतीकृतमुखैः, तथा अर्द्धनभःकृतक्रमैः=अर्द्धाकाशविहितपादविक्षेपैः, तैः=हरिभिः, न्यवर्ति = निवृत्तम्। एतेन प्लुतगतिरुक्ता तत्र गगनलङ्घनस्य संभवादिति भावः ॥ ७० ॥

अनुवादः—"जिस आकाशका विष्णुके एक चरणने लङ्घन किया था उस—(आकाश) का चार चरणोंसे लङ्घन करनेपर भी हरि (घोड़े अथवा बहुत-से हरि) हम लोगोंको लज्जा है" मानों इस कारणसे नम्र मुख करनेवाले तथा आधे आकाशमें चरणविक्षेप करनेवाले वे लोग लौट गये ॥ ७० ॥

टिप्पणी—खं = "नभोऽन्तरिक्षं गगनमनन्तं सुखवर्त्म खम्।" इत्यमरः। एककेन = एक एव एककः, तेन, 'एक' शब्दसे "एकादाकिनिच्चाऽसहाये" इस सूत्रमें चकारका पाठ होनेसे कन् प्रत्यय। पदा = "पाद" शब्दकी टा विभक्तिमें "पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्यूषन्दोषन्यकञ्छकन्नुदन्नासञ्छस्प्रभृतिषु" इस सूत्रसे पद आदेश। अक्रामि = क्रम् + लुङ् (कर्ममें) + त। यहाँपर "नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः" इस सूत्रसे वृद्धि-निषेध होनेसे यह प्रयोग "च्युतसंस्कृति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दोषसे युक्त है, "अक्रमि" होना इष्ट है। क्रमणे = क्रम + ल्युट् + ङि। हरीणां = "यमाऽनिलेन्द्रचन्द्राऽर्कविष्णुसिंहांऽशुवाजिषु। शुकाऽहिकपिभेकेषु हरिर्ना कपिले त्रिषु।" इत्यमरः। नः = "अस्माकम्" के स्थानमें "वहुवचनस्य वस्नसौ" इस सूत्रसे नस् आदेश। नम्रिताऽऽननैः = नम्रं कृतं नम्रितम्, 'नम्र' शब्दसे णिच् प्रत्यय कर क्तप्रत्यय। नम्रितम् आननं यैः, तैः (बहु०)। अर्धनभःकृतक्रमैः = अर्धं नभसः अर्धनभः "अर्धं नपुंसकम्" इससे समास। कृतः क्रमो यैस्ते कृतक्रमाः (बहु०)। अर्धनभसि कृतक्रमाः, तैः (स० त०)। न्यवर्ति = नि-उपसर्गपूर्वक "वृतु वर्तने" धातुसे भावमें लुङ्। इस पद्यमें "इति" के आगे "इव" पदका प्रयोग न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥ ७०॥

चमूचरास्तस्य नृपस्य सादिनो जिनोक्तिषु श्राद्धतयेव सैन्धवाः।
विहारदेशं तमवाप्य मण्डलीमकारयन् भूरितुरङ्गमानपि॥ ७१॥

अन्वयः—तस्य नृपस्य चमूचराः सैन्धवाः सादिनः जिनोक्तिषु श्राद्धतया इव तं विहारदेशम् अवाप्य तुरङ्गमान् भूरि मण्डलीम् अपि अकारयन्॥ ७१॥

व्याख्या—तस्य = पूर्वोक्तस्य, नृपस्य = राज्ञः, नलस्येत्यर्थः। चमूचराः = सेनाचराः, सैन्धवाः = सिन्धुदेशोत्पन्नाः, सादिनः = अश्वारोहाः, जिनोक्तिषु = बुद्धवचनेषु, श्राद्धतया इव = श्रद्धालुतया इव, तं = प्रसिद्धं, विहारदेशं = सञ्चार-भूमिम्, बौद्धमठं च, अवाप्य = प्राप्य, तुरङ्गान् = अश्वान्, भूरि = बहुलं, मण्डलीम् अपि = मण्डलाकारं च, मण्डलासनं च, अकारयन् = कारितवन्तः, बौद्धा अपि स्वकर्माऽनुष्ठाने प्रायेण मण्डलानि कुर्वन्तीति प्रसिद्धिः॥ ७१॥

अनुवादः—जैसे बौद्ध बुद्धके वचनमें श्रद्धालु होकर बौद्धमठमें मण्डलासन कराते हैं वैसे ही राजा नलके सैन्यमें रहनेवाले सिन्धु-देशवाले घुड़सवारोंने विहारभूमिमें पहुँचकर घोड़ोंको मण्डलाकार रूपमें भ्रमण कराया॥ ७१॥

टिप्पणी—नृपस्य = नृ + पा + कः (उपपद०)। चमूचराः = चम्वां चरन्तीति, चमू-उपपदपूर्वक "चर" धातुसे "चरेष्टः" इस सूत्रसे ट प्रत्यय। सैन्धवाः = सिन्धौ भवाः, "सिन्धु" शब्दसे "तत्र भवः" इस सूत्रसे अण्। "देशे नदविशेषेऽब्धौ सिन्धुर्ना सरिति स्त्रियाम्।" इत्यमरः। जिनोक्तिषु = जिनस्य उक्तयः, तासु, (ष० त०) "समन्तभद्रो भगवान्मारजिल्लोकजिज्जिनः।" इत्यमरः। श्राद्धतया = श्रद्धा अस्ति येषां ते श्राद्धाः, "श्रद्धा" शब्दसे "प्रज्ञाश्रद्धाऽर्चाभ्यो णः" इस सूत्रसे ण प्रत्यय। श्राद्धानां भावः श्राद्धता, तया, श्राद्ध + तल् + टाप् + टा। विहारदेशं = विहारश्चाऽसौ देशः, तम् (क० धा०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"विहारो भ्रमणे स्कन्धे लीलायां सुगतालये ।" इति विश्वः । अवाप्य = अव + आप् + क्त्वा (ल्यप्) । तुरङ्गमान् = "हृक्रोरन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे विकल्पसे कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया, एक पक्षमें "तुरङ्गमैः" ऐसा भी रूप वनता है । मण्डलीम् = "मण्डल" शब्दसे "षिद्गौरादिभ्यश्च" इस सूत्रसे ङीष् । अकारयन् = 'कृ' धातुसे णिच् प्रत्यय होकर लङ् + झि । नल सत्ययुगमें हुए परन्तु बुद्धदेव कलियुगके प्रथम चरणमें हुए इसलिए नलके समयमें बौद्धोंके बिहारकी चर्चा अनुचित प्रतीत होती है, पर नलसे पूर्वकल्पके बुद्धकी विवक्षा करनेसे दोष-परिहार समझना चाहिए । इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ७१ ॥

द्विषद्भिरेवाऽस्य विलङ्घिता दिशो यशोभिरेवाऽब्धिरकारि गोष्पदम् ।
इतीव धारामवधीर्य मण्डलीक्रियाश्रियाऽमण्डि तुरङ्गमैः स्थली ॥ ७२ ॥

अन्वयः—अस्य द्विषद्भिः एव दिशः विलङ्घिताः, अस्य यशोभिः एव अब्धिः गोष्पदम् अकारि; इति इव तुरङ्गमैः धाराम् अवधीर्य मण्डलीक्रियाश्रिया स्थली अमण्डि ॥ ७२ ॥

व्याख्या—अस्य = नलस्य, द्विषद्भिः एव = शत्रुभिः एव, पलायमानैरिति शेषः । दिशः = ककुभः, विलङ्घिताः = अतिक्रान्ताः, अस्य = नलस्य, यशोभिः एव = कीर्तिभिः एव, अब्धिः = समुद्रः, गोष्पदं = गोखुरप्रमाणः, अकारि = कृतः, इति = एवं विचार्य, इव, अन्यसामान्यं कर्म उत्कर्षाय न भवेदिति विमृश्य इवेति भावः । तुरङ्गमैः = अश्वैः, धाराम् = आस्कन्दितादिगतिम् । अवधीर्य = अनाहृत्य, मण्डलीक्रियाश्रिया = मण्डलीकरणशोभया, मण्डलगत्यैव इति भावः । स्थली = अकृत्रिमा भूमिः, अमण्डि = मण्डिता, भूषितेति भावः ॥ ७२ ॥

अनुवादः—नलके शत्रुओंने ही दिशाओंको लङ्घन किया है, इनकी कीर्तियोंने ही समुद्रको गायके खुरके समान वना डाला है, मानों ऐसा विचार कर घोड़ोंने आस्कन्दित आदि गतियोंका अनादर करके मण्डलीकरणकी शोभासे भूमिको अलङ्कृत कर दिया ॥ ७२ ॥

टिप्पणी—द्विषद्भिः = द्विषन्तीति द्विषन्तः, तैः, "द्विष अप्रीतौ" धातुसे लट्के स्थानमें शतृ आदेश । "रिपौ वैरिसपत्नाऽरिद्विषद्द्वेषणदुर्हृदः ।" इत्यमरः । अब्धिः = आपः धीयन्ते अत्र, अप् + धा + किः, "समुद्रोऽब्धिरकूपारः" इत्यमरः । गोष्पदं = गावः पद्यन्ते अस्मिन्स्थले तत्, गोभिः सेवितं गोष्पदं, "गोष्पदं सेविताऽसेवितप्रमाणेषु" इस सूत्रसे सुट् और 'स' के स्थानमें "ष" । अकारि = "कृ"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातुसे लुङ् + त (कर्ममें), धाराम् = जातिमें एकवचन। आस्कन्दित आदि पाँचों गतियोंको यह तात्पर्य है। जैसे कि—

"आस्कन्दितं धौरितकं रेचितं वल्गितं प्लुतम्।

गतयोऽमूः पञ्चधाराः" इत्यमरः। अवधीर्य = अव–अधि–उपसर्गपूर्वक "ईर प्रेरणे" धातुसे 'क्त्वा' के स्थानमें ल्यप् आदेश। "शकन्ध्वादिषु पररूपं वाच्यम्" इससे पररूप। मण्डलीक्रियाश्रिया = मण्डल्याः क्रिया (ष० त०), तस्याः श्रीः, तया (ष० त०)। स्थली = अकृत्रिम अर्थमें "जानपदकुण्डगोणस्थल०" इत्यादि सूत्रसे ङीष् प्रत्यय। कृत्रिम भूमिके लिए "स्थला" ऐसा प्रयोग होता है। अमण्डि = "मडि भूषायाम्" धातुसे णिच् होकर लुङ् (कर्ममें) + त। इस पद्यमें अतिशयोक्ति और उत्प्रेक्षा इन दोनों अलङ्कारोंका एकाश्रयाऽनुप्रवेशरूप सङ्कर है॥ ७२॥

अचीकरच्चारु हयेन या भ्रमीर्निजातपत्रस्य तलस्थले नलः।
मरुत्किमद्याऽपि न तासु शिक्षते वितत्य वात्यामयचक्रचङ्क्रमान्॥ ७३॥

अन्वयः—नलः निजातपत्रस्य तलस्थले हयेन या भ्रमीः चारु अचीकरत्, तासु मरुत् अद्य अपि वात्यामयचक्रचङ्क्रमान् वितत्य किं न शिक्षते ?॥ ७३॥

व्याख्या—नलः = नैषध्यः, निजाऽऽतपत्रस्य = स्वच्छत्रस्य, तलस्थले = अधःप्रदेशे, हयेन = अश्वेन, याः, भ्रमीः = मण्डलगतीः, चारु = मनोहरं यथा तथा, अचीकरत् = कारितवान्, तासु = भ्रमीषु विषये, मरुत् = वायुः, अद्य अपि = अधुना अपि, वात्यामयचक्रचङ्क्रमान् = वातसमूहमयमण्डलगतीः, वितत्य = विस्तीर्य, किं न शिक्षते = किमर्थं न जिज्ञासते, शिक्षितश्चेन्मरुत् तथा गतिं कुर्यादिति भावः। नलो वायोरप्यसंभाविता गतीः अश्वेन कारयामासेति तात्पर्यम्॥ ७३॥

अनुवादः—नलने अपने छत्रके अधोभागमें घोड़ेसे जिन मण्डलगतियोंको मनोहरतासे कराया, उनमें वायु अभी भी वायुओंकी मण्डलगतियोंको फैलाकर क्यों नहीं सीखना चाहता है ?॥ ७३॥

टिप्पणी—निजातपत्रस्य = आतपात् त्रायते इति आतपत्रम्, आतप + त्रै (त्रा) + कः (उपपद०)। निजं च तत् आतपत्रं, तस्य (क० धा०)। तलस्थले = तलञ्च तत् स्थलं, तस्मिन् (क० धा०)। हयेन = "हृक्रोरन्यतरस्याम्" इससे कर्मत्वके वैकल्पिक होनेसे तृतीया। भ्रमीः = "भ्रमु अनवस्थाने" धातुसे "इक् कृष्यादिभ्यः" इससे इक्। चारु = यह क्रियाविशेषण है। अचीकरत् = णिजन्त 'कृ' धातुसे लुङ् + तिप्। "णिश्रिद्रुस्रुभ्यः कर्तरि चङ्" इससे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चङ् और द्वित्व आदि। वात्यामयचक्रचङ्क्रमान् = वातानां समूहो वात्या, "वात" शब्दसे "पाशादिभ्यो यः" इस सूत्रसे य प्रत्यय और टाप्। वात्यास्वरूपा वात्यामयाः, 'वात्या' शब्दसे "तत्प्रकृतवचने मयट्" इस सूत्रसे स्वरूप अर्थमें मयट्। पुनः पुनः क्रमणानि चङ्क्रमाः, "क्रमु पादविक्षेपे" धातुसे "धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्" इस सूत्रसे यङ्, द्वित्व होकर घञ्, ह्रस्व अकारका लोप और "यस्य हलः" इससे यकारका लोप। चक्रस्य चङ्क्रमाः (ष० त०)। वात्यामयाश्च ते चक्रचङ्क्रमाः, तान् (क० धा०)। वितत्य = वि + तन् + क्त्वा (ल्यप्)। शिक्षते = शक धातुसे "धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा" इस सूत्रसे सन् प्रत्यय और "शिक्षेर्जिज्ञासायाम्" इससे आत्मनेपद लट् + त। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥ ७३॥

विवेश गत्वा स विलासकाननं ततः क्षणात्क्षोणिपतिर्धृतीच्छया।
प्रवालरागच्छुरितं सुषुप्सया हरिर्घनच्छायमिवाऽम्भसां निधिम्॥ ७४॥

अन्वयः—ततः हरिः सुषुप्सया विलासकाऽननं प्रवालरागच्छुरितं घनच्छायम् अम्भसां निधिम् इव स क्षोणिपतिः धृतीच्छया गत्वा प्रवालरागच्छुरितं घनच्छायं विलासकाननं क्षणात् विवेश॥ ७४॥

व्याख्या—ततः = अनन्तरं, हरिः = विष्णुः, सुषुप्सया = स्वप्तुम् इच्छया, विलासकाऽननं = सर्पप्राणनं, प्रवालरागच्छुरितं = विद्रुमाऽऽरुण्यरूपितं, घनच्छायं = मेघकान्तिम्, अम्भसां = जलानां, निधिम् इव = शेवधिम् इव, समुद्रम् इवेत्यर्थः। सः = पूर्वोक्तः, क्षोणिपतिः = भूपतिः, नल इति भावः। धृतीच्छया = सन्तोषकाङ्क्षया, गत्वा = गमनं कृत्वा, प्रवालरागच्छुरितं = पल्लवारुण्यरञ्जितं, घनच्छायं = सान्द्राऽनातपं, विलासकाननं = क्रीडावनं, क्षणात् = अल्पकालात्, विवेश = प्रविष्टः॥ ७४॥

अनुवादः—तब जैसे भगवान् विष्णु सोनेकी इच्छासे सर्पोंके स्थानभूत, मूंगोंके वर्णसे रञ्जित, मेघकी समान कान्तिसे युक्त समुद्रमें प्रवेश करते हैं वैसे ही राजा नलने दिल बहलानेकी इच्छासे जाकर पल्लवोंके वर्णसे अनुरञ्जित, गाढ छायासे सम्पन्न क्रीडावनमें थोड़े ही समयमें प्रवेश किया॥ ७४॥

टिप्पणी—सुषुप्सया = स्वप्तुम् इच्छा सुषुप्सा, तया "ञिष्वप् शये" धातुसे सन् प्रत्यय, द्वित्व होकर तदन्तसे "अ प्रत्ययात्" इससे अ प्रत्यय और टाप्—टा। विलासकाऽननं = 'व' और 'व' में अभेद होनेसे विले आसते इति विलासकाः, (सर्पाः), विल-उपपदपूर्वक आस धातुसे "ण्वुल्तृचौ" इस सूत्रसे ण्वुल् (अक)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्यय। विलासकानाम् अननम् (प्राणनम्), तत् (ष० त०)। प्रवालरागच्छुरितं = प्रवालानां रागः, (ष० त०), "प्रवालो वल्लकीदण्डे विद्रुमे नवपल्लवे।" इत्यमरः। प्रवालरागेण छुरितः, तम् (तृ० त०)। घनच्छायं = घनस्य (मेघस्य) इव छाया यस्य, तम् (व्यधिकरणबहु०)। क्षोणिपतिः = क्षोणेः पतिः (ष० त०)। धृतीच्छया=धृतेः इच्छा, तया (ष० त०)। गत्वा = गम् धातुसे "समानकर्तृकयोः पूर्वकाले" इस सूत्रसे क्त्वा। घनच्छायं = घना छाया यस्य, तत् (बहु०)। "छाया त्वनातपे कान्तौ" इति विश्वः। विलासकाननं = विलासस्य काननं, तत् (ष० त०)। विवेश = "विश प्रवेशने" धातुसे लिट् + तिप्। इस पद्यमें पूर्णोपमा अलङ्कार है ॥ ७४ ॥

वनाऽन्तपर्यन्तमुपेत्य सस्पृहं क्रमेण तस्मिन्नवतीर्णदृक्पथे।
न्यवर्ति दृष्टिप्रकरैः पुरौकसामनुव्रजद्बन्धुसमाजबन्धुभिः ॥ ७५ ॥

अन्वयः—अनुव्रजद्बन्धुसमाजबन्धुभिः पुरौकसां दृष्टिप्रकरैः वनाऽन्तपर्यन्तं सस्पृहम् उपेत्य क्रमेण तस्मिन् अवतीर्णदृक्पथे (सति) न्यवर्ति ॥ ७५ ॥

व्याख्या—अनुव्रजद्बन्धुसमाजबन्धुभिः = अनुगच्छद्बान्धवसङ्घसदृशैः, स्नेहादिति शेषः। पुरौकसां = नगरवासिनां, दृष्टिप्रकरैः = नेत्रसमूहैः, (कर्तृभिः), वनाऽन्तपर्यन्तं = काननोपान्तसीमाम्, उदकप्रान्तपर्यन्तं च, सस्पृहं = साऽभिलाषं यथा तथा, उपेत्य = गत्वा, क्रमेण = समयपरिपाट्या, तस्मिन् = नले, अवतीर्णदृक्पथे = अतिक्रान्तनेत्रविषये सति, न्यवर्ति = निवृत्तम्। यथा जनाः प्रवासोन्मुखं जनं जलाशयं यावदनुगम्य "ओदकान्तमनुव्रजेत्" इति शास्त्रेण निवर्तन्ते तथैव बन्धुसदृशानि नागरिकाणां नेत्राणि अपि गच्छन्तं नल काननोपान्तसीमां यावद् गत्वा, तस्मिन्नतिकान्तनेत्रमार्गे सति न्यवर्तन्त इति भावः ॥ ७५ ॥

अनुवादः—पीछे जानेवाले बान्धवसमाजोंके सदृश नगरवासियोंके नेत्र उपवनकी सीमा तक जाकर क्रमसे नलके दृष्टिसे ओट हो जाने पर लौट गये ॥ ७५ ॥

टिप्पणी—अनुव्रजद्बन्धुसमाजबन्धुभिः = अनुव्रजन्तीति अनुव्रजन्तः, अनु + व्रज + लट् (शतृ) + जस्। बन्धूनां समाजाः (ष० त०)। अनुव्रजन्तश्च ते बन्धुसमाजाः (क० धा०)। अनुव्रजद्बन्धुसमाजानां बन्धवः, तैः (ष० त०)। यहाँपर पिछले "बन्धु" शब्दका अर्थ सदृश है। पुरौकसां = पुरम् ओकः येषां ते पुरौकसः, तेषाम् (बहु०)। दृष्टिप्रकरैः = दृष्टीनां प्रकराः, तैः (ष० त०)। वनाऽन्तपर्यन्तं = वनस्य अन्तः (ष० त०)। "वन" का अर्थ यहाँपर "अटव्यरण्यं विपिनं गहनं काननं वनम्।" इत्यमरः, इस कोशके अनुसार वन और "वने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सलिलकानने" इत्यमरः, इस कोशके अनुसार जल अर्थ भी होता है। वनाऽन्तस्य-पर्यन्तम् (ष० त०)। सस्पृहं = स्पृहया सहितं यथा तथा (तुल्ययोगबहु०)। उपेत्य = उप + इण् + क्त्वा (ल्यप्)। अवतीर्णदृक्पथे = दृशोः पन्थाः दृक्पथः (ष० त०), "ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे" इस सूत्रसे समासाऽन्त अ प्रत्यय। अवतीर्णःदृक्पथः येन तस्मिन् (बहु०)। भावलक्षणमें सप्तमी। न्यवर्ति = नि + वृत् + लुङ् + त (भावमें लुङ्)। जैसे प्रवासमें जानेके लिए उद्यत जनको बन्धुगण जलाशयतक उसको पहुँचाकर लौट जाते हैं वैसे ही बगीचेमें जाते हुए नलके दृष्टिपथसे ओट होनेपर पुरवासियोंके नेत्र लौट पड़े यह तात्पर्य है। इस पद्यमें चतुर्थ चरणमें उपमा अलङ्कार है ॥ ७५ ॥

ततः प्रसूने च फले च मञ्जुले स सम्मुखस्थाऽङ्गुलिना जनाधिपः।
निवेद्यमानं वनपालपाणिना व्यलोकयत्काननरामणीयकम् ॥ ७६ ॥

अन्वयः—ततः स जनाऽधिपः मञ्जुले प्रसूने फले च सम्मुखस्थाऽङ्गुलिना वनपालपाणिना निवेद्यमानं काननरामणीयकं व्यलोकयत् ॥ ७६ ॥

व्याख्या—ततः = अनन्तरं, सः = पूर्वोक्तः, जनाऽधिपः = नरेशः, नल इत्यर्थः। मञ्जुले = मनोहरे, प्रसूते = पुष्पे, मञ्जुले फले च = सस्ये च, सम्मुख-स्थाऽङ्गुलिना = अभिमुखस्थकरशाखेन, वनपालपाणिना = उद्यानरक्षकहस्तेन, निवे-द्यमानं = ज्ञाप्यमानं, प्रदर्श्यमानमिति भावः। काननरामणीयकं = वनसौन्दर्यं, व्यलोकयत् = अपश्यत् ॥ ७६ ॥

अनुवादः—तब राजा नलने सुन्दर फूल और फलमें उद्यानरक्षकसे उंगलियों-को संमुख कर दिखलायी गई वनकी सुन्दरताको देखा ॥ ७६ ॥

टिप्पणी—जनाऽधिपः=जनानाम् अधिपः (ष० त०)। सम्मुखस्थाङ्गुलिना= सम्मुखं तिष्ठन्तीति सम्मुखस्थाः, संमुख + स्था + कः (उपपद०)। सम्मुखस्था अङ्गुलयः यस्य सः, तेन (बहु०)। "अङ्गुल्यः करशाखाः स्युः" इत्यमरः। वनपालपाणिना = वनं पालयतीति वनपालः, वन-उपपदपूर्वक "पाल रक्षणे" धातुसे "कर्मण्यण्" इस सूत्रसे अण् (उपपद०)। वनपालस्य पाणिः, तेन (ष० त०)। निवेद्यमानं = निवेद्यत इति, तत्, नि + विद् + णिच् + लट् (कर्ममें) + यक् + शानच् + अम्। काननरामणीयकं = रमणीयस्य भावो राम-णीयकम्, "रमणीय" शब्दसे "योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्" इस सूत्रसे वुञ् (अक) प्रत्यय। "कामनीयकम्" ऐसे पाठमें भी कमनीयस्य भावः ऐसा विग्रह और पूर्व सूत्रसे वुञ्। अर्थ भी वही है। काननस्य रामणीयकं, तत् (ष० त०)। यहाँ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर "रामणीयकम्" इस गुणवाचकपदके साथ 'कानन' पदका समास "पूरणगुण-सुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाऽधिकरणेन" इस सूत्रसे निषिद्ध था परन्तु "तदशिष्यं संज्ञाप्रमाणत्वात्" इत्यादि निर्देशसे वह निषेध अनित्य है, अतः समास हुआ। व्यलोकयत् = वि + लोक + णिच् + लङ् + तिप्। इस पद्यमें मञ्जुलत्वरूप एक गुणके साथ प्रसून और फल इन पदार्थोंका अभिसम्वन्ध होनेसे तुल्ययोगिता अलङ्कार है। उसका लक्षण है—

"पदार्थानां प्रस्तुतानामन्येषां वा यदा भवेत्।
एकधर्माऽभिसम्वन्धः स्यात्तदा तुल्ययोगिता ॥" सा० द० १०—६६।

फलानि पुष्पाणि च पल्लवे करे वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते।
स्थितैः समाधाय महर्षिवार्द्धकाद्वने तदातिथ्यमशिक्षि शाखिभिः ॥ ७७ ॥

अन्वयः—वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते पल्लवे करे फलानि पुष्पाणि च समाधाय स्थितैः वने शाखिभिः महर्षिवार्द्धकात् तदातिथ्यम् अशिक्षि ॥ ७७ ॥

व्याख्या—वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते=पक्षिपातोत्पन्नवायुकम्पिते, महर्षिपक्षे—बाल्याद्यवस्थाऽपगमोत्पन्नवातदोषकम्पिते, पल्लवे करे = किसलये एव पाणौ, महर्षिपक्षे—पल्लवे = किसलये इव कोमल इति भावः, करे = पाणौ, फलानि = सस्यानि, पुष्पाणि च = कुसुमानि च, समाधाय = निधाय, स्थितैः = तिष्ठद्भिः, वने = उपवने, शाखिभिः = वृक्षैः, वेदशाखाऽध्यायिभिश्च, महर्षिवार्द्धकात् = वृद्धमहर्षिसङ्घात्, तदातिथ्यं = नलाऽतिथिसत्कारः, अशिक्षि=शिक्षितम्, नो चेत्कथमिदमाचरितमिति भावः ॥ ७७ ॥

अनुवादः—बाल्य आदि अवस्थाके बीतनेसे उत्पन्न वात दोषसे कम्पित पल्लवके समान हाथमें फलों और फूलोंको लेकर रहनेवाले वेदशाखाका अध्ययन करनेवाले बूढ़े महर्षियोंके समान वनमें पक्षियोंके उड़नेसे उत्पन्न हवासे हिलते हुए पल्लवरूप हाथमें फलों और फूलोंको लेकर रहनेवाले वृक्षोंने बूढ़े महर्षियोंसे राजाके आतिथ्यको सीखा ॥ ७७ ॥

टिप्पणी—वयोऽतिपातोद्गतवातवेपिते = वयसः अतिपातः (ष० त०), "खगबाल्यादिनोर्वयः" इत्यमरः। वयोतिपातेन उद्गतः (तृ० त०), स चाऽसौ वातः (क० धा०) तेन वेपितः, तस्मिन् (तृ० त०)। महर्षिपक्षमें "पल्लवे" यहाँपर पल्लव सदृशमें लक्षणा है। वृक्षपक्षमें "पल्लवे एव करे" इस प्रकार व्यस्तरूपक है। समाधाय = सम् + आङ् + धा + क्त्वा (ल्यप्)। शाखिभिः = शाखाः (महर्षि-पक्षमें वेदशाखाः) सन्ति येषां ते, तैः "व्रीह्यादिभ्यश्च" इस

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सूत्रसे इनि प्रत्यय। महर्षिवार्द्धकात् = महान्तश्च ते ऋषयः महर्षयः, "सन्महत्परमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः" इस सूत्रसे समास और "आन्महतः समानाऽधिकरणजातीययोः" इससे आत्व और अर् गुण। वृद्धानां समूहो वार्द्धकम्, 'वृद्ध' शव्दसे "वृद्धाच्चेति वक्तव्यम्" इस वार्तिकसे वुञ् प्रत्यय। महर्षीणां वार्द्धकं तस्मात् (ष० त०), सामर्थ्यसे वृत्तिके अन्तर्गत 'वृद्ध' शब्दका अन्वय होकर "शिवभागवत" पदके समान समास हुआ है। "आख्यातोपयोगे" इससे अपादानसंज्ञा होकर पञ्चमी। तदातिथ्यम् = अतिथये इदम् आतिथ्यम्, 'अतिथि' शब्दसे "अतिथेर्ञ्यः" इस सूत्रसे ञ्य प्रत्यय। तस्य आतिथ्यम् (ष० त०)। अशिक्षि = "शिक्ष विद्योपादाने" धातुसे कर्ममें लुङ् + त। इस पद्यमें "पल्लवे करे" यहाँपर व्यस्तरूपक, श्लेष और प्रतीयमानोत्प्रेक्षा इनका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ७७ ॥

विनिद्रपत्त्राऽऽलिगताऽलिकैतवान्मृगाऽङ्कचूडामणिवर्जनाऽर्जितम् ।
दधानमाशासु चरिष्णु दुर्यशः स कौतुकी तत्र ददर्श केतकम् ॥ ७८ ॥

अन्वयः—कौतुकी स तत्र विनिद्रपत्त्राऽऽलिगताऽलिकैतवान् मृगाऽङ्कचूडामणिवर्जनाऽर्जितम् आशासु चरिष्णु दुर्यशः दधानं केतकं ददर्श ॥ ७८ ॥

व्याख्या—कौतुकी = कुतूहली, आरामदर्शन इति शेषः। सः = नलः, तत्र = उपवने, विनिद्रपत्त्राऽऽलिगताऽलिकैतवात् = विकसिदलपङ्क्तिस्थितभ्रमरच्छलात्, मृगाऽङ्कचूडामणिवर्जनाऽर्जितं = शिवपरिहारोपार्जितम्, आशासु = दिशासु, चरिष्णु = संचरणशीलं दुर्यशः = अपकीर्ति, दधानं = धारयत्, केतकं = केतकी कुसुमं, ददर्श = दृष्टवान् ॥ ७८ ॥

अनुवादः—उपवन देखनेके लिए. कुतूहल रखनेवाले नलने वहाँपर विकसित पत्तोंकी पङ्क्तिमें स्थित भ्रमरके छलसे शिवजीके छोड़नेसे उपार्जित तथा दिशाओंमें सञ्चरणशील अपकीर्तिको धारण करते हुए केतकी पुष्पको देखा ॥ ७८ ॥

टिप्पणी—कौतुकी = कौतुकम् अस्याऽस्तीति, "अतइनिठनौ" इस सूत्रसे इनि प्रत्यय, कौतुक + इनिः। विनिद्रपत्त्राऽऽलिगताऽलिकैतवात् = पत्त्राणाम् आलिः (ष० त०)। विनिद्रा चाऽसौ पत्त्राऽलिः (क० धा०)। विनिद्रपत्त्रालिं गताः (द्वि० त०)। ते च ते अलयः (क० धा०)। विनिद्रपत्त्राऽऽलिगतालीनां कैतवं, तस्मात् (ष० त०)। मृगाऽङ्कचूडामणिवर्जनाऽर्जितं = मृगः अङ्कः यस्य सः (बहु०)। चूडाया मणिः (ष० त०)। मृगाऽङ्कः चूडामणिः यस्य सः (बहु०), शिव इत्यर्थः। मृगाऽङ्कचूडामणिना वर्जनम् (तृ० त०)। तेन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्जितम् (तृ० त०) तत् । चरिष्णु = चरणशीलं तत्, 'चर' धातुसे "अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रपवृतुवृधुसहचर इष्णुच्" इससे इष्णुच् । दुर्यशः= दुष्टं यशः, तत् "कुगतिप्रादयः" इस सूत्रसे समास । केतकं = केतक्या विकारः (पुष्पम्) इति केतकं, तत् । 'केतकी' शब्दसे "तस्य विकारः" इस सूत्रसे अण् प्रत्यय, उसका "पुष्पमूलेषु बहुलम्" इससे लुक् और "लुक् तद्धितलुकि" इससे स्त्रीप्रत्ययका लुक् । ददर्श = दृश् + लिट् + तिप् ।

पूर्वकालमें ब्रह्मा और विष्णुमें श्रेष्ठत्वके विषयमें विवाद होनेपर शिवलिङ्ग प्रकट हुआ और "इसका ऊर्ध्वभाग और अधोभाग जो देख सके वह श्रेष्ठ है" ऐसी आकाशवाणीके होनेपर ब्रह्मा ऊपर और विष्णु नीचे गये । विष्णु शिवलिङ्गका पार न पाकर लौट गये, परन्तु ब्रह्माजीने पार न पाकर भी मैंने पार पाया कहकर केतकी पुष्पको साक्षी बनाया । तब मिथ्याभाषणके कारण शिवजीने केतकीका वर्जन किया, अतएव "न केतक्या सदाशिवम्" ऐसे निषेधवचनका उद्गम हुआ, ऐसी पौराणिक प्रसिद्धि है । इस पद्यमें "अलिकैतवात्" इस पदमें अलित्वका अपह्नव कर उसमें दुर्यशस्त्वका स्थापन करनेसे कैतवाऽपह्नुति अलङ्कार और प्रतीयमानोत्प्रेक्षा है । उन दोनोंकी संसृष्टि है ॥ ७८ ॥

वियोगभाजां हृदि कण्टकैः कटुर्निधीयसे कर्णिशरः स्मरेण यत् ।
ततो दुराकर्षतया तदन्तकृद्विगीयसे मन्मथदेहदाहिना ॥ ७९ ॥

अन्वयः—(हे केतक !) यत् (त्वम्) स्मरेण वियोगभाजां हृदि कण्टकैः कटुः कर्णिशरः (सन्) निधीयसे; ततो दुराकर्षतया तदन्तकृत् (सन्) मन्मथदेहदाहिना विगीयसे ॥ ७९ ॥

व्याख्या—अथ नलः कामोद्दीपकत्वात्त्रिभिः केतकमुपालभते वियोगभाजामिति । (हे केतक !) यत् = यस्मात्कारणात् (त्वम्), स्मरेण = कामदेवेन, वियोगभाजां = विरहिणां जनानां, हृदि = वक्षःस्थले, कण्टकैः = निजतीक्ष्णाऽवयवैः, कटुः = तीक्ष्णः, कर्णिशरः = प्रतिलोमशल्यवद्बाणः सन्, निधीयसे = निक्षिप्यसे, ततः = तस्मात्कारणात्, दुराकर्षतया = दुरुद्धारतया, तदन्तकृत् = वियोगिनाशकारी सन्, मन्मथदेहदाहिना = स्मरहरेण, विगीयसे = निन्द्यसे, अत एव परिह्रियसेऽपीति शेषः ॥ ७९ ॥

अनुवादः—हे केतकीपुष्प ! जो तुम कामदेवसे वियोगियोंके हृदयमें कांटोंसे तीक्ष्ण और नुकीला बासावाला होकर रक्खे जाते हो, दुःखसे निकाले जानेवाला होकर वियोगियोंका प्राण लेनेसे महादेव तुम्हारी निन्दा करते हैं ॥ ७९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—वियोगभाजां = वियोगं भजन्तीति वियोगभाजः, तेषाम् वियोग-उपपदपूर्वक भज धातुसे "भजो ण्विः" इस सूत्रसे ण्विप्रत्यय (उपपद०)। कर्णिशरः = कर्ण इव कर्णः, सः अस्याऽस्तीति कर्णी, कर्ण + इनिः। कर्णी चाऽसौ शरः (क० धा०)। निधीयसे = नि–उपसर्गपूर्वक धा धातुसे कर्ममें लट्। दुराकर्षतया = दुःखेन आक्रष्टुं शक्यः दुराकर्षः, दुर् + आङ् + कृष् + खल् (उपपद०)। तस्य भावः तत्ता, तया, दुराकर्ष + तल् + टाप् + टा। तदन्तकृत् = तेषाम् अन्तः (ष० त०)। तदन्तं करोतीति, तदन्त + कृ + क्विप् (उपपद०)। विगीयसे = वि–उपसर्गपूर्वक गै धातुसे लट् (कर्ममें) थास् (से)। द्वेष्य कामदेवके समान द्वेष्यका साधन भी असह्य होता है, वह भी हिंसाशील हो तो क्या कहना है ? यह तात्पर्य है। शिवजीसे की गई कामनिन्दामें कामदेवसे की गई वियोगि-हिंसाकी कारणताकी उत्प्रेक्षा व्यङ्ग्य होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा और केतकी पुष्पमें कर्णि-शरत्वका आरोप होनेसे रूपक अलङ्कार, इस प्रकार सङ्कर अलङ्कार है ॥ ७९ ॥

त्वदग्रसूचीसचिवः स कामिनोर्मनोभवः सीव्यति दुर्यशःपटौ।
स्फुटं च पत्त्रैः करपत्त्रमूर्तिभिर्वियोगहृद्दारुणि दारुणायते ॥ ८० ॥

अन्वयः—त्वदग्रसूचीसचिवः स मनोभवः कामिनोः दुर्यशःपटौ सीव्यति। च करपत्त्रमूर्तिभिः पत्त्रैः वियोगिहृद्दारुणि दारुणायते ॥ ८० ॥

व्याख्या—(हे केतक !) त्वदग्रसूचीसचिवः = त्वन्मूलसीवनीसहकारी, सः = प्रसिद्धः, मनोभवः = कामदेवः, कामिनोः = तरुणदम्पत्योः, दुर्यशःपटौ = अपकीर्ति-वस्त्रे, सीव्यति = योजयति, कण्टकस्यूतं करोतीति भावः। च = किञ्च, करपत्त्र-मूर्तिभिः = क्रकचाकारैः, पत्त्रैः = दलैः, वियोगिहृद्दारुणि = विरहिवक्षःकाष्ठे, दारुणायते = भीषणवत् आचरति ॥ ८० ॥

अनुवादः—(हे केतकीपुष्प !) तुम्हारी नोकरूप सुईकी सहायतासे कामदेव तरुण दम्पतियोंके अपकीर्तिरूप वस्त्रको सीता है, और आरेके समान आकारवाले पत्तोंसे वियोगियोंके वक्षःस्थलरूप काष्ठमें भयङ्कर आचरण करता है ॥ ८० ॥

टिप्पणी—त्वदग्रसूचीसचिवः = तव अग्राणि त्वदग्राणि (ष० त०), युष्मद्-शब्दके स्थानमें "प्रत्ययोत्तरपदयोश्च" इस सूत्रसे उत्तरपदके परे रहते "त्वद्" आदेश हुआ है। त्वदग्राणि एव एव सूच्यः (रूपकम्)। त्वदग्रसूच्यः एव सचिवा यस्य सः (बहु०)। मनोभवः = मनसि भवतीति, मनस् + भू + अच्। कामिनोः = कामिनी च कामी च कामिनौ, तयोः, "पुमान् स्त्रिया" इस सूत्रसे एकशेष। दुर्यशःपटौ = दुष्टे यशसी (गति०), ते एव पटौ, तौ (रूपक०)। सीव्यति =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"षिवु तन्तुसन्ताने" धातुसे लट् + तिप्। "हलि च" इससे दीर्घ। करपत्रमूर्तिभिः = करपत्रस्य इव मूर्तिर्येषां तानि करपत्रमूर्तीनि, तैः (व्यधिकरणबहु०)। "क्रकचोऽस्त्री करपत्रम्" इत्यमरः। वियोगिहृद्दारुणि = वियोगिनः हृत् (ष० त०)। वियोगिहृत् एव दारु, तस्मिन् (रूपक०)। "काष्ठं दार्विन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित्स्त्रियाम्।" दारुणायते = दारुणवत् आचरति, 'दारुण' शब्दसे "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इससे क्यङ् + लट् + त। इस पद्यमें रूपक और उपमाका संसृष्टि अलङ्कार है ॥ ८० ॥

धनुर्मधुस्विन्नकरोऽपि भीमजापरं परागैस्तव धूलिहस्तयन्।
प्रसूनधन्वा शरसात्करोति मामिति क्रुधाऽऽक्रुश्यत तेन केतकम् ॥ ८१ ॥

अन्वयः—(हे केतक !) "प्रसूनधन्वा धनुर्मधुस्विन्नकरः अपि तव परागैः धूलिहस्तयन् भीमजापरं मां शरसात् करोति", इति तेन क्रुधा केतकम् आक्रुश्यत ॥ ८१ ॥

व्याख्या—(हे केतक !) प्रसूनधन्वा = पुष्पचापः, काम इति भावः। धनुर्मधुस्विन्नकरः अपि = कार्मुक (पुष्प) मकरन्दार्द्रपाणिः सन् अपि, तव = केतकीपुष्पस्य, परागैः = रजोभिः, धूलिहस्तयन् = धूलिहस्तम् आत्मानं कुर्वन्, अन्यथा धनुःस्रंसनादिति भावः, भीमजापरं = दमयन्त्यासक्तं, मां = नलं, शरसात् = शराऽधीनं, करोति = विदधाति, इति = इत्थं, श्लोकत्रयोक्त्या इति भावः। तेन = नलेन, क्रुधा = क्रोधेन, केतकं = केतकीपुष्पम्, आक्रुश्यत = आक्रुष्टं, निन्दितमिति भावः ॥ ८१ ॥

अनुवादः—("हे केतकीपुष्प !) पुष्परूप धनुको लेनेवाला कामदेव पुष्परूप धनुके मकरन्द (रस) से आर्द्रपाणि होकर भी तेरे परागसे हाथको धूलियुक्त करता हुआ दमयन्तीमें आसक्त मुझको बाणका लक्ष्य बनाता है" इस प्रकारसे (तीन श्लोकोंकी उक्तिसे) नलने केतकीपुष्पकी निन्दा की ॥ ८१ ॥

टिप्पणी—प्रसूनधन्वा = प्रसूनं धन्व यस्य सः (बहु०)। "धनुश्चापौ धन्व शरासनकोदण्डकार्मुकम्।" इत्यमरः। अथवा प्रसूनं धनुः यस्य सः (बहु०), "धनुषश्च" इस सूत्रसे विकल्पसे अनङ्। "पुष्पधन्वा रतिपतिः। इत्यमरः। धनुर्मधुस्विन्नकरः = धनुषः मधु (ष० त०), "मधु मद्ये पुष्परसे क्षौद्रेऽपि" इत्यमरः। स्विन्नः करः यस्य सः (बहु०)। धनुर्मधुना स्विन्नकरः (तृ० त०)। परागैः = "परागः सुमनोरजः" इत्यमरः। धूलिहस्तयन् = धूलियुक्तो हस्तः धूलिहस्तः, "शाकपार्थिवादीनां सिद्धय उत्तरपदलोपस्योपसंख्यानम्" इस वार्तिकसे मध्यमपद-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लोपी समास। धूलिहस्तं कुर्वन् धूलिहस्तयन्, "धूलिहस्त" शब्दसे "तत्करोति तदाचष्टे" इससे णिच् होकर लट्के स्थानमें शतृ आदेश। भीमजापरं = भीमाज्जाता भीमजा, भीम + जन् + ड + टाप्। भीमजायां परः, तम् (स० त०)। शरसात् = शराऽधीनम्, "शर" शब्दसे "तदधीनवचने" इस सूत्रसे साति प्रत्यय। करोति = कृ + लट् + तिप्। क्रुधा = "कोपक्रोधाऽमर्षरोषप्रतिघा रुट्क्रुधौ स्त्रियौ" इत्यमरः। आक्रुश्यत = आङ्–उपसर्गपूर्वक "क्रुश आह्वाने रोदने च" धातुसे कर्ममें लङ् + त। इस पद्यमें कामका धनु (फूल) के रससे आर्द्र हाथ होनेका, केतकीके रजवाला हाथ होनेका और नलकर्तृक कामनिन्दाका भी सम्बन्ध न होनेपर भी तत्तत्सम्बन्धकी उक्ति होनेसे तीन अतिशयोक्ति अलङ्कारोंकी संसृष्टि है॥ ८१॥

विदर्भसुभ्रूस्तनतुङ्गताऽऽप्तये घटानिवाऽपश्यदलं तपस्यतः।
फलानि धूमस्य धयानधोमुखान् स दाडिमे दोहदधूपिनि द्रुमे॥ ८२॥

अन्वयः—स दोहदधूपिनि दाडिमे द्रुमे विदर्भसुभ्रूस्तनतुङ्गताऽऽप्तये अलं तपस्यतः धूमस्य धयान् अधोमुखान् घटान् इव फलानि अपश्यत्॥ ८२॥

व्याख्या—सः = नलः, दोहदधूपिनि = फलवर्द्धकदोहदधूपयुक्ते, दाडिमे = करके, द्रुमे = वृक्षे, विदर्भसुभ्रूस्तनतुङ्गताप्तये = दमयन्तीपयोधरोन्नततालाभाय, अलम् = अत्यर्थं, तपस्यतः = तपश्चरतः, अतः धूमस्य = दोहदधूमस्य, धयान् = पातॄन्, पानकारिण इत्यर्थः, अधोमुखान् = अवनतवदनान्, घटान् इव = कुम्भान् इव, फलानि = दाडिमफलानि, अपश्यत् = दृष्टवान्, उन्नतिलाभार्थमन्येऽपि अधोमुखत्वेन धूमं पीत्वा तपश्चरन्तीति भावः॥ ८२॥

अनुवादः—नलने (फलादिवर्द्धक) दोहदधूपवाले अनारके पेड़में दमयन्तीके पयोधरोंकी ऊँचाई पानेके लिए अत्यन्त तपस्या करते हुए और धूमको पीनेवाले अधोमुख घटोंके समान फलोंको देखा॥ ८२॥

टिप्पणी—दोहदधूपिनि = दोहदश्चाऽसौ धूपः (क० धा०)। वृक्ष, गुल्म और लताओंमें फूल और फल उत्पन्न होनेके समयसे पूर्व ही फूल और फलोंके उत्पादनके लिए जिस द्रव्यका उपयोग किया जाता है उसे "दोहद" कहते हैं। जैसे कि—

"तरुगुल्मलतादीनामकाले कुशलैः कृतम्।
पुष्पाद्युत्पादकं द्रव्यं दोहदं स्यात्तु तत्क्रिया॥" (शब्दाऽर्णव)।

दोहदधूपः अस्याऽस्तीति दोहदधूपी, तस्मिन् (दोहदधूप + इनि + ङि)। दाडिमे = "समौ करकदाडिमौ" इत्यमरः। विदर्भसुभ्रूस्तनतुङ्गताऽऽप्तये = शोभने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भ्रुवौ यस्याः सा सुभ्रूः (बहु०), विदर्भेषु सुभ्रूः, दमयन्तीत्यर्थः (स० त०), विदर्भसुभ्रुवः स्तनौ (ष० त०)। तुङ्गस्य भावः तुङ्गता, तुङ्ग + तल् + टाप्। विदर्भसुभ्रूस्तनयोः तुङ्गता (ष० त०), तस्या आप्तिः, तस्यै (ष० त०), "तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या" इस वार्तिकसे चतुर्थी। तपस्यतः = तपश्चरतीति तपस्यन्, तस्य, "तपस्" शब्दसे "कर्मणो रोमन्थतपोभ्यां वर्तिचरोः" इस सूत्रसे क्यङ् प्रत्यय और "तपसः परस्मैपदं च" इससे परस्मैपद होकर लट् (शतृ) + ङस्। धयान् = धयन्तीति धयाः, तान् "धेट् पाने" धातुसे "पाघ्राध्माधेड्दृशः शः" इस सूत्रसे श प्रत्यय। अधोमुखान् = अधो मुखं येषां ते, तान् (बहु०)। अपश्यत् = दृश् (पश्य) + लङ् + तिप्। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥८२॥

वियोगिनीमैक्षत दाडिमीमसौ प्रियस्मृतेः स्पष्टमुदीतकण्टकाम्।
फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृद्विशच्छुकास्यस्मरकिंशुकाऽऽशुगाम् ॥ ८३ ॥

अन्वयः—असौ वियोगिनीं प्रियस्मृतेः स्पष्टम् उदीतकण्टकां फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृद्विशच्छुकास्यस्मरकिंशुकाऽऽशुगां दाडिमीम् ऐक्षत ॥ ८३ ॥

व्याख्या—असौ = नलः, वियोगिनीं=पक्षियोगिनीं, विरहिणीं च। प्रियस्मृतेः= प्रीतिकरदोहदादिस्मरणात्, नायकस्मरणाच्च। स्पष्टं = व्यक्तम्, उदीतकण्टकाम् = उत्पन्नतीक्ष्णाऽग्राऽवयवाम्, उत्पन्नरोमाञ्चां च, फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृद्विशच्छुकाऽऽस्यस्मरकिंशुकाऽऽशुगां= दाडिमीफलस्थलस्फुटितरक्तहृदयप्रविशत्कीरमुखकामपलाशवाणां, दाडिमीं = दाडिमवृक्षं, कांचिन्नायिकां च, ऐक्षत = अपश्यत् ॥ ८३ ॥

अनुवादः—जिसपर तोता बैठा था, प्रियके स्मरणसे रोमाञ्चसे युक्त वियोगिनी स्त्रीकी समान कण्टकयुक्त, नायिकाके फलसदृश स्तनोंके भीतर अनुरागयुक्त विदीर्ण हृदयमें प्रविष्ट कामदेवके पलाशपुष्परूप वाणके सदृश जिसके विदीर्ण लाल फलमें प्रविष्ट तोतेकी चोंच दिखाई पड़ती थी ऐसी दाडिमी (अनारके पेड़)-को राजा नलने देखा ॥ ८३ ॥

टिप्पणी—वियोगिनीं = वियोगः अस्या अस्तीति वियोगिनी, ताम्, वियोग + इनि + ङीप्। दाडिमी (दाडिम वृक्ष) में यह व्युत्पत्ति है। विना (पक्षिणा) योगिनी (संयुक्ता) (तृ० त०) विरहिणी स्त्रीमें यह व्युत्पत्ति है। प्रियस्मृतेः= प्रियस्य (कान्तस्य, प्रीतिकारकदोहदादेर्वा) स्मृतिः, तस्याः (ष० त०)। उदीतकण्टकाम् = उदीयन्ते स्म इति उदीताः, उद्–उपसर्गपूर्वक "ईङ् गतौ" इस दिवादि धातुसे कर्ताके अर्थमें क्त प्रत्यय। उदीताः कण्टकाः (रोमाञ्चाः, तीक्ष्णाऽग्रावयवाः वा) यस्याः सा उदीतकण्टका, ताम् (बहु०)। फलस्तन-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्थानविदीर्णरागिहृद्विशच्छुकाऽऽस्यस्मरकिंशुकाऽऽशुगां = फलानि एव स्तनौ (रूपक०), तौ एव स्थानम् (रूपक०)। तस्मिन् विदीर्णम् (स० त०)। दाडिमी (अनार) के पक्षमें पकनेसे विदीर्ण, नायिकाके पक्षमें विरहके तापसे विदीर्ण। रागः अस्याऽस्तीति रागि (राग + इनि)। दाडिमी फलके पक्षमें राग (लालवर्ण) वाला, नायिकाके पक्षमें अनुरागवाला। फलस्तनस्थानविदीर्ण-रागि च तत् हृत् (क० धा०)। दाडिमी पक्षमें हृत् = मध्य भाग, नायिका-पक्षमें—हृदय प्रदेश। शुकस्य आस्यम् (ष० त०)। किंशुकम् एव आशुगः (रूपक०)। स्मरस्य किंशुकाऽऽशुगः (ष० त०)। विशति इति विशत्, विश + लट् (शतृ)। विशच्च तत् शुकास्यम् (क० धा०)। अनारका बीज खानेके लिए घुसता हुआ यह तात्पर्य है। फलस्तनस्थानविदीर्णरागिहृदि विशच्छुकास्यम् (स० त०) स्मरस्य किंशुकाऽऽशुगः (ष० त०)। फलस्तनस्थानविदीर्णरागि-हृद्विशच्छुकास्यम् एव स्मरकिंशुकाऽऽशुगः यस्याः सा, ताम् (बहु०)। इस पद्यमें श्लिष्ट एकदेशविवर्ति रूपक अलङ्कार है ॥ ८३ ॥

स्मराऽर्धचन्द्रेषुनिभे क्रशीयसां स्फुटं पलाशेऽध्वजुषां पलाऽशनात्।
स वृन्तमालोकत खण्डमन्वितं वियोगिहृत्खण्डिनि कालखण्डजम् ॥ ८४ ॥

अन्वयः—सः स्मराऽर्द्धचन्द्रेषुनिभे वियोगिहृत्खण्डिनि क्रशीयसाम् अध्वजुषां पलाऽशनात् स्फुटं पलाशे अन्वितं वृन्तं कालखण्डजं खण्डम् आलोकत ॥ ८४ ॥

व्याख्या—नलः = नैषधः, स्मरार्धचन्द्रेषुनिभे = कामाऽर्धचन्द्राकारबाणसदृशे, वियोगिहृत्खण्डिनि = विरहिहृदयच्छेदिनि, क्रशीयसां = कृशतराणाम्, अध्वजुषां = पान्थानां, पलाशनात् = मांसभक्षणात् स्फुटं = प्रकटम् एव, पलाशे = अन्वर्थके पलाशे, किंशुकपुष्पे। अन्वितं = सम्बद्धं, वृन्तं = प्रसवबन्धनं तदेव कालखण्डजं खण्डं = यकृत्खण्डम्, कृष्णवर्णत्वादिति भावः। आलोकत = दृष्टवान् ॥ ८४ ॥

अनुवादः—नलने कामदेवके अर्धचन्द्राकार बाणके सदृश, विरही जनोंके हृदयको खण्डित करनेवाले और प्रियावियोगसे अत्यन्त दुर्बल पथिकोंके पल-(मांस) को भक्षण करनेसे अन्वर्थ पलाशकी कलीमें सम्बद्ध प्रसवबन्धनको कलेजेके टुकड़ेके समान देखा ॥ ८४ ॥

टिप्पणी—स्मराऽर्धचन्द्रेषुनिभे = अर्धं चन्द्रस्य अर्धचन्द्रः, "अर्धं नपुंसकम्" इससे समासः। अर्धचन्द्राकार इषुः अर्धचन्द्रेषुः, (मध्यमपदलोपी समास)। स्मरस्य अर्धचन्द्रेषुः (ष० त०)। स्मराऽर्धचन्द्रेषुणा सदृशं स्मराऽर्धचन्द्रेषुनिभम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्मिन् (तृ० त०)। नित्यसमास होनेसे अस्वपद विग्रह। "स्युरुत्तरपदेत्वमी। निभसङ्काशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः।" इत्यमरः। यह "पलाशे" इस पदका विशेषण है। वियोगिहृत्खण्डिनि = वियोगः अस्ति येषां ते वियोगिनः, वियोग + इनिः। वियोगिनां हृत् (ष० त०)। तत्खण्डयतीति वियोगिहृत्खण्डि, तस्मिन्, वियोगिहृत् + खडि + णिनि + ङि। यह भी "पलाश"का विशेषण है। क्रशीयसाम् = अतिशयेन कृशाः क्रशीयांसः, तेषाम्, "कृश" शब्दसे "द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ" इस सूत्रसे ईयसुन् प्रत्यय और "र ऋतो हलादेर्लघोः" इस सूत्रसे 'ऋ' के स्थानमें "र" आदेश। अध्वजुषाम् = अध्वानं जुषन्ते इति अध्वजुषः, तेषाम्, "अध्वन्" उपपदपूर्वक "जुषी प्रीतिसेवनयोः" धातुसे क्विप् (उपपद०)। पलाऽशनात् = पलस्य अशनं, तस्मात् (ष० त०)। "पलमुन्मानमांसयोः" इति हैमः। अन्वितम् = अनु + इण् + क्तः। वृन्तं = "वृन्तं प्रसवबन्धनम्" इत्यमरः। कालखण्डजं = कालखण्डात् जातं, तत्, कालखण्ड + जन् + ड। "कालखण्डयकृती तु समे इमे" इत्यमरः। हिन्दीमें कालखण्डको "कलेजा" कहते हैं। आलोकत = आङ्–उपसर्गपूर्वक "लोकृ दर्शने" धातुसे लङ् + त। इस पद्यमें "स्मरार्धचन्द्रेषुनिभे" यहाँपर उपमा और "कालखण्डजं खण्डम्" यहाँपर इव आदि उत्प्रेक्षावाचक शब्दके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है॥ ८४॥

> नवा लता गन्धवहेन चुम्बिता करम्बिताङ्गी मकरन्दशीकरैः।
> दृशा नृपेण स्मितशोभिकुड्मला दराऽऽदराभ्यां दरकम्पिनी पपे॥ ८५॥

अन्वयः—गन्धवहेन चुम्बिता मकरन्दशीकरैः करम्बिताऽङ्गी स्मितशोभिकुड्मला दरकम्पिनी नवा लता नृपेण दराऽऽदराभ्यां दृशा पपे॥ ८५॥

व्याख्या—गन्धवहेन = वायुना, चन्दनाद्यनुलिप्तेन पुरुषेण च, चुम्बिता = स्पृष्टा, कृतमुखसंयोगा च, मकरन्दशीकरैः = पुष्परसकणैः; करम्बिताऽङ्गी = मिश्रिताऽवयवा, कस्यचित्पुरुषस्य स्पर्शेन स्वेदयुक्ताऽङ्गी च। स्मितशोभिकुड्मला = विकासरम्यमुकुला, मधुरहासमनोहरदशनमुकुला च; दरकम्पिनी = वातस्पर्शात् ईषत्कम्पिनी, पुरुषस्पर्शात्सात्त्विककम्पयुक्ता च, नवा = नूतना, लता = वल्ली, लतासदृशी कान्ता च, नृपेण = नलेन, दराऽऽदराभ्यां = भयतृष्णाभ्याम्, उपलक्षितेन सता, कामोद्दीपनाद्भयं प्रियासादृश्यात् आदरश्चेति भावः। दृशा = नेत्रेण करणेन, पपे = पीता, लालसया अवलोकितेति भावः॥ ८५॥

अनुवादः—चन्दन आदिसे अनुलिप्त किसी पुरुषसे चुम्बित, पुरुषके स्पर्शसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वेदयुक्त शरीरवाली, मन्द हास्यसे मुकुलके समान दन्तोंवाली और पुरुषके स्पर्शसे कुछ कम्पसे युक्त किसी नायिकाकी समान वायुसे स्पृष्ट, पुष्परसोंसे मिश्रित अवयवोंवाली मन्दहास्योंके समान कोंपलोंसे शोभित होनेवाली और हवासे कुछ हिलनेवाली नई लताको राजा नलने भय और आदरके साथ नेत्रोंसे पान किया (इच्छापूर्वक देख लिया) ॥ ८५ ॥

टिप्पणी—गन्धवहेन = गन्धं वहतीति गन्धवहः, तेन गन्ध + वह + अच् (उपपद०)। "पृषदश्वो गन्धवहो गन्धवाहाऽनिलाऽऽशुगाः ।" इत्यमरः। समासोक्ति अलङ्कार होनेसे प्रस्तुत गन्धवह आदि शब्दोंसे अप्रस्तुत नायक आदि अर्थ भी प्रतीत होते हैं। चुम्बिता = चुबि + क्त, (कर्ममें) + टाप्। मकरन्दशीकरैः = मकरन्दस्य शीकराः, तैः (ष० त०)। "मकरन्दः पुष्परसः" इति "शीकरोऽम्बुकणाः स्मृताः" इति चाऽमरः। करम्बिताऽङ्गी = करम्बितानि अङ्गानि यस्या सा (बहु०), "अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्" इससे ङीष्। "करम्बितं मिश्रिते स्यात् खचिते च" इति त्रिकाण्डशेषः। स्मितशोभिकुड्मला = स्मितवत् शोभन्ते इति स्मितशोभिनः, स्मित + शुभ् + णिनिः (उपपद०) स्मितशोभिनः कुड्मलाः यस्याः सा (बहु०), कुड्मल शब्दका अप्रस्तुत अर्थ दन्त है। दरकम्पिनी = दरम् (ईषत्) कम्पते तच्छीला दर + कपि + णिनि + ङीप्। प्रस्तुत लताके पक्षमें हवासे कुछ हिलनेवाली और अप्रस्तुत नायिकापक्षमें नायकके स्पर्शसे सात्त्विक कम्पवाली ऐसा तात्पर्य होता है। दराऽऽदराभ्यां = दरं च आदरश्च दराऽऽदरौ, ताभ्याम् (द्वन्द्वः)। "इत्थंभूतलक्षणे" इससे तृतीया। "दरोऽस्त्री शङ्खभीगर्तेष्वल्पाऽर्थे त्वव्ययम्" इति वैजयन्ती। उद्दीपक होनेसे डर और प्रिया दमयन्तीके सादृश्यसे आदरसे युक्त राजाने लालसापूर्वक लताको देखा यह तात्पर्य है। पपे = पा + लिट् (कर्मणि)। इस पद्यमें श्लिष्ट विशेषणसाम्यसे लिङ्गसाम्यसे और कार्यसाम्यसे भी प्रस्तुत लतामें अप्रस्तुत नायिकाके व्यवहारसाम्यसे समासोक्ति अलङ्कार है ॥ ८५ ॥

विचिन्वतीः पान्थपतङ्गहिंसनैरपुण्यकर्माण्यलिकज्जलच्छलात् ।
व्यलोकयच्चम्पककोरकावलीः स शम्बराऽरेर्बलिदीपिका इव ॥ ८६ ॥

अन्वयः—सः अलिकज्जलच्छलात् पान्थपतङ्गहिंसनैः अपुण्यकर्माणि विचिन्वतीः शम्बराऽरेः बलिदीपिका इव चम्पककोरकाऽऽवलीः व्यलोकयत् ॥ ८६ ॥

व्याख्या—सः नलः, अलिकज्जलच्छलात् = भ्रमराऽञ्जनकैतवात्, पान्थपतङ्गहिंसनैः = पथिकपक्षिवधैः, अपुण्यकर्माणि = पापक्रियाः, विचिन्वतीः = संगृह्णतीः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हिंसापापकारिणीरित्यर्थः । शम्बरारेः = कामदेवस्य, बलिदीपिका इव=पूजाप्रदीपान् इव, चम्पककोरकाऽवलीः = चम्पकपुष्पकलिकाश्रेणीः, व्यलोकयत्=अपश्यत् ॥८६॥

अनुवादः—नलने भ्रमररूप कज्जलके छलसे पान्थरूप पक्षियोंके वधोंसे पाप कर्मोंको इकट्ठा करती हुई, कामदेवकी पूजाके प्रदीपोंके समान चम्पक पुष्पोंकी कलियोंको देखा ॥ ८६ ॥

टिप्पणी—अलिकज्जलच्छलात् = अलयः कज्जलानि इव अलिकज्जलानि, "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे" इससे समास । अलिकज्जलानां छलं, तस्मात् (ष० त०) । पान्थपतङ्गहिंसनैः = पन्थानं नित्यं गच्छन्तीति पान्थाः, पथिन्–शब्दसे "पन्थो ण नित्यम्" इस सूत्रसे ण प्रत्यय, पन्थ आदेश और आदि वृद्धि, "अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थ पथिक इत्यपि ।" इत्यमरः । पान्था एव पतङ्गाः (रूपक०) । "पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च" इत्यमरः । पान्थपतङ्गानां हिंसनानि, तैः (ष० त०) । अपुण्यकर्माणि = पुण्यानि च तानि कर्माणि (क० धा०) । न पुण्यकर्माणि, तानि (नञ्०) । विचिन्वतीः = विचिन्वन्तीति विचिन्वन्त्यः, ताः वि + चिञ् + लट् (शतृ) + ङीप् + शस् । शम्बराऽरेः = शम्बरस्य अरिः, तस्य (ष० त०), "शम्बराऽरिर्मनसिजः । इत्यमरः । बलिदीपिकाः = बलेः दीपिकाः, ताः (ष० त०) । चम्पककोरकाऽऽवली = कोरकाणाम् आवल्यः (ष० त०) । चम्पकानां कोरकावल्यः, ताः (ष० त०) । व्यलोकयत् = वि + लोक + णिच् + लङ् + तिप् । इस पद्यमें रूपक कैतवाऽपह्नुति, उत्प्रेक्षा और उपमा इनका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ८६ ॥

अमन्यताऽसौ कुसुमेषुगर्भजं परागमन्धङ्करणं वियोगिनाम् ।
स्मरेण मुक्तेषु पुरा पुराऽरये तदङ्गभस्मेव शरेषु सङ्गतम् ॥ ८७ ॥

अन्वयः—अयं कुसुमेषुगर्भजं वियोगिनाम् अन्धङ्करणं परागं पुरा स्मरेण पुराऽरये मुक्तेषु शरेषु सङ्गतं तदङ्गभस्म इव अमन्यत ॥ ८७ ॥

व्याख्या—असौ = नलः, कुसुमेषुगर्भजं = पुष्परूपबाणाऽभ्यन्तरजातं, "कुसुमेषु गर्भगम्" इति पाठान्तरे कुसुमेषु = पुष्पेषु, गर्भगम् = अन्तःस्थितमित्यर्थः । वियोगिनां = विरहिणाम्, अन्धङ्करणं = नेत्रोपघातकं, परागं = सुमनोरजः, पुरा = पूर्वं, स्मरेण = कामदेवेन, पुराऽरये = शिवाय, मुक्तेषु = निक्षिप्तेषु, शरेषु = बाणेषु सङ्गतं = संसक्तं, तदङ्गभस्म इव = पुरार्यवयवभसितम् इव, अमन्यत = उत्प्रेक्षितवान् ॥ ८७ ॥

अनुवादः—राजाने फूलोंके भीतर रहे हुए, विरहियोंको अन्धा करानेवाले

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

परागको पूर्वकालमें कामदेवसे महादेवको लक्ष्य कर छोड़े हुए पुष्परूप बाणोंमें लगा हुआ महादेवके अङ्गमें संसक्त भस्मके समान जाना ॥ ८७ ॥

टिप्पणी—कुसुमेषुगर्भजं = कुसुमानि एव इषवः (रूपक०)। गर्भे जातः गर्भजः, गर्भ + जन् + ड (उपपद०)। कुसुमेषूणां गर्भजः, तम् (ष० त०)। अन्धङ्करणम् = अनन्धान् अन्धान् कुर्वन्ति अनेन इति, अन्ध–उपपदपूर्वक 'कृ' धातुसे "आढ्यसुभगस्थूलपलितनग्नाऽन्धप्रियेषु च्व्यर्थेष्वच्वौ कृञः करणे ख्युन्" इस सूत्रसे ख्युन् प्रत्यय और "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इस सूत्रसे मुम्। पुराऽरये = पुराणाम् अरिः, तस्मै, (ष० त०)। तदङ्गभस्म = तस्य अङ्गं (ष० त०), तस्मिन् भस्म (स० त०)। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार ॥ ८७ ॥

पिकाद्वने शृण्वति भृङ्गहुङ्कृतैर्दशामुदञ्चत्करुणं वियोगिनाम्।
अनास्थया सूनकरप्रसारिणीं ददर्श दूनः स्थलपद्मिनीं नलः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—दूनः नलः वने पिकात् भृङ्गहुङ्कृतैः वियोगिनां दशाम् उदञ्चत्करुणं शृण्वति अनास्थया सूनकरप्रसारिणीं स्थलपद्मिनीं ददर्श ॥ ८८ ॥

व्याख्या—दूनः = उपतप्तः, दमयन्तीविरहेणेति शेषः। नलः = नैषधः, वने = उपवने श्रोतरि, पिकात् = कोकिलात् वक्तुः सकाशात्, भृङ्गहुङ्कृतैः = भ्रमर-हुङ्कारैः, वियोगिनां = विरहिणां, दशाम् = अवस्थां, दुःखाऽवस्थामित्यर्थः। उदञ्च-त्करुणम् = उद्यत्कृपम्, विकसद्वृक्षविशेषं च यथा तथा, शृण्वति = आकर्णयति सति, अनास्थया = श्रोतुम् अनिच्छया, सूनकरप्रसारिणीं = पुष्परूपहस्तविस्ता-रिणीं, निवारयन्तीम् इव स्थिताम् इति भावः। स्थलपद्मिनीं = स्थलकमलिनीं, ददर्श = दृष्टवान्। यथा कस्मिंश्चिज्जने कस्माच्चिज्जनात् विरहिजनानां दुःखपूर्णाऽ-वस्थां श्रवणद्योतकहुङ्कारशब्देन शृण्वति काचित्सहृदया हस्तं प्रसार्य निषेधति तथैव उपवने श्रोतरि कोकिलाद्वक्तुः भृङ्गहुङ्कारैः वियोगिनां दशां साऽनुकम्पं शृण्वति सति अनिच्छया पुष्परूपहस्तप्रसारिणीं स्थलकमलिनीं नलो ददर्शेति भावः ॥ ८८ ॥

अनुवादः—दमयन्तीके विरहसे संतप्त नलने सुननेवाले उपवनके, वक्ता कोकिलसे भौंरोंके हुङ्कारोंसे वियोगियोंकी दुर्दशाको करुणापूर्वक सुननेपर अनिच्छासे पुष्परूप हाथको फैलाकर (निषेध करनेवालीकी समान) स्थलकमलिनीको देखा ॥ ८८ ॥

टिप्पणी—दूनः = "टुदु उपतापे" धातुसे कर्ताके अर्थमें क्त प्रत्यय और "ल्वादिभ्यः" इससे 'त' के स्थानमें 'न' कार और "दुग्वोर्दीर्घश्च" इससे दीर्घत्व। भृङ्गहुङ्कृतैः = भृङ्गाणां हुङ्कृतानि तैः (ष० त०)। उदञ्चत्करुणं = उदञ्चन्ती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(उद्यन्ती) करुणा यस्मिन् (कर्मणि) तद् यथा तथा (वहु०)। दूसरे पक्षमें उदश्चन्तः (विकसन्तः) करुणाः (वृक्षविशेषाः) यस्मिंस्तद् यथा तथा (वहु०)। जैसे करुणवृक्ष विकसित होते हैं उस तरह। "करुणस्तु रसे वृक्षे, कृपायां करुणा मता।" इति विश्वः। शृण्वति = श्रु + लट् (शतृ) + ङि। अनास्थया = न आस्था, तया (नञ्०)। सूनकरप्रसारिणी = सूनम् एव करः (रूपक०)। सूनकरं प्रसारयतीति तच्छीला, ताम् सूनकर + प्र + सृ + णिच् + णिनि + ङीप् + अम्। ददर्श = दृश् + लिट् + तिप्। इस पद्यमें स्थलपद्मिनी और वनमें कार्यसे स्त्री और पुरुषके व्यवहारका समारोप होनेसे समासोक्ति अलङ्कार, रूपक और प्रतीयमानोत्प्रेक्षा इनमें अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ८८ ॥

रसालसालः समदृश्यताऽमुना स्फुरद्द्विरेफारवरोषहुङ्कृतिः।
समीरलोलैर्मुकुलैर्वियोगिने जनाय दित्सन्निव तर्जनाभियम् ॥ ८९ ॥

अन्वयः—अमुना स्फुरद्द्विरेफाऽऽरवरोषहुङ्कृतिः समीरलोलैः मुकुलैः वियोगिने जनाय तर्जनाभियं दित्सन् इव रसालसालः समदृश्यत ॥ ८९ ॥

व्याख्या—अमुना = नलेन, स्फुरद्द्विरेफाऽऽरवरोषहुङ्कृतिः = संचलद्भ्रमरझङ्कारकोपहुङ्कारः, समीरलोलैः=वायुचञ्चलैः, मुकुलैः = कुड्मलैः, अङ्गुलिभिरिवेति भावः। वियोगिने = विरहिणे, जनाय = लोकाय, तर्जनाभियं = भर्त्सनाभयं, दित्सन् इव = दातुम् इच्छन् इव, रसालसालः = आम्रवृक्षः, समदृश्यत = सम्यग् दृष्टः ॥ ८९ ॥

अनुवादः—नलने घूमते हुए भौंरोंके झङ्काररूप क्रोधका हुङ्कारवाला और वायुसे चञ्चल उँङ्गलियोंके समान मुकुलोंसे वियोगी जनको भर्त्सनके भयको देनेकी इच्छा करते हुएके समान आमके पेड़को देखा ॥ ८९ ॥

टिप्पणी—स्फुरद्द्विरेफाऽऽरवरोषहुङ्कृतिः = द्वौ रेफौ येषां ते द्विरेफाः (वहु०), द्विरेफ शब्द लक्षितलक्षणासे भ्रमरमें दो रेफ होनेसे उसका लक्षक है। "द्विरेफपुष्पलिड्भृङ्गषट्पदभ्रमराऽलयः।" इत्यमरः। स्फुरन्तश्च ते द्विरेफाः (क० धा०)। तेषाम् आरवः (ष० त०)। रोषस्य हुङ्कृतिः (ष० त०)। स्फुरद्द्विरेफारव एव रोषहुङ्कृतिः यस्य सः (वहु०)। समीरलोलैः = समीरेण लोलाः, तैः (तृ० त०)। तर्जनाभियं = तर्जनाया भीः, तां, (ष० त०), "भीत्राऽर्थानां भयहेतुः" इससे पञ्चमी होकर "भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्" इससे समास। दित्सन् = दातुम् इच्छन्, सन्प्रत्ययाऽन्त 'दा' धातुसे द्वित्व, लट्के स्थानमें शतृ आदेश, "सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्" इससे इस्, "अत्रलोपोऽभ्यासस्य"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इससे अभ्यासका लोप, "सः स्यार्धधातुके" इससे सकारके स्थानमें तकार आदेश। रसालसालः = रसालश्चाऽसौ सालः (क० धा०) समदृश्यत = सं + दृश + लङ् (कर्ममें) + त। इस पद्यमें रूपक और उत्प्रेक्षा, इनको अङ्गाऽङ्गिभावसे सङ्कर है॥ ८९॥

दिने दिने त्वं तनुरेधि रेऽधिकं, पुनः पुनर्मूर्च्छ च मृत्युमृच्छ च।
इतीव पान्थं शपतः पिकान्द्विजान्सखेदमैक्षिष्ट स लोहितेक्षणान्॥ ९०॥

अन्वयः—रे! त्वं दिने दिने अधिकं तनुः एधि, पुनः पुनः मूर्च्छ च; मृत्युम् ऋच्छ च" इति पान्थं शपत इव लोहितेक्षणान् पिकान् द्विजान् स सखेदम् ऐक्षिष्ट॥ ९०॥

व्याख्या—रे = हे दीन!, त्वं, दिने दिने = प्रतिदिनम्, अधिकं = भृशं, तनुः = कृशः, एधि = भव, पुनः पुनः = भूयो भूयः, मूर्च्छ च = मूर्च्छां प्राप्नुहि च, किं बहुना–मृत्युं = मरणम्, ऋच्छ च = गच्छ च, इति = इत्थं, पान्थं = पथिकं, शपत इव = आक्रोशत इव, लोहितेक्षणान् = रक्तदृष्टीन्, कोकिलपक्षे स्वभावतः, ब्राह्मणपक्षे रोषात् इति बोद्धव्यम्। द्विजान् = पक्षिणः, कोकिलान्, पक्षान्तरे ब्राह्मणान्, सः = नलः, सखेदं = विषादपूर्वकम्, ऐक्षिष्ट = दृष्टवान्, स्वस्याऽपि उक्तशङ्कयेति भावः॥ ९०॥

अनुवादः—"रे पान्थ! तुम प्रतिदिन अधिक कृश बनो, फिर-फिर मूर्च्छित हो जाओ, मृत्युको भी प्राप्त करो" इस प्रकारसे पथिकको शाप देते हुएके समान लाल नेत्रोंवाले पक्षियों (कोयलों) को क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले ब्राह्मणोंके समान नलने खेदके साथ देखा॥ ९०॥

टिप्पणी—अधिकम् = यह क्रियाविशेषण है। एधि = "अस भुवि" धातुसे लोट्के 'हि'के स्थानमें "हुझल्भ्यो हेर्धिः" इससे "धि" आदेश, "घ्वसोरेद्धावभ्यासलोपश्च" इससे एत्व और "श्नसोरल्लोपः" इससे अकारका लोप। मूर्च्छ = "मुर्छा मोहसमुच्छ्राययोः" धातुसे लोट् + सिप्। ऋच्छ = ऋच्छ + लोट् + सिप्। पान्थम् = पथिन् (पन्थ) + ण + अम्। यहाँपर ज्ञीप्स्यमानत्व (ज्ञापनमें इष्टत्व) के न होनेसे 'श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः" इस सूत्रसे सम्प्रदानके न होनेसे द्वितीया। शपतः = शपन्तीति शपन्तः, तान् "शप आक्रोशे" धातुसे लट् (शतृ) + शस्। उपालम्भ न होनेसे आत्मनेपद नहीं हुआ। लोहितेक्षणान् = लोहिते ईक्षणे येषां, तान् (बहु०)। कोकिल स्वभावसे ही और ब्राह्मण कोपसे लाल नेत्रोंवाले हैं यह तात्पर्य है। द्विजान् = द्विर्जयन्ते इति द्विजाः, तान्। "अन्येष्वपि दृश्यते"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इससे ड प्रत्यय। सखेदं = खेदेन सहितं यथा तथा (तुल्ययोग बहु०)। ऐक्षिष्ट = ईक्ष + लुङ् + त। इस पद्यमें "शपत इव" यहाँपर उत्प्रेक्षा अलङ्कार है और "द्विज" पदसे ब्राह्मण अर्थका भी बोध होनेसे उपमा अलङ्कार व्यङ्ग्य होता है अतः (उत्प्रेक्षा) अलङ्कारसे अलङ्कार ध्वनि है ॥ ६० ॥

अलिस्रजा कुड्मलमुच्चशेखरं निपीय चाम्पेयमधीरया दृशा।
स धूमकेतुं विपदे वियोगिनामुदीतमातङ्कितवानशङ्कत ॥ ६१ ॥

अन्वयः—अलिस्रजा उच्चशेखरं चाम्पेयं कुड्मलम् अधीरया दृशा निपीय आतङ्कितवान् स वियोगिनां विपदे उदीतं धूमकेतुम् अशङ्कत ॥ ६१ ॥

व्याख्या—अलिस्रजा = भ्रमरपङ्क्त्या, उच्चशेखरम् = उन्नतशिरोभूषणं; भ्रमरमलिनाऽङ्गमिति भावः। चाम्पेयं = चम्पकविकारं, कुड्मलं = मुकुलम्, अधीरया = धैर्यरहितया, दृशा = दृष्ट्या, निपीय = सादरं दृष्ट्वा, आतङ्कितवान् = भीतः, किञ्चिदनिष्टमुत्प्रेक्षितवानिति भावः। सः = नलः, वियोगिनां = विरहिणां, विपदे = विनाशसूचनाय, उदीतम् = उत्थितं, धूमकेतुम्=अशुभसूचकं तारापुञ्जम्, अशङ्कत = शङ्कितवान् ॥ ६१ ॥

अनुवादः—भ्रमरोंकी पङ्क्तियोंसे ऊँचे शिरोभूषणवाली चम्पाकी कलीको अधीर दृष्टिसे देखकर अनिष्टकी आशङ्का करनेवाले नलने उसमें वियोगियोंके विनाशके लिए उठे हुए धूमकेतु होनेकी शङ्का की ॥ ६१ ॥

टिप्पणी—अलिस्रजा = अलीनां स्रक्, तया (ष० त०)। उच्चशेखरम् = उच्चः शेखरो यस्य, तम् (बहु०), चाम्पेयं = चम्पाया अपत्यं पुमान् चाम्पेयः, तम् "स्त्रीभ्यो ढक्" इससे ढक् (एय) प्रत्यय और "किति च" इससे आदि-वृद्धि। यहाँपर मल्लिनाथजीने "न षट्पदो गन्धफलीमजिघ्रत्" ऐसी उक्ति होनेसे भौंरोंमें चम्पाकी कली कैसे उन्नत होगी ऐसी आशङ्का कर भौंरा उसे छूकर मर जाता है, इतनेसे ऐसी प्रसिद्धि हो गई, अथवा चाम्पेय कहनेसे यहाँपर नाग-केसर लेना चाहिए इस प्रकार उसका परिहार किया है। "अथ चाम्पेयश्चम्पको हेमपुष्पकः" इति "एतस्य कलिका गन्धफली स्यात्" इति "चाम्पेयः केसरो नाग-केसरः काञ्चनाह्वयः।" इति चाऽमरः। अधीरया = न धीरा, तया (नञ्०)। निपीय=नि + पा + क्त्वा (ल्यप्)। आतङ्कितवान्=आङ् + तकि + क्तवतु + सु। विपदे = तादर्थ्यमें चतुर्थी। धूमकेतुं = धूमप्रधानः केतुः, तम् (मध्यमपदलोपी स०)। "अग्न्युत्पातौ धूमकेतू" इत्यमरः। अशङ्कत = शकि + लङ् + त। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ६१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

गलत्परागं भ्रमिभङ्गिभिः पतत् प्रसक्तभृङ्गावलि नागकेशरम् ।
स मारनाराचनिघर्षणस्खलज्ज्वलत्कणं शाणमिव व्यलोकयत् ॥ ९२ ॥

अन्वयः—स गलत्परागं भ्रमिभङ्गिभिः पतत् प्रसक्तभृङ्गावलि नागकेशरं मारनाराचनिघर्षणस्खलज्ज्वलत्कणं शाणम् इव व्यलोकयत् ॥ ९२ ॥

व्याख्या—सः = नलः, गलत्परागं = निर्यद्रजस्कं, भ्रमिभङ्गिभिः = भ्रमणप्रकारैः, उपलक्षितं, पतत् = भ्रश्यत् प्रसक्तभृङ्गावलि = सक्तभ्रमरकुलं, नागकेशरं = कुसुमविशेषं, मारनाराचनिघर्षणस्खलज्ज्वलत्कणं = स्मरशरकर्षणलुठद्दीप्यमानं स्फुलिङ्गं, शाणम् इव = निकषम् इव, व्यलोकयत् = अपश्यत् ॥ ९२ ॥

अनुवादः—नलने गिरते हुए परागवाले, घूमकर आती हुई भ्रमरपङ्क्तिसे सम्बद्ध, गिरे हुए नागकेशरके फूलको-कामदेवके बाणसंघर्षणसे निकलते हुए जलते हुए स्फुलिङ्गसे युक्त कसौटीके समान देखा ॥ ९२ ॥

टिप्पणी—गलत्परागं = गलन्तः परागा यस्मात्, तत् (बहु०) । भ्रमिभङ्गिभिः = भ्रमेः भङ्गमः, ताभिः (तृ० त०) । पतत् = पततीति, पत् + लट् (शतृ) । प्रसक्तभृङ्गाऽऽवलि = भृङ्गाणाम् आवलिः (ष० त०) । प्रसक्ता भृङ्गावलिः यस्मिन्, तत् (बहु०) । नागकेसरं = नागकेसरस्य विकारः (पुष्पम्) नागकेसरं, तत्, "तस्य विकारः" इससे अण् प्रत्यय, "पुष्पमूलेषु बहुलम्" इससे उसका लुक् । मारनाराचनिघर्षणस्खलज्ज्वलत्कणं = मारस्य नाराचाः (ष० त०), तेषां निघर्षणं (ष० त०), तस्मात् स्खलन्तः (प० त०) । मारनाराचनिघर्षणस्खलन्तः ज्वलन्तः कणाः यस्य सः, तम् (बहु०) । शाणम् = "शाणस्तु निकषः कषः ।" इत्यमरः । व्यलोकयत् = वि + लोकृ + णिच् + लङ् + तिप् । इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ९२ ॥

तदङ्गमुद्दिश्य सुगन्धि पातुकाः शिलीमुखालीः कुसुमाद् गुणस्पृशः ।
स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात्स्मरः स्वनन्तीरवलोक्य लज्जितः ॥९३॥

अन्वयः—सुगन्धि तदङ्गम् उद्दिश्य गुणस्पृशः कुसुमात् पातुकाः स्वनन्तीः शिलीमुखालीः अवलोक्य स्मरः स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् लज्जितः (अभवत्) ॥९३॥

व्याख्या—सुगन्धि = मनोहरगन्धं, तदङ्गं = नलाऽङ्गम्, उद्दिश्य = लक्ष्यीकृत्य, गुणस्पृशः = गन्धादिस्पृशः, मौर्वीस्पृशश्च, कुसुमात् = पुष्पात्, पातुकाः = धावन्तीः, स्वनन्तीः = ध्वनन्तीः, शिलीमुखालीः = भ्रमरपङ्क्तीः, बाणपङ्क्तीश्च, अवलोक्य = दृष्ट्वा, स्मरः = कामदेवः, स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् = स्वपुष्पधनुर्विषमनिःसृतबाणभ्रान्तेः, लज्जितः = व्रीडितः, अभवदितिशेषः ॥ ९३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—सुगन्धसे युक्त नलके अङ्गको उद्देश्य करके गुण (गन्ध आदि वा मौर्वी) को स्पर्श करनेवाले, पुष्पसे दौड़नेवाले, शब्द करते हुए भ्रमरसमूहोंको देखकर कामदेव अपने धनुसे निशानेसे चूके हुए वाणके भ्रमसे लज्जितके तुल्य हुए ॥ ९३ ॥

टिप्पणी—सुगन्धि = शोभनः गन्धः यस्य, तत् (बहु०)। "गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः" इस सूत्रसे समासान्त इ प्रत्यय। तदङ्गं = तस्य अङ्गं, तत् (ष० त०)। उद्दिश्य = उद् + दिश् = क्त्वा (ल्यप्)। गुणस्पृशः = गुणं (गन्धादिं मौर्वीं च) स्पृशन्तीति, ताः, गुण-उपपदपूर्वक स्पृश धातुसे "स्पृशोऽनुदके क्विन्" इस सूत्रसे क्विन् प्रत्यय (उपपद०), यह पद "शिलीमुखालीः" इसका विशेषण है। पातुकाः = पतन्तीति, ताः पत्-धातुसे "लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ्" इस सूत्रसे उकञ् + शस्। स्वनन्तीः = स्वनन्तीति स्वनन्त्यः, ताः, स्वन + लट् (शतृ) + ङीप् + शस्। शिलीमुखालीः = शिलीमुखानाम् (अलीनां बाणानां वा) आल्यः, ताः (ष० त०)। "अलिवाणौ शिलीमुखौ" इत्यमरः। अवलोक्य = अव + लोक् + क्त्वा (ल्यप्)। स्वचापदुर्निर्गतमार्गणभ्रमात् = स्वस्य चापः (ष० त०)। दुर्निर्गताश्च ते मार्गणाः (बाणाः), (क० धा०)। स्वचापात् दुर्निर्गतमार्गणाः (प० त०)। तेषां भ्रमः, तस्मात् (ष० त०)। इस पद्यमें श्लेष, भ्रमरोंमें बाणके भ्रमसे भ्रान्तिमान्, "लज्जितः" यहाँपर उत्प्रेक्षावाचक इव आदि शब्दोंके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा, इस प्रकार इन अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ९३ ॥

मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः क्षतं समुच्चरच्चन्दनसारसौरभम्।
स वारनारीकुचसञ्चितोपमं ददर्श मालूरफलं पचेलिमम् ॥ ९४ ॥

अन्वयः—स मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः क्षतं समुच्चरच्चन्दनसारसौरभं वारनारीकुचसञ्चितोपमं पचेलिमं मालूरफलं ददर्श ॥ ९४ ॥

व्याख्या—सः = नलः, मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः = वायुचलत्किसलयतीक्ष्णाऽग्राऽवयवैः, अन्यत्र विलसद्विटनखैरिति गम्यते। क्षतं = विलिखितम्, समुच्चरच्चन्दनसारसौरभं = प्रसर्पच्छ्रीखण्डसारसौगन्ध्यम्, अत एव वारनारीकुचसञ्चितोपमं = वेश्यापयोधरसम्पादितसादृश्यं, पचेलिमं = स्वतःपक्वं, मालूरफलं = बिल्वफलं, ददर्श = विलोकयामास ॥ ९४ ॥

अनुवादः—नलने वायुसे चलते हुए पल्लवोंके काँटोंसे विद्ध, फैलते हुए चन्दनके समान सौरभसे युक्त, वेश्याके पयोधरके सदृश पके हुए वेलफलको देखा ॥ ९४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—मरुल्ललत्पल्लवकण्टकैः = ललन्ति च तानि पल्लवानि (क० धा०)। मरुता ललत्पल्लवानि (तृ० त०)। तेषां कण्टकाः, तैः (ष० त०)। यहाँपर दूसरा अर्थ मरुत्‌रूप विलासीके नखोंसे क्षत ऐसा व्यङ्ग्य होता है। समुच्चरच्चन्दनसारसौरभं=चन्दनस्य सारः (ष० त०), तस्य सौरभम् (ष० त०)। समुच्चरत् चन्दनसारसौरभं यस्य, तत् (बहु०)। वेश्याका पयोधर भी चन्दन आदिके सौरभसे सम्पन्न होता है। वारनारीकुचसञ्चितोपमं = वारस्य (नर-समूहस्य) नारी वारनारी (ष० त०), "वारस्त्री गणिका वेश्या रूपाजीवा" इत्यमरः। तस्याः कुचः (ष० त०), सञ्चिता उपमा यस्य तत् (बहु०)। वारनारीकुचेन सञ्चितोपमं, तत् (तृ० त०)। पचेलिमं = स्वयमेव पच्यत इति, पच् धातुसे "केलिमर उपसंख्यानम्" इस वार्तिकसे कर्मकर्तामें केलिमर् प्रत्यय। मालूरफलं = मालूरस्य फलम् (ष० त०), तत्। "बिल्वे शाण्डिल्यशैलूषौ मालूरश्रीफलावपि।" इत्यमरः। ददर्श = दृश् + लिट् + तिप्। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है॥ ९४॥

युवद्वयीचित्तनिमज्जनोचितप्रसूनशून्येतरगर्भगह्वरम्।
स्मरेषुधीकृत्य धिया भियाऽन्धया स पाटलायाः स्तवकं प्रकम्पितः॥ ९५॥

अन्वयः—स युवद्वयीचित्तनिमज्जनोचितप्रसूनशून्येतरगर्भगह्वरं पाटलायाः स्तवकं भिया अन्धया धिया स्मरेषुधीकृत्य प्रकम्पितः॥ ९५॥

व्याख्या—सः = नलः, युवद्वयीचित्तेत्यादिः = तरुणमिथुनमानसब्रुडनसमर्थ-पुष्पपूर्णगर्भकुहरं पाटलायाः = पाटलवृक्षस्य, स्तवकं = गुच्छं, भिया = भयेन, अन्धया = मूढया, धिया = बुद्धया, स्मरेषुधीकृत्य = "इदं कामतूणीरम्" इति विभ्रम्य, प्रकम्पितः = चकम्पे॥ ९५॥

अनुवादः—नल युवती और युवक जनोंको आकर्षण करनेमें समर्थ पुष्पोंसे पूर्ण भीतरी भागवाले पाटल पुष्पोंके गुच्छेको भयसे मूढ बुद्धिसे "यह कामदेवका तरकश है" ऐसा विचार कर कम्पित हुए॥ ९५॥

टिप्पणी—युवद्वयीचित्तेत्यादिः = युवतिश्च युवा च युवानौ, "पुमान् स्त्रिया" इससे एकशेष, यूनोर्द्वयी (ष० त०)। युवद्वय्याः चित्ते (ष० त०)। नि + मस्ज + णिच् + ल्युट्=निमज्जनम्। युवद्वयीचित्तयोः निमज्जनं (ष० त०), तस्मिन् उचितानि (स० त०), तानि च तानि प्रसूनानि (क० धा०)। शून्यात् इतरत् (प० त०) अशून्यं पूर्णमित्यर्थः। गर्भस्य गह्वरम् (ष० त०)। युवद्वयीचित्त-निमज्जनोचितप्रसूनैः शून्येतरत् (तृ० त०), तत् गर्भगह्वरं यस्य, तम् (बहु०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्तवकं = "स्याद् गुच्छकस्तु स्तवकः" इत्यमरः। भिया = भीतिर्भीः साध्वसं भयम्" इत्यमरः। स्मरेषुधीकृत्य = स्मरस्य इषुधिः (ष० त०)। तूणोपासङ्ग-तूणीरनिषङ्गा इषुधिर्द्वयोः। तूण्याम्" इत्यमरः। अस्मरेषुधिः स्मरेषुधिः यथा सम्पद्यते तथा कृत्वा, स्मरेषुधि + च्वि + कृ + क्त्वा (ल्यप्)। प्रकम्पितः = प्र + कपि + क्तः (कर्तामें)। इस पद्यमें पाटलके स्तवकमें नलको कामदेवके तूणीर (तरकश) का भ्रम होनेसे भ्रान्तिमान् अलङ्कार है जैसे कि—

"साम्यादतस्मिंस्तद्बुद्धिर्भ्रान्तिमान् प्रतिभोत्थितः।" सा० द० १०–३६ ॥

मुनिद्रुमः कोरकितः शितिद्युतिर्वनेऽमुनाऽमन्यत सिंहिकासुतः।
तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितं कलाकलापं किल वैधवं वमन् ॥ ९६ ॥

अन्वयः—अमुना वने कोरकितः शितिद्युतिः मुनिद्रुमः तमिस्रपक्षत्रुटिकूटभक्षितं वैधवं कलाकलापं वमन् सिंहिकासुतः अमन्यत किल ॥ ९६ ॥

व्याख्या—अमुना = नलेन, वने = उपवने, कोरकितः = संजातकोरकः, शितिद्युतिः=कृष्णकान्तिः, पत्त्रेषु इति शेषः। मुनिद्रुमः = अगस्त्यवृक्षः, तमिस्रपक्ष-त्रुटिकूटभक्षितं = कृष्णपक्षक्षयव्याजगिलितं, वैधवं = चान्द्रमसं, कलाकलापं = कलासमूहं, वमन् = उद्गिरन्, सिंहिकासुतः = राहुः, अमन्यत = ज्ञातः, किल = निचयेन ॥ ९६ ॥

अनुवादः—नलने वनमें कलियोंसे युक्त, काली कान्तिवाले अगस्त्यके वृक्षको कृष्णपक्षके क्षयके बहानेसे खाये गये चन्द्रमाके कलासमूहको वमन करता हुआ राहु समझा ॥ ९६ ॥

टिप्पणी—कोरकितः = कोरकाः संजाता अस्य, 'कोरक' शब्दसे "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इससे इतच्। अगस्त्यवृक्षकी कलियाँ चन्द्रकी कलाओं-की समान सफेद होती हैं। शितिद्युतिः = शितिः द्युतिः यस्य सः (बहु०)। अगस्त्यके पत्ते काले होते हैं। "शिती धवलमेचकौ" इत्यमरः। तमिस्रपक्षत्रुटि-कूटभक्षितं = तमिस्रस्य पक्षः (ष० त०), तस्य त्रुटिः (ष० त०) तस्याः कूटम् (व्याजः) (ष० त०), तेन भक्षितः, तम् (तृ० त०)। वैधवं = विधोः अयं वैधवः, तम्, विधु + अण् + अम्। "विधुः सुधांऽशुः शुभ्रांऽशुः" इत्यमरः। कला-कलापं = कलानां कलापः, तम् (ष० त०)। वमन् = वमतीति, "टुवम् उद्गिरणे" धातुसे लट्के स्थानमें शतृ आदेश। सिंहिकासुतः = सिंहिकायाः सुतः (ष० त०) अमन्यत = मन् + लङ् + त (कर्ममें)। इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति और उत्प्रेक्षामें अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ९६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुरो हठाक्षिप्ततुषारपाण्डरच्छदाऽऽवृतेर्वीरुधि नद्धविभ्रमाः ।
मिलन्निमीलं विदधुर्विलोकिता नभस्वतस्तं कुसुमेषु केलयः ॥ ९७ ॥

अन्वयः—पुरो हठाक्षिप्ततुषारपाण्डरच्छदावृतेः नभस्वतः वीरुधि नद्धविभ्रमाः कुसुमेषु केलयः विलोकिताः (सत्यः) तं मिलन्निमीलं विदधुः ॥ ९७ ॥

व्याख्या—पुरः = अग्रे, हठाक्षिप्त तुषारपाण्डरच्छदाऽऽवृतेः = बलाकृष्टहिम-शुक्लपत्राऽऽवरणस्य, नभस्वतः = वायोः, वीरुधिः = लतायां, नद्धविभ्रमाः = अनुवद्धभ्रमणाः, कुसुमेषु = पुष्पेषु, केलयः = कम्पनादिक्रीडाः, कुसुमेषुकेलयः = कामक्रीडाश्च, विलोकिताः = दृष्टाः सत्यः, तं = नलं, मिलन्निमीलं = निमीलित-नेत्रं, विदधुः = चक्रुः । वायोर्लतायां कम्पनव्यापारस्य कामोद्दीपकत्वात् अथवा वायोर्लतायां कम्पनं समागमक्रियां ज्ञात्वा नलो निमीलितनयनो बभूवेति भावः ॥ ९७ ॥

अनुवादः—सामने बलसे बरफसे सफेद पत्ररूप वस्त्रको खींचनेवाले वायुकी लतामें सम्बद्ध भ्रमण वा विलाससे युक्त फूलोंमें कम्पन आदि क्रीडा वा काम-क्रीडाओंको देखकर नलने आंखोंको मूँद लिया ॥ ९७ ॥

टिप्पणी—हठाऽऽक्षिप्ततुषारपाण्डरच्छदाऽऽवृतेः = हठेन आक्षिप्ता (तृ० त०) । तुषारेण पाण्डराः (तृ० त०), "हरिणः पाण्डुरः पाण्डुः" इत्यमरः । तुषार-पाण्डराश्च ते छदाः (क० धा०) । "पत्त्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान् ।" इत्यमरः । तुषारपाण्डरच्छदानाम् आवृतिः (ष० त०) । हठाक्षिप्ता तुषार-पाण्डुरच्छदावृतिः येन, तस्य (वहु०) । वीरुधि = वीरुत्शब्दका "लता प्रतानिनी वीरुत् "इस उक्तिके अनुसार" फैली हुई लता ऐसा अर्थ न कर सामान्य लता ऐसा अर्थ करना चाहिए । नद्धविभ्रमाः = नद्धा विभ्रमाः (भ्रमणानि विलासा वा) यासां ताः (वहु०) । कुसुमेषु = यहाँपर विषयमें सप्तमी । अथवा कुसुमेषुकेलयः = कुसुमानि इषवः (बाणाः) यस्य स कुसुमेषुः, (वहु०) "शम्बराऽरिर्मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः ।" इत्यमरः । कुसुमेषोः केलयः (ष० त०) । मिलन्निमीलं = मिलन् निमीलः यस्य, तम् (वहु०) । विदधुः = वि + धा + लिट् + झि (उस्) । इस पद्यमें कार्य और श्लिष्टविशेषणसाम्यसे प्रस्तुत नभ-स्वान्में अप्रस्तुत नायकके व्यवहारका समारोप होनेसे समासोक्ति अलङ्कार है । लतामें वायुके पत्त्ररूप वस्त्रके हटानेसे समागमरूप व्यवहारकी प्रतीति होनेसे "नेक्षेताऽर्कं न नग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुनाम् (याज्ञवल्क्य० १-१३५) इस वचन-के अनुसार नलने आँखोंको मूँद लिया यह तात्पर्य है ॥ ९७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग पुस्तकालय

पुस्तकालय
आगत क्रमांक ....

गता यदुत्सङ्गतले विशालतां द्रुमाः शिरोभिः फलगौरवेण ताम् ।
कथं न धात्रीमतिमात्रनामितैः स वन्दमानानभिनन्दति स्म तान् ॥ ९८ ॥

अन्वयः—द्रुमा यदुत्सङ्गतले विशालतां गताः, तां धात्रीं फलगौरवेण अतिमात्रनामितैः शिरोभिः वन्दमानान् तान् स कथं न अभिनन्दति स्म ? ॥ ९८ ॥

व्याख्या—द्रुमाः = वृक्षाः, यदुत्सङ्गतले = यदुपरिदेशे, यदङ्कतले च, विशालतां = विवृद्धिं, गताः = प्राप्ताः, तां = धात्रीं, भुवं च, फलगौरवेण = फलभारेण, धर्माऽतिशयेन च हेतुना, अतिमात्रनामितैः = अतिशयप्रह्वीकृतैः' शिरोभिः = अग्रभागैः, उत्तमाङ्गैश्च, वन्दमानान् = स्पृशतः, अभिवादयमानांश्च, तान् = द्रुमान्, सः = नलः, कथं = केन प्रकारेण, न अभिनन्दति स्म = न अस्तौषीत्, अभिननन्द एवेति भावः । द्रुमाणां क्षेत्राऽनुरूपफलसम्पत्तिमपत्यानां मातृभक्तिं च को नाम नाऽभिनन्दतीति भावः ॥ ९८ ॥

अनुवादः—पेड़ जिन (धरती) के गोदमें विशाल हो गये उन (माता)-को फलोंके भारसे अत्यन्त झुके हुए शिरों (अग्र भागों) से अभिवादन करते हुए उन (पेड़ों) को नल कैसे अभिनन्दन नहीं करते थे ? ॥ ९८ ॥

टिप्पणी—यदुत्सङ्गतले = उत्सङ्गस्य तलम् (ष० त०), यस्या उत्सङ्गतलं, तस्मिन् (ष० त०)। विशालतां = विशालस्य भावो विशालता ताम्, 'विशाल + तल + टाप् + अम् । धात्रीं = धयन्ति याम् इति धात्री, ताम्, "धेट् पाने" धातुसे धः कर्मणि ष्ट्रन्" इस सूत्रसे ष्ट्रन् प्रत्यय और स्त्रीत्वविवक्षामें षित् होनेसे "षिद्गौरादिभ्यश्च" इस सूत्रसे ङीप् । "धात्री जनन्यामलकीवसुमत्युपमातृषु ।" इत्यमरः । इसका यहाँपर "उपमाता" ऐसा अर्थ भी ध्वनित होता है । फलगौरवेण = फलानां गौरवं, तेन (ष० त०) । अतिमात्रनामितैः = अतिमात्रं नामितानि, तैः (सुप्सुपा०) । वन्दमानान् = वन्दन्त इति वन्दमानाः, तान्, वदि + लट् (शानच्) + शस् । अभिनन्दति = अभि + नदि + लट् + तिप् । इस पद्यमें कार्यसे और विशेषणसाम्यसे भी प्रस्तुत द्रुमोंमें अप्रस्तुत पुत्रोंके व्यवहारकी प्रतीति होनेसे समासोक्ति अलङ्कार है ॥ ९८ ॥

नृपाय तस्मै हिमितं वनाऽनिलैः सुधीकृतं पुष्परसैरहर्महः ।
विनिर्मितं केतकरेणुभिः सितं वियोगिनेऽधत्त न कौमुदीमुदः ॥ ९९ ॥

अन्वयः—वनाऽनिलैः हिमितं, पुष्परसैः सुधीकृतं, केतकरेणुभिः सितं विनिर्मितम् अहर्महः (एव) कौमुदी वियोगिने तस्मै नृपाय मुदः न अधत्त ॥९९॥

व्याख्या—वनाऽनिलैः = उद्यानवातैः, हिमितं = हिमं (शीतलं) कृतम्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुष्परसैः = कुसुमरसैः, मकरन्दैरित्यर्थः, उपवनवाताऽऽनीतैरिति शेषः। सुधीकृतम् = अमृतीकृतं, तथा केतकरेणुभिः = केतकीपुष्परजोभिः, सितं = शुक्लं, विनिर्मितं = कृतम्, इत्थं च—अहर्महः = दिनतेजः आतप एव, कौमुदी = चन्द्रिका, वियोगिने = विरहिणे, तस्मै = पूर्वोक्ताय, नृपाय = नरेशाय, नलायेति भावः। मुदः = हर्षान्, न अधत्त = न कृतवती, प्रत्युत उद्दीपनमेव चकारेति भावः ॥ ९९ ॥

अनुवादः—उद्यानकी हवाओंसे ठण्डा किया गया, फूलोंके रसोंसे अमृतके समान किया गया, केतकी पुष्पोंके परागोंसे सफेद बनाया गया प्रकाश ही चाँदनीने वियोगी नलको हर्षप्रदान नहीं किया ॥ ९९ ॥

टिप्पणी—वनाऽनिलैः = वनस्य अनिलाः, तैः (ष० त०)। हिमितं = हिमं कृतम्, "हिम" शब्दसे "तत्करोति तदाचष्टे" इससे णिच् प्रत्यय होकर कर्ममें क्त प्रत्यय। पुष्परसैः = पुष्पाणां रसाः, तैः (ष० त०)। सुधीकृतम् = असुधा सुधा यथा संपद्यते तथा कृतम्, सुधा + च्वि + कृ + क्तः। केतकरेणुभिः = केतक्या विकाराः (पुष्पाणि) केतकानि, केतकी शब्दसे "तस्य विकारः" इससे अण् प्रत्यय और उसका "पुष्पमूलेषु बहुलम्" इससे लुप्। केतकानां रेणवः, तैः (ष० त०) विनिर्मितं = वि + निर् + मा + क्तः। अहर्महः = अह्नः महः (ष० त०), "रोऽसुपि" इस सूत्रसे रेफ आदेश। अधत्त = धा + लङ् + त। इस पद्यमें अहर्महमें कौमुदीका आरोप होनेसे रूपक अलङ्कार है ॥ ९९ ॥

वियोगभाजोऽपि नृपस्य पश्यता तदेव साक्षादमृतांऽशुमाननम्।
पिकेन रोषाऽरुणचक्षुषा मुहुः कुहूरुताऽऽहूयत चन्द्रवैरिणी ॥ १०० ॥

अन्वयः—वियोगभाजः अपि नृपस्य तत् आननम् एव साक्षात् अमृतांऽशुं पश्यता (अत एव) रोषाऽरुण-चक्षुषा पिकेन कुहूरुता चन्द्रवैरिणी मुहुः आहूयत ॥ १०० ॥

व्याख्या—वियोगभाजः अपि = वियोगिनः अपि, नृपस्य = राज्ञः, नलस्येत्यर्थः। तत्, आननम् एव = मुखम् एव, साक्षात् = प्रत्यक्षम्, अमृतांऽशुं = चन्द्रं, पश्यता = विलोकयता, अत एव रोषाऽरुणचक्षुषा = कोपरक्तनयनेन, वियोगेऽप्ययं चन्द्रतां न मुञ्चतीति रोषहेतुर्बोद्धव्यः। पिकेन = कोकिलेन, कुहूरुता = कुहुशब्देन, अमावास्यावाचकशब्देन वा, चन्द्रवैरिणी = कुहूः, अमावास्या इति भावः। मुहुः = वारं वारम्, आहूयत = आहूता (किम्) ॥ १०० ॥

अनुवादः—वियोगी होनेपर भी नलके मुखको ही प्रत्यक्ष चन्द्र देखते हुए

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले कोयलने कुहू (स्वाभाविक वा अमावास्यावाचक) शब्दसे चन्द्रकी वैरिणी अमावास्याको वारं वार बुलाया ॥ १०० ॥

टिप्पणी—वियोगभाजः = वियोगं भजतीति वियोगभाक्, तस्य (वियोग + भज् + ण्विः, ङस्) । साक्षात्="साक्षात्प्रत्यक्षतुल्ययोः" इत्यमरः । अमृतांऽशुम्= अमृतम् इव अंशुः यस्य सः, तम् (बहु०) । पश्यता = पश्यतीति पश्यन्, तेन, दृश् + (पश्य) + लट् (शतृ) + टा । रोषाऽरुणचक्षुषा = अरुणे चक्षुषी यस्य सः (बहु०) । रोषात् (इव) अरुणचक्षुः, तेन (प० त०) कुहूरुता = कुहूश्चाऽसौ रुत् कुहूरुत् तया (क० धा०) । "कुहूः स्यात्कोकिलाऽऽलापनष्टेन्दुकलयोरपि ।" इति विश्वः । चन्द्रवैरिणी = चन्द्रस्य वैरिणी (ष० त०) । आहूयत = आङ् + ह्वेञ् + लङ् + त (कर्ममें) । इस पद्यमें रूपक और "आहूयत" यहाँपर उत्प्रेक्षा-वाचक इव आदि शब्दोंके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा है, अतः दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ १०० ॥

अशोकमर्थाऽन्वितनामताऽऽशयागतान्शरण्यं गृहशोचिनोऽध्वगान् ।
अमन्यताऽवन्तमिवैष पल्लवैः प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकम् ॥ १०१ ॥

अन्वयः—एष पल्लवैः प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकम् अशोकम् अर्थाऽन्वित-नामताशया शरण्यं गतान् गृहशोचिनः अध्वगान् अवन्तम् इव अमन्यत ॥ १०१ ॥

व्याख्या—एषः = नलः, पल्लवैः = किसलयैः, प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकं = गृहीतमदनदीप्यमानायुधक्षारकम्, अशोकम् = अशोकवृक्षं वञ्जुलाऽपरनामधेयम्, अर्थाऽन्वितनामताऽऽशया = अन्वर्थाभिधानताऽभिलाषेण, अयमशोकः, अतएव शोक-रहितोऽस्ति अतः अस्मानपि शोकरहितं करिष्यतीत्याशयेति भावः । शरण्यम् = शरणसाधुं, तम् अशोकमित्यर्थः । गतान् = प्राप्तान्, गृहशोचिनः = गृहम् (पत्नीम्) उद्दिश्य शोकं कुर्वतः, अध्वगान् = पान्थान्, अवन्तम् इव = रक्षन्तम् इव, शरणा-गतानां रक्षणे महाफलमरक्षणे च महादोषं भावयित्वेति शेषः । अमन्यत = ज्ञातवान् ॥ १०१ ॥

अनुवादः—नलने पल्लवोंसे कामदेवके जलते हुए अस्त्रोंकी नई कलियोंको लेनेवाले अशोक वृक्षको उसके नामकी अन्वर्थता (यह अशोक = शोक रहित है, अतः हमलोगोंको भी शोकरहित करेगा) ऐसी आशासे रक्षा करनेमें निपुण विचार कर गये हुए, पत्नीका शोक करनेवाले पथिकोंकी मानों रक्षा कर रहा है ऐसा समझा ॥ १०१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—प्रतीष्टकामज्वलदस्त्रजालकं = ज्वलन्ति च तानि अस्त्राणि ज्वलदस्त्राणि (क० धा०), तेषां जालकानि (ष० त०), "क्षारको जालकं क्लीवे" इत्यमरः। कामस्य ज्वलदस्त्रजालकानि (ष० त०)। प्रतीष्टानि कामज्वलदस्त्रजालकानि येन, तम् (बहु०)। अशोकम् = अविद्यमानः शोकः यस्य सः, तम् (नञ्बहु०)। "वञ्जुलोऽशोके" इत्यमरः। अर्थाऽन्वितनामताऽऽशया = नाम्नो भावो नामता, नाम + तल् + टाप्। अर्थेन अन्विता (तृ० त०)। अर्थाऽन्विता चाऽसौ नामता (क० धा०) तस्या आशा तया (ष० त०)। शरण्यं = शरणे साधुः शरण्यः, तम्, "तत्र साधुः" इससे यत्। "शरणं गृहरक्षित्रोः" इत्यमरः। गृहशोचिनः = गृह शोचन्तीति गृहशोचिनः, तान्, गृह + शुच् + णिनिः (उपपद०) + शस्। "गृहं गृहाश्च पुंभूम्नि कलत्रेऽपि च सद्मनि।" इति मेदिनी। अत एव—"न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।" अर्थात् गृहको गृह नहीं कहते हैं, पत्नीको "गृह" कहते हैं ऐसी लोकोक्ति है। अध्वगान् = अध्वानं गच्छन्तीति अध्वगा, तान्, अध्वन्-उपपदपूर्वक 'गम्' धातुसे "अन्ताऽत्यन्ताऽध्वदूरपारसर्वाऽनन्तेषु डः" इस सूत्रसे ड प्रत्यय (उपपद०)। "अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि।" इत्यमरः। अवन्तम् = अवतीति अवन्, तम् अव + लट् (शतृ) + अम्। अमन्यत = मन् + लङ् + त। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ १०१ ॥

विलासवापीतटवीचिवादनात्पिकाऽलिगीतेः शिखिलास्यलाघवात्।
वनेऽपि तौर्यत्रिकमारराध तं, क्व भोगमाप्नोति न भाग्यभाग्जनः ॥१०२॥

अन्वयः—विलासवापीतटवीचिवादनात् पिकाऽलिगीतेः शिखिलास्यलाघवात् वने अपि तं तौर्यत्रिकम् आरराध; भाग्यभाक् जनः क्व भोगम् न आप्नोति ॥१०२॥

व्याख्या—विलासवापीतटवीचिवादनात् = विहारदीर्घिकातीरतरङ्गनादात्, पिकाऽलिगीतेः = कोकिलभ्रमरगानात्, शिखिलास्यलाघवात् = मयूरनृत्यनैपुण्यात्, वने अपि = उपवने अपि, तं = नलम्, तौर्यत्रिकं = नृत्यगीतवाद्यत्रयम्, आरराध = आराधयामास, तथा हि—भाग्यभाक् = भाग्यवान्, जनः = लोकः, क्व = कुत्र, स्थाने गृहे वनेऽपि वा इति शेषः, भोगं = सुखं, न आप्नोति = न प्राप्नोति, सर्वत्रैव सुखं प्राप्नोतीति भावः ॥ १०२ ॥

अनुवादः—विहारकी बावलीके किनारेमें तरङ्गोंके शब्दसे, (वादनसे), कोयल और भौंरोंके गानेसे मयूरोंके नृत्यकी निपुणतासे उपवनमें भी महाराज नलकी नृत्य, गीत और वाद्य इन तीनोंने सेवा की। भाग्यवान् जन कहां सुखको प्राप्त नहीं करते हैं? ॥ १०२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—विलासवापीतटवीचिवादनात्=विलासस्य वापी, "वापी तु दीर्घिका" इत्यमरः। विलासवाप्याः तटम् (ष० त०), वीचीनां वादनम् (ष० त०)। विलासवापीतटे वीचिवादनं तस्मात् (स० त०), सर्वत्र हेतुमें पञ्चमी। पिकाऽलिगीतेः = पिकाश्च अलयश्च पिकालयः (द्वन्द्वः), तेषां गीतिः, तस्याः (ष० त०)। शिखिलास्यलाघवात् = शिखिनां लास्यम् (ष० त०), "ताण्डवं नटनं नाट्यं लास्यं नृत्यं च नर्तने।" इत्यमरः। शिखिलास्यस्य लाघवं, तस्मात् (ष० त०)। तौर्यत्रिकं = "तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्।" इत्यमरः। आरराध = आङ् + राध + लिट् + तिप्। भाग्यभाक् = भाग्यं भजतीति भाग्यभाक्, भाग्य + भज् + ण्विः (उप०)। भोगं = भुज्यते इति भोगः, तम्, भुज् + घञ् (कर्ममें) + अम्। आप्नोति = आप् + लट् + श्नु + तिप्। इस पद्यमें सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है॥ १०२॥

तदर्थमध्याप्य जनेन तद्वने शुका विमुक्ताः पटवस्तमस्तुवन्।
स्वराऽमृतेनोपजगुश्च शारिकास्तथैव तत्पौरुषगायनीकृताः॥ १०३॥

अन्वयः—जनेन तदर्थम् अध्याप्य तद्वने विमुक्ताः पटवः शुकाः तम् अस्तुवन्; तथैव (तदर्थम् अध्याप्य तद्वने विमुक्ताः) तत्पौरुषगायनीकृताः शारिकाः स्वराऽमृतेन उपजगुश्च॥ १०३॥

व्याख्या—जनेन = सेवकजनेन, तदर्थं = नलप्रीत्यर्थम्, अध्याप्य = स्तुतिं पाठयित्वा, तद्वने = तस्मिन् उपवने, विमुक्ताः = विसृष्टाः, पटवः—व्यक्तगिरः, शुकाः = कीराः, तं = नलम्, अस्तुवन् = स्तुतवन्तः, तथैव = तेन प्रकारेणैव, शुकवत् एव (तदर्थम् अध्याप्य तद्वने विमुक्ताः) तत्पौरुषगायनीकृताः = नलपराक्रमगायकीकृताः, शारिकाः = शुकवध्वः, स्वराऽमृतेन = मधुरस्वरेणेति भावः। उपजगुश्च = उपगीतवत्यश्च, तुष्टुवुश्चेति भावः॥ १०३॥

अनुवादः—सेवकजनसे नलकी प्रीतिके लिए उस वनमें छोड़े गये स्पष्ट शब्दवाले तोतोंने नलकी स्तुति की, उसी तरह नलके पराक्रमकी गायिका बनाई गईं शारिकाओं (मैनाओं) ने मीठी आवाजसे गान किया॥ १०३॥

टिप्पणी—तदर्थं = तस्मै इदम् (च० त०, क्रियाविशेषण)। अध्याप्य = अधि + आङ् + इङ् + णिच् + क्त्वा (ल्यप्)। तद्वने = तच्च तद्वनं, तस्मिन् (क० धा०)। विमुक्ताः = वि + मुच् + क्त + (कर्ममें) टाप् + जस्। अस्तुवन् = "ष्टुञ् स्तुतौ" धातुसे लङ् + झि। तत्पौरुषगायनीकृताः = पुरुषस्य भावः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पौरुषम्, पुरुष + अण् । गायन्तीति गायन्यः, "गै शब्दे" धातुसे "ण्युट् च" इससे ण्युट् प्रत्यय और स्त्रीत्वविवक्षामें टित्वात् "टिड्ढाणञ्०" इत्यादि सूत्रसे ङीप् । अगायन्यः गायन्यः यथा संपद्यन्ते तथा कृताः, गायनी + च्वि + कृ + क्त + टाप् । तत्पौरुषस्य गायनीकृताः (ष० त०) । शारिकाः = "सारिकाः" ऐसा भी रूप होता है । स्वराऽमृतेन = स्वरः अमृतम् इव स्वराऽमृतं, तेन "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे" इस सूत्रसे समास । उपजगुः = उप + गै + लिट् + झि (उस्) । इस पद्यमें "स्वराऽमृतेन" यहाँपर उपमा अलङ्कार है ॥ १०३ ॥

इतीष्टगन्धाऽऽढ्यमटन्नसौ वनं पिकोपगीतोऽपि शुकस्तुतोऽपि च ।
अविन्दताऽऽमोदभरं वहिः परं विदर्भसुभ्रूविरहेण नाऽऽन्तरम् ॥ १०४ ॥

अन्वयः—इति इष्टगन्धाऽऽढ्यं वनम् अटन् असौ पिकोपगीतः अपि शुकस्तुतः अपि च परं वहिः आमोदभरम् अविन्दत; विदर्भसुभ्रूविरहेण आन्तरम् आमोदभरं न अविन्दत ॥ १०४ ॥

व्याख्या—इति = इत्थम्, इष्टगन्धाढ्यम् = अभीष्टसौरभसम्पन्नं, वनम् = उपवनम्, अटन् = गच्छन्, असौ = नलः, पिकोपगीतः अपि = कोकिलगीतिविषयीकृतः अपि, शुकस्तुतः अपि च = कीरस्तुतिविषयीकृतः अपि च, परं = केवलं, वहिः = वाह्यम्, आमोदभरं = सौरभ्याऽतिरेकम्, अविन्दत = अलभत, विदर्भसुभ्रूविरहेण = दमयन्तीवियोगेन, आन्तरम् = अन्तश्चरं, मानसमिति भावः, आमोदभरम् = आनन्दाऽतिरेकमिति भावः, न अविन्दत = न अलभत, प्रत्युत दुःखमेवाऽनुभूतवानिति भावः ॥ १०४ ॥

अनुवादः—इस प्रकारसे अभीष्ट सौरभसे सम्पन्न उपवनमें भ्रमण करते हुए नलने कोयलके गानेसे और तोतेकी स्तुतिसे भी केवल वाहरी हर्षविशेषका अनुभव किया, परन्तु दमयन्तीके वियोगसे भीतरी हर्ष विशेषका अनुभव नहीं किया ॥ १०४ ॥

टिप्पणी—इष्टगन्धाऽऽढ्यम् = इष्टश्चाऽसौ गन्धः (क० धा०), तेन आढ्यं, तत् (तृ० त०) वनम् = अकर्मक "अट" धातुके योगमें "अकर्मक धातुभिर्योगे देशः कालो भावो गन्तव्योऽध्वा च कर्मसंज्ञक इति वाच्यम्" इससे कर्मसंज्ञक होकर द्वितीया । अटन् = अटतीति, अट + लट् (शतृ) + सु । पिकोपगीतः = पिकैः उपगीतः (तृ० त०) । शुकस्तुतः = शुकैः स्तुतः (तृ० त०) । आमोदभरम् = आमोदस्य भरः; तम् (ष० त०) । "आमोदो गन्धहर्षयोः" इति विश्वः । अविन्दत = "विदॢ लाभे" धातुसे लङ् + त । विदर्भसुभ्रूविरहेण = शोभने भ्रुवौ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यस्याः सा सुभ्रूः (बहु०) विदर्भाणां सुभ्रूः (ष० त०), तस्या विरहः, तेन (ष० त०)। "हेतौ" इस सूत्रसे तृतीया। आन्तरम् = अन्तरे भवः आन्तरः, तम्, अन्तर + अण्। इस पद्यमें आनन्द हेतु सुरभि वन आदिके होनेपर भी उसका फलरूप आनन्दके न होनेसे और "विदर्भसुभ्रूविरहेण" इस पदसे निमित्तकी उक्ति होनेसे उक्तनिमित्ता विशेषोक्ति अलङ्कार है। उसका लक्षण है—

"सति हेतौ फलाभावो विशेषोक्तिस्तथा द्विधा।" सा० द० १०–६७ ॥१०४॥

करेण मीनं निजकेतनं दधद् द्रुमाऽऽलवालाऽम्बुनिवेशशङ्कया।
व्यतर्कि सर्वर्तुघने वने मधुं स मित्रमत्राऽनुसरन्निव स्मरः ॥ १०५ ॥

अन्वयः—स निजकेतनं मीनं द्रुमाऽऽलवालाऽम्बुनिवेशशङ्कया करेण दधत् सर्वर्तुघने अत्र वने मित्रं मधुम् अनुसरन् स्मर इव व्यतर्कि ॥ १०५ ॥

व्याख्या—सः = नलः, निजकेतनं = स्वलाञ्छनं, मीनं = मत्स्यं, द्रुमाऽऽलवालाऽम्बुनिवेशशङ्कया = वृक्षाऽऽवापजलप्रवेशभीत्या, करेण = हस्तेन, दधत् = धारयन्, मत्स्यरेखाच्छलेन दधान इति भावः। सर्वर्तुघने=सकलर्तुसङ्कुले, अत्र = अस्मिन्, वने = उपवने, मित्रं = सखायं, मधुं = वसन्तम्, अनुसरन् = अन्विष्यन्, स्मर इव = कामदेव इव, व्यतर्कि = वितर्कितः, लोकैरितिशेषः ॥ १०५ ॥

अनुवादः—नलको अपने चिह्न मत्स्यको वृक्षोंके आलवालके जलमें घुसनेके भयसे हाथसे धारण करते हुए, सब ऋतुओंसे परिपूर्ण इस उपवनमें अपने मित्र वसन्त ऋतुको ढूँढनेवाले कामदेवके समान लोगोंने तर्कना की ॥ १०५ ॥

टिप्पणी—निजकेतनं = निजं च तत् केतनं, तत् (क० धा०)। द्रुमाऽऽलवालाऽम्बुनिवेशशङ्कया = द्रुमाणाम् आलवालानि (ष० त०)। "स्यादालवालमावालमावापः" इत्यमरः। द्रुमालवालानाम् अम्बु (ष० त०), तस्मिन् निवेशः (स० त०)। तस्य शङ्का (ष० त०), तया। दधत् = दधातीति, 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' धातुसे लट्के स्थानमें शतृ आदेश, "उभे अभ्यस्तम्" इससे अभ्यस्त संज्ञा होकर "नाऽभ्यस्ताच्छतुः" इससे नुम्का निषेध हुआ है। सर्वर्तुघने = सर्वे च ते ऋतवः (क० धा०), तैः घनं, तस्मिन् (तृ० त०)। अनुसरन्, अनुसरतीति, अनु + सृ + लट् (शतृ०)। व्यतर्कि = वि + तर्क + लुङ् + त। (कर्ममें)। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ १०५ ॥

लताऽबलालास्यकलागुरुस्तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः।
असेवताऽमुं मधुगन्धवारिणि प्रणीतलीलाप्लवनो वनाऽनिलः ॥ १०६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—लताऽबलालास्यकलागुरुः तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः मधुगन्धवारिणि प्रणीतलीलाप्लवनः वनाऽनिलः अमुम् असेवत ॥ १०६ ॥

व्याख्या—लताऽबलालास्यकलागुरुः = वल्लीवधूनृत्यविद्याशिक्षकः, एतेन मान्द्योक्तिः प्रतीयते। तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः = वृक्षपुष्पसौरभसमूहचोरः, एतेन सौरभ्यं प्रतीयते। एवं च मधुगन्धवारिणि = मकरन्दगन्धोदके, प्रणीतलीलाप्लवनः = कृतविलासाऽवगाहनः, अनेन शैत्यं व्यज्यते। तादृशः वनाऽनिलः = उपवनवातः, अमुं = नलम्, असेवत = सेवितवान् ॥ १०६ ॥

अनुवादः—लतारूप स्त्रियोंको नृत्यविद्या सिखानेवाला, वृक्षोंके फूलोंके सौरभको चुरानेवाला तथा मकरन्दके सौरभसे पूर्ण जलमें विलासके साथ तैरनेवाले वनके वायुने नलकी सेवा की ॥ १०६ ॥

टिप्पणी—लताऽबलालास्यकलागुरुः = लता एव अबलाः (रूपक०)। लास्यस्य कलाः (ष० त०)। लताऽबलानां लास्यकलाः (ष० त०), तासु गुरुः (स० त०)। "लतारूप स्त्रियोंकी लास्य कलाओंमें गुरु" इस विशेषणसे वायुके मन्दतागुणकी प्रतीति होती है। तरुप्रसूनगन्धोत्करपश्यतोहरः = तरूणां प्रसूनानि (ष० त०), तेषां गन्धाः (ष० त०), तेषाम् उत्कराः (ष० त०)। पश्यतः हरः पश्यतोहरः, "षष्ठी चाऽनादरे" इस सूत्रसे षष्ठी और "वाग्दिक्पश्यद्भ्यो युक्तिदण्डहरेषु" इस वार्तिकसे अलुक् समास। "पश्यतो यो हरत्यर्थं स चौरः पश्यतोहरः।" इति हलायुधः। तरुप्रसूनगन्धोत्कराणां पश्यतोहरः (ष० त०)। "वृक्षोंके फूलोंके सौरभोंको चुरानेवाला" इस विशेषणसे वायुके सौरभकी प्रतीति होती है। मधुगन्धवारिणि = गन्धपूर्णं वारि गन्धवारि (मध्यमपदलोपी स०)। मधु एव गन्धवारि, तस्मिन् (रूपक०)। प्रणीतलीलाप्लवनः = लीलया प्लवनं (तृ० त०), प्रणीतं लीलाप्लवनं येन सः (बहु०)। "मकरन्दके गन्धसे पूर्ण जलमें विलाससे अवगाहन करनेवाला" इस विशेषणसे वायुकी शीतलताकी प्रतीति होती है। वनाऽनिलः = वने अनिलः (स० त०)। असेवत = सेव + लङ् + त। इस पद्यमें कार्यसे और श्लिष्ट विशेषणसाम्यसे भी प्रस्तुत वनाऽनिलमें अप्रस्तुत सेवकके व्यवहारका समारोप होनेसे समासोक्ति अलङ्कार है और रूपक अलङ्कार भी है, इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ १०६ ॥

अथ स्वमादाय भयेन मन्थनाच्चिरत्नरत्नाऽधिकमुच्चितं चिरात्।
निलीय तस्मिन्निवसन्नपांनिधिर्वने तडागो ददृशेऽवनीभुजा ॥ १०७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—अथ मन्थनात् भयेन चिरात् उच्चितं चिरत्नरत्नाऽधिकं स्वम् आदाय तस्मिन् वने निलीय निवसन् अपां निधिः इव तडागः अवनीभुजा ददृशे ॥ १०७ ॥

व्याख्या—अथ = वनाऽवलोकनाऽनन्तरं, मन्थनात् = मथनात्, भयेन=भीत्या, धनाऽर्थं पुनर्मथिष्यतीति भिया इति भावः। चिरात् = बहुकालात्, उच्चितं = सञ्चितं, चिरत्नरत्नाऽधिकं = चिरन्तनश्रेष्ठवस्तुप्रचुरं, स्वं = धनम्, आदाय = गृहीत्व, तस्मिन् = पूर्वोक्ते, वने = उपवने, निलीय = तिरोहितीभूय, निवसन् = वर्तमानः, अपांनिधिः = समुद्रः, (इव), तडागः = पद्माकरः, सरोविशेष इति भावः, अवनीभुजा = राज्ञा, नलेनेत्यर्थः। ददृशे = दृष्टः ॥ १०७ ॥

अनुवादः—तब फिर मन्थन होनेके डरसे बहुत समयसे सञ्चित, प्राचीन श्रेष्ठ वस्तुओंसे प्रचुर धन लेकर उस उपवनमें छिपकर रहते हुए समुद्रके समान तालाब-को राजा नलने देखा ॥ १०७ ॥

टिप्पणी—मन्थनात् = मन्थ + ल्युट् + ङसि। "भीत्राऽर्थानां भयहेतुः" इससे अपादान संज्ञा होकर पञ्चमी। उच्चितम् = उद् + चिञ् + क्त + अम्। चिरत्न-रत्नाऽधिकं = चिरात् भवानि चिरत्नानि, 'चिर' शब्दसे "चिरपरुत्परारिभ्यस्त्नो वक्तव्यः" इस वार्तिकसे त्न प्रत्यय। चिरत्नानि च तानि रत्नानि (क० धा०), "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपि" इत्यमरः। चिरत्नरत्नैः (ऐरावतादिभिः) अधिकः, तम् (तृ० त०)। आदाय = आङ् + दा + क्त्वा (ल्यप्)। निलीय = नि + ली + क्त्वा (ल्यप्)। निवसन् = नि + वस + लट् (शतृ) + सुः। तडागः = "पद्माकरस्तडागोऽस्त्री कासारः सरसी सरः।" इत्यमरः। अवनीभुजा = अवनीं भुनक्तीति अवनीभुक्, तेन, अवनी + भुज् + क्विप् (उपपद०) + टा। ददृशे = दृश् + लिट् (कर्ममें) + त। इस पद्यमें प्रस्तुत अपांनिधिमें अप्रस्तुत धनी पुरुषके व्यवहारका समारोप करनेसे समासोक्ति और "अपांनिधिः" यहाँपर 'इव' आदि शब्दके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा है, इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ १०७ ॥

पयोनिलीनाऽभ्रमुकामुकावलीरदाननन्तोरगपुच्छसच्छवीन्।
जलाऽर्धरुद्धस्य तटाऽन्तभूभिदो मृणालजालस्य निभाद् बभार यः ॥ १०८ ॥

अन्वयः—यः जलाऽर्धरुद्धस्य तटाऽन्तभूमिदः मृणालजालस्य निभात् अनन्तोर-गपुच्छसच्छवीन् पयोनिलीनाऽभ्रमुकामुकावलीरदान् बभार ॥ १०८ ॥

व्याख्या—अथ श्लोकनवकेन तडागस्य पयोधिधर्मत्वं प्रतिपादयति—पयोनिली-नेत्यादिभिः। यः = तडागः, जलार्धरुद्धस्य = सलिलाऽर्धच्छन्नस्य, तटाऽन्तभूमिदः =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तीराऽन्तभूमिनिर्गतस्य, मृणालजालस्य = विसवृन्दस्य, निभात् = व्याजात्, अनन्तोरगपुच्छसच्छवीन् = शेषाऽहिलाङ्गूलतुल्यवर्णान्, शुक्लवर्णानिति भावः। पयोनिलीनाऽभ्रमुकामुकाऽऽवलीरदान् = जलमग्नैरावतश्रेणीदन्तान्, बभार = धारयामास, समुद्रे त्वेक एवैरावतः, अत्र त्वसंख्या एवैरावता इति भावः ॥ १०८ ॥

अनुवादः—जो तालाब जलसे अर्धआच्छादित तीरके समीपकी जमीनसे निकले हुए मृणालसमूहके बहानेसे शेषनागके पुच्छके समान कान्तिवाले, जलमें छिपे हुए ऐरावतोंके दाँतोंको धारण करता था ॥ १०८ ॥

टिप्पणी—जलार्धरुद्धस्य = अर्धं (यथा तथा) रुद्धम् (सुप्सुपा०) जलेन अर्धरुद्धं, तस्य (तृ० त०)। तटाऽन्तभूमिदः = तटस्य अन्तः (ष० त०), तस्मिन् भूः (स० त०), तां भिनत्तीति, तस्य, तटाऽन्त + भू + भिद् + क्विप् + (उपपद०)। मृणालजालस्य = मृणालानां जालं, तस्य (ष० त०)। निभात् = "निभो व्याजसदृक्षयोः" इति विश्वः। अनन्तोरगपुच्छसच्छवीन् = अनन्तश्चाऽसौ उरगः (क० धा०), "शेषोऽनन्त" इत्यमरः। अनन्तोरगस्य पुच्छम् (ष० त०), समाना छविः येषां ते सच्छवयः (बहु०) "समानस्य च्छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु" इसमें "समानस्य" इसका योगविभाग होनेसे "समान" के स्थानमें "स" आदेश। अनन्तोरगपुच्छेन सच्छवयः, तान् (तृ० त०)। पयोनिलीनाऽभ्रमुकामुकावलीरदान् = पयसि निलीनाः (स० त०)। अभ्रमोः कामुकाः (ष० त०), "कमेरनिषेधः" इस वार्तिकसे "नलोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्" इससे विधीयमान षष्ठीका निषेध नहीं हुआ। तेषाम् आवल्यः (ष० त०)। पयोनिलीनाश्च ता अभ्रमुकामुकावल्यः (क० धा०), तासां रदाः, तान् (ष० त०)। "ऐरावतोऽभ्रमातङ्गैरावणाऽभ्रमुवल्लभाः।" इति।

"करिण्योऽभ्रमुकपिलापिङ्गलाऽनुपमाः क्रमात्।
ताम्रकर्णी शुभ्रदन्ती चाऽङ्गना चाऽञ्जनावती॥" इति चाऽमरः।

बभार = भृञ् + लिट् + तिप्। इस पद्यमें उपमा और कैतवाऽपह्नुति इन दोनोंका अङ्गाऽङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ १०८ ॥

तटाऽन्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटास्फुटाऽनुबिम्बोदयचुम्बनेन यः।
बभौ चलद्वीचिकशाऽन्तशातनैः सहस्रमुच्चैःश्रवसामिव श्रयन् ॥ १०९ ॥

अन्वयः—यः तटाऽन्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटास्फुटाऽनुबिम्बोदयचुम्बनेन वीचिकशाऽन्तशातनैः चलत् उच्चैःश्रवसां सहस्रं श्रयन् इव बभौ ॥ १०९ ॥

व्याख्या—यः = तडागः, तटाऽन्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटास्फुटाऽनुबिम्बोदय-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चुम्बनेन = तीरप्रान्तस्थितनलाऽश्वश्रेणीप्रकटप्रतिविम्बोत्पत्तिसम्बन्धेन, वीचिकशाऽन्तशातनैः = तरङ्गाऽश्वताडनीप्रान्तताडनैः, चलत् = स्फुरत्, उच्चैःश्रवसाम् = उच्चैःश्रवोनामकमहेन्द्राऽश्वानां, सहस्रं = दशशतीं, वाहुल्यमिति भावः। श्रयन् इव = प्राप्नुवन् इव, वभौ = शुशुभे ॥ १०६ ॥

अनुवादः—जो तालाव तीरके प्रान्तमें विश्राम करते हुए घोड़ोंके प्रतिविम्बोंके सम्बन्धसे तरङ्ग रूप चावुकोंके प्रहारोंसे चलते हुए हजारों उच्चैःश्रवाओंको धारण करते हुएके समान शोभित होता था ॥ १०६ ॥

टिप्पणी—तटाऽन्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटास्फुटाऽनुविम्वोदयचुम्वनेन = तटस्य अन्तः (ष० त०), तस्मिन्, विश्रान्ताः (स० त०)। तुरङ्गमाणां छटाः (ष० त०)। तटान्तविश्रान्ताश्च ताः तुरङ्गमच्छटाः (क० धा०), अनुविम्वस्य उदयः (ष० त०)। तस्य चुम्वनम् (ष० त०)। स्फुटम् (यथा तथा) अनुविम्वोदय, चुम्वनम् (सुप्सुपा०)। तटाऽन्तविश्रान्ततुरङ्गमच्छटायाः स्फुटाऽनुविम्वोदयचुम्वनं, तेन (ष० त०)। वीचिकशाऽन्तशातनैः = वीचय एव कशाः (रूपक०)। "अश्वादेस्ताडनी कशा" इत्यमरः। वीचिकशानाम् अन्ताः (ष० त०), तैः शातनानि, तैः (तृ० त०)। चलत् = चल + लट् (शतृ)। श्रयन् = श्रयतीति, "श्रिञ् सेवायाम्" धातुसे लट्के स्थानमें शतृ आदेश। वभौ = "भा दीप्तौ" धातुसे लिट् + त। इस पद्यमें "वीचिकशा" इस अंशमें रूपक और उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, उत्प्रेक्षासे नलके घोड़ोंकी इन्द्रके अश्व उच्चैःश्रवासे समता व्यङ्ग्य होती है इस प्रकारसे अलङ्कारसे वस्तुध्वनि है ॥ १०६ ॥

सिताऽम्वुजानां निवहस्य यश्छलाद्वभावलिश्यामलितोदरश्रियाम्।
तमःसमच्छायकलङ्कसङ्कुलं कुलं सुधांऽशोर्वहुलं वहन्वहु ॥ ११० ॥

अन्वयः—यः अलिश्यामलितोदरश्रियां सिताऽम्वुजानां निवहस्य छलात् तमःसमच्छायकलङ्कसङ्कुलं वहुलं सुधांऽशोः कुलं वहन् वहु वभौ ॥ ११० ॥

व्याख्या—यः = तडागः, अलिश्यामलितोदरश्रियां = भ्रमरश्यामीकृतमध्यशोभानां, सिताऽम्वुजानां = श्वेतकमलानां, पुण्डरीकाणामित्यर्थः, निवहस्य = समूहस्य, छलात् = कैतवात्, तमःसमच्छायकलङ्कसङ्कुलं = तिमिरवर्णलाञ्छनव्याप्तं, वहुलं = प्रचुरं, सुधांशोः = चन्द्रमसः, कुलं = समूहं, वहन् = धारयन् सन्, वहु = अधिकं, वभौ = शुशुभे ॥ ११० ॥

अनुवादः—जो तालाब मध्यमें भौंरोंसे श्यामवर्णवाली शोभासे सम्पन्न श्वेत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कमलोंके छलसे श्यामवर्णवाले कलङ्कोंसे व्याप्त वहुतसे चन्द्रोंको धारण करता हुआ अधिक शोभित था ॥ ११० ॥

टिप्पणी—अलिश्यामलितोदरश्रियाम् = श्यामला कृता श्यामलिता, अलिभिः श्यामलिता (तृ० त०)। उदरस्य श्रीः (ष० त०)। अलिश्यामलिता उदरश्रीः येषां तानि अलिश्यामलितोदरश्रीणि, तेषाम् (बहु०), "तृतीयादिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य" इससे पुंवद्भाव। सिताऽम्बुजानां = सितानि च तानि अम्बुजानि, तेषाम् (क० धा०)। तमःसमच्छायकलङ्कसङ्कुलं = तमसा समा (तृ० त०), सा छाया (कान्तिः) येषां ते तमःसमच्छायाः (बहु०), ते च ते कलङ्काः (क० धा०), तैः सङ्कुलं, तत् (तृ० त०)। सुधांऽशोः = सुधा (युक्ता) अंशवः यस्य स सुधांऽशुः, तस्य (बहु०)। वहन् = वह + लट् (शतृ) + सु। वहु = क्रियाविशेषण है वभौ = भा + लिट् + तिप् (णल्)। इस पद्यमें उपमा और कैतवाऽपह्नुति इन दोनोंमें अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥११०॥

रथाऽङ्गभाजा कमलाऽनुषङ्गिणा शिलीमुखस्तोमसखेन शार्ङ्गिणा।
सरोजिनीस्तम्वकदम्वकैतवान्मृणालशेषाऽहिभुवाऽन्वयायि यः ॥ १११ ॥

अन्वयः—रथाऽङ्गभाजा कमलाऽनुषङ्गिणा शिलीमुखस्तोमसखेन मृणालशेषाऽहिभुवा शार्ङ्गिणा सरोजिनीस्तम्वकदम्वकैतवात् यः (अपांनिधिः) यथा अन्वयायि (तथैव) रथाङ्गभाजा कमलाऽनुषङ्गिणा शिलीमुखस्तोमसखेन मृणालशेषाऽहिभुवा सरोजिनीस्तम्वकदम्वकैतवात् यः अन्वयायि ॥ १११ ॥

व्याख्या—रथाङ्गभाजा = सुदर्शनचक्रधारिणा, कमलाऽनुषङ्गिणा = कमलासंसर्गवता, शिलीमुखस्तोमसखेन = भ्रमरसमूहसदृशेन, कृष्णवर्णेनेत्यर्थः। मृणालशेषाऽहिभुवा = विससदृशशेषनागाऽऽधारेण, सरोजिनीस्तम्वकदम्वकैतवात् = कमलिनीगुल्ममूहच्छलात् कमलिनीगुल्मसमूहोऽपि शेषनागसदृशो भवतीति भावः। शार्ङ्गिणा = विष्णुना, यः = अपांनिधिः = समुद्रः, (यथा = येन प्रकारेण) अन्वयायि अनुगतः। (तथैव) रथाऽङ्गभाजा = चक्रवाकयुक्तेन, कमलाऽनुषङ्गिणा = कमलसंसर्गयुक्तेन, शिलीमुखस्तोमसखेन = अलिकुलसहचरेण, सरोजिनीस्तम्वकदम्वकैतवात् = कमलिनीगुच्छसमूहच्छलात्, मृणालशेषाऽहिभुवा = शेषसदृशविसाधारेण, सरोजिनीस्तम्वकदम्वेन = कमलिनीगुच्छसमूहेन, सरोजिनीस्तम्वकदम्वे एव मृणालानि भवन्तीति भावः। यः=अपांनिधिः, तडागः, अन्वयायि = अनुगतः ॥१११॥

अनुवादः—चक्र (सुदर्शन चक्र) को धारण करनेवाले, कमला (लक्ष्मी) के संसर्गसे युक्त, भ्रमरसमूहके सदृश (कृष्णवर्णवाले), मृणालसदृश (श्वेतवर्ण)

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शेषनागके ऊपर शयन करनेवाले विष्णुसे जैसे समुद्र अधिष्ठित होता है, उसी तरह जो तालाव रथाङ्गों (चक्रवाकों) से युक्त, कमलोंके संसर्गसे युक्त, भ्रमरोंके भ्रमणका स्थान, शेषनागके सदृश (सफेद) मृणालोंका आधारभूत कमलिनी-गुच्छोंसे अनुगत था ॥ १११ ॥

टिप्पणी—रथाऽङ्गभाजा = रथस्य अङ्गं (ष० त०), चक्रमित्यर्थः। रथाऽङ्गं भजतीति रथाऽङ्गभाक्, तेन, रथाऽङ्ग + भज् + ण्विः (उपपद०)। सुदर्शन चक्रको लेनेवाले यह तात्पर्य है "शार्ङ्गिणा" इसका विशेषण। दूसरा अर्थ—रथाऽङ्ग पदका चक्ररूप अर्थ भी होता है "चक्रवाक" (चकवा) शब्दका एक-देश चक्र है "नामैकदेशे नामग्रहणम्" अर्थात् नामके एक देश (अवयव) में भी नामका ग्रहण होता है इस न्यायसे 'चक्र' का अर्थ चक्रवाक और उसका पर्याय "रथाङ्ग" भी चक्रवाक (चकवा) का वाचक हुआ है। "कोकश्चक्रश्चक्रवाको रथाङ्गाह्वयनामकः।" इत्यमरः। रथङ्गान् भजतीति रथाङ्गभाक्, तेन, चक्रवाकसे युक्त यह अर्थ हुआ। यह "सरोजिनीस्तम्वकदम्वेन" इसका विशेषण है। कमलाऽ-नुषङ्गिणा = अनुषङ्गः अस्य अस्तीति अनुषङ्गी, अनुषङ्ग + इनिः। कमलया अनुषङ्गी, तेन (तृ० त०) लक्ष्मीसे युक्त, यह पद "शार्ङ्गिणा" इसका विशेषण है। शिलीमुखस्तोमसखेन=शिलीमुखानां स्तोमः (ष० त०) तस्य सखा (सदृशः) तेन (ष० त०), इस प्रकार यह "शार्ङ्गिणा" इसका विशेषण है। दूसरे पक्षमें—कमलैः अनुषङ्गी, तेन, "सरोजिनीस्तम्वकदम्वेन" इसका विशेषण है। मृणालशेषाऽहिभुवा = शेषश्चाऽसौ अहिः (क० धा०)। मृणालम् इव शेषाऽहिः "उपमानानि सामान्यवचनैः" इससे समासः। मृणालशेषाऽहिः भूः (शयनाधारः) यस्य सः" तेन (वहु०)। मृणालके समान सफेद शेषनागमें सोनेवाले, इस अर्थमें "शार्ङ्गिणा" का विशेषण है। दूसरे पक्षमें—मृणालशेषाऽहिभुवा = मृणाल शेषाऽहिः इव "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे" इससे समास। मृणाल-ऽशेषाऽहेः भूः (आधारः), (ष० त०) तेन। इस पक्षमें यह "सरोजिनी-स्तम्वकदम्वेन" इसका विशेषण है। सरोजिनीस्तम्वकदम्वकैतवात् = सरोजिनीनां स्तम्बाः (ष० त०) "अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ" इत्यमरः। सरोजिनीस्तम्बानां कदम्वं (ष० त०), तस्य कैतवं, तस्मात् (ष० त०)। तडागपक्षमें इसका सम्बन्ध करनेके लिए "सरोजिनीस्तम्वकदम्वेन" ऐसा विभक्तिविपरिणाम और पदहान करना चाहिए, तब दो पदोंका समष्टि अर्थ शेष सर्पके समान शुक्लवर्ण मृणालोंके आधारभूत कमलोंके गुच्छोंसे जो तालाब अनुगत था ऐसा होता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयायि = अनु-उपसर्गपूर्वक "या" धातुसे लुङ् (कर्ममें) + त। इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति, उपमा और श्लेष इन अलङ्कारोंकी निरपेक्षतया स्थिति होनेसे संसृष्टि है ॥ १११ ॥

तरङ्गिणीरङ्कजुषः स्ववल्लभास्तरङ्गरेखा बिभराम्बभूव यः ।
दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकैर्धृतप्रवालाऽङ्कुरसञ्चयश्च यः ॥ ११२ ॥

अन्वयः—यः अङ्कजुषः तरङ्गरेखाः (एव) स्ववल्लभाः तरङ्गिणीः बिभराम्बभूव । (किञ्च) यः दरोद्गतैः कोकनदौघकोरकैः धृतप्रवालाऽङ्कुरसञ्चयश्च (अस्ति) ॥ ११२ ॥

व्याख्या—यः तडागः, अपांनिधिरिव इति शेषः । अङ्कजुषः = निकटवर्तिनीः, उत्सङ्गसङ्गिनीश्च, तरङ्गरेखाः = भङ्गराजीः (एव), स्ववल्लभाः = निजप्रियाः, तरङ्गिणीः = नदीः, बिभराम्बभूव = धारयामास । (किञ्च) यः = तडागः, दरोद्गतैः = ईषदुद्‌बुद्धैः, कोकनदौघकोरकैः = रक्तोत्पलसमूहकलिकाभिः, धृतप्रवालाऽङ्कुरसञ्चयश्च = गृहीतविद्रुमाङ्कुरनिकरश्च, अस्तीति शेषः ॥ ११२ ॥

अनुवादः—जैसे समुद्र गोदमें रहनेवाली अपनी प्रियाओं नदियोंको धारण करता है वैसे ही जो तालाब अपने पासमें रहनेवाली तरङ्गरेखारूप अपनी प्रियाओं को धारण कर रहा था । जैसे समुद्र विद्रुमों (मूगों) के समूहको धारण करता है वैसे ही जो तालाब कुछ खिली हुई लाल कमलोंकी कलियोंको धारण कर रहा था ॥ ११२ ॥

टिप्पणी—अङ्कजुषः = अङ्कं जुषन्त इति, ताः, अङ्क + जुष् + क्विप् (उपपद०) । तरङ्गरेखाः = तरङ्गाणां रेखाः, ताः (ष० त०), (एव) । स्ववल्लभाः = स्वस्य वल्लभाः, ताः (ष० त०) । तरङ्गिणीः = नदीः, "तरङ्गिणी शैवलिनी तटिनी ह्रादिनी धुनी ।" इत्यमरः । बिभराम्बभूव = "डुभृञ् धारणपोषणयोः" धातुसे लिट्‌में "भीह्रीभृहुवां श्लुवच्च" इस सूत्रसे भृ धातुसे विकल्पसे आम् प्रत्यय, पक्षान्तरमें "बभार" ऐसा रूप भी बनता है । दरोद्गतैः = दरम् (यथा तथा) उद्‌गताः, तैः (सुप्सुपा०), "कन्दरे तु दरीमाहुरीषदर्थे दरोऽव्ययम् ।" इति विश्वः । कोकनदौघकोरकैः = कोकनदानाम् ओघाः (ष० त०), "रक्तोत्पलं कोकनदम्" इत्यमरः । कोकनदौघानां कोरकाः, तैः (ष० त०) । धृतप्रवालाऽङ्कुरसञ्चयः = प्रवालानाम् अङ्कुराः (ष० त०), तेषां सञ्चयः (ष० त०) धृतः प्रवालाऽङ्कुरसञ्चयः येन सः (बहु०) । इस पद्यमें तरङ्गरेखाओंमें तरङ्गिणीत्वके आरोपसे रूपक अलङ्कार है ॥ ११२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

महीयशः पङ्कजमण्डलस्य यश्छलेन गौरस्य च मेचकस्य च ।
नलेन मेने सलिले निलीनयोस्त्विषं विमुञ्चन्विधुकालकूटयोः ॥ ११३ ॥

अन्वयः—यः महीयसः गौरस्य मेचकस्य च पङ्कजमण्डलस्य छलेन सलिले निलीनयोः विधुकालकूटयोः त्विषं विमुञ्चन् (इव) नलेन मेने ॥ ११३ ॥

व्याख्या—यः = तडागः, महीयसः = महत्तरस्य, गौरस्य = श्वेतस्य, मेचकस्य च = नीलस्य च, पङ्कजमण्डलस्य = कमलसमूहस्य, शुक्लनीलकमलयोरिति भावः । छलेन = कैतवेन, सलिले = जले, निलीनयोः = निमग्नयोः, विधुकालकूटयोः = चन्द्रकालकूटविषयोः सिताऽसितयोः, त्विषं = कान्ति, विमुञ्चन् = विसृजन्, (इव) नलेन = नैषधेन, मेने = संभावितः ॥ ११३ ॥

अनुवादः—जिस तालावको बड़ेसे सफेद और नीले कमलसमूहके बहानेसे जलमें डूबे हुए चन्द्रमा और कालकूट विषकी कान्तिको छोड़ते हुएके समान नलने सम्भावना की ॥ ११३ ॥

टिप्पणी—महीयसः=अतिशयेन महत् महीयः, तस्य, महत् + ईयसुन् + ङस् । पङ्कजमण्डलस्य = पङ्कजानां मण्डलं, तस्य (ष० त०), निलीनयोः = नि + ली + क्त + ओस् । विधुकालकूटयोः = विधुश्च कालकूटं च, तयोः (द्वन्द्वः) । विमुञ्चन् = विमुञ्चतीति, वि + मुच् + लट् (शतृ) + सु । "शेमुचादीनाम्" इससे नुम् आगम । मेने = मन् + लिट् (कर्ममें) + त । इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति और उत्प्रेक्षा इन दोनों अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ११३ ॥

चलीकृता यत्र तरङ्गरिङ्गणैरबालशैवाललतापरम्पराः ।
ध्रुवं दधुर्वाडवहव्यवाडवस्थितिप्ररोहत्तमभूमधूमताम् ॥ ११४ ॥

अन्वयः—यत्र तरङ्गरिङ्गणैः चलीकृता अबालशैवाललतापरम्पराः वाडवहव्यवाडवस्थितिप्ररोहत्तमभूमधूमतां दधुः ध्रुवम् ॥ ११४ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्मिन्, तडाग इति भावः । तरङ्गरिङ्गणैः = भङ्गकम्पनैः, चलीकृताः = चञ्चलीकृताः, अबालशैवाललतापरम्पराः = कठोरजलनीलीवल्लीपङ्क्तयः, वाडवहव्यवाडवस्थितिप्ररोहत्तमभूमधूमतां = वडवाऽनलाऽवस्थानबहिःप्रादुर्भवत्तमबाहुल्यधूमतां, दधुः = धारयामासुः, ध्रुवम् = इव, बहिरुत्थितधूमपटलवद्बभुः ॥ ११४ ॥

अनुवादः—जिस तालावमें तरङ्गोंके कम्पनसे चञ्चल बनाई गईं कठोर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सेंवारकी लताएँ नीचे वडवाग्निकी स्थितिसे प्रादुर्भूत होनेवाले धूमकी वहुलताको मानों धारण कर रहीं थीं ॥ ११४ ॥

टिप्पणी—तरङ्गरिङ्गणैः=तरङ्गाणां रिङ्गणानि, तैः (ष० त०)। चलीकृताः=अचलाः चलाः यथा संपद्यन्ते तथा कृताः, चल+च्वि+कृ+क्त+टाप्+जस्। अवालशैवाललतापरम्पराः=न वालाः अवालाः (नञ् तत्पु०)। शैवालानां लताः (ष० त०)। "जलनीली तु शैवालं शैवलः" इत्यमरः। अवालाश्च ताः शैवाललताः (क० धा०), तासां परम्परा; (ष० त०)। वाडवहव्यवाडवस्थितिप्ररोहत्तमभूमधूमतां=हव्यं वहतीति हव्यवाड् (अग्निः); हव्य-उपपदपूर्वक 'वह' धातुसे "वहश्च" इस सूत्रसे ण्वि प्रत्यय (उपपद०)। वाडवश्चाऽसौ हव्यवाट् (क० धा०), तस्य अवस्थितिः (ष० त०)। अतिशयेन प्ररोहन् प्ररोहत्तमः, प्ररोहत्+तमप्। वहोः भावः भूमा, 'वहु' शब्दसे "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" इससे इमनिच् प्रत्यय और "वहोर्लोपो भू च वहोः" इससे 'वहु'के स्थानमें भू आदेश। प्ररोहत्तमो भूमा येषां ते प्ररोहत्तमभूमानः (वहु०), ते च ते धूमाः (क० धा०)। वाडवहव्यवाडवस्थित्या प्ररोहत्तमभूमधूमाः (तृ० त०), तेषां भावस्तत्ता, ताम् वाडवहव्यवाडवस्थितिप्ररोहत्तमभूमधूम+तल्+टाप्+अम्। दधुः=धा+लिट्+झि (उस्)। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ११४ ॥

प्रकाममादित्यमवाप्य कण्टकैः करम्बिताऽऽमोदभरं विवृण्वती।
धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा दिवा सरोजिनी यत्प्रभवाऽप्सरायिता ॥ ११५ ॥

अन्वयः—आदित्यम् अवाप्य कण्टकैः प्रकामं करम्बिता, आमोदभरं विवृण्वती, दिवा धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा यत्प्रभवा सरोजिनी अप्सरायिता ॥ ११५ ॥

व्याख्या—आदित्यं=सूर्यम्, अप्सरःपक्षे—इन्द्रम्, अवाप्य=प्राप्य, कण्टकैः=नालगततीक्ष्णाऽवयवैः, अप्सरःपक्षे—रोमाञ्चैः, प्रकामम्=अत्यर्थं, करम्बिता=दन्तुरिता, अप्सरःपक्षे—युक्ता। आमोदभरं=परिमलसम्पदम्, अप्सरःपक्षे—आनन्दसम्पदं, विवृण्वती=प्रकटयन्ती, दिवा=दिवसे, धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा=गृहीतव्यक्तकमलस्वरूपा, अप्सरःपक्षे—दिवा=स्वर्गेण, धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा=गृहीतशोभास्थानशरीरा, स्वर्गलोकवासिनीति भावः, एतादृशी यत्प्रभवा=यत् तडागोत्पन्ना, सरोजिनी=कमलिनी, अप्सरायिता=अप्सरोवत् आचरिता ॥११५॥

अनुवादः—जैसे स्वर्गलोकमें रहनेवाली अप्सरा इन्द्रको पाकर अत्यन्त रोमाञ्चोंसे युक्त होती है, अतिशय आनन्दको प्रकट करती है वैसे ही जिस तालाबसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्पन्न कमलिनी सूर्यको पाकर नालमें स्थित कण्टकोंसे अत्यन्त युक्त होकर अतिशय सुगन्धको प्रकट कर तथा स्पष्टरूपसे कमलरूप शरीरको धारण करती हुई अप्सराके समान आचरण करती है ।। ११५ ।।

टिप्पणी—आदित्यम् = अदितेरपत्यं पुमान् आदित्यः तम् 'अदिति' शब्दसे "दित्यदित्यादित्यपत्युत्तरपदाण्ण्यः" इससे ण्य प्रत्यय । अवाप्य=अव + आप् + क्त्वा (ल्यप्) । आमोदभरम् = आमोदस्य भरः, तम् (ष० त०) । "आमोदः सोऽतिनिर्हारी" इति "मुत्प्रीतिः प्रमदो हर्षप्रमोदामोदसम्मदाः ।" इति चाऽमरः । विवृण्वती = विवृणोतीति, वि = वृञ् + लट् (शतृ) + ङीप् + नुः । दिवा = "दिवाऽह्नीति" इति "सुरलोको द्योदिवौ द्वे स्त्रियां, क्लीबे त्रिविष्टपम्" इति चाऽमरः । धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा = श्रियः गृहाणि (ष० त०) । स्फुटानि च तानि श्रीगृहाणि (क० धा०) । धृतानि स्फुटश्रीगृहाणि (पद्मानि) यस्य सः (बहु०), धृतस्फुटश्रीगृहः विग्रहः (स्वरूपम्) यस्याः सा (बहु०) । अप्सराके पक्षमें— दिवा = स्वर्गेण, धृतस्फुटश्रीगृहविग्रहा = श्रियः (शोभायाः) गृहम् (ष० त०) । धृतं स्फुटं श्रीगृहं विग्रहः (शरीरम्) यस्याः सा (बहु०) उज्ज्वलशोभायुक्त शरीरवाली यह तात्पर्य है । यत्प्रभवा = प्रभवति अस्मात् इति प्रभवः, प्र—उपसर्ग-पूर्वक 'भू' धातुसे "ऋदोरप्" इस सूत्रसे अप् प्रत्यय । यः (तडागः) प्रभवः (कारणम्) यस्याः सा (बहु०) । अप्सरायिता = अप्सरोवत् आचरिता, अप्सरस्—शब्दसे "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इस सूत्रसे "ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया" इस वार्तिकके सहकारसे क्यच् प्रत्यय, सकारका लोप और टाप् प्रत्यय । इस पद्यमें श्लेष और उपमा अलङ्कार है ।। ११५ ।।

1985

यदम्बुपूरप्रतिबिम्बिताऽऽयतिर्मरुत्तरङ्गैस्तरलस्तटद्रुमः ।
निमज्ज्य मैनाकमहीभृतः सतस्ततान पक्षान्धुवतः सपक्षताम् ।। ११६ ।।

अन्वयः—यदम्बुपूरप्रतिबिम्बिताऽऽयतिः मरुत्तरङ्गैः तरलः तटद्रुमः निमज्ज्य सतः पक्षान् धुवतः मैनाकमहीभृतः सपक्षतां ततान ।। ११६ ।।

व्याख्या—यदम्बुपूरप्रतिबिम्बिताऽऽयतिः = यज्जलप्रवाहप्रतिफलिताऽऽयामः, मरुत्तरङ्गैः = वायुचालितोर्मिभिः, तरलः = चञ्चलः, तटद्रुमः = तीरवृक्षः, निमज्ज्य = निमग्नीभूय, सतः = विद्यमानस्य, पक्षान् = पतत्त्राणि, धुवतः = कम्पयतः, मैनाकमहीभृतः = मैनाकपर्वतस्य, सपक्षतां = तुल्यतां, पक्षयुक्ततां च, ततान = विस्तारयामास ।। ११६ ।।

अनुवादः—जिस तालावके जलप्रवाहमें प्रतिबिम्बित विस्तारवाला, वायुसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कम्पित तरङ्गोंसे चञ्चल किनारेका पेड़ डूबकर रहते हुए और पंखोंको हिलाते हुए मैनाक पर्वतके समानताका वा पक्षयुक्त-भावका विस्तार कर रहा था ।। ११६ ।।

टिप्पणी—यदम्बुपूरप्रतिविम्विताऽऽयतिः = अम्बुनः पूरः (ष० त०)। यस्य (तडागस्य) अम्बुपूरः (ष० त०)। प्रतिविम्विता आयतिः यस्य सः (वहु०)। यदम्बुपूरे प्रतिविम्विताऽऽयतिः (स० त०)। मरुत्तरङ्गैः = मरुतः तरङ्गाः, तैः (ष० त०)। तटद्रुमः = तटे द्रुमः (स० त०)। निमज्ज्य = नि + मस्ज + क्त्वा (ल्यप्) । सतः = अस्तीति सत्, तस्य, अस् + लट् (शतृ) + ङस् । धुवतः = धुवतीति धुवन्, तस्य, "धू विधूनने" इस तुदादिस्थ धातुसे लट् (शतृ) + ङस् । मैनाकमहीभृतः = मैनाकश्चाऽसौ महीभृत्, तस्य (क० धा०) सपक्षतां = समानः पक्षः यस्य सः सपक्षः (वहु०), "समानस्यच्छन्दस्यमूर्धप्रभृत्युदर्केषु" इस सूत्रमें "समानस्य" इसका योगविभाग होनेसे समानके स्थानमें "स" आदेश हुआ है । सपक्षस्य भावः सपक्षता, ताम्, सपक्ष + तल् + टाप् + अम् । मैनाकपक्षमें—पक्षैः सह सपक्षः (तुल्ययोग वहु०), वोपसर्जनस्य" इस सूत्रसे 'सह'के स्थानमें "स" भाव । ततान = तनु + लिट् + तिप् (णल्) । इन्द्रने जब पर्वतोंके पक्षोंको काटा तब मैनाक पर्वत डरकर समुद्रमें छिपा ऐसी पौराणिकी आख्यायिका है । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ।। ११६ ।।

युग्मम्—

पयोधिलक्ष्मीमुषि केलिपल्वले रिरंसुहंसीकलनादसादरम् ।
स तत्र चित्रं विचरन्तमन्तिके हिरण्मयं हंसमवोधि नैषधः ।। ११७ ।।
प्रियासु बालासु रतिक्षमासु च द्विपत्रितं पल्लवितं च विभ्रतम् ।
स्मरार्जितं रागमहीरुहाङ्कुरं मिषेण चञ्च्वोश्चरणद्वयस्य च ।। ११८ ।।

अन्वयः—स नैषधः पयोधिलक्ष्मीमुषि तत्र केलिपल्वले रिरंसुहंसीकलनादसादरं बालासु रतिक्षमासु च प्रियासु चञ्च्वोः चरणद्वयस्य च मिषेण द्विपत्रितं पल्लवितं च स्मरार्जितं रागमहीरुहाऽङ्कुरं विभ्रतम् अन्तिके विचरन्तं चित्रं हिरण्मयं हंसम् अवोधि ।। ११७–११८ ।।

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः, नैषधः = नलः पयोधिलक्ष्मीमुषि = समुद्रशोभाहरे, समुद्रसदृश इति भावः । तत्र = तस्मिन्, केलिपल्वले = क्रीडासरसि, रिरंसुहंसीकलनादसाऽऽदरं = रमणेच्छुवरटामधुरशब्दसस्पृहं, बालासु = आसन्नयौवनासु, अरतिक्षमास्विति भावः । रतिक्षमासु च = रमणसमर्थासु, युवतीष्विति भावः । इत्थं द्विविधासु, प्रियासु = वल्लभासु, क्रमात्, चञ्च्वोः = त्रोटचोः चरणद्वयस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

च = पादद्वितयस्य च, मिषेण = छलेन, द्विपत्रितं = सञ्जातद्विपत्रं, चञ्च्वोः द्विखण्डत्वेन साम्यादियमुक्तिः, पल्लवितं च = सञ्जातपल्लवत्वं च, चरणयोः विसृमराऽङ्गुलित्वेन पल्लवसाम्यादियमुक्तिः। स्मरार्जितं = कामोपार्जितं, स्मरेणैव वृक्षरोपणेनोत्पादितमिति भावः। रागमहीरुहाऽङ्कुरं = अनुरागवृक्षनूतनोद्भिदं, विभ्रतं = धारयन्तं, चञ्चुपुटमिषेण द्विपत्रितं बालागोचररागं, चरणमिषेण पल्लवितं युवतिविषये रागं च धारयन्तमिति भावः। अन्तिके = हंसीनिकटे, विचरन्तं = गच्छन्तं, चित्रम् = अद्भुतं, हिरण्मयं = सुवर्णमयं, हंसं = चक्राङ्गम्, अवोधि = ज्ञातवान्, अद्राक्षीदिति भावः ॥ ११७–११८ ॥

अनुवादः—महाराज नलने समुद्रकी शोभाका हरण करनेवाले, विहार-सरोवरमें रमणकी इच्छा करने वाली हंसियोंके अव्यक्त मधुरशब्दोंमें अभिलाष करनेवाले, बाला और प्रौढ अपनी प्रियाओंमें दो चोंचों और दो चरणोंके बहानेसे दो पत्तोंसे तथा पल्लवसे युक्त कामदेवसे उपार्जित अनुरागरूप वृक्षके अङ्कुरको धारण करते हुए और हंसियोंके पास जाते हुए अनूठे सुनहरे हंसको देखा ॥ ११७–११८ ॥

टिप्पणी—नैषधः = निषध + अण्। पयोधिलक्ष्मीमुषि = पयोधेः लक्ष्मीः (ष० त०)। तां मुष्णातीति पयोधिलक्ष्मीमुट्, तस्मिन्, पयोधिलक्ष्मी + मुष् + क्विप् + ङि (उपपद०)। केलिपल्वले = केलेः पल्वलं, तस्मिन् (ष० त०)। "वेशन्तः पल्वलं चाऽल्पसरः" इत्यमरः। रिरंसुहंसीकलनादसादरं = रन्तुम् इच्छवः रिरंसवः, रम् + सन् + उः। ताश्च ता हंस्यः (क० धा०)। कलश्चाऽसौ नादः (क० धा०), आदरेण सहितः सादरः (तुल्ययोगबहु०)। रिरंसुहंसीनां कलनादः (ष० त०), तस्मिन् सादरः, तम् (स० त०)। रतिक्षमासु = रतौ क्षमाः, तासु (स० त०), चञ्च्वोः = "चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रियाम्" इत्यमरः। चरणद्वयस्य = चरणयोः द्वयं, तस्य (ष० त०)। द्विपत्रितं = द्विसंख्यके पत्रे द्विपत्रे (अध्यमपदलोपी स०)। द्विपत्रे संजाते अस्य द्विपत्रितः, तम् "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इससे इतच् प्रत्यय। पल्लवितं = पल्लवं संजातम् अस्य, तम्, पहलेके समान इतच्। स्मरार्जितं = स्मरेण अर्जितः, तम् (तृ० त०)। रागमहीरुहाऽङ्कुरं = राग एव महीरुहः (रूपक०) तस्य अङ्कुरः, तम् (ष० त०)। विभ्रतं = भृ + लट् (शतृ) + अम्। विचरन्तं = वि + चर + लट् (शतृ) + अम्, हिरण्मयं = हिरण्यस्य विकारः, तम् "दाण्डिनायनहास्ति-नायनाथर्वणिकजैह्माशिनेयवाशिनायनिभ्रौणहत्यधैवत्यसारवैक्ष्वाकमैत्रेयहिरण्मयानि"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस सूत्रसे यकारलोपका निपातन। हंसम् = यहाँपर "हंस" शब्दसे राजहंसको लेना चाहिए। "राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः।" इत्यमरः। अवोधि = "वुध अवगमने" "धातुसे लुङ्, (कर्तामें) "दीपजनवुधपूरितायिप्यायिभ्यो-ऽन्यतरस्याम्" इससे च्लिके स्थानमें चिण्। पूर्वपद्यमें पयोधिलक्ष्मीको केलि-पल्लव कैसे हरण करता है इस प्रकार वस्तुसम्वन्ध असंभव होकर पयोधि-लक्ष्मीकी सदृश लक्ष्मीका वोधन करनेसे निदर्शना अलङ्कार है। दूसरे पद्यमें यथासंख्य, रूपक और कैतवाऽपह्नुतिका सङ्कर है। उसके साथ दो रागोंके भेदमें अभेदलक्षणा अतिशयोक्तिसे उत्थापित चोंचों और चरणोंके व्याजसे भीतरके समान वाहर भी अङ्कुरितत्वकी उत्प्रेक्षा व्यङ्ग्य होती है इस प्रकार अलङ्कारसे अलङ्कारध्वनि है ॥ ११७–११८ ॥

महीमहेन्द्रस्तमवेक्ष्य स क्षणं शकुन्तमेकान्तमनोविनोदिनम्।
प्रियावियोगाद्विधुरोऽपि निर्भरं कुतूहलाक्रान्तमना मनागभूत् ॥ ११९ ॥

अन्वयः—महीमहेन्द्रः स एकान्तमनोविनोदिनं तं शकुन्तं क्षणम् अवेक्ष्य प्रियावियोगात् निर्भरं विधुरः अपि मनाक् कुतूहलाक्रान्तमनाः अभूत् ॥ ११९ ॥

व्याख्या—महीमहेन्द्रः = पृथिवीन्द्रः, सः = नलः, एकान्तमनोविनोदिनं = नितान्तचित्ताह्लादकं, तं = पूर्वोक्तं, शकुन्तं = पक्षिणं हंसमित्यर्थः। क्षणं = कंचित्कालम्, अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, प्रियावियोगात् = दयिताविरहात्, दमयन्तीवियोगा-दित्यर्थः। निर्भरम् = अतिमात्रं, विधुरः अपि = विह्वलः अपि, मनाक् = ईषत्, कुतूहलाक्रान्तमनाः = कुतूहलाऽन्वितचित्तः, अभूत् = अभवत्, ग्रहीतुकामोऽभू-दिति भावः ॥ ११९ ॥

अनुवादः—राजा नल चित्तको अत्यन्त आनन्दित करनेवाले उस पक्षी-(हंस) को कुछ समयतक देखकर दमयन्तीके विरहसे अत्यन्त विह्वल होकर भी कुछ कुतूहलसे युक्त हो गये ॥ ११९ ॥

टिप्पणी—महीमहेन्द्रः = महांऽश्चाऽसौ इन्द्रः (क० धा०), मह्यां महेन्द्रः (स० त०)। एकान्तमनोविनोदिनं = मनो विनोदयतीति मनोविनोदी, मनस् + वि + नुद् + णिच् + णिनि (उपपद०)। एकान्तं (यथा तथा) मनोविनोदी, तम् (सुप्सुपा०)। "तीव्रैकान्तनितान्तानि गाढवाढदृढानि च।" इत्यमरः। क्षणं = "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इस सूत्रसे द्वितीया। "निर्व्यापारस्थितौ कालविशेषोत्सवयोः क्षणः।" इत्यमरः। अवेक्ष्य = अव + ईक्ष + क्त्वा (ल्यप्)। प्रियावियोगात् = प्रियाया वियोगः, तस्मात् (ष० त०)। कुतूहलाक्रान्तमनाः =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आक्रान्तं मनो यस्य सः (बहु०), कुतूहलेन आक्रान्तमनाः (तृ० त०)। अभूत् = भू + लुङ् + तिप् ॥ ११६ ॥

अवश्यभव्येष्वनवग्रहग्रहा यया दिशा धावति वेधसः स्पृहा ।
तृणेन वात्येव तयाऽनुगम्यते जनस्य चित्तेन भृशाऽवशात्मना ॥ १२० ॥

अन्वयः—अवश्यभव्येषु अनवग्रहग्रहा वेधसः स्पृहा यया दिशा धावति तया भृशाऽवशात्मना जनस्य चित्तेन तृणेन वात्या इव अनुगम्यते ॥ १२० ॥

व्याख्या—धीरोदात्तो नलः कथं हंसग्रहणात्मके चापल्ये प्रावर्तिष्टेत्याशङ्क्य समाधत्ते अवश्येति । अवश्यभव्येषु = नियमभवितव्येषु विषयेषु, अनवग्रहग्रहा = अप्रतिबन्धनिर्बन्धा, निरङ्कुशाऽभिनिवेशेति भावः । वेधसः = ब्रह्मणः, स्पृहा = इच्छा, यया दिशा = येन मार्गेण, धावति = गच्छति, तया = दिशा, भृशाऽवशात्मना = अत्यर्थपरतन्त्रस्वभावेन, जनस्य = लोकस्य, चित्तेन = मानसेन, तृणेन = अर्जुनेन, वात्या इव = वातसमूह इव, अनुगम्यते = अनुस्रियते, वेधसः स्पृहा कर्म ॥ १२० ॥

अनुवादः—नियमसे भवितव्य विषयोंमें प्रतिबन्धसे रहित आग्रहवाली ब्रह्माकी इच्छा जिस दिशासे जाती है उसी दिशाको अत्यन्त परतन्त्र स्वभाववाले मनुष्यका चित्त अनुगमन करता है, जैसे कि तृण वायुसमूहका अनुगमन करता है ॥१२०॥

टिप्पणी—अवश्यभव्येषु = भवन्तीति भव्याः, "भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीय-जन्याप्लाव्यापात्या वा" इस सूत्रसे निपात हुआ है। अवश्यं भव्याः तेषु (सुप्सुपा०) । "अवश्यम्" के मकारका "लुम्पेदवश्यमः कृत्ये" इससे लोप हुआ है । अनवग्रहग्रहा = अविद्यमानः अवग्रहः यस्मिन् सः (नञ्बहु०), स ग्रहः यस्यां सा (बहु०) "ग्रहोऽनुग्रहनिर्बन्धग्रहणेषु रणोद्यमे ।" इति विश्वः । भृशाऽवशात्मना = अवशः (अधीनः) आत्मा (स्वभावः) यस्य सः (बहु०) । भृशम् (यथा तथा) अवशात्मा, तेन (सुप्सुपा०) । वात्या = वातानां समूहः, 'वात' शब्दसे "पाशादिभ्यो यः" इस सूत्रसे य प्रत्यय और टाप् । अनुगम्यते=अनुगम् + लट् (कर्ममें) त । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १२० ॥

अथाऽवलम्ब्य क्षणमेकपादिकां तदा निदद्रावुपपल्वलं खगः ।
स तिर्यगावर्जितकन्धरः शिरः पिधाय पक्षेण रतिक्लमाऽलसः ॥ १२१ ॥

अन्वयः—अथ रतिक्लमाऽलसः स खगः तदा एकपादिकाम् अवलम्ब्य तिर्यगावर्जितकन्धरः (सन्) पक्षेण शिरः पिधाय उपपल्वलं क्षणं निदद्रौ ॥ १२१ ॥

व्याख्या—अथ = नलोत्कण्ठोत्पत्त्यनन्तरं, रतिक्लमाऽलसः = सुरतखेदालस्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

युक्तः, सः = पूर्वोक्तः, खगः = पक्षी, हंस इत्यर्थः । तदा = तस्मिन् समये, एकपादिकाम् = एकपादाऽवस्थानक्रियाम्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, तिर्यगावर्जितकन्धरः = तिर्यगावर्तितग्रीवः (सन्), पक्षेण = पतत्त्रेण, शिरः = मूर्धानं, पिधाय = आच्छाद्य, उपपल्वलं = क्रीडासरोवरनिकटे, क्षणं = कंचित्कालं, निदद्रौ = सुष्वाप ॥ १२१ ॥

अनुवादः—नलको उत्कण्ठा होनेके अनन्तर रमणकी ग्लानिसे आलस्ययुक्त होकर वह पक्षी (हंस) उस समय एक पैरसे भूतलका अवलम्वन कर गरदनको टेढ़ाकर पंखसे शिर ढककर तालावके पास कुछ समयतक सो गया ॥ १२१ ॥

टिप्पणी—रतिक्लमाऽलसः = रतेः क्लमः (ष० त०), तेन अलसः (तृ० त०) । खगः = खे गच्छतीति, ख + गम् + डः । एकपादिकाम् = एकः पादः यस्याम् (क्रियायाम्) एकपादिका, ताम्, "तद्धिताऽर्थोत्तरपदसमाहारे च" इस सूत्रसे तद्धितार्थविषयमें समास होकर "अत इनिठनौ" इस सूत्रसे ठन् प्रत्यय होकर "ठस्येकः" इससे उसके स्थानमें इक होकर स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् । अनित्य होनेसे समासाऽन्त विधिका अभाव हुआ, अतएव पद् आदेशका प्रसङ्ग नहीं । तिर्यगावर्जितकन्धरः = तिर्यक् आवर्जिता कन्धरा येन सः (बहु०) । पिधाय = अपि + धा + क्त्वा (ल्यप्), "वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोः" इसके अनुसार 'अपि' के अकारका लोप । "अपिधानतिरोधानपिधानाच्छादनानि च ।" इत्यमरः । उपपल्वलं = पल्वलस्य समीपे, समीप अर्थमें अव्ययीभाव । निदद्रौ = नि + द्रा + लिट् + णल् (औ) इस पद्यमें स्वभावोक्ति अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"स्वभावोक्तिर्दुरूहाऽर्थस्वक्रियारूपवर्णनम् ।" सा० द० १०-१२१ ॥१२१॥

सनालमात्माऽऽननिर्जितप्रभं ह्रिया नतं काञ्चनमम्बुजन्म किम् ? ।
अबुद्ध तं विद्रुमदण्डमण्डितं स पीतमम्भःप्रभुचामरं च किम् ? ॥ १२२ ॥

अन्वयः—स तम् आत्माऽऽननिर्जितप्रभं ह्रिया नतं सनालं काञ्चनम् अम्बुजन्म किम् ? (तथा) विद्रुमदण्डमण्डितं पीतम् अम्भःप्रभुचामरं च किम् (इति) अबुद्ध ॥ १२२ ॥

व्याख्या—सः = नलः, तं = हंसम्, आत्माऽऽननिर्जितप्रभं = स्वमुखपराजितकान्ति, अतएव ह्रिया = लज्जया, नतं = नम्रं, सनालं = नालसहितम्, एकचरणाऽवस्थानादिति शेषः । काञ्चनं = सौवर्णं, हंसस्य हिरण्मयत्वादिति शेषः । अम्बुजन्म = जलजं, कमलमित्यर्थः, किं = किमु, (तथा) विद्रुमदण्डमण्डितं =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवालदण्डभूषितं, चरणस्य रक्तत्वादिति शेषः। पीतं = पीतवर्णं, हिरण्मयत्वादिति शेषः। अम्भःप्रभुचामरं च = वरुणप्रकीर्णकं च, किं = किमु, इति अबुद्ध=बुद्धवान्, उत्प्रेक्षितवानिति भावः ॥ १२२ ॥

अनुवादः—नलने हंसको अपने मुखसे पराजित कान्तिवाला अतएव लज्जासे झुका हुआ, नालसे युक्त सुनहला कमल है क्या ? अथवा मूँगेके दण्डसे अलंकृत पीला वरुणदेवका चामर है क्या ? ऐसा विचार किया ॥ १२२ ॥

टिप्पणी—आत्माननिर्जितप्रभम् = निर्जिता प्रभा यस्य तत् (बहु०)। आत्मनः आननम् (ष० त०), तेन निर्जितप्रभम् (तृ० त०)। नतं = नम् + क्तः। सनालं = नालेन सहितम् (तुल्ययोगबहु०)। काञ्चनं = काञ्चनस्य विकारः, "अनुदात्तादेश्च" इस सूत्रसे अञ् प्रत्यय। अम्बुजन्म = अम्बुनः जन्म यस्य तत् (व्यधिकरणबहु०)। विद्रुमदण्डमण्डितं = विद्रुमस्य दण्डः (ष० त०), तेन मण्डितम् (तृ० त०)। अम्भःप्रभुचामरम् = अम्भसः प्रभुः (ष० त०), "प्रचेता वरुणः पाशी यादसां पतिरप्पतिः।" इत्यमरः। अम्भःप्रभोः चामरम् (ष० त०)। अबुद्ध = "बुध अवगमने" धातुसे लुङ् + त, "झषस्तथोर्धोऽधः" इस सूत्रसे तकारके स्थानमें धकार। इस पद्यमें ह्री (लज्जा) के प्रति "निर्जितप्रभ" पदका अर्थ हेतु है अतः पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग, पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें दो उत्प्रेक्षाएँ और "अबुद्ध" इस एक क्रियाके साथ "अम्बुज" और "चामर" की कर्मतासे सम्बन्ध होनेसे तुल्ययोगिता अलङ्कार है, इस प्रकार इनका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ १२२ ॥

कृताऽवरोहस्य हयादुपानहौ ततः पदे रेजतुरस्य विभ्रती।
तयोः प्रवालैर्वनयोस्तथाऽम्बुजैर्नियोद्धुकामे किमु बद्धवर्मणी ? ॥ १२३ ॥

अन्वयः—ततः हयात् कृताऽवरोहस्य अस्य उपानहौ विभ्रती पदे तयोः वनयोः प्रवालैः तथा अम्बुजैः नियोद्धुकामे (अतः) बद्धवर्मणी रेजतुः किमु ? ॥१२३॥

व्याख्या—ततः = हंसदर्शनानन्तरं, हयात् = अश्वात्, कृताऽवरोहस्य = विहिताऽवतरणस्य, अस्य = नलस्य, उपानहौ = पादत्राणे, वर्मरूपे इति भावः। विभ्रती = धारयती, पदे = चरणे, तयोः = पूर्वोक्तयोः, वनयोः = विपिनसलिलयोः, प्रवालैः = पल्लवैः, तथा = तेन प्रकारेण, अम्बुजैः = कमलैः, नियोद्धुकामे = युद्धकामे, अतः बद्धवर्मणी = सन्नद्धकवचे, रेजतुः = शुशुभाते, किमु ॥ १२३ ॥

अनुवादः—तब घोड़ेसे उतरनेवाले नलके जूतोंको पहननेवाले पाँव, उपवन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और जलके पल्लवों और कमलोंसे युद्ध करनेकी इच्छासे कवच पहने हुए हैं क्या ? इस प्रकार शोभित हुए ॥ १२३ ॥

टिप्पणी—हयात् = अपादानमें पञ्चमी । कृताऽवरोहस्य = कृतः अवरोहः येन, तस्य (बहु०) । उपानहौ = उपनह्येते इति उपानहौ, ते, उप–उपसर्गपूर्वक "णह बन्धने" धातुसे "सम्पदादिभ्यः क्विप्" इस वार्तिकसे क्विप् प्रत्यय और "नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ" इस सूत्रसे पूर्वपदका दीर्घ । बिभ्रती = भृ + लट् (शतृ) + औ । पदे = पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माऽङ्घ्रिवस्तुषु ।" इत्यमरः । वनयोः = वनं च वनं च वने, तयोः "सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ" इससे एकशेष "वने सलिलकानने" इत्यमरः । प्रवालैः = "प्रवालोऽस्त्री किसलये वीणादण्डे च विद्रुमे ।" इति मेदिनी । नियोद्धुकामे = नियोद्धुं कामः ययोस्ते (बहु०) । "तुं काममनसोरपि" इससे तुमुन्के मकारका लोप । बद्धवर्मणी = बद्धं वर्म याभ्यां ते (बहु०) । रेजतुः = "राजृ दीप्तौ" धातुसे लिट् + तस् (अतुस्) । "फणां च सप्तानाम्" इस सूत्रसे एत्व और अभ्यासलोप । इस पद्यमें श्लेष यथासंख्य और उत्प्रेक्षाका अङ्गाङ्गिभावरूप सङ्कर अलङ्कार है ॥ १२३ ॥

विधाय मूर्ति कपटेन वामनीं स्वयं बलिध्वंसिविडम्बिनीमयम् ।
उपेतपार्श्वश्चरणेन मौनिना नृपः पतङ्गं समधत्त पाणिना ॥ १२४ ॥

अन्वयः—अयं नृपः स्वयं कपटेन वामनीं बलिध्वंसिविडम्बिनीं मूर्तिं विधाय मौनिना चरणेन उपेतपार्श्वः पाणिना पतङ्गं समधत्त ॥ १२४ ॥

व्याख्या—अयम् = एषः, नृपः = राजा, नल इत्यर्थः । स्वयम् = आत्मना, नत्वनुचरेण, कपटेन = छलेन, वामनीं = ह्रस्वां, बलिध्वंसिविडम्बिनीं = भगवद्वामनाऽनुकारिणीं, मूर्तिं = शरीरं, विधाय = कृत्वा, शरीरं सङ्कुच्येति भावः । मौनिना = मौनयुक्तेन, निःशब्देनेत्यर्थः । चरणेन = पादेन, उपेतपार्श्वः=आसादितहंससामीप्यः सन्, पाणिना = करेण, पतङ्गं = पक्षिणं, हंसमिति भावः । समधत्त= जग्राहेत्यर्थः ॥ १२४ ॥

अनुवादः—राजा नलने स्वयम् कपटसे बलिको छलनेवाले विष्णु (वामन)-की नकल करनेवाला छोटा शरीर बनाकर शब्दसे रहित चरणसे (दबे पांव) हंसके पास पहुंचकर हाथसे हंसको पकड़ लिया ॥ १२४ ॥

टिप्पणी—वामनीं = वामनस्य इयं वामनी, ताम्, वामन + अण् + ङीप् + अम् । "टिड्ढाणञ्०" इस सूत्रसे ङीप् वा "षिद्गौरादिभ्यश्च" इससे ङीप् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वलिध्वंसिविडम्बिनीं = वलिं ध्वंसयतीति वलिध्वंसी (वामनः), वलि + ध्वंस + णिच् + णिनिः (उपपद०) । वलिध्वंसिनं विडम्बयतीति वलिध्वंसिविडम्बिनी, ताम्, वलिध्वंसि + वि + डवि + णिनि + ङीप् + अम् । मूर्ति = "मूर्तिः काठिन्य-काययोः" इत्यमरः । विधाय = वि + धा + क्त्वा (ल्यप्) । मौनिना = मुनेर्भावः मौनम्, 'मुनि' शब्दसे "इगन्ताच्च लघुपूर्वात्" इससे अण् । मौनम् अस्याऽस्तीति मौनी, तेन, मौन + इनि + टा । उपेतपार्श्वम् = उपेतं पार्श्वं येन सः, तम् (वहु०) । पाणिना = "साधकतमं करणम्, इससे करणसंज्ञा होकर तृतीया । समधत्त = सं + धा + लुङ् + त । इस पद्यमें स्वभावोक्ति और उपमाका संसृष्टि अलङ्कार है । पूर्वकालमें भगवान् नारायणने अदितिकी प्रार्थनासे वामन अवतार लेकर त्रिपादपरिमित भूमिकी प्रार्थना कर छलपूर्वक वलिको स्वर्गसे हटा दिया था, यहां पर उसी वातका सङ्केत है ॥ १२४ ॥

तदात्तमात्मानमवेत्य संभ्रमात्पुनः पुनः प्रायसदुत्प्लवाय सः ।
गतो विरुत्योड्डयने निराशतां करौ निरोद्धुर्दशति स्म केवलम् ॥ १२५ ॥

अन्वयः—स आत्मानं तदात्तम् अवेत्य संभ्रमात् उत्प्लवाय पुनः पुनः प्रायसत्; उड्डयने निराशतां गतः (सन्) विरुत्य निरोद्धुः करौ केवलं दशति स्म ॥१२५॥

व्याख्या—सः = हंसः, आत्मानं = स्वं, तदात्तं = नलगृहीतम्, अवेत्य = ज्ञात्वा, संभ्रमात् = त्वरायाः, उत्प्लवाय = उत्पतनाय, पुनः पुनः = भूयो भूयः, प्रायसत् = प्रयासम् अकार्षीत्, उड्डयने = उत्पतने, निराशतां = नैराश्यं, गतः = प्राप्तः सन्, विरुत्य = विक्रुश्य, निरोद्धुः=ग्रहीतुः, नलस्येति भावः । करौ = हस्तौ; केवलम् = एव, दशति स्म = दष्टवान् ॥ १२५ ॥

अनुवादः—उस हंसने अपनेको नलसे पकड़ा गया जानकर घबड़ाहटसे उड़नेके लिए वारंवार प्रयत्न किया, आखिर उड़नेमें निराश होकर चिल्लाकर नलके दोनों हाथोंको काटने लगा ॥ १२५ ॥

टिप्पणी—तदात्तं = तेन आत्तः, तम् (तृ० त०) । अवेत्य = अव + इण् + क्त्वा (ल्यप्) । संभ्रमात् = हेतुमें पञ्चमी । उत्प्लवाय = "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" इस सूत्रसे चतुर्थी । प्रायसत् = प्र-उपसर्गपूर्वक "यसु प्रयत्ने" धातुसे लुङ्में "पुषादिद्युताद्यॢदितः परस्मैपदेषु" इस सूत्रसे च्लिके स्थानमें अङ् आदेश । निराशतां = निर्गता आशा यस्मात् सः (वहु०) । निराशस्य भावो निराशता, ताम्, निराश + तल् + टाप् । विरुत्य = वि–उपसर्गपूर्वक "रु शब्दे"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातुसे क्त्वा (ल्यप्)। निरोद्धुः = निरुणद्धीति निरोद्धा, तस्य नि + रुध् + तृच् + ङस्। इस पद्यमें भी स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ १२५ ॥

ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलं सरः प्रपद्योत्कतयाऽनुकम्पिताम्।
तमूर्मिलोलैः पतगग्रहान्नृपं न्यवारयद्वारिरुहैः करैरिव ॥ १२६ ॥

अन्वयः—ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलं सरः उत्कतया अनुकम्पितां प्रपद्य तं नृपम् ऊर्मिलोलैः वारिरुहैः करैः इव पतगग्रहात् न्यवारयत् ॥ १२६ ॥

व्याख्या—ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलं = सत्वरोत्पतनशीलपक्षिसमूहव्याकुलं, सरः = तडागः, उत्कतया = उत्कण्ठितत्वेन, अनुकम्पितां = दयालुतां, प्रपद्य = प्राप्य, तं = पूर्वोक्तं, नृपं = राजानं, नलमिति भावः। ऊर्मिलोलैः = तरङ्गचञ्चलैः, वारिरुहैः = कमलैः, करैः इव = हस्तैः इव, पतगग्रहात् = पक्षिग्रहणात्, न्यवारयत् इव = निवारितवान् इव ॥ १२६ ॥

अनुवादः—घबड़ाहटके साथ उड़नेवाले पक्षियोंसे आकुल तालाव, उत्कण्ठित होनेसे दयालु होकर राजा नलको तरङ्गोंसे चञ्चल कमलसदृश हाथोंसे पक्षीको ग्रहण करनेमें मानों रोक रहा है ऐसा मालूम होता था ॥ १२६ ॥

टिप्पणी—ससंभ्रमोत्पातिपतत्कुलाऽऽकुलं = पतन्तीति पतन्तः, पत् + लट् (शतृ)। "पतत्त्रिपत्त्रिपतगपतत्पत्त्ररथाऽण्डजाः।" इत्यमरः। पततां कुलम् (ष० त०)। संभ्रमेण सहितं, (तुल्ययोगबहु०)। उत्पततीति उत्पाति, उद् + पत् + णिनिः। ससंभ्रमं यथा तथा उत्पाति (सुप्सुपा०)। ससंभ्रमोत्पाति च तत् पतत्कुलम् (क० धा०), तेन आकुलम् (तृ० त०)। उत्कतया = "उत्क उन्मनाः" इस सूत्रसे "उत्क" शब्दका निपात हुआ है। उत्कस्य भाव उत्कता, तया, उत्क + तल् + टाप् + टा। अथवा उद्गतं कं (जलम्) यस्मात् उत्कं (बहु०), तस्य भावः तत्ता तया। पक्षियोंके उड़नेसे जलके हिलनेसे यह तात्पर्य है। अनुकम्पिताम् = अनुकम्पते तच्छीलः अनुकम्पी, अनु + कपि + णिनिः। अनुकम्पिनः भावः अनुकम्पिता, ताम्, अनुकम्पिन् + तल् + टाप् + अम्। प्रपद्य = प्र + पद् + क्त्वा (ल्यप्)। ऊर्मिलोलैः = ऊर्मिभिः लोलानि, तैः (तृ० त०)। वारिरुहैः = वारिणि रोहन्तीति वारिरुहाणि, तैः, "इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः" इस सूत्रसे क प्रत्यय, वारि + रुह + कः। पतगग्रहात्=पतगस्य ग्रहः, तस्मात् (ष० त०)। न्यवारयत्=नि + वृ + णिच् + लङ् + तिप्। इस पद्यमें उपमा और "न्यवारयत्" यहाँपर उत्प्रेक्षावाचक इव आदि शब्दके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ १२६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पतत्त्रिणा तद्रुचिरेण वञ्चितं श्रियः प्रयान्त्याः प्रविहाय पल्वलम् ।
चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा चुकूज कूले कलहंसमण्डली ॥ १२७ ॥

अन्वयः—रुचिरेण पतत्त्रिणा वञ्चितं तत् पल्वलं प्रविहाय प्रयान्त्याः श्रियः चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा कलहंसमण्डली कूले चुकूज ॥ १२७ ॥

व्याख्या—रुचिरेण = सुन्दरेण, पतत्त्रिणा = पक्षिणा, हंसेनेति भावः, वञ्चितं = विरहितं, तत् = पूर्वोक्तं, पल्वलं = तडागं, प्रविहाय = संत्यज्य, प्रयान्त्याः = गच्छन्त्याः, श्रियः = लक्ष्म्याः, चलत्पदाऽम्भोरुहनूपुरोपमा = गच्छच्चरणकमलपादाऽङ्गदसाम्ययुक्ता, कलहंसमण्डली = राजहंससंहतिः, कूले = तडागतटे, चुकूज = अव्यक्तशब्दं चकार ॥ १२७ ॥

अनुवादः—सुन्दर पक्षी (राजहंस) से रहित उस तालावको छोड़ कर जाती हुई लक्ष्मीके चलते हुए चरणकमलोंके नूपुरके सदृश राजहंससमूह किनारेमें शोर मचाने लगा ॥ १२७ ॥

टिप्पणी—प्रविहाय = प्र + वि + हा + क्त्वा (ल्यप्) । प्रयान्त्याः = प्रयातीति प्रयान्ती, तस्याः, प्र + या + लट् + शतृ + ङीप् + ङस् । चलत्पदाम्भोरुहनूपुरोपमा = अम्भसि रोहत इति अम्भोरुहे, अम्भस् + रुह + कः । पदे अम्भोरुहे इव (उपमित०) । चलती च ते पदाम्भोरुहे (क० धा०), तयोः नूपुरौ (ष० त०), "पादाङ्गदं तुलाकोटिर्मञ्जीरो नूपुरोऽस्त्रियाम् ।" इत्यमरः । चलत्पदाम्भोरुहनूपुराभ्याम् उपमा (सादृश्यम्) यस्याः सा (व्यधिकरणबहु०) । कलहंसमण्डली=कलवाचो हंसाः कलहंसाः (मध्यमपदलोपी स०) । "कलहंसस्तु कादम्बे राजहंसे नृपोत्तमे ।" इति विश्वः । कलहंसानां मण्डली (ष० त०) । चुकूज = "कूज अव्यक्ते शब्दे" इस धातुसे लिट् + तिप् (णल्) । इस पद्यमें शोभा और लक्ष्मीके भेद होनेपर भी श्री शब्दके श्लेषसे अभेद अध्यवसाय होनेसे अतिशयोक्ति और उपमा इन दोनोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ १२७ ॥

न वासयोग्या वसुधेयमीदृशस्त्वमङ्ग ! यस्याः पतिरुज्झितस्थितिः ।
इति प्रहाय क्षितिमाश्रिता नभः खगास्तमाचुक्रुशुरारवैः खलु ॥१२८॥

अन्वयः—इयं वसुधा वासयोग्या न, अङ्ग ! यस्या उज्झितस्थितिः ईदृशः त्वं पतिः इति खगाः क्षितिं प्रहाय नभ आश्रिताः (सन्तः) तम् आरवैः आचुक्रुशुः खलु ॥ १२८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—इयम् = एषा, वसुधा = पृथिवी, वासयोग्या न = निवासाऽर्हा न; अङ्ग = भो राजन्:, यस्याः = वसुधायाः, उज्झितस्थितिः = त्यक्तमर्यादः, ईदृशः = एतादृशः, निरपराधपक्षिग्रहीतेति भावः । त्वं, पतिः = पालकः, असीति शेषः । इति = एवं, कथयित्वा इवेति शेषः । खगाः = पक्षिणः, क्षितिं = वसुधां, प्रहाय = परित्यज्य, नभः = अन्तरिक्षम्, आश्रिताः = प्राप्ताः सन्तः, तं = नलम्, आरवैः = उच्चध्वनिभिः, आचुक्रुशुः = निनिन्दुः (इव), खलु = निश्चयेन ॥ १२८ ॥

अनुवादः—"यह धरती रहने लायक नहीं है, हे राजन् ! मर्यादा छोड़नेवाले आप जैसे जिसके पालक हैं।" इस प्रकार पक्षिगण धरतीको छोड़कर अन्तरिक्षका आश्रय लेते हुए नलको उच्च ध्वनियोंसे निन्दा कर रहे हैं ऐसा मालूम होता था ॥ १२८ ॥

टिप्पणी—वासयोग्या = वासे योग्या (स० त०)। अङ्ग = "स्युः प्याट् पाडङ्ग हैं हे भोः" इत्यमरः । ये सब अव्यय हैं। उज्झितस्थितिः = उज्झिता स्थितिर्येन सः (बहु०)। "संस्था तु मर्यादा धारणा स्थितिः" इत्यमरः । प्रहाय = प्र + हा + क्त्वा (ल्यप्)। आचुक्रुशुः = आङ् + क्रुश + लिट् + झि (उस्)। इस पद्यमें "आचुक्रुशुः" इस क्रियापदमें उत्प्रेक्षाद्योतक इव आदि पदके अभावसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ १२८ ॥

"न जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य दृष्टे" यमिति स्तुवन्मुहुः ।
अवादि तेनाऽथ स मानसौकसा जनाऽधिनाथः करपञ्जरस्पृशा ॥ १२९ ॥

अन्वयः—"इयं जातरूपच्छदजातरूपता द्विजस्य न दृष्टा" इति मुहुः स्तुवन् स जनाऽधिनाथः अथ करपञ्जरस्पृशा तेन मानसौकसा अवादि ॥ १२९ ॥

व्याख्या—इयम् = ईदृक्, जातरूपच्छदजातरूपता = सुवर्णपक्षोत्पन्नसौन्दर्यता, द्विजस्य = पक्षिणः, न दृष्टा = न अवलोकिता, इति = इत्थं, मुहुः = वारंवारं, स्तुवन् = प्रशंसन्, सः = पूर्वोक्तः, जनाऽधिनाथः = नराऽधिपतिः, नल इति भावः । अथ = अनन्तरं, करपञ्जरस्पृशा = हस्तपिञ्जरस्पर्शकारिणा । तेन = पूर्वोक्तेन, मानसौकसा = मानससरोवरवासिना, हंसेनेत्यर्थः । अवादि = उक्तः ॥ १२९ ॥

अनुवादः—"किसी भी पक्षीमें सुनहले पङ्खोंका ऐसा सौन्दर्य मैंने नहीं देखा था" इस प्रकार वारंवार तारीफ करनेवाले राजा नलको पिंजड़े सदृश उनके हाथमें विद्यमान उस हंसने कहा ॥ १२९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—जातरूपच्छदजातरूपता = जातं रूपं (सौन्दर्यम्) यस्य सः जातरूपः (बहु०), तस्य भावो जातरूपता, जातरूप + तल् + टाप् । जातरूपस्य छदाः (ष० त०), "चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने ।" इत्यमरः । जातरूपच्छदैः जातरूपता (तृ० त०) । स्तुवन् = स्तौतीति, ष्टु + लट् (शतृ) + सुः । जनाऽधिनाथः = जनानाम् अधिनाथः (ष० त०) । करपञ्जरस्पृशा = करः पञ्जरम् इव (उपमित०) । 'पिंजड़के समान हाथ' कहनेसे उसकी शिथिलतासे पीडाके अभावकी सूचना होती है । करपञ्जरं स्पृशतीति करपञ्जरस्पृक्, तेन, करपञ्जर-उपपदपूर्वक "स्पृश" धातुसे "स्पृशोऽनुदके क्विन्" इस सूत्रसे क्विन् प्रत्यय । मानसौकसा = मानसम् ओकः (स्थानम्) यस्य स मानसौकाः, तेन (बहु०) । "हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्राऽङ्गा मानसौकसः ।" इत्यमरः । अवादि = वद + लुङ् (कर्ममें) + त । इस पद्यमें "करपञ्जरस्पृशा" इसमें उपमा अलङ्कार है और "जातरूप....." ".....जातरूप" यहाँपर यमक अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः ।
क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ।।" सा० द० १०-१० ।।१२९।।

धिगस्तु तृष्णातरलं भवन्मनः समीक्ष्य पक्षान्मम हेमजन्मनः ।
तवाऽर्णवस्येव तुषारशीकरैर्भवेदमीभिः कमलोदयः कियान् ? ।। १३० ।।

अन्वयः—हेमजन्मनः मम पक्षान् समीक्ष्य तृष्णातरलं भवन्मनः धिक् अस्तु; तुषारशीकरैः अर्णवस्य इव तव अमीभिः कियान् कमलोदयः भवेत् ? ।। १३० ।।

व्याख्या—अथ हंसः पद्यचतुष्टयेन राजानमुपालभते—धिगिति । हेमजन्मनः = सौवर्णान्, मम = हंसस्य, पक्षान् = पतत्राणि, समीक्ष्य = दृष्ट्वा, तृष्णातरलं = लालसाचञ्चलं, भवन्मनः धिक् = त्वच्चित्तं, धिक् = भवन्मनसो निन्देत्यर्थः । अस्तु = भवतु, तुषारशीकरैः = हिमकणैः, अर्णवस्य इव = समुद्रस्य इव, तव = भवतः, अमीभिः = एभिः, हेमजन्मभिः पक्षैरिति भावः, कियान् = किंपरिमाणः, कमलोदयः = भवतः—कमलायाः = लक्ष्म्याः, समुद्रस्य—कमलस्य = जलस्य, उदयः = वृद्धिः, भवेत् = स्यात्, अतिस्वल्पः स्यादिति भावः । अगाधजलः समुद्रो यथा जलवृद्ध्यर्थं तुषारशीकरं नाद्रियते तथैव आढ्यतमेन भवताऽपि मत्पक्षसुवर्णं नादरणीयमिति भावः ।। १३० ।।

अनुवादः—सुनहरे मेरे पंखोंको देखकर तृष्णासे चञ्चल आपके मनको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धिक्कार हो। हिमकणोंसे समुद्रको जैसे कितनी जलवृद्धि होगी? वैसे ही मेरे इन सुनहले पंखोंसे आपको कितनी सम्पत्तिकी वृद्धि होगी? ॥ १३० ॥

टिप्पणी—हेमजन्मनः = हेम्नः जन्म येषां ते हेमजन्मानः, तान् (व्यधिकरण-बहु०)। समीक्ष्य = सम् + ईक्ष + क्त्वा (ल्यप्)। तृष्णातरलं = तृष्णया तरलं, तत् (तृ० त०)। भवन्मनः = भवतः मनः, तत्, "धिक्"के योगमें "धिगुपर्यादिषु त्रिषु" इससे द्वितीया। धिक् = धिङ् निर्भर्त्सननिन्दयोः" इत्यमरः। अस्तु = अस् + लोट् + तिप्। तुषारशीकरैः = तुषाराणां शीकराः, तैः (ष० त०)। कियान् = किं परिमाणम् अस्य, 'किम्' शब्दसे "किमिदम्भ्यां वो घः" इससे वतुप् (वत्) और 'व'के स्थानमें घ (इय) आदेश, "इदं-किमोरीश् की" इससे 'किम्'के स्थानमें 'की' और "यस्येति च" इससे ईकारका लोप। कमलोदयः = राजपक्षमें—कमलायाः (लक्ष्म्याः), समुद्रपक्षमें—कमलस्य उदयः (ष० त०)। "कमला श्रीर्हरिप्रिया" इति "सलिलं कमलं जलम्" इति चाऽमरः। इस पद्यमें उपमा और श्लेष अलङ्कारकी संसृष्टि है ॥ १३० ॥

न केवलं प्राणिवधो वधो मम त्वदीक्षणाद्विश्वसिताऽन्तरात्मनः।
विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि ॥ १३१ ॥

अन्वयः—(हे नृप!) त्वदीक्षणात् विश्वसिताऽन्तरात्मनः मम वधः केवलं प्राणिवधः न। विश्वासजुषां द्विषाम् अपि निबर्हणं धर्मधनैः विशिष्य विगर्हितम् ॥ १३१ ॥

व्याख्या—(हे नृप!) त्वदीक्षणात् = भवन्मूर्तिदर्शनात्, विश्वसिताऽन्तरात्मनः = विस्रब्धचित्तस्य, मम = हंसस्य, वधः = व्यापादनं, केवलः प्राणिवधः = जन्तुव्यापादनमात्रं, न = न अस्ति। किन्तु विश्वासजुषां = विस्रम्भभाजां, द्विषाम् अपि = शत्रूणाम् अपि, निबर्हणं = वधः, धर्मधनैः = धर्मपरैः, मन्वादिभिरिति शेषः। विशिष्य = अतिरिच्य, विगर्हितम् = अत्यन्तनिन्दितम्। कस्याऽपि प्राणिनो वधो गर्हितः, तत्राऽपि निरपराधस्य, तत्राऽपि "भवान् धार्मिको राजा" इति मनसिकृत्य विश्वस्तस्य मम वधो धार्मिकैरत्यन्तविगर्हितो भवेदिति भावः ॥१३१॥

अनुवादः—आपको देखनेसे विश्वस्त चित्तवाले मेरी हिंसा खाली प्राणिहिंसा नहीं है। विश्वास करनेवाले शत्रुओंकी हत्याकी भी धर्मज्ञोंने अत्यन्त निन्दा की है ॥ १३१ ॥

टिप्पणी—त्वदीक्षणात् = तव ईक्षणं, तस्मात् (ष० त०)। विश्वसिताऽन्तरात्मनः = विश्वसितः अन्तरात्मा यस्य स विश्वसिताऽन्तरात्मा, तस्य (बहु०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणिवधः = प्राणिनः वधः (ष० त०)। विश्वासजुषां = विश्वासं जुषन्त इति विश्वासजुषः, तेषाम्, विश्वास + जुष् + क्विप् + आम्। द्विषां = द्विषन्ति ते द्विषः, तेषाम्, द्विष् + क्विप् + आम्। निवर्हणं = "प्रमापणं निवर्हणं निकारणं विशारणम्।" इत्यमरः। विशिष्य = वि + शिष् + क्त्वा (ल्यप्)। इस पद्यमें अर्थान्तरन्यास और अर्थापत्तिका सङ्कर है॥ १३१॥

पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिंसारस एष पूर्यते ?।
धिगीदृशं ते नृपतेः कुविक्रमं कृपाश्रये यः कृपणे पतत्रिणि॥ १३२॥

अन्वयः—रणोद्भटाः भटाः पदे पदे सन्ति, एष हिंसारसः तेषु न पूर्यते ? नृपतेः ते ईदृशं कुविक्रमं धिक्; यः कृपाऽऽश्रये कृपणे पतत्रिणी (क्रियते)॥१३२॥

व्याख्या—रणोद्भटाः = युद्धप्रचण्डाः, भटाः = योधाः, पदे पदे = प्रतिपदं, सन्ति = वर्तन्ते। एषः = अयं, हिंसारसः = वधरागः, तेषु = भटेषु, न पूर्यते = परिपूर्णो न भवति ? इति काकुः। नृपतेः = राज्ञः, ते = तव, ईदृशम् = एतादृशम्, अवध्यवधरूपमिति भावः। कुविक्रमं = कुत्सितपराक्रमं, धिक्, कुविक्रमस्य निन्देत्यर्थः। यः = कुविक्रमः, कृपाऽऽश्रये = करुणाविषये, कृपणे = दीने, पतत्रिणि = पक्षिणि, क्रियत इति शेषः॥ १३२॥

अनुवादः—(हे राजन् !) युद्धमें प्रचण्ड योद्धा पग-पगमें मौजूद हैं, यह हिंसाराग क्या उनमें पूर्ण नहीं होता है ? प्रजापालक आपके इस कुत्सित पराक्रमको धिक्कार है, जो कि करुणाके विषय दीन पक्षीमें किया जा रहा है॥ १३२॥

टिप्पणी—रणोद्भटाः = रणेषु उद्भटाः (स० त०)। भटाः = "भटा योधाश्च योद्धारः" इत्यमरः। पदे पदे = वीप्सामें द्विरुक्ति। सन्ति = अस् + लट् + झि। हिंसारसः = हिंसाया रसः (ष० त०), "शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः।" इत्यमरः। पूर्यते = पूरी + लट् + श्यन् + त। नृपतेः = नृणां पतिः, तस्य (ष० त०)। कुविक्रमं = कुत्सितः विक्रमः, तम्, "कुगतिप्रादयः" इससे समास। "धिक्" के योगमें "धिगुपर्यादिषु त्रिषु" इससे द्वितीया। कृपाऽऽश्रये = कृपाया आश्रयः, तस्मिन् (ष० त०), पतत्रिणि = पतत्र + इनि + ङि॥१३२॥

फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।
त्वयाऽद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी हृणीयते ?॥१३३॥

अन्वयः—यस्य मम मुनेः इव वारिभूरुहां फलेन मूलेन च इत्थं वृत्तयः, तस्मिन् अपि दण्डधारिणा पत्या त्वया अद्य धरणी कथं न हृणीयते ?॥ १३३॥

व्याख्या—यस्य, मम = हंसस्य, मुनेः इव = ऋषेः इव, वारिभूरुहां = जल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूम्युत्पन्नानां, पद्मवृक्षादीनामित्यर्थः, फलेन = सस्येन, मूलेन च = कन्दादिना च, इत्थम् = अनेन प्रकारेण, वृत्तयः = जीविकाः, सन्तीति शेषः। तस्मिन् अपि = मुनिसदृशे अपि, निर्दोषेऽपीति शेषः, दण्डधारिणा = निग्रहकारिणा, अदण्ड्यदण्डकेनेत्यर्थः। पत्या = पालकेन, त्वया = भवता, राज्ञेत्यर्थः। अद्य = अस्मिन्दिने, धरणी = धरित्री, कथं = केन प्रकारेण, न ह्णीयते = न लज्जते, दुर्वृत्ते भर्तरि वधूर्लज्जत इति भावः ॥ १३३ ॥

अनुवादः—जल और वृक्षोंसे उत्पन्न कन्द और फलसे मुनिके समान मेरी वृत्ति है वैसे मेरे पति दण्डधारण करनेवाले पालक आपसे पृथ्वी क्यों नहीं लज्जा करती है? ॥ १३३ ॥

टिप्पणी—वारिभूरुहां = वारि च भूश्च वारिभुवौ (द्वन्द्वः); वारिभुवोः रोहन्तीति वारिभूरुहः, तेषाम्, वारिभू + रुह + क्विप् (उपपद०) + आम्। वृत्तयः = "वृत्तिर्वर्तनजीवने" इत्यमरः। दण्डधारिणा = दण्डं धारयतीति तच्छीलः दण्डधारी, तेन दण्ड + धृञ् + णिच् + णिनि + टा (उप०) ह्णीयते = "ह्णीङ् रोषणे लज्जायां च" इस कण्ड्वादि धातुसे ङित् होनेसे आत्मनेपद होकर लट् + त। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १३३ ॥

इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः सचित्रवैलक्ष्यकृपं नृपं खगः।
दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः ॥ १३४ ॥

अन्वयः—स खगः इति तं नृपम् ईदृशैः वाङ्मयैः सचित्रवैलक्ष्यकृपं विरचय्य दयासमुद्रे तदाशये कारुण्यरसाऽऽपगाः गिरः अतिथीचकार ॥ १३४ ॥

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः, खगः = पक्षी, हंस इत्यर्थः इति = इत्थं, तं = पूर्वोक्तं, नृपं = राजानं, नलमित्यर्थः। ईदृशैः = एतादृशैः, पूर्वोक्तैरिति भावः। वाङ्मयैः=वाग्विकारैः दोषोद्घाटकैरिति भावः। सचित्रवैलक्ष्यकृपम् = आश्चर्यलज्जातिशयकरुणासहितं, विरचय्य = विधाय, दयासमुद्रे = करुणासागरे, तदाशये = नलचित्ते, कारुण्यरसापगाः = करुणारसनदीस्वरूपाः, गिरः = वाणीः, अतिथीचकार = प्रवेशयामासेत्यर्थः। समुद्रे नदीप्रवेशोयुक्त इति भावः ॥ १३४ ॥

अनुवादः—उस पक्षी (हंस) ने इस प्रकार राजा नलको ऐसे वचनोंसे आश्चर्य, लज्जा और करुणासे युक्त बनाकर दयाके समुद्रके समान उनके चित्तमें करुणरसकी नदियोंकी समान वाणियोंका प्रवेश कराया ॥ १३४ ॥

टिप्पणी—वाङ्मयैः = वाचां विकारा वाङ्मयानि, तैः, "एकाऽचो नित्यम्" इस वार्तिकसे मयट् प्रत्यय। सचित्रवैलक्ष्यकृपं = विलक्षस्य भावो वैलक्ष्यम्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विलक्ष + ष्यञ् । चित्रं च वैलक्ष्यं च कृपा च चित्रवैलक्ष्यकृपाः (द्वन्द्व०), ताभिः सह सचित्रवैलक्ष्यकृपः, तम् (तुल्ययोग०) । "आलेख्याऽऽश्चर्ययोश्चित्रम्" इत्यमरः । विरचय्य = वि + रच् + णिच् + क्त्वा (ल्यप्) णिच्के स्थानमें "ल्यपि लघुपूर्वात्" इससे अय् आदेश । राजाको मनुष्यके समान भाषणसे चित्र (आश्चर्य), उनके दोषके उद्घाटनसे अतिलज्जा और अपनी दीनताके प्रदर्शनसे दया, इन भावोंसे युक्त बनाकर यह तात्पर्य है । दयासमुद्रे = दयायाः समुद्रः, तस्मिन् (ष० त०) । तदाशये = तस्य आशयः, तस्मिन् (ष० त०) । कारुण्यरसाऽऽपगाः = करुणा एव कारुण्यं, करुणा + ष्यञ् (स्वार्थमें) । कारुण्यम् एव रसः (रूपक०), तस्य आपगाः, ताः (ष० त०) । "कारुण्यं करुणा घृणा" इत्यमरः, अतिथीचकार = अनतिथयः अतिथयः यथा सम्पद्यन्ते तथा चकार, अतिथि + च्वि + कृ + लिट् । इस पद्यमें हंसकी वाणियोंमें नदीत्वका आरोप करनेके लिए नलके हृदयमें समुद्रत्वका आरोप निमित्त है और "रस" पद श्लिष्ट है इस कारणसे श्लिष्टपरम्परित रूपक अलङ्कार है । परम्परित रूपकका लक्षण है--

"यत्र कस्यचिदारोपः पराऽऽरोपणकारणम् ।
तत्परम्परितं, श्लिष्टाऽश्लिष्टशब्दनिबन्धनम् ॥" सा० द० १०-४३ ।

यहाँपर "रस शब्दका प्रयोग होनेपर भी उसका जलरूप अर्थ होनेसे रसदोष नहीं है ॥ १३४ ॥

"मदेकपुत्रा जननी जराऽऽतुरा, नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो ! विधे ! त्वां करुणा रुणद्धि नो ? ॥१३५॥

अन्वयः—जननी मदेकपुत्रा जराऽऽतुरा, वरटा नवप्रसूतिः तपस्विनी; एष जनः तयोः गतिः, तम् अर्दयन् हे विधे ! त्वां करुणा नो रुणद्धि ? अहो ! ॥ १३५ ॥

व्याख्या—साम्प्रतं हंसः कारुण्यरसपूरिता गिरो विस्तारयति मदेकपुत्रेति । तत्र प्राग्विधिमुपालमते—जननी = जनयित्री, मदीया मातेत्यर्थः । मदेकपुत्रा = मदेकतनया, मम नाशे न कोऽपि तस्या रक्षक इति भावः । तर्हि अन्योऽपि तनयो भविष्यतीति संभावनायाम्—जरातुरा = वार्धक्याकुला, प्रसवेऽसमर्थेति भावः : वरटा = मम भार्या, नवप्रसूतिः = अचिरप्रसवा, अतः, तपस्विनी = शोचनीया, एषः = अयं, जनः = पुरुषः, तयोः = जननीजाययोः, गतिः = शरणं, तं = तादृशं शरणभूतं जनं, मामिति भावः । अर्दयन् = मारयन् । हे विधे = हे विधातः !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वां = भवन्तं, करुणा = दया, नो रुणद्धि = न निवारयति ? इति काकुः । अहो = आश्चर्यम्, विधिर्नृशंसतर इति भावः ॥ १३५ ॥

अनुवादः—मेरी माता, उसका मैं ही एक पुत्र हूँ, उसपर भी वह बुढ़ापासे आकुल है । मेरी भार्या (हँसी) नये प्रसववाली है, अतः शोचनीया है । उन दोनोंका मैं ही एकमात्र रक्षक हूँ, उसकी हिंसा करते हुए हे ब्रह्मदेव ! क्या तुम्हें करुणा नहीं रोकती है ? आश्चर्य है ! ॥ १३५ ॥

टिप्पणी—मदेकपुत्रा = अहम् एव एकः पुत्रः यस्याः सा (बहु०), जराऽऽतुरा = जरया आतुरा (तृ० त०) । वरटा = "हंसस्य योषिद्वरटा" इत्यमरः । नवप्रसूतिः = नवा (नूतना) प्रसूतिः (प्रसवः) यस्याः सा (बहु०) । तपस्विनी = "तपस्वी तापसे चाऽनुकम्प्ये" इति मेदिनी । अर्दयन् = "अर्द हिंसायाम्" इस चुरादि धातुसे अर्द + णिच् + लट् (शतृ) + सु । रुणद्धि = रुध् + लट् + तिप् । इस पद्यमें विशेषणोंके अभिप्रायगर्भित होनेसे परिकर अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"उक्तैर्विशेषणैः साऽभिप्रायैः परिकरो मतः ।" सा० द० १०–७५ ।

करुण रस, प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति है ॥ १३५ ॥

मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम ।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः ! सुतशोकसागरः ॥ १३६ ॥

अन्वयः—हे मातः ! मम सखायः दयासखायः भवनिन्दया मुहूर्तमात्रं स्रवदश्रवः (सन्तः) निवृत्तिम् एष्यन्ति, परं त्वया एव सुतशोकसागरः दुरुत्तरः ॥ १३६ ॥

व्याख्या—अथ मातरमुद्दिश्य सोचति—मुहूर्तेति । हे मातः = हे जननि ! मम, सखायः = सुहृदः, दयासखाः = करुणासहचराः, भवनिन्दया = संसारगर्हणेन, मुहूर्तमात्रं = क्षणमात्रं, स्रवदश्रवः = गलितनयनजलाः सन्तः, "विनश्वरसम्बन्धभाजं संसारं धिक्" इत्यादिवचनजातेनेति शेषः, निवृत्ति=शोकोपरतिम्, एष्यन्ति= यास्यन्ति, परं = किन्तु, त्वया एव = भवत्या एव, सुतशोकसागरः = तनयशुक्-समुद्रः, दुरुत्तरः = दुस्तरः ॥ १३६ ॥

अनुवादः—हे मातः ! मेरे मित्र सदय होकर संसारकी निन्दासे कुछ क्षण तक आँसुओंको गिराते हुए शोकनिवृत्तिको प्राप्त होंगे, परन्तु आपसे ही पुत्रका शोकसमुद्र दुस्तर होगा ॥ १३६ ॥

टिप्पणी—दयासखायः = दयया सखायः (तृ० त०), "राजाऽहःसखिभ्यष्टच्" इस सूत्रसे समासान्त टच् प्रत्यय । भवनिन्दया = भवस्य निन्दा, तया (तृ० त०) ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुहूर्तमात्रं = मुहूर्त एव, मुहूर्तमात्रं, तत् (रूपक०), "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इससे द्वितीया। स्रवदश्रवः = स्रवन्ति अश्रूणि येषां ते (बहु०)। एष्यन्ति = इण् + लृट् + झि। सुतशोकसागरः = सुतस्य शोकः (ष० त०), स एव सागरः (रूपक०)। दुरुत्तरः = दुःखेन उत्तरीतुं शक्यः, दुर + उद्-उपसर्गपूर्वक "तॄ प्लवनसंतरणयोः" इस धातुसे "ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्राऽर्थेषु खल्" इस सूत्रसे खल् प्रत्यय। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ १३६ ॥

"मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूर" इति त्वयोदिते।
विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः प्रिये! स कीदृग्भविता तवक्षणः? ॥१३७॥

अन्वयः—हे प्रिये! "मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूरे" इति त्वया उदिते, अथ रुदतः पक्षिणः विलोकयन्त्याः तव स क्षणः कीदृक् भविता? ॥१३७॥

व्याख्या—साम्प्रतं प्रियामनूद्य शोचति—मदर्थेति।

हे प्रिये = हे दयिते!, मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः = मदर्थवाचिकबिसाऽलसः, प्रियः = वल्लभः, कियद्दूरे = किंपरिमाणविप्रकृष्टप्रदेशे, वर्तत इति शेषः। इति = एवं, त्वया = भवत्या, उदिते = उक्ते, पृष्टे सतीति भावः। अथ = प्रश्नाऽनन्तरं, रुदतः = अश्रूणि विमुञ्चतः, अनिष्टोच्चारणाऽसामर्थ्येनेति शेषः। पक्षिणः = विहङ्गान्, इतो गतानिति शेषः। विलोकयन्त्याः = पश्यन्त्याः, तव = भवत्याः, सः = तादृशः, क्षणः = कालः, कीदृक् = कीदृशः, भविता = भविष्यति, वज्रपातसदृशः असहनीय इति भावः॥ १३७ ॥

अनुवादः—हे प्रिये! "मेरे लिए सन्देश और मृणाल भेजनेमें विलम्ब करनेवाले मेरे प्यारे कितने दूर हैं" ऐसा तुम्हारे पूछनेपर रोते हुए पक्षियोंको देखती हुई तुम्हारा वह क्षण कैसा होगा? ॥ १३७ ॥

टिप्पणी—मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः = मह्यम् इमे मदर्थे, "चतुर्थी तदर्थाऽर्थबलिहितसुखरक्षितैः" इस सूत्रसे "अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्" इस वार्तिकके सहकारसे चतुर्थीतत्पुरुष। सन्देशश्च मृणालं च सन्देशमृणाले (द्वन्द्वः)। मदर्थे च ते सन्देशमृणाले (क० धा०), तयोः मन्थरः (स० त०)। कियद्दूरे = कियच्च तत् दूरं, तस्मिन् (क० धा०)। उदिते=वद् + क्तः + ङि। रुदतः = रुदन्तीति रुदन्तः, तान् रुद् + लट् (शतृ) + शस्। विलोकयन्त्याः = वि + लोक + णिच् + लट् (शतृ) + ङीप् + ङस्। भविता = भू + लुट् + तिप्। यहाँपर अद्यतन भविष्यदर्थमें लृट्का प्रयोग इष्ट था परन्तु अनद्यतनभविष्यत्-लुट्का प्रयोग होनेसे च्युतसंस्कृति दोषकी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, शोकाऽऽ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुल हंसकी ऐसी उक्ति करुण रसकी अनुकूल होनेसे गुणस्थानीय है। इस पद्यमें शोकका उदय होनेसे भावोदय अलङ्कार है ॥ १३७ ॥

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पितः ।
"वियोक्ष्यसे वल्लभये"ति निर्गता लिपिर्ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा ? ॥ १३८ ॥

अन्वयः—हे विधातः ! प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः, तव पाणिपङ्कजात् मयि "वल्लभया वियोक्ष्यसे" इति ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा लिपिः कथं निर्गता ? ॥ १३८ ॥

व्याख्या—हे विधातः=हे विधे !, प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = वल्लभाशीतलत्वकोमलत्वनिर्मातुः, तव = भवतः, पाणिपङ्कजात् = करकमलात्, मयि = विषये, वल्लभया = प्रियया सह, वियोक्ष्यसे = वियुक्तो भविष्यसि, इति = एवं, ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा = मालतापिकठिनवर्णा, लिपिः = लिविः, अक्षरविन्यास इत्यर्थः, कथं = केन प्रकारेण, निर्गता = निःसृता । मत्प्रियाशैत्यकोमलत्वनिर्मातुस्तव हस्तान्मद्भाले प्रियावियोजनसूचककठिनलिपिनिर्मितिः आश्चर्यद्योतिकेति भावः ॥ १३८ ॥

अनुवादः—हे ब्रह्मदेव ! मेरी प्रियाकी शीतलता और कोमलताके निर्माण करनेवाले तुम्हारे हाथसे मेरे विषयमें "तुम प्रियासे बिछुड़ जाओगे" इस तरह ललाटको ताप करनेवाली निष्ठुर अक्षरोंसे युक्त लिपि कैसे निकली ? ॥ १३८ ॥

टिप्पणी—विधातः = विदधातीति विधाता, तत्सम्बुद्धौ, वि + धा + तृच् + सु । प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = शीतस्य भावः शैत्यम् । शीत + ष्यञ् । मृदोर्भावः मृदुत्वम्, मृदु + त्व । शैत्यं च मृदुत्वं च (द्वन्द्वः) । शिल्पम् अस्याऽस्तीति शिल्पि, शिल्प + इनिः । प्रियायाः शैत्यमृदुत्वे (ष० त०), तयोः शिल्पि, तस्मात् (ष० त०) । पाणिपङ्कजात् = पाणिः पङ्कजम् इव, तस्मात् (उपमित०) । वियोक्ष्यसे = वि + युज् + लृट् (कर्ममें) + थास् (से) । ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा = ललाटं तपन्तीति ललाटन्तपानि, "असूर्यललाटयोर्दृशितपोः" इस सूत्रसे खश् प्रत्यय और "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इससे मुम् आगम । ललाटन्तपानि निष्ठुराणि अक्षराणि यस्याः सा (बहु०) । निर्गता = निर् + गम् + क्त + टाप् । इस पद्यमें कारणसे विरुद्ध कार्यकी उत्पत्तिके कथनसे विषम अलङ्कार है । भेदप्रदर्शनपूर्वक उसका लक्षण है—

"गुणौ क्रिये वा यत्स्यातां विरुद्धे हेतुकार्ययोः ।
यदारब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च सम्भवः ॥
विरूपयोः सङ्घटना या च तद्विषमं मतम् ।" सा० द० १०-६१ ॥ १३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपि स्वयूथ्यैरशनिक्षतोपमं समाऽद्य वृत्तान्तमिमं बतोदिता।
मुखानि लोलाऽक्षि! दिशामसंशयं दशाऽपि शून्यानि विलोकयिष्यसि ॥ १३९ ॥

अन्वयः—अपि (च) अद्य स्वयूथ्यैः अशनिक्षतोपमं मम इमं वृत्तान्तम् उदिता (सती) हे लोलाक्षि ! दश अपि दिशां मुखानि शून्यानि विलोकयिष्यसि असंशयं वत ! ॥ १३९ ॥

व्याख्या—अपि च = अन्यच्च, अद्य = अस्मिन् दिने, स्वयूथ्यैः = आत्मसङ्घभवैः, हंसैरित्यर्थः। अशनिक्षतोपमं = वज्रप्रहारसदृशं, मम = प्रियस्य, इमम् = एतं, वृत्तान्तम् = उदन्तं, नरहस्तपतनरूपमिति शेषः। उदिता = उक्ता सती, हे लोलाक्षि = हे चपलनयने !, दश = दशसंख्यकानि, दिशां = काष्ठानां, प्राच्यादीनामित्यर्थः। मुखानि = सम्मुखस्थानानि, शून्यानि=रिक्तानि, विलोकयिष्यसि=द्रक्ष्यसि, मद्वियोगादिति भावः। असंशयम् = अत्र सन्देहो न, वत = इति खेदे ॥ १३९ ॥

अनुवादः—और भी। आज अपने वर्गके हंसोंके वज्रप्रहारके सदृश इस वृत्तान्तको कहनेपर हे चञ्चलनयने ! तुम दिशाओंके दशों संमुखवर्ती स्थानोंको शून्य देखोगी, इसमें सन्देह नहीं है, हाय ! ॥ १३९ ॥

टिप्पणी—अद्य = अस्मिन् दिने, "सद्यःपरुत्०" इत्यादि सूत्रसे निपात। स्वयूथ्यैः = यूथे भवा यूथ्याः, यूथ + यत्। स्वस्य यूथ्याः, तैः (ष० त०)। अशनिक्षतोपमम् = अशनिना क्षतम् (तृ० त०), तत् उपमा (सादृश्यम्) यस्य, तम् (बहु०)। वृत्तान्तम् = वद धातुके द्विकर्मक होनेसे मुख्य कर्ममें द्वितीया। उदिता = वद + क्त (कर्ममें) + टाप्। लोलाक्षि = लोले अक्षिणी यस्याः सा लोलाक्षी, तत्सम्बुद्धौ (बहु०)। "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्" इससे समासाऽन्त षच्,। षित् होनेसे स्त्रीत्वविवक्षामें "षिद्गौरादिभ्यश्च" इससे ङीष्। विलोकयिष्यसि = वि + लोक + णिच् + लृट् + सिप्। असंशयं = संशयस्य अभावः, "अव्ययं विभक्ति०" इत्यादिसे अर्थाऽभावमें अव्ययीभाव समास। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १३९ ॥

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वयाऽपि चित्राङ्गि ! विपद्यते यदि।
तदस्मि दैवेन हतोऽपि हा ! हतः स्फुटं यतस्ते शिशवः पराऽसवः ॥ १४० ॥

अन्वयः—हे चित्राऽङ्गि ! मम शोकेन एव विदीर्णवक्षसा त्वया अपि विपद्यते यदि, तद् दैवेन हतः, स्फुटः हतः अस्मि, हा ! यतः ते शिशवः पराऽसवः ॥१४०॥

व्याख्या—हे चित्राङ्गि = हे विचित्रगात्रे !, लोहितचञ्चुचरणत्वादिति भावः। मम = प्रियस्य, शोकेन = मन्युना, एव, विदीर्णवक्षसा = विदलितहृदयया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वया अपि = भवत्या अपि, प्रियया अपीति भावः। विपद्यते यदि = म्रियते चेत्, तत् = तर्हि, दैवेन = भाग्येन, हतः = नाशितः, स्फुटं = व्यक्तं, पुनः हतः = नाशितः, अस्मि = भवामि, हा = दैवपुनर्हतस्य मे शोच्यत इति भावः। यतः = यस्मात्कारणात्, ते = तव, शिशवः = शावकाः, पराऽसवः=मृताः, भवेयुरिति शेषः। मच्छोकेन त्वमपि प्राणांस्त्यक्ष्यसि चेच्छरणयोर्मातापित्रोरभावेनाऽस्मच्छावका अपि मरिष्यन्तीति दैवहतोऽहं पुनर्हतो भविष्यामीति भावः ॥ १४० ॥

अनुवादः—हे विचित्र अङ्गोंवाली प्रिये ! मेरे शोकसे ही विदीर्णहृदय होकर तुम भी मर जाओगी तो भाग्यसे मारा जाकर व्यक्त रूपसे फिर भी मारा जाऊँगा, क्योंकि, तव तो तुम्हारे बच्चे भी (हम लोगोंके अभावसे) मर जायेंगे ॥१४०॥

टिप्पणी—चित्राऽङ्गि = चित्राणि अङ्गानि यस्याः सा चित्राङ्गी, तत् सम्बुद्धौ (बहु०), "अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्" इस वार्तिकसे ङीप् । विदीर्णवक्षसा = विदीर्णं वक्षो यस्याः सा विदीर्णवक्षाः, तया (बहु०), विपद्यते = वि + पद् + लट् (भावमें) + त । हतः = हन् + क्तः, हा = "हा विस्मयविपादयोः" इति विश्वः । शिशवः = "पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शावकः शिशुः ।" इत्यमरः । पराऽसवः = परागता असवः (प्राणाः) येषां, ते (बहु०)। बच्चोंके मरनेकी भावनासे द्विगुण मरणका दुःख मैं पाऊंगा यह भावार्थ है। इस पद्यमें शोकके स्थायिभाव होनेसे करुण रस है ॥ १४० ॥

तवाऽपि हा ! हा विरहात्क्षुधाकुलाः कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते ।
चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैर्गताः क्षणेनाऽस्फुटितेक्षणा मम ॥ १४१ ॥

अन्वयः—(हे प्रिये !) बहुभिः मनोरथैः चिरेण लब्धाः अस्फुटितेक्षणाः मम ते तव अपि विरहात् क्षुधा आकुलाः तेषु कुलायकूलेषु विलुठ्य क्षणेन गताः, हा ! हा ! ! ॥ १४१ ॥

व्याख्या—मन्मरणे कथं सुतानां मरणमिति प्रतिपादयति । (हे प्रिये !) बहुभिः = अधिकैः, मनोरथैः = अभिलाषैः, चिरेण = बहुकालेन, लब्धाः = प्राप्ताः, "अस्माकं सन्ततयो भवन्तु" इति बहुभिरभिलाषैः कष्टेन प्राप्ता इति भावः । एवं च अस्फुटितेक्षणाः = अनुन्मीलितनयनाः, अद्याऽपीति शेषः । मम = हंसस्य, ते = पूर्वोक्ताः, शिशव इति भावः । तव अपि = न केवलं मम, तव अपि इति भावः । विरहात् = वियोगात्, क्षुधा = बुभुक्षया, आकुलाः = पीडिताः सन्तः, तेषु = स्वसम्पादितेषु इति भावः, कुलायकूलेषु = नीडसमीपभागेषु, विलुठ्य = परिवृत्य, क्षणेन = अल्पकालेनैव, गताः = याताः, मृता भविष्यन्ति, बहुभिर्मनोरथैर्बहुकालेन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्ताः अस्माच्छिशवः आवयोरभावेन अल्पकालेन मृता भविष्यन्तीति भावः । हा ! हा ! = त्वां मां च इति शेषः, वज्रपातोपमविपत्तेस्तव मम च शोच्यते इति भावः ॥ १४१ ॥

अनुवादः—(हे प्रिये !) बहुत मनोरथोंसे बहुत समयमें पाये गये अस्फुटित नेत्रोंवाले मेरे और तुम्हारे वे बच्चे हमारे वियोगसे भूखसे पीडित होकर घोंसलेके समीप लोटकर थोड़े ही समयमें मर जायंगे हाय ! हाय ! ॥ १४१ ॥

टिप्पणी—लब्धाः = लभ् + क्त + जस् । अस्फुटितेक्षणाः = न स्फुटिते (नञ्०), अस्फुटिते ईक्षणे येषां ते (बहु०) । विरहात् = हेतुमें पञ्चमी । कुलायकूलेषु = कुलायस्य कूलानि, तेषु (ष० त०) । कूलका अर्थ यहाँपर समीप स्थान है । "कुलायो नीडमस्त्रियाम्" इत्यमरः । विलुठ्य = वि + लुठ + क्त्वा (ल्यप्) । क्षणेन = "अपवर्गे तृतीया" इससे तृतीया । इस पद्यमें करुण रस है ॥ १४१ ॥

सुताः ! कमाहूय चिराय चूङ्कृतैर्विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति ? ।
कथासु शिष्यध्वमिति प्रमील्य सः स्रुतस्य सेकाद् बुबुधे नृपाऽश्रुणः ॥१४२॥

अन्वयः—"हे सुताः ! चूङ्कृतैः चिराय कम् आहूय कं प्रति मुखानि कम्प्राणि विधाय कथासु शिष्यध्वम्" इति प्रमील्य सः स्रुतस्य नृपाऽश्रुणः सेकात् स बुबुधे ॥ १४२ ॥

व्याख्या—हंसः शिशूननूद्य भूयः परिदेवयते—सुता इति ।

हे सुताः = हे पुत्राः !, चूङ्कृतैः = चूङ्कारैः, "चूम्" इति पक्षिशावकरुतैरित्यर्थः । चिराय = बहुकालपर्यन्तम्, कं = कतरं जनम्, आहूय = आकार्य, कं प्रति = कतरं प्रति, उभयत्र जननीजनकयोरिति शेषः । मुखानि = आननानि, कम्प्राणि = कम्पनशीलानि, चञ्चलानीति भावः । विधाय = कृत्वा, कथासु = शब्दमात्रेषु, शिष्यध्वम् = अवशिष्टा भवत, इति = एवम्, उक्त्वेति शेषः । प्रमील्य = मूर्च्छां प्राप्य, सः = हंसः स्रुतस्य = गलितस्य, नृपाऽश्रुणः = नलनयनजलस्य, सेकात् = सेचनात्, बुबुधे = सञ्ज्ञां प्राप ॥ १४२ ॥

अनुवादः—"हे बच्चो ! चूँ चूँ करके बहुत समयतक किसे बुलाकर और किसे लक्ष्य करके मुँहको चञ्चल बनाकर शब्दमात्रसे अवशिष्ट हो जाओगे" ऐसा कहकर मूर्च्छित होकर वह हंस राजाके गिरे हुए आँसूके सेचनसे होशमें आ गया ॥ १४२ ॥

टिप्पणी—चिराय = "चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिराऽर्थकाः ।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यमरः । आहूय = आङ् + ह्वेञ् + क्त्वा (ल्यप्), दोनों शब्द अव्यय हैं। कम्प्राणि = कम्पनशीलानि, "कपि चलने" धातुसे "नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः" इस सूत्रसे रप्रत्यय । शिष्यध्वम्="शिष असर्वोपयोगे" धातुसे "प्रैषाऽतिसर्ग-प्राप्तकालेषु कृत्याश्च" इससे प्राप्तकालमें लोट् + ध्वम् । प्रमील्य = प्र + मील + क्त्वा (ल्यप्)। नृपाऽश्रुणः = नृपस्य अश्रु, तस्य (ष० त०) । सेकात्=सिच् + घञ् + ङसिः । बुबुधे + बुध + लिट् + त (एश्) । यहाँपर "म्रियध्वम्" कहने-पर अमङ्गलव्यञ्जक अश्लीलदोष होता था अतः "कथासु शिष्यध्वम्" ऐसा प्राप्त-कालमें लोट्का प्रयोग किया गया है। स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ १४२ ॥

इत्यममुं विलपन्तममुञ्चद्दीनदयालुतयाऽवनिपालः ।
रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय ॥ १४३ ॥

अन्वयः—इत्थं विलपन्तम् अमुम् अवनिपालः दीनदयालुतया "रूपम् अदर्शि, यदर्थं धृतः असि; अथ यथेच्छं गच्छ" इति अभिधाय अमुञ्चत् ॥ १४३ ॥

व्याख्या—इत्थम् = अनेन प्रकारेण, "धिगस्तु तृष्णातरलम्" इत्यादि रूपेणेति भावः । विलपन्तं = परिदेवमानम्, अमुं = हंसम्, अवनिपालः = भूपालः, नल इति भावः, दीनदयालुतया = आर्तकृपालुतया, रूपम् = आकृतिः, अदर्शि = अवलोकितम्, अपूर्वत्वादिति शेष; । यदर्थं = रूपदर्शनाऽर्थं, धृतः = गृहीतः, असि = वर्तसे, एत-त्कथनेन "धिगस्तु तृष्णातरलम्" इत्यादिश्लोकैः क्रियमाणा लुब्धत्वादिरूपा आक्षेपाः परिहृताः । अथ = अनन्तरं, मत्कर्तृकत्वद्रूपदर्शनाऽनन्तरमिति भावः । यथेच्छं = यथेष्टं, गच्छ = व्रज, इति = एवम्, अभिधाय=उक्त्वा, अमुञ्चत्=मुक्तवान् ॥१४३॥

अनुवादः—इस प्रकार विलाप करते हुए उस हंसको दीनोंमें दयालु होनेसे राजा नलने "रूप देख लिया जिसके लिए मैंने तुम्हें पकड़ा था, अब इच्छाके अनुसार जाओ" ऐसा कहकर छोड़ दिया ॥ १४३ ॥

टिप्पणी—विलपन्तं = विलपतीति विलपन्, तम्, वि + लप + लट् (शतृ) + अम् । "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः । अवनिपालः = अवनिं पालयतीति, अवनि + पाल + अच् । दीनदयालुतया = दयत इति दयालुः, दय धातुसे "स्पृहि-गृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्" इस सूत्रसे आलुच् प्रत्यय । दयालोर्भावः, दयालु + तल् + टाप् । दीनेषु दयालुता, तया (स० त०)। हेतुमें तृतीया । अदर्शि = दृश् + लुङ् (कर्ममें) + त । यदर्थं = यस्मै इदम् (च० त०) यथा तथा, (क्रि० वि०) धृतः = धृञ् + क्तः (कर्ममें) । यथेच्छम् = इच्छाम् अनति-क्रम्य (अव्ययीभाव०) । गच्छ = गम् + लोट् + सिप् । अभिधाय = अभि +

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धा + क्त्वा (ल्यप्)। अमुञ्चत् = मुच् + लङ् + तिप्। महाकाव्यमें सर्गके अन्तमें छन्द बदलना चाहिए जैसे कि कहा है—

"एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।" सा० द० ६–८।

यह दोधक छन्द है। उसका लक्षण है–"दोधकवृत्तमिदं भभभा गो" ॥१४३॥

आनन्दजाऽश्रुभिरनुस्रियमाणमार्गान्प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान्।
चक्रे स चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन नीराजनां जनयतां निजबान्धवानाम् ॥१४४॥

अन्वयः—स चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन नीराजनां जनयतां निजबान्धवानां प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान् आनन्दजाऽश्रुभिः अनुस्रियमाणमार्गान् चक्रे ॥ १४४ ॥

व्याख्या—सः = हंसः, चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन = मण्डलाकारभ्रमणमिषेण, नीराजनाम् = आर्तिकां, जनयतां = कुर्वतां, निजबान्धवानां = स्वबन्धूनां, प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान् = पुराशुङ्निःसरितबाष्पपूरान्, आनन्दजाऽश्रुभिः = हर्षजनयनसलिलैः, अनुस्रियमाणमार्गान्=अनुगम्यमानाऽध्वनः, चक्रे=कृतवान् ॥१४४॥

अनुवादः—उस हंसने मण्डलाकार भ्रमणके बहानेसे नीराजना करनेवाले अपने बान्धवोंके पहले शोकसे निकले हुए आँसुओंको आनन्दसे उत्पन्न आँसुओंसे अनुसरण किया जाने वाला बनाया ॥ १४४ ॥

टिप्पणी—चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन = कुटिलं क्रमणं चङ्क्रमणं, क्रम धातुसे "नित्यं कौटिल्ये गतौ" इस सूत्रसे कुटिल गतिमें यङ् प्रत्यय और "यङोऽचि च" इससे लुक् और द्वित्व होकर भावमें ल्युट्। चक्रेण सदृशं चक्रनिभम् (तृ० त०) अस्वपदविग्रह होनेसे नित्य समास। चक्रनिभं च तच्चङ्क्रमणं (क० धा०)। तस्य छलं, तेन (ष० त०)। जनयतां = जनयन्तीति तेषाम्, जन् + णिच् + लट् (शतृ) + आम्। निजबान्धवानां = निजाश्च ते बान्धवाः, तेषाम् (क० धा०), प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान् = पयसां प्रवाहाः (ष० त०), नेत्रयोः पयःप्रवाहाः (ष० त०)। प्राग्भवः शोकः प्राक्शोकः (मध्यमपद०)। प्राक्शोकेन निर्गमिताः (तृ० त०), ते च ते नेत्रपयःप्रवाहाः, तान् (क० धा०)। आनन्दजाऽश्रुभिः = आनन्दात् जातानि, आनन्द + जन् + डः। आनन्दजानि च तानि अश्रूणि, तैः (क० धा०)। अनुस्रियमाणमार्गान् = अनुस्रियन्ते इति अनुस्रियमाणाः, अनु + सृ + लट् (कर्ममें) (शानच्)। ते मार्गा येषां ते, तान् (बहु०)। चक्रे = कृ + लिट् (कर्तामें अर्थमें) + त (एश्)। इस पद्यमें बन्धनसे छूटे हुए अपने यूथके पक्षीके चारों ओर पक्षिगण मण्डलाकार रूपसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घूमते हैं इस बातको मनुष्योंके समान नीराजनाके रूपमें प्रदर्शित किया है। नलसे हंसके पकड़े जानेपर उसके यूथके पक्षिगण रोये, पीछे छोड़ जानेपर हर्षाश्रु गिराने लगे यह इसका तात्पर्य है। इस महाकाव्यमें सर्गके अन्तिम प्रत्येक पद्यमें "आनन्द" पदका प्रयोग किया है, अतः यह "आनन्दाऽङ्क" महाकाव्य है। इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति अलङ्कार है। वसन्ततिलका छन्द है, उसका लक्षण है—

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।" ॥ १४४ ॥

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।
तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्ग्या महा-
काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः ॥ १४५ ॥

अन्वयः—कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः श्रीहीरः मामल्लदेवी च जितेन्द्रियचयं यं श्रीहर्षं सुतं सुषुवे। तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्ग्या चारुणि नैषधीयचरिते महाकाव्ये अयम् आदिः सर्गः गतः ॥ १४५ ॥

व्याख्या—अथ महाकविः सर्गान्ते काव्यवर्णनं सर्गसमाप्तिं च पद्यबन्धेन प्रदर्शयति—श्रीहर्षमिति। कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः = पण्डितश्रेष्ठश्रेणीकिरीटभूषणवज्रमणिः श्रीहीरः = श्रीहीरनामकः, मामल्लदेवी च = मामल्लदेवीनाम्नी च जितेन्द्रियचयं = वशीकृतहृषीकसमूहम्। यं श्रीहर्षं = श्रीहर्षनामकं, सुतं = पुत्रं, सुषुवे = जनयामास, तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले = तच्चिन्तामणिनामकंमन्त्रोपासनाफलरूपे, शृङ्गारभङ्ग्या = आदिरसविच्छित्या, चारुणि = मनोहरे, नैषधीयचरिते = नैषधीयचरितनामके, महाकाव्ये = बृहत्काव्ये, काव्यविशेष इति भावः। अयं = निकटस्थः, आदिः = प्रथमः, सर्गः = अध्यायः, गतः = समाप्त इत्यर्थः ॥ १४५ ॥

अनुवादः—श्रेष्ठ पण्डितोंकी श्रेणीके मुकुटके अलङ्कार हीरेके समान श्रीहीर और मामल्लवदेवीने जिस श्रीहर्ष नामके पुत्रको उत्पन्न किया, उन (श्रीहर्ष) के चिन्तामणि नामक मन्त्रकी उपासनाके फलरूप शृङ्गारकी विचित्रतासे मनोहर नैषधीयचरितनामक महाकाव्यमें यह पहला सर्ग समाप्त हुआ ॥ १४५ ॥

टिप्पणी—कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः = कवीनां राजानः कविराजाः (ष० त०), समासाऽन्त टच् प्रत्यय। "संख्यावान् पण्डितः कविः" इत्यमरः। कविराजानां राजिः (ष० त०), तस्या मुकुटानि (ष० त०), "अथ मुकुटं किरीटं पुंनपुंसकम्" इत्यमरः। तेषाम् अलङ्कारः (ष० त०) स चाऽसौ हीरः (क०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धा०)। श्रीहीरः=श्रीसम्पन्नो हीरः (मध्यमपद०)। मामल्लदेवी = किसीने यहाँपर माम् + अल्लदेवी ऐसा पदच्छेद कर "अल्लदेवी च मां सुतं श्रीहर्षम् सुषुवे" ऐसा अन्वय किया है, उस पक्षमें श्रीहर्षकी माताका नाम "मामल्लदेवी" न होकर "अल्लदेवी" ऐसा प्रतीत होता है। जितेन्द्रियचयम् = इन्द्रियाणां चयः (ष० त०), जित इन्द्रियजयो येन, तम् (बहु०)। सुषुवे = "षूङ् प्राणिप्रसवे" इस धातुसे लिट् + त (एश्)। तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले = "चिन्तामणि" पदके दो अर्थ हैं, एक मन्त्रविशेष और दूसरा मणिविशेष। दोनों ही चिन्तित पदार्थोंको देने वाले हैं। प्रकृतमें चिन्तामणिपदका अर्थ मन्त्रविशेष है जिसकी चर्चा इसी महाकाव्यमें--अवामावामार्द्धे० १४-८८ इत्यादि श्लोकमें की जायगी। चिन्तापूरको मणिः चिन्तामणिः (मध्यमपद०)। मन्त्रके अर्थमें "चिन्तामणि" पद लाक्षणिक है। चिन्तामणिश्चाऽसौ मन्त्रः (क० धा०)। तस्य चिन्तनं (ष० त०), तस्य फलं तस्मिन् (ष० त०)। शृङ्गारभङ्गया = शृङ्गारस्य भङ्गिः, तया (ष० त०)। नैषधीयचरिते = निषधानाम् अयं नैषधः, निषध + अण्। नैषधस्य इदं नैषधीयम् नैषध + छ (ईयः)। नैषधीयं च तत् चरितम्, तस्मिन् (क० धा०), महाकाव्ये = कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्, कवि + ष्यञ्। महच्च तत् काव्यं, तस्मिन् (क० धा०)। "सर्गबन्धो महाकाव्यम्" इत्यादि लक्षणोंसे युक्त बृहत् काव्यको "महाकाव्य" कहते हैं। इसमें आठसे अधिक सर्ग होना चाहिए इत्यादि नियम हैं। गतः = गम् + क्तः। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द है। उसका लक्षण है--"सूर्याऽश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" ॥ १४५ ॥

इति श्रीनैषधीयमहाकाव्यव्याख्यायां चन्द्रकलाऽभिख्यायां प्रथमः सर्गः समाप्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काव्य और महाकाव्य के लक्षण

अव छात्रोंकी व्युत्पत्तिके लिए काव्यका लक्षण और उसके कुछ भेदकी चर्चा की जाती है। कौतीति कविः, "कु शव्दे" धातुसे "अच इः" इससे 'इ' प्रत्यय होकर "कवि" शव्दकी निष्पत्ति होती है। शव्द करनेवालेको "कवि" कहते हैं। 'कवि' शव्दके तीन अर्थ हैं ईश्वर, विद्वान् और काव्यकी रचना करने वाला। कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्। कविके भाव वा कर्मको "काव्य" कहते हैं। 'कवि' शव्दसे "गुणवचनव्राह्मणादिभ्यः कर्म च" इस सूत्रसे ष्यञ् प्रत्यय होकर "काव्य" पद निष्पन्न होता है।

मम्मटभट्टके काव्यप्रकाशके अनुसार काव्यका लक्षण है—

"तददोषौ शव्दाऽर्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वाऽपि।"

अर्थात् दोषरहित, गुण सहित, अलङ्कारसे अलङ्कृत शव्द और अर्थको "काव्य" कहते हैं, कहींपर अलङ्कारके न होनेपर भी "काव्य" पदका व्यवहार हो हो सकता है। सामान्यतः काव्यके दो भेद हैं दृश्य और श्रव्य। अभिनयसे दिखाए जानेवालेको "दृश्य" कहते है। इसे रूपक भी कहते हैं। इसके नाटक आदि अनेक भेद होते हैं। सुने जानेवाले काव्यको श्रव्य कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं गद्य और पद्य। कथा और आख्यायिका गद्यके भेद हैं। काव्यके दो भेद होते हैं महाकाव्य और खण्डकाव्य। साहित्यदर्पणके अनुसार महाकाव्यका लक्षण इस प्रकार किया गया है—

"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तगुणाऽन्वितः॥" ६–४० इत्यादि

अर्थात् सर्गवन्धसे युक्त देवता अथवा उत्तमकुलप्रसूत क्षत्रिय धीरोदात्तगुणसे सम्पन्न नायकसे अलङ्कृत और आठ सर्गोंसे अधिक सर्गयुक्त पञ्च सन्धिसे समन्वित ऋतुवर्णन आदि वर्णनसे सम्पन्न काव्यको महाकाव्य कहते हैं। प्रस्तुत नैषधीय-चरित 'महाकाव्य' है, इसमें २२ सर्ग हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

नैषधीयचरितके प्रथमसर्गमें अकारादिक्रमसे पद्यानुक्रमणिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—जातरूपच्छदजातरूपता = जातं रूपं (सौन्दर्यम्) यस्य सः जातरूपः (बहु०), तस्य भावो जातरूपता, जातरूप + तल् + टाप् । जातरूपस्य छदाः (ष० त०), "चामीकरं जातरूपं महारजतकाञ्चने ।" इत्यमरः । जातरूपच्छदैः जातरूपता (तृ० त०) । स्तुवन् = स्तौतीति, ष्टु + लट् (शतृ) + सुः । जनाऽधिनाथः = जनानाम् अधिनाथः (ष० त०) । करपञ्जरस्पृशा = करः पञ्जरम् इव (उपमित०) । 'पिंजड़के समान हाथ' कहनेसे उसकी शिथिलतासे पीडाके अभावकी सूचना होती है । करपञ्जरं स्पृशतीति करपञ्जरस्पृक्, तेन; करपञ्जर-उपपदपूर्वक "स्पृश" धातुसे "स्पृशोऽनुदके क्विन्" इस सूत्रसे क्विन् प्रत्यय । मानसौकसा = मानसम् ओकः (स्थानम्) यस्य स मानसौकाः, तेन (बहु०) । "हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्राऽङ्गा मानसौकसः ।" इत्यमरः । अवादि = वद + लुङ् (कर्ममें) + त । इस पद्यमें "करपञ्जरस्पृशा" इसमें उपमा अलङ्कार है और "जातरूप....." ".....जातरूप" यहाँपर यमक अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

> "सत्यर्थे पृथगर्थायाः स्वरव्यञ्जनसंहतेः ।
> क्रमेण तेनैवावृत्तिर्यमकं विनिगद्यते ॥" सा० द० १०-१० ॥१२९॥

धिगस्तु तृष्णातरलं भवन्मनः समीक्ष्य पक्षान्मम हेमजन्मनः ।
तवाऽर्णवस्येव तुषारशीकरैर्भवेदमीभिः कमलोदयः कियान् ? ॥ १३० ॥

अन्वयः—हेमजन्मनः मम पक्षान् समीक्ष्य तृष्णातरलं भवन्मनः धिक् अस्तु; तुषारशीकरैः अर्णवस्य इव तव अमीभिः कियान् कमलोदयः भवेत् ? ॥ १३० ॥

व्याख्या—अथ हंसः पद्यचतुष्टयेन राजानमुपालभते—धिगिति । हेमजन्मनः = सौवर्णान्, मम = हंसस्य, पक्षान् = पतत्त्राणि, समीक्ष्य = दृष्ट्वा, तृष्णातरलं = लालसाचञ्चलं, भवन्मनः धिक् = त्वच्चित्तं, धिक् = भवन्मनसो निन्देत्यर्थः । अस्तु = भवतु, तुषारशीकरैः = हिमकणैः, अर्णवस्य इव = समुद्रस्य इव, तव = भवतः, अमीभिः = एभिः, हेमजन्मभिः पक्षैरिति भावः, कियान् = किंपरिमाणः, कमलोदयः = भवतः—कमलायाः = लक्ष्म्याः, समुद्रस्य—कमलस्य = जलस्य, उदयः = वृद्धिः, भवेत् = स्यात्, अतिस्वल्पः स्यादिति भावः । अगाधजलः समुद्रो यथा जलवृद्ध्यर्थं तुषारशीकरं नाद्रियते तथैव आढ्यतमेन भवताऽपि मत्पक्षसुवर्णं नादरणीयमिति भावः ॥ १३० ॥

अनुवादः—सुनहरे मेरे पंखोंको देखकर तृष्णासे चञ्चल आपके मनको

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धिक्कार हो। हिमकणोंसे समुद्रको जैसे कितनी जलवृद्धि होगी? वैसे ही मेरे इन सुनहले पंखोंसे आपको कितनी सम्पत्तिकी वृद्धि होगी ? ॥ १३० ॥

टिप्पणी—हेमजन्मनः = हेम्नः जन्म येषां ते हेमजन्मानः, तान् (व्यधिकरण-बहु०)। समीक्ष्य = सम् + ईक्ष + क्त्वा (ल्यप्) । तृष्णातरलं = तृष्णया तरलं, तत् (तृ० त०) । भवन्मनः = भवतः मनः, तत्, "धिक्"के योगमें "धिगुपर्यादिषु त्रिषु" इससे द्वितीया । धिक् = धिङ् निर्भर्त्सननिन्दयोः" इत्यमरः । अस्तु = अस् + लोट् + तिप् । तुषारशीकरैः = तुषाराणां शीकराः, तैः (ष० त०)। कियान् = किं परिमाणम् अस्य, 'किम्' शब्दसे "किमिदम्भ्यां वोघः" इससे वतुप् (वत्) और 'व'के स्थानमें घ (इय) आदेश, "इदं-किमोरीश् की" इससे 'किम्'के स्थानमें 'की' और "यस्येति च" इससे ईकारका लोप । कमलो-दयः = राजपक्षमें—कमलायाः (लक्ष्म्याः), समुद्रपक्षमें—कमलस्य उदयः (ष० त०)। "कमला श्रीर्हरिप्रिया" इति "सलिलं कमलं जलम्" इति चाऽमरः । इस पद्यमें उपमा और श्लेष अलङ्कारकी संसृष्टि है ॥ १३० ॥

न केवलं प्राणिवधो वधो मम त्वदीक्षणाद्विश्वसिताऽन्तरात्मनः ।
विगर्हितं धर्मधनैर्निबर्हणं विशिष्य विश्वासजुषां द्विषामपि ॥ १३१ ॥

अन्वयः—(हे नृप !) त्वदीक्षणात् विश्वसिताऽन्तरात्मनः मम वधः केवलं प्राणिवधः न। विश्वासजुषां द्विषाम् अपि निबर्हणं धर्मधनैः विशिष्य विग-र्हितम् ॥ १३१ ॥

व्याख्या—(हे नृप !) त्वदीक्षणात् = भवन्मूर्तिदर्शनात्, विश्वसिताऽन्त-रात्मनः = विस्रब्धचित्तस्य, मम = हंसस्य, वधः = व्यापादनं, केवलः प्राणिवधः = जन्तुव्यापादनमात्रं, न = न अस्ति । किन्तु विश्वासजुषां = विस्रम्भभाजां, द्विषाम् अपि = शत्रूणाम् अपि, निबर्हणं = वधः, धर्मधनैः = धर्मपरैः, मन्वादिभिरिति शेषः । विशिष्य = अतिरिच्य, विगर्हितम् = अत्यन्तनिन्दितम् । कस्याऽपि प्राणिनो वधो गर्हितः, तत्राऽपि निरपराधस्य, तत्राऽपि "भवान् धार्मिको राजा" इति मनसिकृत्य विश्वस्तस्य मम वधो धार्मिकैरत्यन्तविगर्हितो भवेदिति भावः ॥१३१॥

अनुवादः—आपको देखनेसे विश्वस्त चित्तवाले मेरी हिंसा खाली प्राणिहिंसा नहीं है। विश्वास करनेवाले शत्रुओंकी हत्याकी भी धर्मज्ञोंने अत्यन्त निन्दा की है ॥ १३१ ॥

टिप्पणी—त्वदीक्षणात् = तव ईक्षणं, तस्मात् (ष० त०)। विश्वसिताऽन्त-रात्मनः = विश्वसितः अन्तरात्मा यस्य स विश्वसिताऽन्तरात्मा, तस्य (बहु०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राणिवधः = प्राणिनः वधः (ष० त०)। विश्वासजुषां = विश्वासं जुषन्त इति विश्वासजुषः, तेषाम्, विश्वास + जुष् + क्विप् + आम्। द्विषां = द्विषन्ति ते द्विषः, तेषाम्, द्विष् + क्विप् + आम्। निबर्हणं = "प्रमापणं निबर्हणं निकारणं विशारणम्।" इत्यमरः। विशिष्य = वि + शिष् + क्त्वा (ल्यप्)। इस पद्यमें अर्थान्तरन्यास और अर्थापत्तिका सङ्कर है ॥ १३१ ॥

पदे पदे सन्ति भटा रणोद्भटा न तेषु हिंसारस एष पूर्यते ?।
धिगीदृशं ते नृपतेः कुविक्रमं कृपाश्रये यः कृपणे पतत्त्रिणि ॥ १३२ ॥

अन्वयः—रणोद्भटाः भटाः पदे पदे सन्ति, एष हिंसारसः तेषु न पूर्यते ? नृपतेः ते ईदृशं कुविक्रमं धिक्; यः कृपाऽऽश्रये कृपणे पतत्त्रिणी (क्रियते) ॥१३२॥

व्याख्या—रणोद्भटाः = युद्धप्रचण्डाः, भटाः = योधाः, पदे पदे = प्रतिपदं, सन्ति = वर्तन्ते। एषः = अयं, हिंसारसः = वधरागः, तेषु = भटेषु, न पूर्यते = परिपूर्णो न भवति ? इति काकुः। नृपतेः = राज्ञः, ते = तव, ईदृशम् = एतादृशम्, अवध्यवधरूपमिति भावः। कुविक्रमं = कुत्सितपराक्रमं, धिक्, कुविक्रमस्य निन्देत्यर्थः। यः = कुविक्रमः, कृपाऽऽश्रये = करुणाविषये, कृपणे = दीने, पतत्त्रिणि = पक्षिणि, क्रियत इति शेषः ॥ १३२ ॥

अनुवादः—(हे राजन् !) युद्धमें प्रचण्ड योद्धा पग-पगमें मौजूद हैं, यह हिंसाराग क्या उनमें पूर्ण नहीं होता है ? प्रजापालक आपके इस कुत्सित पराक्रमको धिक्कार है, जो कि करुणाके विषय दीन पक्षीमें किया जा रहा है ॥ १३२ ॥

टिप्पणी—रणोद्भटाः = रणेषु उद्भटाः (स० त०)। भटाः = "भटा योधाश्च योद्धारः" इत्यमरः। पदे पदे = वीप्सामें द्विरुक्ति। सन्ति = अस् + लट् + झि:। हिंसारसः = हिंसाया रसः (ष० त०), "शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः।" इत्यमरः। पूर्यते = पूरी + लट् + श्यन् + त। नृपतेः = नृणां पतिः, तस्य (ष० त०)। कुविक्रमं = कुत्सितः विक्रमः, तम्, "कुगतिप्रादयः" इससे समास। "धिक्" के योगमें "धिगुपर्यादिषु त्रिषु" इससे द्वितीया। कृपाऽऽश्रये = कृपाया आश्रयः, तस्मिन् (ष० त०), पतत्त्रिणि = पतत्त्र + इनि + ङि ॥१३२॥

फलेन मूलेन च वारिभूरुहां मुनेरिवेत्थं मम यस्य वृत्तयः।
त्वयाऽद्य तस्मिन्नपि दण्डधारिणा कथं न पत्या धरणी हृणीयते ? ॥१३३॥

अन्वयः—यस्य मम मुनेः इव वारिभूरुहां फलेन मूलेन च इत्थं वृत्तयः, तस्मिन् अपि दण्डधारिणा पत्या त्वया अद्य धरणी कथं न हृणीयते ? ॥ १३३ ॥

व्याख्या—यस्य, मम = हंसस्य, मुनेः इव = ऋषेः इव, वारिभूरुहां = जल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भूम्युत्पन्नानां, पद्मवृक्षादीनामित्यर्थः, फलेन = सस्येन, मूलेन च = कन्दादिना च, इत्थम् = अनेन प्रकारेण, वृत्तयः = जीविकाः, सन्तीति शेषः। तस्मिन् अपि = मुनिसदृशे अपि, निर्दोषेऽपीति शेषः, दण्डधारिणा = निग्रहकारिणा, अदण्ड्यदण्डकेनेत्यर्थः। पत्या = पालकेन, त्वया = भवता, राज्ञेत्यर्थः। अद्य = अस्मिन्दिने, धरणी = धरित्री, कथं = केन प्रकारेण, न ह्रणीयते = न लज्जते, दुर्वृत्ते भर्तरि वधूर्लज्जत इति भावः ॥ १३३ ॥

अनुवादः—जल और वृक्षोंसे उत्पन्न कन्द और फलसे मुनिके समान मेरी वृत्ति है वैसे मेरे पति दण्डधारण करनेवाले पालक आपसे पृथ्वी क्यों नहीं लज्जा करती है ? ॥ १३३ ॥

टिप्पणी—वारिभूरुहां = वारि च भूश्च वारिभुवौ (द्वन्द्वः); वारिभुवोः रोहन्तीति वारिभूरुहः, तेषाम्, वारिभू + रुह + क्विप् (उपपद०) + आम्। वृत्तयः = "वृत्तिर्वर्तनजीवने" इत्यमरः। दण्डधारिणा = दण्डं धारयतीति तच्छीलः दण्डधारी, तेन दण्ड + धृञ् + णिच् + णिनि + टा (उप०) ह्रणीयते = "हृणीङ् रोषणे लज्जायां च" इस कण्ड्वादि धातुसे ङित् होनेसे आत्मनेपद होकर लट् + त। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १३३ ॥

> इतीदृशैस्तं विरचय्य वाङ्मयैः सचित्रवैलक्ष्यकृपं नृपं खगः।
> दयासमुद्रे स तदाशयेऽतिथीचकार कारुण्यरसापगा गिरः ॥ १३४ ॥

अन्वयः—स खगः इति तं नृपम् ईदृशैः वाङ्मयैः सचित्रवैलक्ष्यकृपं विरचय्य दयासमुद्रे तदाशये कारुण्यरसाऽऽपगाः गिरः अतिथीचकार ॥ १३४ ॥

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः, खगः = पक्षी, हंस इत्यर्थः इति = इत्थं, तं = पूर्वोक्तं, नृपं = राजानं, नलमित्यर्थः। ईदृशैः = एतादृशैः, पूर्वोक्तैरिति भावः। वाङ्मयैः=वाग्विकारैः दोषोद्घाटकैरिति भावः। सचित्रवैलक्ष्यकृपम् = आश्चर्यलज्जातिशयकरुणासहितं, विरचय्य = विधाय, दयासमुद्रे = करुणासागरे, तदाशये = नलचित्ते, कारुण्यरसापगाः = करुणारसनदीस्वरूपाः, गिरः = वाणीः, अतिथीचकार = प्रवेशयामासेत्यर्थः। समुद्रे नदीप्रवेशोयुक्त इति भावः ॥ १३४ ॥

अनुवादः—उस पक्षी (हंस) ने इस प्रकार राजा नलको ऐसे वचनोंसे आश्चर्य, लज्जा और करुणासे युक्त बनाकर दयाके समुद्रके समान उनके चित्तमें करुणरसकी नदियोंकी समान वाणियोंका प्रवेश कराया ॥ १३४ ॥

टिप्पणी—वाङ्मयैः = वाचां विकारा वाङ्मयानि, तैः, "एकाऽचो नित्यम्" इस वार्तिकसे मयट् प्रत्यय। सचित्रवैलक्ष्यकृपं = विलक्षस्य भावो वैलक्ष्यम्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विलक्ष + ष्यञ् । चित्रं च वैलक्ष्यं च कृपा च चित्रवैलक्ष्यकृपाः (द्वन्द्व०), ताभिः सह सचित्रवैलक्ष्यकृपः, तम् (तुल्ययोग०) । "आलेख्याऽऽश्चर्ययोश्चित्रम्" इत्यमरः । विरचस्य = वि + रच् + णिच् + क्त्वा (ल्यप्) णिच्के स्थानमें "ल्यपि लघुपूर्वात्" इससे अय् आदेश । राजाको मनुष्यके समान भाषणसे चित्र (आश्चर्य), उनके दोषके उद्घाटनसे अतिलज्जा और अपनी दीनताके प्रदर्शनसे दया, इन भावोंसे युक्त बनाकर यह तात्पर्य है । दयासमुद्रे = दयायाः समुद्रः, तस्मिन् (ष० त०) । तदाशये = तस्य आशयः, तस्मिन् (ष० त०) । कारुण्यरसाऽऽपगाः = करुणा एव कारुण्यं, करुणा + ष्यञ् (स्वार्थमें) । कारुण्यम् एव रसः (रूपक०), तस्य आपगाः, ताः (ष० त०) । "कारुण्यं करुणा घृणा" इत्यमरः, अतिथीचकार = अनतिथयः अतिथयः यथा सम्पद्यन्ते तथा चकार, अतिथि + च्वि + कृ + लिट् । इस पद्यमें हंसकी वाणियोंमें नदीत्वका आरोप करनेके लिए नलके हृदयमें समुद्रत्वका आरोप निमित्त है और "रस" पद श्लिष्ट है इस कारणसे श्लिष्टपरम्परित रूपक अलङ्कार है । परम्परित रूपकका लक्षण है--

"यत्र कस्यचिदारोपः पराऽऽरोपणकारणम् ।
तत्परम्परितं, श्लिष्टाऽश्लिष्टशब्दनिबन्धनम् ॥" सा० द० १०-४३ ।

यहाँपर "रस शब्दका प्रयोग होनेपर भी उसका जलरूप अर्थ होनेसे रसदोष नहीं है ॥ १३४ ॥

"मदेकपुत्रा जननी जराऽऽतुरा, नवप्रसूतिर्वरटा तपस्विनी ।
गतिस्तयोरेष जनस्तमर्दयन्नहो ! विधे ! त्वां करुणा रुणद्धि नो ? ॥१३५॥

अन्वयः—जननी मदेकपुत्रा जराऽऽतुरा, वरटा नवप्रसूतिः तपस्विनी; एष जनः तयोः गतिः, तम् अर्दयन् हे विधे ! त्वां करुणा नो रुणद्धि ? अहो ! ॥ १३५ ॥

व्याख्या—साम्प्रतं हंसः कारुण्यरसपूरिता गिरो विस्तारयति मदेकपुत्रेति । तत्र प्राग्विधिमुपालभते—जननी = जनयित्री, मदीया मातेत्यर्थः । मदेकपुत्रा = मदेकतनया, मम नाशे न कोऽपि तस्या रक्षक इति भावः । तर्हि अन्योऽपि तनयो भविष्यतीति संभावनायाम्—जरातुरा = वार्धक्याकुला, प्रसवेऽसमर्थेति भावः : वरटा = मम भार्या, नवप्रसूतिः = अचिरप्रसवा, अतः, तपस्विनी = शोचनीया, एषः = अयं, जनः = पुरुषः, तयोः = जननीजाययोः, गतिः = शरणं, तं = तादृशं शरणभूतं जनं, मामिति भावः । अर्दयन् = मारयन् । हे विधे = हे विधातः !

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वां = भवन्तं, करुणा = दया, नो रुणद्धि = न निवारयति ? इति काकुः । अहो = आश्चर्यम्, विधिर्नृशंसतर इति भावः ॥ १३५ ॥

अनुवादः—मेरी माता, उसका मैं ही एक पुत्र हूँ, उसपर भी वह बुढ़ापासे आकुल है। मेरी भार्या (हँसी) नये प्रसववाली है, अतः शोचनीया है। उन दोनोंका मैं ही एकमात्र रक्षक हूँ, उसकी हिंसा करते हुए हे ब्रह्मदेव ! क्या तुम्हें करुणा नहीं रोकती है ? आश्चर्य है ! ॥ १३५ ॥

टिप्पणी—मदेकपुत्रा = अहम् एव एकः पुत्रः यस्याः सा (बहु०), जरा-ऽऽतुरा = जरया आतुरा (तृ० त०)। बरटा = "हंसस्य योषिद्वरटा" इत्यमरः। नवप्रसूतिः = नवा (नूतना) प्रसूतिः (प्रसवः) यस्याः सा (बहु०)। तप-स्विनी = "तपस्वी तापसे चाऽनुकम्प्ये" इति मेदिनी। अर्दयन् = "अर्द हिंसायाम्" इस चुरादि धातुसे अर्द + णिच् + लट् (शतृ) + सु। रुणद्धि = रुध् + लट् + तिप्। इस पद्यमें विशेषणोंके अभिप्रायगर्भित होनेसे परिकर अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"उक्तैर्विशेषणैः साऽभिप्रायैः परिकरो मतः।" सा० द० १०–७५।

करुण रस, प्रसाद गुण और वैदर्भी रीति है ॥ १३५ ॥

मुहूर्तमात्रं भवनिन्दया दयासखाः सखायः स्रवदश्रवो मम।
निवृत्तिमेष्यन्ति परं दुरुत्तरस्त्वयैव मातः ! सुतशोकसागरः ॥ १३६ ॥

अन्वयः—हे मातः ! मम सखायः दयासखायः भवनिन्दया मुहूर्तमात्रं स्रवदश्रवः (सन्तः) निवृत्तिम् एष्यन्ति, परं त्वया एव सुतशोकसागरः दुरुत्तरः ॥ १३६ ॥

व्याख्या—अथ मातरमुद्दिश्य सोचति—मुहूर्तेति। हे मातः = हे जननि ! मम, सखायः = सुहृदः, दयासखाः = करुणासहचराः, भवनिन्दया = संसारगर्हणेन, मुहूर्तमात्रं = क्षणमात्रं, स्रवदश्रवः = गलितनयनजलाः सन्तः, "विनश्वरसम्बन्ध-भाजं संसारं धिक्" इत्यादिवचनजातेनेति शेषः, निवृत्तिं=शोकोपरतिम्, एष्यन्ति= यास्यन्ति, परं = किन्तु, त्वया एव = भवत्या एव, सुतशोकसागरः = तनयशुक्-समुद्रः, दुरुत्तरः = दुस्तरः ॥ १३६ ॥

अनुवादः—हे मातः ! मेरे मित्र सदय होकर संसारकी निन्दासे कुछ क्षण तक आँसुओंको गिराते हुए शोकनिवृत्तिको प्राप्त होंगे, परन्तु आपसे ही पुत्रका शोकसमुद्र दुस्तर होगा ॥ १३६ ॥

टिप्पणी—दयासखायः = दयया सखायः (तृ० त०), "राजाऽहःसखिभ्यष्टच्" इस सूत्रसे समासान्त टच् प्रत्यय। भवनिन्दया = भवस्य निन्दा, तया (तृ० त०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुहूर्तमात्रं = मुहूर्त एव, मुहूर्तमात्रं, तत् (रूपक०), "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इससे द्वितीया। स्रवदश्रवः = स्रवन्ति अश्रूणि येषां ते (बहु०)। एष्यन्ति = इण् + लृट् + झि। सुतशोकसागरः = सुतस्य शोकः (ष० त०), स एव सागरः (रूपक०)। दुरुत्तरः = दुःखेन उत्तरीतुं शक्यः, दुर + उद्–उपसर्गपूर्वक "तॄ प्लवनसंतरणयोः" इस धातुसे "ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राऽकृच्छ्रार्थेषु खल्" इस सूत्रसे खल् प्रत्यय। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ १३६ ॥

"मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूर" इति त्वयोदिते।
विलोकयन्त्या रुदतोऽथ पक्षिणः प्रिये ! स कीदृग्भविता तवक्षणः ? ॥१३७॥

अन्वयः—हे प्रिये ! "मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः प्रियः कियद्दूरे" इति त्वया उदिते, अथ रुदतः पक्षिणः विलोकयन्त्याः तव स क्षणः कीदृक् भविता ? ॥१३७॥

व्याख्या—साम्प्रतं प्रियामनूद्य शोचति—मदर्थेति।

हे प्रिये = हे दयिते !, मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः = मदर्थवाचिकबिसाऽलसः, प्रियः = वल्लभः, कियद्दूरे = किंपरिमाणविप्रकृष्टप्रदेशे, वर्तत इति शेषः। इति = एवं, त्वया = भवत्या, उदिते = उक्ते, पृष्टे सतीति भावः। अथ = प्रश्नाऽनन्तरं, रुदतः = अश्रूणि विमुञ्चतः, अनिष्टोच्चारणाऽसामर्थ्येनेति शेषः। पक्षिणः = विहङ्गान्, इतो गतानिति शेषः। विलोकयन्त्याः = पश्यन्त्याः, तव = भवत्याः, सः = तादृशः, क्षणः = कालः, कीदृक् = कीदृशः, भविता = भविष्यति, वज्रपातसदृशः असहनीय इति भावः ॥ १३७ ॥

अनुवादः—हे प्रिये ! "मेरे लिए सन्देश और मृणाल भेजनेमें विलम्ब करनेवाले मेरे प्यारे कितने दूर हैं" ऐसा तुम्हारे पूछनेपर रोते हुए पक्षियोंको देखती हुई तुम्हारा वह क्षण कैसा होगा ? ॥ १३७ ॥

टिप्पणी—मदर्थसन्देशमृणालमन्थरः = मह्यम् इमे मदर्थे, "चतुर्थी तदर्थाऽर्थबलिहितसुखरक्षितैः" इस सूत्रसे "अर्थेन नित्यसमासो विशेष्यलिङ्गता चेति वक्तव्यम्" इस वार्तिकके सहकारसे चतुर्थीतत्पुरुष। सन्देशश्च मृणालं च सन्देशमृणाले (द्वन्द्वः)। मदर्थे च ते सन्देशमृणाले (क० धा०), तयोः मन्थरः (स० त०)। कियद्दूरे = कियच्च तत् दूरं, तस्मिन् (क० धा०)। उदिते=वद् + क्तः + ङि। रुदतः = रुदन्तीति रुदन्तः, तान् रुद् + लट् (शतृ) + शस्। विलोकयन्त्याः = वि + लोक + णिच् + लट् (शतृ) + ङीप् + ङस्। भविता = भू + लुट् + तिप्। यहाँपर अद्यतन भविष्यदर्थमें लृट्का प्रयोग इष्ट था परन्तु अनद्यतनभविष्यत्-लुट्का प्रयोग होनेसे च्युतसंस्कृति दोषकी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, शोकाऽऽ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुल हंसकी ऐसी उक्ति करुण रसकी अनुकूल होनेसे गुणस्थानीय है। इस पद्यमें शोकका उदय होनेसे भावोदय अलङ्कार है ॥ १३७ ॥

कथं विधातर्मयि पाणिपङ्कजात्तव प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः ।
"वियोक्ष्यसे वल्लभये"ति निर्गता लिपिर्ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा ? ॥ १३८ ॥

अन्वयः—हे विधातः ! प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः, तव पाणिपङ्कजात् मयि "वल्लभया वियोक्ष्यसे" इति ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा लिपिः कथं निर्गता ? ॥ १३८ ॥

व्याख्या—हे विधातः=हे विधे !, प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = वल्लभाशीतलत्वकोमलत्वनिर्मातुः, तव = भवतः, पाणिपङ्कजात् = करकमलात्, मयि = विषये, वल्लभया = प्रियया सह, वियोक्ष्यसे = वियुक्तो भविष्यसि, इति = एवं, ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा = भालतापिकठिनवर्णा, लिपिः = लिविः, अक्षरविन्यास इत्यर्थः, कथं = केन प्रकारेण, निर्गता = निःसृता । मत्प्रियाशैत्यकोमलत्वनिर्मातुस्तव हस्तान्मद्भाले प्रियावियोजनसूचककठिनलिपिनिर्मितिः आश्चर्यद्योतिकेति भावः ॥ १३८ ॥

अनुवादः—हे ब्रह्मदेव ! मेरी प्रियाकी शीतलता और कोमलताके निर्माण करनेवाले तुम्हारे हाथसे मेरे विषयमें "तुम प्रियासे बिछुड़ जाओगे" इस तरह ललाटको ताप करनेवाली निष्ठुर अक्षरोंसे युक्त लिपि कैसे निकली ? ॥ १३८ ॥

टिप्पणी—विधातः = विदधातीति विधाता, तत्सम्बुद्धौ, वि + धा + तृच् + सु । प्रियाशैत्यमृदुत्वशिल्पिनः = शीतस्य भावः शैत्यम् । शीत + ष्यञ् । मृदोर्भावः मृदुत्वम्, मृदु + त्व । शैत्यं च मृदुत्वं च (द्वन्द्वः) । शिल्पम् अस्याऽस्तीति शिल्पि, शिल्प + इनिः । प्रियायाः शैत्यमृदुत्वे (ष० त०), तयोः शिल्पि, तस्मात् (ष० त०) । पाणिपङ्कजात् = पाणिः पङ्कजम् इव, तस्मात् (उपमित०) । वियोक्ष्यसे = वि + युज् + लृट् (कर्ममें) + थास् (से) । ललाटन्तपनिष्ठुराऽक्षरा = ललाटं तपन्तीति ललाटन्तपानि, "असूर्यललाटयोर्दृशितपोः" इस सूत्रसे खश् प्रत्यय और "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इससे मुम् आगम । ललाटन्तपानि निष्ठुराणि अक्षराणि यस्याः सा (बहु०) । निर्गता = निर् + गम् + क्त + टाप् । इस पद्यमें कारणसे विरुद्ध कार्यकी उत्पत्तिके कथनसे विषम अलङ्कार है । भेदप्रदर्शनपूर्वक उसका लक्षण है—

"गुणौ क्रिये वा यत्स्यातां विरुद्धे हेतुकार्ययोः ।
यदारब्धस्य वैफल्यमनर्थस्य च सम्भवः ॥
विरूपयोः सङ्घटना या च तद्विषमं मतम् ।" सा० द० १०-६१ ॥ १३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अपि स्वयूथ्यैरशनिक्षतोपमं ममाऽद्य वृत्तान्तमिमं बतोदिता ।
मुखानि लोलाऽक्षि ! दिशामसंशयं दशाऽपि शून्यानि विलोकयिष्यसि ॥ १३९ ॥

अन्वयः—अपि (च) अद्य स्वयूथ्यैः अशनिक्षतोपमं मम इमं वृत्तान्तम् उदिता (सती) हे लोलाक्षि ! दश अपि दिशां मुखानि शून्यानि विलोकयिष्यसि असंशयं बत ! ॥ १३९ ॥

व्याख्या—अपि च = अन्यच्च, अद्य = अस्मिन् दिने, स्वयूथ्यैः = आत्मसङ्घभवैः, हंसैरित्यर्थः । अशनिक्षतोपमं = वज्रप्रहारसदृशं, मम = प्रियस्य, इमम् = एतं, वृत्तान्तम् = उदन्तं, नरहस्तपतनरूपमिति शेषः । उदिता = उक्ता सती, हे लोलाक्षि = हे चपलनयने !, दश = दशसंख्यकानि, दिशां = काष्ठानां, प्राच्यादीनामित्यर्थः । मुखानि = सम्मुखस्थानानि, शून्यानि=रिक्तानि, विलोकयिष्यसि=द्रक्ष्यसि, मद्वियोगादिति भावः । असंशयम् = अत्र सन्देहो न, बत = इति खेदे ॥ १३९ ॥

अनुवादः—और भी । आज अपने वर्गके हंसोंके वज्रप्रहारके सदृश इस वृत्तान्तको कहनेपर हे चञ्चलनयने ! तुम दिशाओंके दशों संमुखवर्ती स्थानोंको शून्य देखोगी, इसमें सन्देह नहीं है, हाय ! ॥ १३९ ॥

टिप्पणी—अद्य = अस्मिन् दिने, "सद्यःपरुत्०" इत्यादि सूत्रसे निपात । स्वयूथ्यैः = यूथे भवा यूथ्याः, यूथ + यत् । स्वस्य यूथ्याः, तैः (ष० त०) । अशनिक्षतोपमम् = अशनिना क्षतम् (तृ० त०), तत् उपमा (सादृश्यम्) यस्य, तम् (बहु०) । वृत्तान्तम् = वद धातुके द्विकर्मक होनेसे मुख्य कर्ममें द्वितीया । उदिता = वद + क्त (कर्ममें) + टाप् । लोलाक्षि = लोले अक्षिणी यस्याः सा लोलाक्षी, तत्सम्बुद्धौ (बहु०) । "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात् षच्" इससे समासाऽन्त षच्, । षित् होनेसे स्त्रीत्वविवक्षामें "षिद्गौरादिभ्यश्च" इससे ङीष् । विलोकयिष्यसि = वि + लोक + णिच् + लृट् + सिप् । असंशयं = संशयस्य अभावः, "अव्ययं विभक्ति०" इत्यादिसे अर्थाऽभावमें अव्ययीभाव समास । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १३९ ॥

ममैव शोकेन विदीर्णवक्षसा त्वयाऽपि चित्राङ्गि ! विपद्यते यदि ।
तदस्मि दैवेन हतोऽपि हा ! हतः स्फुटं यतस्ते शिशवः पराऽसवः ॥ १४० ॥

अन्वयः—हे चित्राऽङ्गि ! मम शोकेन एव विदीर्णवक्षसा त्वया अपि विपद्यते यदि, तद् दैवेन हतः, स्फुटः हतः अस्मि, हा ! यतः ते शिशवः पराऽसवः ॥१४०॥

व्याख्या—हे चित्राङ्गि = हे विचित्रगात्रे !, लोहितचञ्चुचरणत्वादिति भावः । मम = प्रियस्य, शोकेन = मन्युना, एव, विदीर्णवक्षसा = विदलितहृदयया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वया अपि = भवत्या अपि, प्रियया अपीति भावः। विपद्यते यदि = म्रियते चेत्, तत् = तर्हि, दैवेन = भाग्येन, हतः = नाशितः, स्फुटं = व्यक्तं, पुनः हतः = नाशितः, अस्मि = भवामि, हा = दैवपुनर्हतस्य मे शोच्यत इति भावः। यतः = यस्मात्कारणात्, ते = तव, शिशवः = शावकाः, पराऽसवः=मृताः, भवेयुरिति शेषः। मच्छोकेन त्वमपि प्राणांस्त्यक्ष्यसि चेच्छरणयोर्मातापित्रोरभावेनाऽस्मच्छावका अपि मरिष्यन्तीति दैवहतोऽहं पुनर्हतो भविष्यामीति भावः॥ १४०॥

अनुवादः—हे विचित्र अङ्गोंवाली प्रिये! मेरे शोकसे ही विदीर्णहृदय होकर तुम भी मर जाओगी तो भाग्यसे मारा जाकर व्यक्त रूपसे फिर भी मारा जाऊँगा, क्योंकि, तब तो तुम्हारे बच्चे भी (हम लोगोंके अभावसे) मर जायेंगे॥१४०॥

टिप्पणी—चित्राऽङ्गि = चित्राणि अङ्गानि यस्याः सा चित्राङ्गी, तत् सम्बुद्धौ (बहु०), "अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्" इस वार्तिकसे ङीप्। विदीर्णवक्षसा = विदीर्णं वक्षो यस्याः सा विदीर्णवक्षाः, तया (बहु०), विपद्यते = वि + पद् + लट् (भावमें) + त। हतः = हन् + क्तः, हा = "हा विस्मयविषादयोः" इति विश्वः। शिशवः = "पोतः पाकोऽर्भको डिम्भः पृथुकः शापकः शिशुः।" इत्यमरः। पराऽसवः = परागता असवः (प्राणाः) येषां, ते (बहु०)। बच्चोंके मरनेकी भावनासे द्विगुण मरणका दुःख मैं पाऊंगा यह भावार्थ है। इस पद्यमें शोकके स्थायिभाव होनेसे करुण रस है॥ १४०॥

> तवाऽपि हा! हा विरहात्क्षुधाकुलाः कुलायकूलेषु विलुठ्य तेषु ते।
> चिरेण लब्धा बहुभिर्मनोरथैर्गताः क्षणेनाऽस्फुटितेक्षणा मम॥ १४१॥

अन्वयः—(हे प्रिये!) बहुभिः मनोरथैः चिरेण लब्धाः अस्फुटितेक्षणाः मम ते तव अपि विरहात् क्षुधा आकुलाः तेषु कुलायकूलेषु विलुठ्य क्षणेन गताः, हा! हा!!॥ १४१॥

व्याख्या—मन्मरणे कथं सुतानां मरणमिति प्रतिपादयति। (हे प्रिये!) बहुभिः = अधिकैः, मनोरथैः = अभिलाषैः, चिरेण = बहुकालेन, लब्धाः = प्राप्ताः, "अस्माकं सन्ततयो भवन्तु" इति बहुभिरभिलाषैः कष्टेन प्राप्ता इति भावः। एवं च अस्फुटितेक्षणाः = अनुन्मीलितनयनाः, अद्याऽपीति शेषः। मम = हंसस्य, ते = पूर्वोक्ताः, शिशव इति भावः। तव अपि = न केवलं मम, तव अपि इति भावः। विरहात् = वियोगात्, क्षुधा = बुभुक्षया, आकुलाः = पीडिताः सन्तः, तेषु = स्वसम्पादितेषु इति भावः, कुलायकूलेषु = नीडसमीपभागेषु, विलुठ्य = परिवृत्य, क्षणेन = अल्पकालेनैव, गताः = याताः, मृता भविष्यन्ति, बहुभिर्मनोरथैर्बहुकालेन

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्ताः अस्माच्छिशवः आवयोरभावेन अल्पकालेन मृता भविष्यन्तीति भावः । हा ! हा ! = त्वां मां च इति शेषः, वज्रपातोपमविपत्तेस्तव मम च शोच्यत इति भावः ॥ १४१ ॥

अनुवादः—(हे प्रिये !) बहुत मनोरथोंसे बहुत समयमें पाये गये अस्फुटित नेत्रोंवाले मेरे और तुम्हारे वे बच्चे हमारे वियोगसे भूखसे पीडित होकर घोंसलेके समीप लोटकर थोड़ ही समयमें मर जायंगे हाय ! हाय ! ॥ १४१ ॥

टिप्पणी—लब्धाः = लभ् + क्त + जस् । अस्फुटितेक्षणाः = न स्फुटिते (नञ्०), अस्फुटिते ईक्षणे येषां ते (बहु०) । विरहात् = हेतुमें पञ्चमी । कुलायकूलेषु = कुलायस्य कूलानि, तेषु (ष० त०) । कूलका अर्थ यहाँपर समीप स्थान है । "कुलायो नीडमस्त्रियाम्" इत्यमरः । विलुठ्य = वि + लुठ + क्त्वा (ल्यप्) । क्षणेन = "अपवर्गे तृतीया" इससे तृतीया । इस पद्यमें करुण रस है ॥ १४१ ॥

सुताः ! कमाहूय चिराय चूङ्कृतैर्विधाय कम्प्राणि मुखानि कं प्रति ? ।
कथासु शिष्यध्वमिति प्रमील्य सः स्रुतस्य सेकाद् बुबुधे नृपाऽश्रुणः ॥१४२॥

अन्वयः—"हे सुताः ! चूङ्कृतैः चिराय कम् आहूय कं प्रति मुखानि कम्प्राणि विधाय कथासु शिष्यध्वम्" इति प्रमील्य सः स्रुतस्य नृपाऽश्रुणः सेकात् सः बुबुधे ॥ १४२ ॥

व्याख्या—हंसः शिशूननूद्य भूयः परिदेवयते—सुता इति ।

हे सुताः = हे पुत्राः !, चूङ्कृतैः = चूङ्कारैः, "चूम्" इति पक्षिशावकरुतैरित्यर्थः । चिराय = बहुकालपर्यन्तम्, कं = कतरं जनम्, आहूय = आकार्य, कं प्रति = कतरं प्रति, उभयत्र जननीजनकयोरिति शेषः । मुखानि = आननानि, कम्प्राणि = कम्पनशीलानि, चञ्चलानीति भावः । विधाय = कृत्वा, कथासु = शब्दमात्रेषु, शिष्यध्वम् = अवशिष्टा भवत, इति = एवम्, उक्त्वेति शेषः । प्रमील्य = मूर्च्छां प्राप्य, सः = हंसः स्रुतस्य = गलितस्य, नृपाऽश्रुणः = नलनयनजलस्य, सेकात् = सेचनात्, बुबुधे = सञ्ज्ञां प्राप ॥ १४२ ॥

अनुवादः—"हे बच्चो ! चूँ चूँ करके बहुत समयतक किसे बुलाकर और किसे लक्ष्य करके मुँहको चञ्चल बनाकर शब्दमात्रसे अवशिष्ट हो जाओगे" ऐसा कहकर मूर्च्छित होकर वह हंस राजाके गिरे हुए आँसूके सेचनसे होशमें आ गया ॥ १४२ ॥

टिप्पणी—चिराय = "चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिराऽर्थकाः ।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यमरः । आहूय = आङ् + ह्वेञ् + क्त्वा (ल्यप्), दोनों शब्द अव्यय हैं । कम्प्राणि = कम्पनशीलानि, "कपि चलने" धातुसे "नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः" इस सूत्रसे रप्रत्यय । शिष्यध्वम्="शिष असर्वोपयोगे" धातुसे "प्रैषाऽतिसर्गप्राप्तकालेषु कृत्याश्च" इससे प्राप्तकालमें लोट् + ध्वम् । प्रमील्य = प्र + मील + क्त्वा (ल्यप्) । नृपाऽश्रुणः = नृपस्य अश्रु, तस्य (ष० त०) । सेकात्=सिच् + घञ् + ङसिः । बुबुधे + बुध + लिट् + त (एश्)। यहाँपर "म्रियध्वम्" कहनेपर अमङ्गलव्यञ्जक अश्लीलदोष होता था अतः "कथासु शिष्यध्वम्" ऐसा प्राप्तकालमें लोट्का प्रयोग किया गया है । स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ १४२ ॥

इत्थममुं विलपन्तममुञ्चद्दीनदयालुतयाऽवनिपालः ।
रूपमदर्शि धृतोऽसि यदर्थं गच्छ यथेच्छमथेत्यभिधाय ॥ १४३ ॥

अन्वयः—इत्थं विलपन्तम् अमुम् अवनिपालः दीनदयालुतया "रूपम् अदर्शि, यदर्थं धृतः असि; अथ यथेच्छं गच्छ" इति अभिधाय अमुञ्चत् ॥ १४३ ॥

व्याख्या—इत्थम् = अनेन प्रकारेण, "धिगस्तु तृष्णातरलम्" इत्यादि रूपेणेति भावः । विलपन्तं = परिदेवमानम्, अमुं = हंसम्, अवनिपालः = भूपालः, नल इति भावः, दीनदयालुतया = आर्तकृपालुतया, रूपम् = आकृतिः, अदर्शि = अवलोकितम्, अपूर्वत्वादिति शेषः । यदर्थं = रूपदर्शनाऽर्थं, धृतः = गृहीतः, असि = वर्तसे, एतत्कथनेन "धिगस्तु तृष्णातरलम्" इत्यादिश्लोकैः क्रियमाणा लुब्धत्वादिरूपा आक्षेपाः परिहृताः । अथ = अनन्तरं, मत्कर्तृकत्वद्रूपदर्शनाऽनन्तरमिति भावः । यथेच्छं = यथेष्टं, गच्छ = व्रज, इति = एवम्, अभिधाय=उक्त्वा, अमुञ्चत्=मुक्तवान् ॥१४३॥

अनुवादः—इस प्रकार विलाप करते हुए उस हंसको दीनोंमें दयालु होनेसे राजा नलने "रूप देख लिया जिसके लिए मैंने तुम्हें पकड़ा था, अब इच्छाके अनुसार जाओ" ऐसा कहकर छोड़ दिया ॥ १४३ ॥

टिप्पणी—विलपन्तं = विलपतीति विलपन्, तम्, वि + लप + लट् (शतृ) + अम् । "विलापः परिदेवनम्" इत्यमरः । अवनिपालः = अवनिं पालयतीति, अवनि + पाल + अच् । दीनदयालुतया = दयत इति दयालुः, दय धातुसे "स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्" इस सूत्रसे आलुच् प्रत्यय । दयालोर्भावः, दयालु + तल् + टाप् । दीनेषु दयालुता, तया (स० त०) । हेतुमें तृतीया । अदर्शि = दृश् + लुङ् (कर्ममें) + त । यदर्थं = यस्मै इदम् (च० त०) यथा तथा, (क्रि० वि०) धृतः = धृञ् + क्तः (कर्ममें) । यथेच्छम् = इच्छाम् अनतिक्रम्य (अव्ययीभाव०) । गच्छ = गम् + लोट् + सिप् । अभिधाय = अभि +

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धा + क्त्वा (ल्यप्)। अमुञ्चत् = मुच् + लङ् + तिप् । महाकाव्यमें सर्गके अन्तमें छन्द बदलना चाहिए जैसे कि कहा है—

"एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।" सा० द० ६–८ ।

यह दोधक छन्द है। उसका लक्षण है—"दोधकवृत्तमिदं भभभा गो" ॥१४३॥

आनन्दजाऽश्रुभिरनुस्त्रियमाणमार्गान्प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान् ।
चक्रे स चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन नीराजनां जनयतां निजबान्धवानाम् ॥१४४॥

अन्वयः—स चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन नीराजनां जनयतां निजबान्धवानां प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान् आनन्दजाऽश्रुभिः अनुस्त्रियमाणमार्गान् चक्रे ॥ १४४ ॥

व्याख्या—सः = हंसः, चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन = मण्डलाकारभ्रमणमिषेण, नीराजनाम् = आर्गतिकां, जनयतां = कुर्वतां, निजबान्धवानां = स्वबन्धूनां, प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान् = पुराशुङ्निःसरितवाष्पपूरान्, आनन्दजाऽश्रुभिः = हर्षजनयनसलिलैः, अनुस्त्रियमाणमार्गान् = अनुगम्यमानाऽध्वनः, चक्रे = कृतवान् ॥१४४॥

अनुवादः—उस हंसने मण्डलाकार भ्रमणके बहानेसे नीराजना करनेवाले अपने बान्धवोंके पहले शोकसे निकले हुए आँसुओंको आनन्दसे उत्पन्न आँसुओंसे अनुसरण किया जाने वाला बनाया ॥ १४४ ॥

टिप्पणी—चक्रनिभचङ्क्रमणच्छलेन = कुटिलं क्रमणं चङ्क्रमणं, क्रम धातुसे "नित्यं कौटिल्ये गतौ" इस सूत्रसे कुटिल गतिमें यङ् प्रत्यय और "यङोऽचि च" इससे लुक् और द्वित्व होकर भावमें ल्युट् । चक्रेण सदृशं चक्रनिभम् (तृ० त०), अस्वपदविग्रह होनेसे नित्य समास । चक्रनिभं च तच्चङ्क्रमणं (क० धा०) । तस्य छलं, तेन (ष० त०) । जनयतां = जनयन्तीति तेषाम्, जन् + णिच् + लट् (शतृ) + आम् । निजबान्धवानां = निजाश्च ते बान्धवाः, तेषाम् (क० धा०), प्राक्शोकनिर्गमितनेत्रपयःप्रवाहान् = पयसां प्रवाहाः (ष० त०), नेत्रयोः पयःप्रवाहाः (ष० त०) । प्राग्भवः शोकः प्राक्शोकः (मध्यमपद०) । प्राक्शोकेन निर्गमिताः (तृ० त०), ते च ते नेत्रपयःप्रवाहाः, तान् (क० धा०) । आनन्दजाऽश्रुभिः = आनन्दात् जातानि, आनन्द + जन् + डः । आनन्दजानि च तानि अश्रूणि, तैः (क० धा०) । अनुस्त्रियमाणमार्गान् = अनुस्त्रियन्ते इति अनुस्त्रियमाणाः, अनु + सृ + लट् (कर्ममें) (शानच्) । ते मार्गा येषां ते, तान् (बहु०) । चक्रे = कृ + लिट् (कर्ताके अर्थमें) + त (एश्) । इस पद्यमें बन्धनसे छूटे हुए अपने यूथके पक्षीके चारों ओर पक्षिगण मण्डलाकार रूपसे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

घूमते हैं इस बातको मनुष्योंके समान नीराजनाके रूपमें प्रदर्शित किया है। नलसे हंसके पकड़े जानेपर उसके यूथके पक्षिगण रोये, पीछे छोड़ जानेपर हर्षाश्रु गिराने लगे यह इसका तात्पर्य है। इस महाकाव्यमें सर्गके अन्तिम प्रत्येक पद्यमें "आनन्द" पदका प्रयोग किया है, अतः यह "आनन्दाऽङ्क" महाकाव्य है। इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति अलङ्कार है। वसन्ततिलका छन्द है, उसका लक्षण है—

"उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ गः।" ॥ १४४ ॥

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।
तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्ग्या महा-
काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गोऽयमादिर्गतः ॥ १४५ ॥

अन्वयः—कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः श्रीहीरः मामल्लदेवी च जितेन्द्रियचयं यं श्रीहर्षं सुतं सुषुवे। तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले शृङ्गारभङ्ग्या चारुणि नैषधीयचरिते महाकाव्ये अयम् आदिः सर्गः गतः ॥ १४५ ॥

व्याख्या—अथ महाकविः सर्गान्ते काव्यवर्णनं सर्गसमाप्तिं च पद्यबन्धेन प्रदर्शयति—श्रीहर्षमिति। कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः = पण्डितश्रेष्ठश्रेणीकिरीटभूषणवज्रमणिः श्रीहीरः = श्रीहीरनामकः, मामल्लदेवी च = मामल्लदेवीनाम्नी च जितेन्द्रियचयं = वशीकृतहृषीकसमूहम्। यं श्रीहर्षं = श्रीहर्षनामकं, सुतं = पुत्रं, सुषुवे = जनयामास, तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले = तच्चिन्तामणिनामकमनूपासनाफलरूपे, शृङ्गारभङ्ग्या = आदिरसविच्छित्या, चारुणि = मनोहरे, नैषधीयचरिते = नैषधीयचरितनामके, महाकाव्ये = बृहत्काव्ये, काव्यविशेष इति भावः। अयं = निकटस्थः, आदिः = प्रथमः, सर्गः = अध्यायः, गतः = समाप्त इत्यर्थः ॥ १४५ ॥

अनुवादः—श्रेष्ठ पण्डितोंकी श्रेणीके मुकुटके अलङ्कार हीरेके समान श्रीहीर और मामल्लवदेवीने जिस श्रीहर्ष नामके पुत्रको उत्पन्न किया, उन (श्रीहर्ष) के चिन्तामणि नामक मन्त्रकी उपासनाके फलरूप शृङ्गारकी विचित्रतासे मनोहर नैषधीयचरितनामक महाकाव्यमें यह पहला सर्ग समाप्त हुआ ॥ १४५ ॥

टिप्पणी—कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः = कवीनां राजानः कविराजाः (ष० त०), समासाऽन्त टच् प्रत्यय। "संख्यावान् पण्डितः कविः" इत्यमरः। कविराजानां राजिः (ष० त०), तस्या मुकुटानि (ष० त०), "अथ मुकुटं किरीटं पुंनपुंसकम्" इत्यमरः। तेषाम् अलङ्कारः (ष० त०) स चाऽसौ हीरः (क०

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धा०)। श्रीहीरः=श्रीसम्पन्नो हीरः (मध्यमपद०)। मामल्लदेवी=किसीने यहाँपर माम्+अल्लदेवी ऐसा पदच्छेद कर "अल्लदेवी च मां सुतं श्रीहर्षम् सुषुवे" ऐसा अन्वय किया है, उस पक्षमें श्रीहर्षकी माताका नाम "मामल्लदेवी" न होकर "अल्लदेवी" ऐसा प्रतीत होता है। जितेन्द्रियचयम्=इन्द्रियाणां चयः (ष० त०), जित इन्द्रियजयो येन, तम् (बहु०)। सुषुवे="षूङ् प्राणिप्रसवे" इस धातुसे लिट्+त (एश्)। तच्चिन्तामणिमन्त्रचिन्तनफले="चिन्तामणि" पदके दो अर्थ हैं, एक मन्त्रविशेष और दूसरा मणिविशेष। दोनों ही चिन्तित पदार्थोंको देने वाले हैं। प्रकृतमें चिन्तामणिपदका अर्थ मन्त्रविशेष है जिसकी चर्चा इसी महाकाव्यमें--अवामावामार्द्धे० १४-८८ इत्यादि श्लोकमें की जायगी। चिन्तापूरको मणिः चिन्तामणिः (मध्यमपद०)। मन्त्रके अर्थमें "चिन्तामणि" पद लाक्षणिक है। चिन्तामणिश्चाऽसौ मन्त्रः (क० धा०)। तस्य चिन्तनं (ष० त०), तस्य फलं तस्मिन् (ष० त०)। शृङ्गारभङ्ग्या=शृङ्गारस्य भङ्गिः, तया (ष० त०)। नैषधीयचरिते=निषधानाम् अयं नैषधः, निषध+अण्। नैषधस्य इदं नैषधीयम् नैषध+छ (ईयः)। नैषधीयं च तत् चरितम्, तस्मिन् (क० धा०), महाकाव्ये=कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्, कवि+ष्यञ्। महच्च तत् काव्यं, तस्मिन् (क० धा०)। "सर्गवन्धो महाकाव्यम्" इत्यादि लक्षणोंसे युक्त वृहत् काव्यको "महाकाव्य" कहते हैं। इसमें आठसे अधिक सर्ग होना चाहिए इत्यादि नियम हैं। गतः=गम्+क्तः। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है और शार्दूलविक्रीडित छन्द है। उसका लक्षण है--"सूर्याऽश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्" ॥ १४५ ॥

इति श्रीनैषधीयमहाकाव्यव्याख्यायां चन्द्रकलाऽभिख्यायां प्रथमः सर्गः समाप्तः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काव्य और महाकाव्य के लक्षण

अब छात्रोंकी व्युत्पत्तिके लिए काव्यका लक्षण और उसके कुछ भेदकी चर्चा की जाती है। कौतीति कविः, "कु शब्दे" धातुसे "अच इः" इससे 'इ' प्रत्यय होकर "कवि" शब्दकी निष्पत्ति होती है। शब्द करनेवालेको "कवि" कहते हैं। 'कवि' शब्दके तीन अर्थ हैं ईश्वर, विद्वान् और काव्यकी रचना करने वाला। कवेर्भावः कर्म वा काव्यम्। कविके भाव वा कर्मको "काव्य" कहते हैं। 'कवि' शब्दसे "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्म च" इस सूत्रसे ष्यञ् प्रत्यय होकर "काव्य" पद निष्पन्न होता है।

मम्मटभट्टके काव्यप्रकाशके अनुसार काव्यका लक्षण है—

"तददोषौ शब्दाऽर्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वाऽपि।"

अर्थात् दोषरहित, गुण सहित, अलङ्कारसे अलङ्कृत शब्द और अर्थको "काव्य" कहते हैं, कहींपर अलङ्कारके न होनेपर भी "काव्य" पदका व्यवहार हो हो सकता है। सामान्यतः काव्यके दो भेद हैं दृश्य और श्रव्य। अभिनयसे दिखाए जानेवालेको "दृश्य" कहते है। इसे रूपक भी कहते हैं। इसके नाटक आदि अनेक भेद होते हैं। सुने जानेवाले काव्यको श्रव्य कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं गद्य और पद्य। कथा और आख्यायिका गद्यके भेद हैं। काव्यके दो भेद होते हैं महाकाव्य और खण्डकाव्य। साहित्यदर्पणके अनुसार महाकाव्यका लक्षण इस प्रकार किया गया है—

"सर्गबन्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः।
सद्वंशः क्षत्रियो वाऽपि धीरोदात्तगुणाऽन्वितः॥" ६–४० इत्यादि

अर्थात् सर्गबन्धसे युक्त देवता अथवा उत्तमकुलप्रसूत क्षत्रिय धीरोदात्तगुणसे सम्पन्न नायकसे अलङ्कृत और आठ सर्गोंसे अधिक सर्गयुक्त पञ्च सन्धिसे समन्वित ऋतुवर्णन आदि वर्णनसे सम्पन्न काव्यको महाकाव्य कहते हैं। प्रस्तुत नैषधीय-चरित 'महाकाव्य' है, इसमें २२ सर्ग हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

नैषधीयचरितके प्रथमसर्गमें अकारादिक्रमसे पद्यानुक्रमणिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

नैषधीयचरितं महाकाव्यम्

चन्द्रकलाऽऽख्यया व्याख्यया हिन्द्यनुवादेन च विभूषितम्

द्वितीयः सर्गः

भक्ताऽभिलाषपरिपूरणसक्षणा या, रक्षापरार्ऽतिहरणाय धृतव्रता या।
विश्वेश्वरस्य रमणी करुणापरा सा दाक्षायणी मम कृतिं सफलां विधत्ताम् ॥

अधिगत्य जगत्यधीश्वरादथ मुक्तिं पुरुषोत्तमात्ततः ।
वचसामपि गोचरो न यः स तमानन्दमविन्दत द्विजः ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ स द्विजः जगत्यधीश्वरात् पुरुषोत्तमात् ततः मुक्तिम् अधिगत्य यो वचसाम् अपि गोचरो न, तम् आनन्दम् अविन्दत ॥ १ ॥

व्याख्या—हंसमुखेन भैमीवर्णनाऽर्थं द्वितीयं सर्गमारभते—अथ = मोचनाऽनन्तरं, सः = पूर्वोक्तः, द्विजः = पक्षी विप्रश्च, जगत्यधीश्वरात् = भूपतेः, भुवनपतेश्च । पुरुषोत्तमात् = पुरुषश्रेष्ठात्, विष्णोश्च । ततः = नलात् प्रसिद्धाच्च । मुक्तिं = मोचनं निर्वाणं च, अधिगत्य = प्राप्य, यः = आनन्दः, वचसाम् अपि = वाक्यानाम् अपि, गोचरः = ग्राह्यः, न, वक्तुमशक्य इति भावः । तं = तादृशम्, आनन्दं = सुखं, परमानन्दं च मोक्षजन्यमिति भावः । अविन्दत = अलभत । यथा विप्रो भुवनपतेर्विष्णोर्मोक्षं प्राप्य अनिर्वचनीयमानन्दं प्राप्नोति तथैव स हंसोऽपि भूपतेः मोचनं प्राप्य वाचामविषयं सुखं प्राप्तवानिति भावः ।

अनुवादः—तब वह हंस जैसे ब्राह्मण लोकपति भगवान् विष्णुसे मोक्ष पाकर अनिर्वचनीय आनन्द पाता है उसी तरह भूपति, पुरुषश्रेष्ठ नलसे छुटकारा पाकर अवर्णनीय आनन्दको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—द्विजः = द्विर्जायते इति, द्वि + जन् + डः। "दन्तविप्राण्डजा द्विजाः" इत्यमरः। जगत्यधीश्वरात् = जगत्या अधीश्वरः, तस्मात् (ष० त०) "अथ जगती लोको विष्टपं भुवनं जगत्।" इत्यमरः। पुरुषोत्तमात् = पुरुषेषु उत्तमः तस्मात्, (स० त०), यद्यपि निर्द्धारणमें "यतश्च निर्द्धारणाम्" इस सूत्रसे षष्ठी और सप्तमी दोनों विभक्तियाँ होतीं हैं तथाऽपि "न निर्द्धारणे" इस सूत्रसे निर्द्धारणमें षष्ठीका समास नहीं होता है। मुक्ति = मुच् + क्तिन्। आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिको मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण वा अपवर्ग कहते हैं। वेदान्तके अनुसार स्व (ब्रह्म) स्वरूपके ज्ञानसे मुक्तिकी प्राप्ति होती है, "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नाऽन्यः पन्था विद्यतेऽयनाय" "यतो वाचो निवर्तन्ते" (तैत्ति० २।४) आनन्दं ब्रह्मणो रूपम्" इत्यादि प्रमाण हैं। अधिगत्य=अधि + गम् + क्त्वा (ल्यप्)। अविन्दत="विद्लृ लाभे" धातुसे क्रियाफल कर्तृगामि होनेसे आत्मनेपदमें लङ्, "शे मुचादीनाम्" इससे नुम् आगम। इस पद्यमें द्वितीय अर्थके प्रस्तुत न होनेसे श्लेष नहीं है "द्विजो ब्राह्मण इव" द्विज ब्राह्मणके समान कहनेसे उपमा व्यङ्ग्य है इस प्रकार शब्दार्थशक्तिमूल अलङ्कार ध्वनि है। इस सर्गमें सौ श्लोकों तक वियोगिनी-नामक अर्द्धसमवृत्त है उसका लक्षण है—

"विषमे ससजा गुरुः समे, सभरा लोऽथ गुरुर्वियोगिनी ॥ १ ॥

अधुनीत खगः स नैकधा तनुमुत्फुल्लतनूरुहीकृताम्।
करयन्त्रणदन्तुराऽन्तरे व्यलिखच्चञ्चुपुटेन पक्षती ॥ २ ॥

अन्वयः—स खगः उत्फुल्लतनूरुहीकृतां तनुं नैकधा अधुनीत, करयन्त्रण-दन्तुराऽन्तरे पक्षती चञ्चुपुटेन व्यलिखत् ॥ २ ॥

व्याख्या—सः=पूर्वोक्तः, खगः=पक्षी, हंस इत्यर्थः। उत्फुल्लतनूरुहीकृतां= संफुल्लपतत्रीकृतां, नलकरपीडनादिति भावः। तनुं=शरीरं, नैकधा = अनेकधा, अनेकप्रकारेणेत्यर्थः, अधुनीत = कम्पितवान्, करयन्त्रणदन्तुराऽन्तरे = नलहस्त-पीडननिम्नोन्नतमध्यप्रदेशे, पक्षती=पक्षमूले, चञ्चुपुटेन=त्रोटिपुटेन, व्यलिखत् = विलेखनेन ऋजूचकारेत्यर्थः ॥ २ ॥

अनुवादः—उस पक्षी (हंस) ने राजाके हाथसे पकड़े जानेसे रोमाञ्चसे युक्त शरीरको अनेक प्रकारसे कम्पित किया और हाथसे पकड़नेसे ऊँच नीच मध्य प्रदेशवाले पक्षमूलोंको चोंचकी नोकसे सम बनाया ॥ २ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—उत्फुल्लतनूरुहीकृताम्=उत्फुल्लन्तीति उत्फुल्लानि, उद्–उपसर्ग-पूर्वक "फुल्ल विकसने" धातुसे "उत्फुल्लसंफुल्लयोरुपसंख्यानम्" इस वार्तिकसे अच्प्रत्ययान्त निपातन। "प्रफुल्लोत्फुल्लसंफुल्लव्याकोशविकचस्फुटाः।" इत्यमरः। तन्वां रोहन्तीति तनूरुहाणि, तनू+रुह्+कः (उपपद०)। उत्फुल्लानि तनूरुहाणि यस्यां सा (बहु०)। अनुत्फुल्लतनूरुहा उत्फुल्लतनूरुहा यथा संपद्यते तथाकृता, ताम्, उत्फुल्लतनूरुहा+च्वि+कृ+क्त (टाप्)+अम्। नैकधा=न एकधा नैकधा, "सुप्सुपा" समास। यहाँ नञ्समास नहीं हुआ, नञ् समास होता तो "न लोपो नञः" इससे 'न' का लोप होकर "अनेकधा" ऐसा रूप बनता। अधुनीत='धूञ् कम्पने" इस क्र्यादिगणस्थ धातु-से लङ्+त, "प्वादीनां ह्रस्वः" इससे ह्रस्व। करयन्त्रणदन्तुराऽन्तरे=करेण यन्त्रणम् (तृ० त०)। दन्तुरम् अन्तरं ययोस्ते (बहु०)। "दन्तुरं तून्नतानतम्" इत्यमरः। करयन्त्रणेन दन्तुराऽन्तरे (तृ० त०), ते। पक्षती = पक्षयोर्मूले, ते पक्ष शब्दसे "पक्षात्तिः" इस सूत्रसे ति प्रत्यय। "स्त्री पक्षतिः पक्षमूलम्" इत्यमरः। चञ्चुपुटेन=चञ्च्वोः पुटं, तेन (ष० त०)। व्यलिखत् = वि+लिख+लङ्+तिप्। इस पद्यमें स्वभावोक्ति अलङ्कार है॥ २॥

अयमेकतमेन पक्षतेरधिमध्योर्ध्वगजङ्घमङ्घ्रिणा।
स्खलनक्षण एव शिश्रिये द्रुतकण्डूयितमौलिरालयम्॥ ३॥

अन्वयः—अयं स्खलनक्षण एव एकतमेन अङ्घ्रिणा पक्षतेः अधिमध्योर्ध्वगजङ्घं द्रुतकण्डूयितमौलिः (सन्) आलयं शिश्रिये॥ ३॥

व्याख्या—अयं = हंसः, स्खलनक्षण एव = मोचनसमय एव, एकतमेन= एकेन, अङ्घ्रिणा=चरणेन, पक्षतेः=पक्षमूलस्य, अधिमध्योर्ध्वगजङ्घम्=मध्योर्ध्व-गामिप्रसृतं (यथा तथा), द्रुतकण्डूयितमौलिः=शीघ्रघर्षितमस्तकः सन्, आलयं= निजावासं, नीडमित्यर्थः शिश्रिये=श्रितवान्॥ ३॥

अनुवादः—वह (हंस) छूटते ही एक पैरसे पक्षमूलके मध्यमें जाँघको ऊपर कर शीघ्र माथेको खुजलाता हुआ अपने घोंसलेमें पहुँचा॥ ३॥

टिप्पणी—स्खलनक्षणे=स्खलनस्य क्षणः, तस्मिन् (ष० त०)। अधि-मध्योर्ध्वगजङ्घम्=मध्ये इति अधिमध्यम्, विभक्तिके अर्थमें अव्ययीभाव। ऊर्ध्वं गच्छतीति ऊर्ध्वगा, ऊर्ध्व+गम्+ड+टाप्। सा जङ्घा यस्मिन् कर्मणि) तद्यथा तथा (बहु०)। अधिमध्यम ऊर्ध्वगजङ्घम् (सुप्सुपा०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

द्रुतकण्डूयितमौलिः = कण्डूयितो मौलिर्येन सः (बहु०)। द्रुतं (यथातथा) कण्डूयितमौलिः (सुप्सुपा०)। शिश्रिये = "श्रिञ् सेवायाम्" धातु से लिट्, "लिटस्तझयोरेशिरेच्" इस सूत्रसे 'त' के स्थान में एश्। स्वभावोक्ति अलङ्कार ॥ ३ ॥

स गरुद्वनदुर्गदुर्ग्रहान् कटु कीटान् दशतः सतः क्वचित्।
नुनुदे तनुकण्डु पण्डितः पटुचञ्चूपुटकोटिकुट्टनैः ॥ ४ ॥

अन्वयः—पण्डितः स गरुद्वनदुर्गदुर्ग्रहान् कटु दशतः क्वचित् सतः कीटान् पटुचञ्चूपुटकोटिकुट्टनैः तनुकण्डु नुनुदे ॥ ४ ॥

व्याख्या—पण्डितः=निपुणः, कीटाद्यपनयनप्रवीण इति भावः। सः = हंसः, गरुद्वनदुर्गदुर्ग्रहान् = पक्षसमूहदुर्गमस्थानदुर्ग्राह्यान्, कटु = तीक्ष्णं, दशतः = तुदतः, दन्तैरिति शेषः। क्वचित्=कुत्रचित्, सतः=वर्तमानान्, कीटान् = क्षुद्र-जन्तून्, पटुचञ्चूपुटकोटिकुट्टनैः=समर्थत्रोट्यग्रघट्टनैः, तनुकण्डु=अल्पखर्जुं यथा तथा, नुनुदे = निवारितवान् ॥ ४ ॥

अनुवादः—कीड़ोंको हटानेमें निपुण उस हंसने पक्षसमूह रूप किलेमें नहीं पकड़े जानेवाले तीक्ष्ण रूपसे काटनेवाले ऐसे कहींपर रहे हुए कीड़ों-को मजबूत चोंचकी नोकके आघातोंसे खुजलीको कम कर हटाया ॥ ४ ॥

टिप्पणी—पण्डितः=सत् और असत्का विवेक करनेवाली बुद्धिको "पण्डा" कहते हैं। पण्डा संजाता अस्य पण्डितः 'पण्डा' शब्दसे "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इससे इतच् प्रत्यय। गरुद्वनदुर्गदुर्ग्रहान् = गरुतां वनम् (ष० त०) तदेव दुर्गम् (रूपक०)। दुःखेन ग्रहीतुं शक्या दुर्ग्रहाः, दुर्+ग्रह+खल् (उपपद०)। गरुद्वनदुर्गे दुर्ग्रहाः, तान् (स० त०)। कटु = यह क्रियाविशेषण है। दशतः = दशन्तीति दशन्तः, तान् (दश+लट्+शतृ)+शस्। सतः = सन्तीति सन्तः, तान् (अस्+लट्+शतृ +शस्। पटचञ्चूपुटकोटिकुट्टनैः = चञ्च्वोः = पुटम् (ष० त०)। पटु च तत् चञ्चू-पुटम् (क० धा०), तस्य कोटिः (अग्रभागः), (ष० त०), तया कुट्टनानि, तैः (तृ० त०)। तनुकण्डु = तनुः कण्डूः यस्मिन् (कर्मणि) (बहु०), तद्यथा तथा। "कण्डूः खर्जूश्च कण्डूया" इत्यमरः। नुनुदे = "णुद प्रेरणे" इति धातोर्लिट्। रूपक और स्वभावोक्तिकी संसृष्टि है ॥ ४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथमेत्य तडागनीडजैर्लघु पर्यव्रियताऽथ शङ्कितैः ।
उददीयत वैकृतात्करग्रहजादस्य विकस्वरस्वरैः ॥ ५ ॥

अन्वयः—अयं तडागनीडजैः लघु एत्य पर्यव्रियत । अथ अस्य करग्रहजात् वैकृतात् शङ्कितैः विकस्वरस्वरैः उददीयत ॥ ५ ॥

व्याख्या—अयं = हंसः, तडागनीडजैः = पद्माकरकुलायोत्पन्नैः पक्षिभिः, लघु = शीघ्रम्, एत्य = आगत्य, पर्यव्रियत = परिवृतः । अथ = परिवेष्टनाऽनन्तरम्, अस्य = हंसस्य, करग्रहजात् = हस्तपीडनजनितात्, वैकृतात् = विकारात्, दन्तुरपक्षत्वरूपादिति भावः । शङ्कितैः = भीतैः, विकस्वरस्वरैः = उच्चैर्घोषैः पक्षिभिः, उददीयत = उड्डीनम् ॥ ५ ॥

अनुवादः—उस हंसको तालावके निकट स्थित घोंसलोंमें उत्पन्न पक्षियों-ने शीघ्र आकर घेर लिया । तब उस हंसके हाथसे ग्रहण करनेसे उत्पन्न दन्तुरत्व रूप विकारसे शङ्कित होकर ऊँची आवाज करते हुए सब पक्षी उड़ गये ॥ ५ ॥

टिप्पणी—तडागनीडजैः = तडागे नीडाः (स० त०), समीप अर्थमें सप्तमी । तडागनीडे जातास्तडागनीडजाः, तैः, तडागनीड + जन् + ड + भिस् (उपपद०) । लघु="लघु क्षिप्रमरं द्रुतम् ।" इत्यमरः । एत्य=आङ् + इण् + क्त्वा (ल्यप्) । पर्यव्रियत = परि + वृञ् + लङ् (कर्ममें) + त । करग्रहजात् = ग्रहणं ग्रहः । "ग्रह उपादाने" "धातुसे "ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च" इस सूत्रसे अप् प्रत्यय, करेण ग्रहः (तृ० त०), तस्माज्जातः करग्रहजः, तस्मात्, करग्रह + जन् + ड (उपपद०) + ङसिः । वैकृतात् = विकृतम् एव वैकृतं, तस्मात्, विकृत + अण् (स्वार्थ में) । विकस्वरस्वरैः = विकसन्तीति विकस्वराः, वि + उपसर्गपूर्वक कस धातुसे "स्थेशभासपिसकसो वरच्" इस सूत्रसे वरच् प्रत्यय । "विकासी तु विकस्वरः" इत्यमरः । विकस्वरः स्वरो येषां ते, तैः (बहु०) । उददीयत = उद् + डीङ् + लङ् + त (भावमें) । इस पद्यमें स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ ५ ॥

दधतो बहु शैवलक्ष्मतां धृतद्राक्षमधुव्रतं खगः ।
स नलस्य ययौ करं पुनः सरसः कोकनदभ्रमादिव ॥ ६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—स खगः वहुशैवलक्ष्मतां दधतः सरसः वहुशैवलक्ष्मतां दधतो नलस्य धृतरुद्राक्षमधुव्रतं करं कोकनदभ्रमात् इव पुनः ययौ ॥ ६ ॥

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः, खगः = पक्षी, हंस इत्यर्थः। बहुशैवलक्ष्मतां = भूरिशैवलभूमितां, दधतः = धारयतः, सरसः = पल्वलात्। वहुशैवलक्ष्मतां = अधिकशिवभक्तचिह्नतां, दधतः = धारयतः, नलस्य = नैषधस्य, धृतरुद्राक्षमधुव्रतं = भ्रमरसदृशरुद्राक्षधारकं, करं = हस्तं, कोकनदभ्रमात् इव = रक्तकमलभ्रान्तेः इव, पुनः=भूयः, ययौ = जगाम, रक्तवर्णे नलहस्ते रक्तकमलभ्रान्तेरिव हंसः पुनर्जगामेति भावः ॥ ६ ॥

अनुवादः—वह हंस वहुत शैवलों (सेंवारों) वाली भूमिको धारण करनेवाले तालावसे वहुतसे शिवभक्तके चिह्नोंको धारण करने वाले नलके भौंरोंके समान रुद्राक्षोंको धारणको करने वाले हाथको मानों रक्त कमलकी भ्रान्तिसे फिर प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥

टिप्पणी—वहुशैवलक्ष्मतां = वहूनि शैवलानि यस्यां सा वहुशैवला (वहु०)। "जलनीली तु शैवालं शैवलः" इत्यमरः। वहुशैवला क्ष्मा (भूमिः) यस्मिस्तत् वहुशैवलक्ष्मम् (वहु ०) तस्य भावः तत्ता ताम्, वहुशैवलक्ष्म+तल्+टाप्+अम्। दधतः = दधातीति दधत् तस्य, धा+लट् (शतृ)+ङस्। सरसः = "कासारः सरसीः सर" इत्यमरः। नलके पक्षमें—वहुशैवलक्ष्मतां = शिवे भक्तिर्यस्य सः शैवः, "शिव" शब्दसे "भक्तिः" इस सूत्रसे अण्, "तद्धितेष्वचामादेः" इससे आदि अच्की वृद्धि। शैवस्य लक्ष्माणि (ष० त०) "चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्" इत्यमरः। वहूनि शैवलक्ष्माणि यस्य स वहुशैवलक्ष्मा, (वहु०) तस्य भावः तत्ता ताम्, वहुशैवलक्ष्मन्+तल्+टाप्+अम्। भस्म, रुद्राक्ष आदि शैव (शिवजीके उपासकके) चिह्न हैं। प्रकृतमें शैव नलका चिह्न रुद्राक्ष अभिमत है। धृतरुद्राक्षमधुव्रतं = रुद्राक्षा मधुव्रता इव रुद्राक्षमधुव्रताः, "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे" इससे उपमित० समास। धृता रुद्राक्षमधुव्रता येन, तम् (वहु०)। कोकनदभ्रमात्= कोकनदस्य भ्रमः, तस्मात् (ष० त०)। "रक्तोत्पलं कोकनदम्" इत्यमरः। ययौ=या+लिट्+तिप् (णल्)। इस पद्यमें शब्दश्लेष, उपमा और उत्प्रेक्षा इन अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर है ॥ ६ ॥

पतगश्चिरकाललालनादतिविस्रम्भमवापितो नु सः।
अतुलं विदधे कुतूहलं भुजमेतस्य भजन्महीभुजः॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—स पतगः चिरकाललालनात् अतिविस्रम्भम् अवापितो नु, (किञ्च) एतस्य महीभुजः भुजं भजन् अतुलं कुतूहलं विदधे ॥ ७ ॥

व्याख्या—अथाऽस्य स्वयमागमनादुत्प्रेक्षते पतग इति । सः = पूर्वोक्तः, पतगः = हंसः, चिरकाललालनात् = वहुसमयोपलालनात्, अतिविस्रम्भम् = अतिविश्वासम्, अवापितो नु = प्रापितः किम्, नोचेत्कथं पुनः स्वयमागच्छेदिति भावः । एतस्य=अस्य, महीभुजः = राज्ञः, नलस्येत्यर्थः । भुजं = करं, भजन् = सेवमानः, स्वयमाप्नुवन्निति भावः । अतुलम् = अनुपमं, कुतूहलं = कौतुकं, विदधे = चकार ॥ ७ ॥

अनुवादः—वह पक्षी (हंस) वहुत समय तक हाथमें लेनेसे मानो अत्यन्त विश्वस्त कराया गया । राजाके हाथमें स्वयम् प्राप्त होनेसे उसने अनुपम कौतुकको उत्पन्न किया ॥ ७ ॥

टिप्पणी—पतगः=पतैः (पक्षैः) गच्छतीति, पत-उपपदपूर्वक गम् धातुसे "पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण" इस सूत्रसे घ प्रत्यय । "पतत्त्रिपत्त्रिपतगपतत्पत्त्ररथाऽण्डजाः ।" इत्यमरः । चिरकाललालनात् = चिरकालं लालनं, तस्मात् (सुप्सुपा०) । अतिविस्रम्भम्=अत्यन्तं विस्रम्भः, तम्, "कुगतिप्रादयः" इति समासः । "समौ विस्रम्भविश्वासौ" इत्यमरः । अवापितः=अव+आप्+णिच्+क्तः । महीभुजः=महीं भुनक्तीति महीभुक्, तस्य, मही+भुज्+क्विप् (उपपद०)+ङस् । भजन्=भजतीति, भज+लट् (शतृ)+सुः । अतुलम्= अविद्यमाना तुला (उपमा) यस्य, तत् (नञ् बहु०) । विदधे=वि+धा+लिट्+त (एश्) । इस पद्यमें उत्प्रेक्षा और कुतूहलविधानके प्रति भुज-भजनकी हेतुता होनेसे पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग है इस प्रकार दोनोंकी संसृष्टि है ॥७॥

नृपमानसमिष्टमानसः स निमज्जन्कुतुकाऽमृतोर्मिषु ।
अवलम्बितकर्णशष्कुलीकलसीकं रचयन्नवोचत ॥ ८ ॥

अन्वयः—इष्टमानसः स कुतुकाऽमृतोर्मिषु निमज्जत् नृपमानसम् अवलम्बितकर्णशष्कुलीकलसीकं रचयन् अवोचत ॥ ८ ॥

व्याख्या—इष्टमानसः=प्रियमानसः, सः=हंसः, कुतुकाऽमृतोर्मिषु = कौतुकसुधातरङ्गेषु, निमज्जत्=ब्रुडत्, नृपमानसं=नलमनः, अवलम्बितकर्णशष्कुलीकलसीकम् = आलम्बितश्रोत्रशष्कुलीघटद्वयं, रचयन्=कुर्वन्, अवोचत = उक्तवान्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जले निमज्जन्तं पुरुषं यथा कश्चित्तारणाय कलसप्रदानेन तमुद्धरति तथैव कौतुकतरङ्गेषु ब्रुडत् राजमानसमपि हंसः तत्कौतुकप्रशमनाय वक्ष्यमाणवाक्यं जगादेति भावः ॥ ८ ॥

अनुवादः—मानस सरोवरको पसन्द करने वाला वह हंस कौतुकरूप अमृतकी तरङ्गोंमें डूबते हुए राजाके मनमें कर्णशष्कुलीरूप कलसोंका अवलम्बन कराता हुआ बोला ॥ ८ ॥

टिप्पणी—इष्टमानसः = इष्टं मानसं यस्य सः (बहु०)। कैलास पर्वतमें ब्रह्माजीके मनसे उत्पन्न सरोवरको मानस सरोवर कहते हैं। जैसा कि वाल्मीकिरामायणमें है—

"कैलासपर्वते राम! मनसा निर्मितं परम्।
ब्रह्मणा नरशार्दूल! तेनेदं मानसं सरः॥"
आ० का० २४ सर्गः

"मानसं सरसि स्वान्ते" इति विश्वः। कुतुकाऽमृतोर्मिषु = कुतुकम् एव अमृतम् (रूपक०)। "कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम्।" इत्यमरः। कुतुकाऽमृतस्य ऊर्मयः, तेषु (ष० त०)। निमज्जत् = निमज्जतीति, नि + मस्ज + लट् (शतृ) + अम्। नृपमानसं = मन एव मानसम्, "प्रज्ञादिभ्यश्च" इससे स्वार्थमें, मनस् + अण्। नृपस्य मानसं, तत् (ष० त०)। अवलम्बितकर्णशष्कुलीकलसीकम्=कर्णौ शष्कुल्यौ इव (उपमित०)। अवलम्बिते कर्णशष्कुल्यौ एव कलस्यौ येन, तत् (बहु०)। "नद्यृतश्च" इस सूत्रसे समासाऽन्त कप् प्रत्यय। एक प्रकार की मिठाई (जलेवी) को शष्कुली कहते हैं। जलमें डूबते-हुए व्यक्तिको जैसे घड़ेका सहारा होता है वैसे ही कौतुकरूप अमृतमें डूबते-हुए नलको कर्णरूप शष्कुलीका सहारा देता हुआ हंस कहने लगा यह तात्पर्य है। रचयन्=रचयतीति, रच + णिच् + लट् (शतृ)। अवोचत = वच + लुङ् + त। इस पद्यमें उपमा और रूपककी संसृष्टि है। यमकनामक शब्दालङ्कार भी है ॥ ८ ॥

मृगया न विगीयते नृपैरपि धर्माऽऽगममर्मपारगैः।
स्मरसुन्दर! मां यदत्यजस्तव धर्मः स दयोदयोज्ज्वलः ॥ ९ ॥

अन्वयः—धर्माऽऽगममर्मपारगैः अपि नृपैः मृगया न विगीयते, (तथाऽपि) हे स्मरसुन्दर! मां यत् अत्यजः, स तव दयोदयोज्ज्वलः धर्मः ॥ ९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—धर्माऽऽगममर्मपारगैः अपि=धर्मशास्त्रतत्त्वपारगामिभिः अपि, नृपैः=राजभिः, मृगया=आखेटः, न विगीयते=न गर्ह्यते, तथाऽपि, हे स्मर-सुन्दर = हे काममनोरम !, मां = पक्षिणं, मृगयालक्ष्यभूतमिति भावः। यत् अत्यजः = त्यक्तवान्, सः= त्यागः, तव = भवतः, दयोदयोज्ज्वलः = करुणाऽवतारनिर्मलः, धर्मः=सुकृतम्, त्वं न केवलमाकारत उज्ज्वलः प्रत्युत दयारूप-धर्मेणाऽपीति भावः ॥ ९ ॥

अनुवादः—धर्मशास्त्रोंके तत्त्वोंके पारदर्शी राजाओंसे भी मृगया-(शिकार) की निन्दा नहीं की जाती है तो भी हे कामदेवके समान सुन्दर ! जो आपने मुझे छोड़ दिया है वह आपका दयाके उदयसे उज्ज्वल धर्म है।

टिप्पणी—धर्मस्य आगमाः (ष० त०), तेषां मर्माणि (ष० त०), पारं गच्छन्तीति पार–उपपदपूर्वक गम् धातुसे "अन्ताऽत्यन्ताऽध्वदूरपारसर्वाऽनन्तेषु डः" इस सूत्रसे ड प्रत्यय। धर्माऽऽगममर्मणां पारगाः, तैः (ष० त०)। विगीयते = वि + गै + लट् (कर्म में) + त। स्मरसुन्दर = स्मर इव सुन्दरः, तत्सम्बुद्धौ। "उपमानानि सामान्यवचनैः" इस सूत्रसे उपमानपूर्वपदक० धा०। अत्यजः = त्यज + लङ् + सिप्। यहाँ अद्यतन क्रिया विवक्षित होनेपर अनद्यतन अर्थमें लङ्का प्रयोग अनुचित है, अतः च्युतसंस्कृति दोष हो गया है। दयोदयोज्ज्वलः = दयाया उदयः (ष० त०), तेन उज्ज्वलः (तृ० त०)। इस पद्यमें त्यागके प्रति धर्मकी कारणता होनेसे पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥ ९ ॥

अबलस्वकुलाऽशिनो झषान्निजनीडद्रुमपीडिनः खगान्।
अनवद्यतृणार्दिनो मृगान्मृगयाऽघाय न भूभृतां घ्नताम् ॥ १० ॥

अन्वयः—अबलस्वकुलाऽशिनो झषान् (घ्नताम्), निजनीडद्रुमपीडिनः खगान् (घ्नताम्), अनवद्यतृणार्दिनो मृगान् घ्नतां भूभृतां मृगया अघाय न।

व्याख्या—राज्ञां कृते मृगयाया विगानाऽभावं प्रतिपादयति अबलेति। अबलस्वकुलाऽशिनः = निर्बलनिजवंशभक्षकान्, झषान् = मत्स्यान्, घ्नताम्, एवं परत्राऽपि। निजनीडद्रुमपीडिनः = स्वकुलायवृक्षपीडकान्, विष्ठात्यागफल-भक्षणादिनेति भावः। खगान्=पक्षिणः, तथा अनवद्यतृणाऽर्दिनः = निरपराधाऽर्जुनहिंसकान्, मृगान् = पशून्, घ्नतां = हिंसतां, भूभृतां = राज्ञां, मृगया = आखेटः, अघाय = पापाय, न = न भवति। तेषां झषखगपशूनां वधस्य दण्डरूपत्वाद्दण्डनाऽभाव एव दोष इति भावः ॥ १० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—निर्बल अपने वंशको मारनेवाली मछलियोंको, अपने घोंसलेके पेड़ोंको पीडित करने वाले पक्षियोंको तथा निरपराध तृणोंकी हिंसा करने वाले मृगोंको मारने वाले राजाओंको मृगया (शिकार) पापके लिए नहीं होती हैं ॥ १० ॥

टिप्पणी—अवलस्वकुलाऽशिनः = अविद्यमानं वलं यस्य तत् अवलं, (नञ्वहु०), स्वस्य कुलम् (ष० त०)। अवलं च तत् स्वकुलम् (क० धा०) अवलस्वकुलम् अश्नन्तीति तच्छीलाः, तान्, अवलस्वकुल+अश+णिनि (उपपद)+शस्। झषान्="पृथुरोमा झषो मत्स्यो मीनो वैसारिणोऽण्डजः ।" इत्यमरः। प्रवल मत्स्य निर्बल मत्स्योंको खा जाते हैं, इसीसे "मात्स्यन्याय" की प्रसिद्धि है। निजनीडद्रुमपीडिनः = नीडाना द्रुमाः (ष० त०), निजाश्च ते नीडद्रुमाः (क० धा०), तान् पीडयन्तीति तच्छीलाः, तान्, निजनीडद्रुम+पीड+णिनिः+(उपपद०) शस। पक्षी अपने घोंसलेवाले पेड़ोंको विष्ठात्याग और फलादिभक्षणसे पीडित करते हैं। अनवद्यतृणार्दिनः = न उद्यन्त इति अवद्यानि, नञ्-उपपद-पूर्वक वदधातुसे "अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्याऽनिरोधेषु" इस सूत्रसे गर्ह्य अर्थमें यत्प्रत्ययान्त निपातन। न अवद्यानि अनवद्यानि (नञ्०)। अनवद्यानि च तानि तृणानि (क धा०), तानि अर्दन्तीति तच्छीला तान् अनवद्यतृण+अर्द+णिनिः (उपपद०), शस्। निरपराध तृणोंको मृग खा डालते हैं। तृणोंमें भी प्राण है। "अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः। १–४९" मनुने ऐसा कहा है। घ्नतां = घ्नन्तीति घ्नन्तः, तेषाम् हन्+लट् (शतृ)+आम्। भूभृतां = भुवं विभ्रतीति भूभृतः, तेषाम्, भू+भृ+क्विप् (उपपद०)+आम्। अघाय=तादर्थ्यमें चतुर्थी। अपराधी मत्स्योंको पक्षियोंको और मृगोंको मारनेवाले राजाके लिए मृगया दण्डरूप होनेसे पाप उत्पन्न करने वाली नहीं होती है यह तात्पर्य है। इस पद्य में अप्रस्तुत सामान्य भूभृत्के कथनसे प्रस्तुत विशेष भूभृत् नलको प्रतीति होनेसे अप्रस्तुतप्रशंसा और पापके अभावके प्रति पहलेके तीन पादोंके पदार्थोंकी हेतुतासे पदार्थहेतुक काव्यलिङ्गअलङ्कार है इस प्रकार दोनोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर है ॥ १० ॥

यदवादिषमप्रियं तव प्रियमाधाय नुनुत्सुरस्मि तत्।
कृतमातपसंज्वरं तरोरभिवृष्याऽमृतमंशुमानिव ॥ ११ ॥

अन्वयः—(हे राजन् !) तव यत् अप्रियम् अवादिषं, प्रियम् आधाय तत् तरोः कृतम् आतपसंज्वरम् अमृतम् अभिवृष्य अंशुमान् इव नुनुत्सुः अस्मि ॥ ११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—हंसः पुनः स्वागमनकारणं प्रतिपादयति—यदिति। (हे राजन्!) तव = भवतः, यत्, अप्रियम् = अप्रीतिजनकं वाक्यं, "धिगस्तु तृष्णातरलम्" इत्यादिरूपमिति भावः। अवादिषम् = अवोचम्, प्रियं = प्रीतिजनकं वाक्यम्, आधाय = निधाय, कथयित्वेति भावः। तत् = अप्रियं, तरोः=वृक्षस्य, कृतं = स्वयं विहितम्, आतपसंज्वरं = द्योतकृतं संतापम्, अमृतं = जलम्, अभिवृष्य = वर्षित्वा, अंशुमान् इव = सूर्य इव, नुनुत्सुः = निवारयितुम् इच्छुः, अस्मि = भवामि॥ ११॥

अनुवाद—(हे राजन्!) जैसे सूर्य अपनेसे की गई पेड़में धूपकी पीडाको जलकी वृष्टिसे हटाते हैं उसी तरह मैंने जो आपको अप्रिय कहा है, प्रिय वचन कहकर उसे हटाता हूँ॥ ११॥

टिप्पणी—अप्रियं = न प्रियं, तत् (नञ्०)। अवादिषं = वद + लुङ् + मिप्। आधाय = आङ् + धा + क्त्वा (ल्यप्)। आतपसंज्वरम् = आतपेन संज्वरः, तम् (तृ० त०) अमृतं="पयः कीलालममृतम्" इत्यमरः। अभिवृष्य= अभि + वृष + क्त्वा (ल्यप्)। अंशुमान् = प्रशस्ता अंशवः सन्ति यस्य सः अंशु + मतुप्। नुनुत्सुः = नोदितुम् इच्छुः, नुद् + सन् + उः। अस्मि=अस् + लट् + मिप्। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है॥ ११॥

> उपनम्रमयाचितं हितं परिहर्तुं न तवाऽपि साम्प्रतम्।
> करकल्पजनान्तराद्विधेः शुचितः प्रापि स हि प्रतिग्रहः॥ १२॥

अन्वयः—अयाचितम् उपनम्रं हितं तव अपि परिहर्तुं न साम्प्रतम्। हि स प्रतिग्रहः करकल्पजनान्तरात् शुचितः विधेः प्रापि॥ १२॥

व्याख्या—त्वदीयोपकृतिर्न मया ग्राह्येति चेत्तत्राह—उपनम्रमिति। अयाचितम्=अप्रार्थितम्, उपनम्रम्=उपनतं, हितं=हितसम्पादकं, मदीयं प्रियवचनमिति भावः, तव अपि = भवतः अपि, परिहर्तुं=परित्यक्तुं, न साम्प्रतं = नो युक्तम्, "अयाचिताऽऽहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः। (या० स्मृ० १–२१५) इति स्मरणादिति भावः। तदपि मादृश्यास्तिर्यग्जातेः कथं ग्राह्यमिति चेत्तत्राह—करकल्पेति। हि=यस्मात्कारणात्। सः=पूर्वोक्तः, मयाऽभिहित इति भावः। प्रतिग्रहः = दत्तपदार्थः, करकल्पजनान्तरात् = हस्तस्थानीयाऽन्यलोकात्, शुचितः = शुद्धात्, विधेः = भाग्यात्, प्रापि = प्राप्तः, न तु मत्त इति भावः।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहं तु निमित्तमात्रं, दातृस्थानीयं तु भाग्यमेवेति अतो न ग्रहणलाघवमिति तात्पर्यम् ॥ १२ ॥

अनुवादः—याचनाके विना ही प्राप्त मेरे हित वचनको आपको छोड़ना नहीं चाहिए, क्योंकि वह हितवचनरूप प्रतिग्रह हाथके सदृश मेरे ऐसे व्यक्तिरूप शुद्ध भाग्यसे प्राप्त हुआ है ॥ १२ ॥

टिप्पणी—अयाचितं = न याचितम् (नञ्०) । उपनम्रम् = उपनमनशीलम् , उप-उपसर्गपूर्वक "णम प्रह्वत्वे शब्दे" इसधातु से "नमिकम्पिस्म्यजसकर्महिंसदीपो रः" इस सूत्रसे र प्रत्यय । परिहर्तुं = परि + हृञ् + तुमुन् । साम्प्रतं="युक्ते द्वे साम्प्रतं स्थाने" इत्यमरः । दुष्कर्म करनेवालेसे भी विना याचनाके प्राप्त पदार्थको लेना चाहिए ऐसा महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है । अयाचित वृत्तिको भगवान् मनुने भी "अमृतं स्यादयाचितम्" ४–५, अमृत कहा है । "प्रत्याख्येयं न वारि च" ऐसा भी शास्त्रका वचन है, अर्थात् याचनाके विना मिले हुए जलका भी प्रत्याख्यान नहीं करना चाहिए । करकल्पजनान्तरात् = ईषत् असमाप्तः करः करकल्पं हस्तसदृशमित्यर्थः । 'कर' शब्दसे "ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः" इस सूत्रसे कल्पप् प्रत्यय । 'करकल्प' शब्दका करसदृश ऐसा अर्थ होता है । अन्यो जनो जनान्तरम् (मयूरव्यंसकादिसमास) । करकल्पं च तत् जनान्तरं तस्मात् (क० धा०) शुचितः = शुचेः इति शुचितः, "शुचि" शब्दसे "अपादाने चाऽहीयरुहोः" इस सूत्रसे तसि प्रत्यय । यह "विधेः" इस पदका विशेषण है । प्रापि=प्र-उपसर्गपूर्वक "आप्लृ व्याप्तौ" धातुसे कर्ममें लुङ् । इस पद्यमें हितपरिहारकी अयुक्तताके प्रति उत्तरार्धस्थित वाक्यकी हेतुतासे वाक्याऽर्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥ १२ ॥

पतगेन मया जगत्पतेरुपकृत्यै तव किं प्रभूयते ?
इति वेद्मि न तु त्यजन्ति मां तदपि प्रत्युपकर्तुमर्तयः ॥ १३ ॥

अन्वयः—पतगेन मया जगत्पतेः तव उपकृत्यै किं प्रभूयते ? इति वेद्मि, तदपि अर्तयस्तु मां प्रत्युपकर्तुं न त्यजन्ति ॥ १३ ॥

व्याख्या—हंसः स्वगर्वं परिहरति—पतगेनेति । पतगेन = पक्षिणा, मया= हंसेन, तुच्छजन्तुना इति भावः । जगत्पतेः = सार्वभौमस्य, तव = भवतः, उपकृत्यै = उपकाराय, किं प्रभूयते=किं क्षम्यते ? समर्थेन न भूयत इति भावः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इति = एवं, वेद्मि = जानामि, तदपि = तथाऽपि, अर्तयस्तु = प्रत्युपकाराऽर्थ-मुत्कण्ठारूपाः पीडास्तु, मां = पतगं, प्रत्युपकर्तुं=प्रत्युपकारं कर्तुं, न त्यजन्ति= न मुञ्चन्ति, प्रत्युपकाराय प्रेरयन्तीत्यर्थः। पतगोऽप्यहं दयालोस्ते महोपकारं करवाणीति भावः ॥ १३ ॥

अनुवादः—"अदना पक्षी मैं' जगत्पति आपके उपकारके लिए क्या समर्थ हूँगा" यह जानता हूँ। तो भी प्रत्युपकारके लिए उत्कण्ठारूप पीडाएँ तो मुझे आपके उपकारका बदला देनेके लिए नहीं छोड़ती हैं। १३ ॥

टिप्पणी—जगत्पतेः = जगतः पतिः, तस्य (ष० त०), उपकृत्यै = उप-करणम् उपकृतिः, तस्यै, उप-उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातुसे "स्त्रियां क्तिन्" इस सूत्रसे क्तिन्, तादर्थ्यमें चतुर्थी। प्रभूयते = प्र+भू+लट् (भावमें)+त। वेद्मि = विद्+लट्+मिप्। अर्तयः="अर्तिः पीडाधनुष्कोट्योः" इत्यमरः। प्रत्युपकर्तुं= प्रति+उप+कृ+तुमुन्। त्यजन्ति = त्यज+लट्। झिः। इस पद्यमें छेकाऽ-नुप्रास है ॥ १३ ॥

अचिरादुपकर्तुराचरेदथवात्मौपयिकीमुपक्रियाम् ।

पृथुरित्थमथाऽणुरस्तु सा न विशेषे विदुषामिह ग्रहः ॥ १४ ॥

अन्वयः—अथवा उपकर्तुः अचिरात् औपयिकीम् उपक्रियाम् आचरेत्, इत्थं सा पृथुः अथ अणुः अस्तु। विदुषाम् इह ग्रहो न ॥ १४ ॥

व्याख्या—स्वशक्त्यनुसारेण उपकारस्य प्रत्युपकारः शीघ्रम् कर्तव्य इति प्रतिपादयति अचिरादिति। अथवा = पक्षान्तरे, उपकर्तुः = उपकारकस्य, अचिरात्=अविलम्बात्, औपयिकीं=स्वोपायसाध्याम्, उपक्रियाम् = उपकारम्, आचरेत्=कुर्यात्, जीवनस्य अनित्यात्वाच्छीघ्रं प्रत्युपकारं विदधीतेति भावः। इत्थम् = एवं सति, सा = उपक्रिया, पृथुः = अधिका, अथ = अथवा, अणुः = अल्पा, अस्तु = भवतु, विदुषां = बुधानां, विवेकिनामिति भावः। इह = अस्मिन् विषये, ग्रहो न = आग्रहो न, गुणग्राहिणो विवेकिनः कृतज्ञतामेवाऽस्य पश्यन्ति नैयून्यादिजनितं दोषं नाऽन्विष्यन्तीति भावः ॥ १४ ॥

अनुवादः—अथवा उपकार करने वालेका शीघ्र ही अपने उपायसे साध्य उपकार करे, इस प्रकार वह उपकार अधिक वा अल्प हो, विद्वानोंको इस विषयमें आग्रह नहीं है ॥ १४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—उपकर्तुः = उपकरोतीति उपकर्ता, तस्य, उप + कृ + तृच् + ङस् । औपयिकीम् = उपाय एव औपयिकः, उपाय शब्दसे "विनयादिभ्यष्ठक्" इस सूत्रसे "उपायो ह्रस्वत्वं च" इस वार्तिकके सहकारसे स्वार्थमें ठक्, 'ठ' के स्थान में "ठस्येकः" इससे इक, ह्रस्वत्व "किति च" इस सूत्रसे आदिवृद्धि औपयिकात् आगता औपयिकी, ताम्, "तत आगतः" इससे अण् । "टिड्ढाणञ्०"से ङीप् । "युक्तमौपयिकं लभ्यं भजमानाऽभिनीतवत् । न्याय्यञ्च त्रिषु षट्" इत्यमरः । उपक्रियाम् = उप + कृ + श + टाप् + अम् । आचरेत् = आङ् + चर + विधिलिङ् + तिप् । विदुषां = विदन्तीति विद्वांसः, तेषाम्, विद् + लट् + शतृ (वसुः) + आम् ॥ १४ ॥

भविता न विचारचारु चेत्तदपि श्रव्यमिदं मदीरितम् ।
खगवागियमित्यतोऽपि किं न मुदं दास्यति कीरगीरिव ? ॥ १५ ॥

अन्वयः—(हे नृप !) इदं मदीरितं विचारचारु न भविता चेत् तदपि श्रव्यम् । इयं खगवाक् इत्यतः अपि कीरगीः इव मुदं किं न दास्यति ?

व्याख्या—स्ववचःश्रवणे हेतुमुपपादयति—भवितेति । (हे नृप !) इदं = वक्ष्यमाणं, मदीरितं = मत्कथितं, वच इति भावः, विचारचारु = विमर्शमनोहरं, न भविता चेत् = नो भविष्यति यदि, तदपि = तथाऽपि, मदीरिते विचारचारुत्वाऽभावेऽपीति भावः । श्रव्यं = श्रोतव्यम्, इयम् = एषा, खगवाक् = पक्षिवाणी, इत्यतः अपि = अस्मात्कारणात् अपि, कीरगीः इव = शुकवाणी इव, मुदं = हर्षं, किं न दास्यति = किं न वितरिष्यति ? दास्यत्येवेति भावः । विचारचारुत्वाऽभावेऽपि कौतुकादपि मदीरितं वचः श्रोतव्यमिति भावः ॥ १५ ॥

अनुवादः—(हे राजन् !) यह मेरा वचन विचार करनेपर मनोहर न हो तो भी सुनना चाहिए । यह पक्षीकी आवाज है इस कारणसे भी तोतेकी आवाज क्या हर्ष उत्पन्न नहीं करेगा ? ॥ १५ ॥

टिप्पणी—मदीरितं = मया ईरितम् (तृ० त०), "वचः" इस पदका अध्याहार करना चाहिए । विचारचारु = विचारे चारु (स० त०) । भविता = भू + लुट् + तिप् । श्रव्यम् = श्रोतुम् अर्हम्, श्रु धातुसे "अचो यत्" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय, "सार्वधातुकार्धधातुकयोः" इससे गुण "धातोस्तन्निमित्तस्यैव" इस सूत्रसे अव् आदेश । खगवाक् = खगस्य वाक् (ष० त०) । कीरगीः = कीरस्य गीः (ष० त०) । दास्यति = दा + लृट् + तिप् । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ १५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स जयत्यरिसार्थसार्थकीकृतनामा किल भीमभूपतिः ।
यमवाप्य विदर्भभूः प्रभुं हसति द्यामपि शक्रभर्तृकाम् ॥ १६ ॥

अन्वयः—अरिसार्थसार्थकीकृतनामा स भीमभूपतिः जयति किल । यं प्रभुम् अवाप्य विदर्भभूः शक्रभर्तृकां द्याम् अपि हसति ।

व्याख्या—साम्प्रतं स्ववचो वक्तुमुपक्रमते स जयतीति । अरिसार्थसार्थकीकृतनामा = शत्रुसमूहाऽन्वर्थीकृताऽभिधानः, सः = प्रसिद्धः, भीमभूपतिः = भीमाऽऽख्यनृपः, जयति किल = सर्वोत्कर्षेण वर्तते खलु । यं = भीमभूपतिं, प्रभुं = भर्तारम्, अवाप्य = प्राप्य, विदर्भभूः = विदर्भभूमिः, शक्रभर्तृकाम् = इन्द्रस्वामिकां, द्याम् अपि = दिवम् अपि, लक्ष्यीकृत्येति शेषः । हसति = उपहसति, किमुत अन्यभर्तृकदेशमिति शेषः । स्त्रियो हि भर्तुरुत्कर्षादन्याः स्त्रीरुपहसन्तीति भावः ॥ १६ ॥

अनुवाद—शत्रुसमूहसे अन्वर्थ नामवाले राजा भीम उत्कर्षपूर्वक बढ़ रहे हैं । जिनको पतिके रूपमें पाकर विदर्भ देशकी भूमि इन्द्ररूप स्वामीवाली स्वर्गभूमिका भी उपहास कर रही है ॥ १६ ॥

टिप्पणी—अरिसार्थसार्थकीकृतनामा=अर्थेन सहितं साऽर्थकम्' "तेन सहेति तुल्ययोगे" इस सूत्रसे तुल्ययोगबहु० । "वोपसर्जनस्य" इससे विकल्पसे "सह" के स्थान में "स" आदेश । "शेषाद्विभाषा" इससे समासाऽन्त कप् प्रत्यय । असार्थकं साऽर्थकं यथा संपद्यते तथा कृतम्, सार्थक + च्वि + कृ + क्तः । सार्थकीकृतं नाम यस्य सः (बहु०) । अरीणां सार्थः (ष० त०), तस्मिन् सार्थकीकृतनामा (स० त०) । "सङ्घसार्थौ तु जन्तुभिः" इत्यमरः । भीमभूपतिः = भुवः पतिः (ष० त०) । भीमश्चाऽसौ भूपतिः (क० धा०) । बिभेति अस्मात् इति भीमः, "ञिभी भये" धातुसे "भीमादयोऽपादाने" इस सूत्रसे मक् प्रत्यय । जिससे शत्रु डरता है वह 'भीम' ऐसी व्युत्पत्तिसे साऽर्थक (अन्वर्थं) नामवाले राजा भीम हैं यह तात्पर्य है । जयति = जि + लट् + तिप्, यहाँ पर "जि" धातु अकर्मक है । प्रभुं = "प्रभुः परिवृढोऽधिपः" इत्यमरः । अवाप्य = अव + आप् + क्त्वा (ल्यप्) । विदर्भभूः = विदर्भाणां भूः ष ० त०) । शक्रभर्तृकां = शक्रः भर्ता यस्याः सा शक्रभर्तृका, ताम् (बहु०) । "नद्यृतश्च" इस सूत्रसे कप् और टाप् द्याम्='द्यो' शब्दसे द्वितीयाका एक वचन, "औतोऽम्शसोः" इस सूत्रसे ओकारके स्थानमें आकार आदेश ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"सुरलोको द्योदिवौ द्वे" इत्यमरः। हसति = "हसे हसने" धातुसे लट्+तिप्। यह अकर्मक है अतः "द्यामपि" यहाँपर "लक्ष्यीकृत्य" इस पदका अध्याहार करना चाहिए। "भीमभूपतिः" इस अंशमें "निरुक्त" नामका लक्षण है। जैसे कि चन्द्रालोकमें है—

"निरुक्तं स्यान्निर्वचनं नाम्नः सत्यं तथाऽनृतम्।
ईदृशैश्चरितै राजन्सत्यं दोषाकरो भवान्॥"

इस पद्यमें विदर्भभूमिका स्वर्गभूमिके हाससे सम्वन्ध न रहनेपर भी सम्बन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति और 'द्याम् अपि" यहाँपर स्वर्गको भी हँसती है और को क्या कहना इस प्रकार अर्थापत्ति है इस प्रकार दो अलङ्कारों-की संसृष्टि है॥ १६॥

दमनादमनाक्प्रसेदुषस्तनयां तथ्यगिरस्तपोधनात्।
वरमाप स दिष्टविष्टपत्रितयाऽनन्यसदृग्गुणोदयाम्॥ १७॥

अन्वयः—सः अमनाक प्रसेदुषः तथ्यगिरः दमनात् तपोधनात् दिष्टविष्टपत्रितयाऽनन्यसदृग्गुणोदयां तनयां वरम् आप।

व्याख्या—हंसः साम्प्रतं दमयन्त्या उत्पत्तिं वर्णयति—दमनादिति। सः = भीमभूपतिः, अमनाक् = अत्यर्थं, प्रसेदुषः = प्रसन्नात्, निजोपासनयेति शेषः। तथ्यगिरः = सत्यवचसः, अमोघवचनादिति भावः। तादृशात् दमनात् = दमन-नामकात्, तपोधनात् = तपस्विनः, ऋषेरित्यर्थः। दिष्टविष्टपत्रितयाऽनन्यसदृग्गु-णोदयां=काललोकत्रयाऽनितरसदृशसौन्दर्यादिगुणाविर्भावां, तनयां = पुत्रीं, वरम् = अभीप्सितम्, आप = प्राप, वरत्वेन पुत्रीं लब्धवानिति भावः॥ १७॥

अनुवादः—महाराज भीमने अत्यन्त प्रसन्न, सत्य वाणीवाले दमन नामके तपस्वीसे तीन कालों और तीन लोकोंमें असाधारण सौन्दर्य आदि गुणोंवाली पुत्रीरूप वरको प्राप्त किया॥ १७॥

टिप्पणी—अमनाक् न मनाक् (नञ्०)। "किञ्चिदीषन्मनागल्पे" इत्यमरः। प्रसेदुषः=प्रससादेति प्रसेदिवान्, तस्य, प्र—उपसर्गपूर्वक सद् धातु से "भाषायां सदवसश्रुवः" इस सूत्रसे भूतसामान्यमें लिट्के स्थानमें क्वसु आदेश, सम्प्रसारण। तथ्यगिरः = तथा (तत्प्रकारे) साधुः तथ्या, तथा शब्दसे 'तत्र

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

साधुः" इस सूत्रसे यत् और स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् प्रत्यय। "सत्यं तथ्यमृतं सम्यक्" इत्यमरः। तथ्या गीर्यस्य स तथ्यगीः, तस्मात् (बहु०)। दमनात् = दमयतीति दमनः, तस्मात्, दम धातुसे "सहितपिदमःसंज्ञायाम्" (ग० सू० २३) इससे ल्यु (अन) प्रत्यय। तपोधनात् = तप एव धनं यस्य, तस्मात् (बहु०)। दिष्टविष्टपत्रितयाऽनन्यसदृग्गुणोदयाम् = त्रयः अवयवा ययोस्ते त्रितये, त्रि शब्दसे "संख्याया अवयवे तयप्" इस सूत्रसे तयप्। अन्यस्यां सदृक् अन्यसदृक् (स० त०)। "सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः" इससे "अन्या" शब्दका पुंवद्भाव। न अन्यसदृक् (नञ्०)। गुणानाम् उदयः (ष० त०)। अनन्यसदृक् गुणोदयो यस्याः सा (बहु०)। दिष्टाश्च विष्टपानि दिष्टविष्टपानि, "कालो दिष्टोऽप्यनेहाऽपि समयोऽपि" इति, "अथ जगतो लोको विष्टपं भुवनं जगत्।" इति चाऽमरः, दिष्टविष्टपानां त्रितये (ष० त०), तयोः अनन्यसदृग्गुणोदया, ताम् (स० त०)। वरम् = "देवाद् वृते वरः श्रेष्ठे त्रिषु क्लीबे मनाक्प्रिये।" इत्यमरः। आप = आप्+लिट्+त। महाराज भीमने दमन ऋषिसे तीन कालों और तीन लोकोंमें असाधारणगुणोंसे सम्पन्न कन्यारूप वर पाया यह तात्पर्य है। इस पद्यमें 'दमनादमनाक्" यहाँपर यमक अलङ्कार है ॥ १७ ॥

भुवनत्रयसुभ्रुवामसौ दमयन्ती कमनीयतामदम्।
उदियाय यतस्तनुश्रिया दमयन्तीति ततोभिधां दधौ ॥ १८ ॥

अन्वयः—असौ यतः तनुश्रिया भुवनत्रयसुभ्रुवां कमनीयतामदं दमयन्ती उदियाय, ततः दमयन्तीति अभिधां दधौ ॥ १८ ॥

व्याख्या—अथाऽस्या नामधेयं तद्व्युत्पत्तिं च प्रदर्शयति–भुवनेति। असौ = तनया, यतः = यस्मात्कारणात्, तनुश्रिया = निजशरीरसौन्दर्येण, भुवनत्रय-सुभ्रुवां = लोकत्रितयसुन्दरीणां, कमनीयतामदं = सौन्दर्यगर्वं, दमयन्ती = अस्तं गमयन्ती सती, उदियाय = उदिता, उत्पन्नेति भावः। ततः = तस्मात्कारणात्, दमयन्ती इति = दमयन्तीत्यानुपूर्विकाम्, अभिधं = नाम, दधौ = बभार।

अनुवादः—वह (भीमकी पुत्रीने) जिस कारणसे अपने शरीरके सौन्दर्यसे तीन लोकोंकी सुन्दरियोंके सौन्दर्यगर्वका दमन करती हुई उत्पन्न हुईं उस कारणसे उन्होंने "दमयन्ती" ऐसे नामको धारण किया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—यतः = यद् + तसिल्। तनुःश्रिया = तनोः श्रीः, तया (ष० त०)। भुवनत्रयसुभ्रुवां = त्रयः अवयवाः यस्य तत् त्रयम्, त्रि शब्दसे "संख्याया अवयवे तयप्" इस सूत्रसे तयप् प्रत्यय और "द्वित्रिभ्यां तयस्याऽयज्वा" इस सूत्रसे उसके स्थानमें विकल्पसे अयच् आदेश। शोभने भ्रुवौ यासां ताः सुभ्रुवः (बहु०)। भुवनानां त्रयम् (ष० त०), तस्मिन् सुभ्रुवः (स० त०), तासाम्। कमनीयतामदं = कमनीयस्य भावः (कमनीय + तल् + टाप्), कमनीयताया मदः, तम् (ष० त०)। दमयन्ती = दमयतीति, णिजन्त दम धातुसे लट् (शतृ) + ङीप्, यहाँपर "न पादम्याङ्०" इत्यादि सूत्रसे परस्मैपदका निषेध होनेपर भी क्रियाफल कर्तृगामि न होनेसे "शेषात्परस्मैपदम्" इससे परस्मैपद हुआ है। उदियाय=उद् + इण् + लिट् + तिप् (णल्)। दधौ = धा + लिट् + तिप्। इस पद्यमें भुवनत्रयकी सुन्दरियोंकी अपेक्षा दमयन्तीके सौन्दर्यकी अधिकताका वर्णन होनेसे व्यतिरेक अलङ्कार है॥ १८॥

श्रियमेव परं धराऽधिपाद् गुणसिन्धोरुदितामवेहि ताम्।
व्यवधावपि वा विधोः कलां मृडचूडानिलयां न वेद कः?॥ १९॥

अन्वयः—(हे राजन्!) तां गुणसिन्धोः धराऽधिपात् उदितां श्रियम् एव परम् अवेहि, वा व्यवधौ अपि मृडचूडानिलयां विधोः कलां को न वेद?

व्याख्या—अथ पद्यानामेकविंशत्या चिकुरादारभ्य दमयन्तीं वर्णयति-श्रियमिति। (हे राजन्!) तां = दमयन्तीं, गुणसिन्धोः = दयादाक्षिण्यादिगुणसमुद्रात्, धराऽधिपात्=भीमनरेन्द्रात्, उदिताम् = उत्पन्नां, श्रियम् एव = लक्ष्मीम् एव, परं=ध्रुवम्। अवेहि=जानीहि। देशव्यवधानान्न श्रीरेवेति वाच्यमित्याह—व्यवधावपीति। वा = अथवा, व्यवधौ अपि = व्यवधाने सत्यपि, मृडचूडानिलयां = शिवशिखाऽऽश्रयां, विधोः = चन्द्रमसः, कलां = षोडशं भागं, को न वेद = को न जानाति? सर्वोऽपि वेदेत्यर्थः। यथा शिवशिरःस्थिताऽपि कला चन्द्रकलैव तथैव गुणसिन्धोर्भीमभूपालादुत्पन्नाऽपि एषा दमयन्ती श्रीरेवेति भावः।

अनुवादः—हे राजन्! दमयन्तीको गुणके समुद्र राजा भीमसे उत्पन्न लक्ष्मी ही जानिए, अथवा व्यवधानके रहनेपर भी शिवजीके शिरमें आश्रय लेनेवाली चन्द्रकलाको कौन नहीं जानता है?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—गुणसिन्धोः = गुणानां (दयादाक्षिण्यादीनाम्) सिन्धुः तस्मात् (ष० त०) धराऽधिपात् = धराया अधिपः, तस्मात् (ष० त०) । उदिताम्= उद्+इण्+क्तः+टाप् । अवेहि = अव-आङ्-उपसर्गपूर्वक इण् धातुसे लोट्-के सिप्के स्थानमें 'हि' आदेश, गुण होकर अव+एहि यहाँपर "एत्येधत्यूठ्सु" इससे प्राप्त वृद्धिको बाधित करके "ओमाङोश्च" इससे पररूप। व्यवधौ = व्यवधानं व्यवधिः, तस्मिन् वि–अ–वउपसर्गपूर्वक 'धा' धातुसे "उपसर्गे घोः कि" इस सूत्रसे कि प्रत्यय। व्यवधि शब्द पुंलिङ्गमें है, इसको नारायण पण्डितने स्त्रीलिङ्गी लिखा है, वह भ्रान्तिमूलक है। मृडचूडानिलयां = मृडस्य चूडा (ष० त०), "गिरीशो गिरिशो मृडः" इत्यमरः। मृडचूडा निलयो यस्याः सा, ताम् (बहु०)। वेद = विद धातुसे "विदो लटो वा" इस सूत्रसे लट्के तिप्के स्थानमें विकल्पसे णल् आदेश, एक पक्षमें 'वेत्ति' ऐसा रूप होता है। इस पद्यमें राजा भीममें सिन्धुत्वका आरोप दमयन्तीमें श्रीत्वके आरोपमें निमित्त है इस कारण परम्परितरूपक और दृष्टान्त अलङ्कार है, दोनोंकी संसृष्टि है ॥ १९ ॥

चिकुरप्रकरा जयन्ति ते विदुषी मूर्धनि सा बिभर्ति यान् ।
पशुनाऽप्यपुरस्कृतेन तत्तुलनामिच्छतु चामरेण कः ॥ २० ॥

अन्वयः—ते चिकुरप्रकरा जयन्ति, विदुषी सा यान् मूर्धनि बिभर्ति। पशुना अपि अपुरस्कृतेन चामरेण तत्तुलनां क इच्छतु ? ॥ २० ॥

व्याख्या—'साम्प्रतं दमयन्त्याः केशादारभ्य वर्णनमुपक्रमते चिकुरेति। ते=प्रसिद्धाः, चिकुरप्रकराः=केशकलापाः, जयन्ति=सर्वोत्कर्षेण वर्तन्ते। विदुषी = पण्डिता, सा=दमयन्ती, यान् = चिकुरप्रकरान्, मूर्धनि = शिरसि, बिभर्ति= धारयति। पशुना अपि=चतुष्पदेन अपि, मूर्खेण चमरीमृगेणाऽपीति भावः। अपुरस्कृतेन = अनादृतेन पृष्ठभागस्थापितेन वा, चामरेण = चमरीपुच्छेन सह, तत्तुलनां = चिकुरप्रकरसमीकरणं, कः = जनः, इच्छतु = वाञ्छतु, न कोऽपीति भावः ॥ २० ॥

अनुवाद—वे केशकलाप उत्कर्षपूर्वक बढ़ते रहते हैं, पण्डिता दमयन्ती जिन्हें शिरमें धारण करती हैं। पशु चमरी मृगसे भी अनादृत पूँछमें रक्खे गये चामरसे उनकी तुलना करनेकी कौन इच्छा करे ? २० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—चिकुरप्रकराः = चिकुराणां प्रकराः (ष० त०), विदुषी = वेत्तीति, विद धातुसे लट्के शतृके स्थानमें "विदेः शतुर्वसुः "इससे वसु आदेश "उगितश्च" इससे स्त्रीत्वविवक्षामें ङीप् "वसोः सम्प्रसारणम्" इससे संप्रसारण। मूर्धनि = मूर्धन् शब्दसे सप्तमीकी ङिविभक्तिमें "विभाषा ङिश्योः" इससे अल्लोपके अभावपक्षमें रूप। उक्त सूत्रसे अल्लोप होनेपर "मूर्ध्नि" ऐसा रूप भी बनता है। बिभर्ति = भृ + लट् + तिप्। अपुरस्कृतेन = न पुरस्कृतं, तेन (नञ्०)। तत्तुलनां = तोलनं तुलना, "तुल उन्माने" इस धातुसे "अतुलोपमाभ्याम्" ऐसे निपातनसे गुणका अभाव होकर णिजन्त तुल धातुसे "ण्यासश्रन्थो युच्" इससे युच् (अन) होकर टाप्। तेषां तुलना, ताम्। (ष० त०)। इच्छतु = इष + लोट् + तिप्। "इषुगमियमां छः" इससे छत्व। इस पद्यमें उपमान चामरसे उपमेय दमयन्तीके चिकुरके उत्कर्षका वर्णन होनेसे व्यतिरेक अलङ्कार है ॥ २० ॥

स्वदृशोर्जनयन्ति सान्त्वनां खुरकण्डूयनकैतवान्मृगाः।
जितयोरुदयत्प्रमीलयोस्तदखर्वेक्षणशोभया भयात् ॥ २१ ॥

अन्वयः—मृगाः तदखर्वेक्षणशोभया जितयोः भयात् उदयत्प्रमीलयोः स्वदृशोः खुरकण्डूयनकैतवात् सान्त्वनां जनयन्ति ॥ २१ ॥

व्याख्या—मृगाः = हरिणाः, तदखर्वेक्षणशोभया = दमयन्तीविशालनेत्रकान्त्या, जितयोः = पराभूतयोः, अत एव भयात् = भीतेः, उदयत्प्रमीलयोः = उत्पद्यमाननिमीलनयोः, स्वदृशोः = निजनेत्रयोः, खुरकण्डूयनकैतवात् = शफघर्षणच्छलात्, सान्त्वनाम् = आश्वासनं, जनयन्ति = कुर्वन्ति, यथा लोके परपराजितान् भयान्निमीलितनयनान् जनान् स्वजना हस्तपरामर्शादिना सान्त्वयन्ति तथैव मृगा अपि दमयन्तीनेत्रपराजिते स्वनेत्रे खुरकण्डूयनच्छलादाश्वासयन्तीति भावः ॥ २१ ॥

अनुवादः—मृग दमयन्तीके विशाल नेत्रोंकी शोभासे जीते गये अत एव भयसे मूँदे गये अपने नेत्रोंको खुरसे खुजलानेके बहानेसे आश्वासन देते हैं।

टिप्पणी—तदखर्वेक्षणशोभया = न खर्वे (नञ्०)। अखर्वे च ते ईक्षणे (क० धा०), तस्या अखर्वेक्षणे (ष० त०) तयोः शोभा, तया (ष० त०) भयात् = हेतुमें पञ्चमी। उदयत्प्रमीलयोः = उदयन्ती प्रमीला ययोस्ते, तयोः (बहु०)। स्वदृशोः = स्वस्य दृशौ, तयोः (ष० त०)। खुरकण्डूयन-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कैतवात् = खुरैः कण्डूयनम् (तृ० त०), "शफं क्लीवे खुरः पुमान्" इत्यमरः। खुरकण्डूयनस्य कैतवं, तस्मात् (ष० त०)। जनयन्ति = जन + णिच् + लट् + झिः। इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति और प्रतीयमानोत्प्रेक्षाकी संसृष्टि है ॥ २१ ॥

अपि लोकयुगं दृशावपि श्रुतदृष्टा रमणीगुणा अपि।
श्रुतिगामितया दमस्वसुर्व्यतिभाते सुतरां धरापते ! ॥ २२ ॥

अन्वयः—हे धरापते ! दमस्वसुः लोकयुगं श्रुतिगामितया सुतरां व्यतिभाते, दृशौ अपि श्रुतिगामितया सुतरां व्यतिभाते; श्रुतदृष्टा रमणीगुणा अपि श्रुतिगामितया सुतरां व्यतिभाते ॥ २२ ॥

व्याख्या—हे धरापते = हे भूपते ! दमस्वसुः = दमयन्त्याः, लोकयुगं = मातापितृकुलयुग्मं, श्रुतिगामितया = लोकश्रवणविषयत्वेन, जगत्प्रसिद्धत्वेनेति भावः, सुतराम् = अत्यर्थं, व्यतिभाते = परस्परोत्कर्षेण विनिमयेन वा भाति (शोभते), दृशौ अपि = नेत्रे अपि, दमस्वसुरिति अध्याहार्यम्, श्रुतिगामितया = कर्णाऽन्तविश्रान्ततया, सुतराम् = अत्यर्थं, व्यतिभाते = परस्परोत्कर्षेण विनिमयेन वा भातः (शोभेते), श्रुतदृष्टाः = आकर्णिताऽवलोकिताः, लोकतः श्रुताः स्वयं ज्ञाताश्चेति भावः, रमणीगुणा अपि = सौन्दर्यौदार्यादयः स्त्रीगुणा अपि, श्रुतिगामितया = लोकतः श्रवणविषयतया, सुतराम् = अत्यन्तं, व्यतिभाते = विनिमयेन भान्ति (शोभन्ते)। दमयन्त्या मातपितृकुलयुग्मं नेत्रयुगलं स्त्रीगुणा अपि प्रसिद्धिपथागतत्वेन सुतरां शोभन्त इति भावः ॥ २२ ॥

अनुवादः—हे राजन् ! दमयन्तीके मातृकुल और पितृकुल दोनों ही कुल लोकका श्रवण विषय होकर परस्परके उत्कर्षसे शोभित होते हैं, इसी तरह उनकी दोनों आँखें कान तक फैलनेसे परस्परके उत्कर्षसे शोभित होती हैं तथा सुने गये और देखे गये दमयन्तीके सौन्दर्य औदार्य आदि स्त्रीगुण भी लोकसे श्रवणके विषय होनेसे परस्परमें अत्यन्त शोभित होते हैं ॥ २२ ॥

टिप्पणी—धरापते = धरायाः पतिः, तत्सम्बुद्धौ (ष० त०)। दमस्वसुः= दमस्य स्वसा दमस्वसा, तस्याः (ष० त०)। दमन ऋषिके वरसे महाराज भीमके दम नामके पुत्र और दमयन्ती पुत्री उत्पन्न हुई थीं, महाकविने वर्णनीय होनेसे दमयन्तीकी उत्पत्तिका वर्णन लिखा, दमका नहीं। "न षट्स्वस्रादिभ्यः" इससे "ऋन्नेभ्यो ङीप्" इससे प्राप्त ङीप्का निषेध हुआ है। लोकयुगं = लोकयोर्युगम् (ष० त०), 'लोक' शब्द यहाँपर लक्षणासे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुलवाचक हुआ है। श्रुतिगामितया = श्रुत्योर्गच्छतीति श्रुतिगामि, श्रुति+गम्+णिनिः। श्रुतिगामिनो भावः, तया, श्रुतिगामि + तल्+टाप्+टा। सुतरां = तरप्प्रत्ययान्त "सु" उपसर्गसे "किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे" इससे आमु प्रत्यय। व्यतिभाते=वि+अति–उपसर्गपूर्वक अदादिस्थ "भा दीप्तौ इस धातुसे "कर्तरि कर्मव्यतिहारे" इससे आत्मनेपद हुआ है। कर्मव्यतिहारका अर्थ है कर्मका विनिमय और कैयटके मतमें परस्पर करणको भी कर्मव्यतिहार माना गया है। व्यतिभाते = वि+अति+भा+लट्+त। यहाँपर यह एक वचन है। दृशौ "दृग्दृष्टी" इत्यमरः। श्रुतिगामितया = श्रुत्योर्गच्छतस्तच्छीले इति श्रुतिगामिन्यौ, श्रुति+गम्+णिनिः+ङीप् (उपपद०)। श्रुतिगामिन्योर्भावः श्रुतिगामिता, तया, श्रुति+गामिनी+तल्+टाप्+टा। यहाँपर "त्वतलोर्गुणवचनस्य" इस सूत्रसे पुंवद्भाव हुआ। व्यतिभाते = पहलेके सूत्रसे आत्मनेपद, वि+अति+भा+आताम्, यण् और सवर्णदीर्घ करके 'व्यतिभाताम्' ऐसा रूप होनेपर "टित आत्मनेपदानां टेरे" इससे टिका एत्व होकर ऐसा रूप बनता है। श्रुतदृष्टाः = प्राक् श्रुताः पश्चाद् दृष्टाः, "पूर्वकालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेन" इससे पूर्वकालसमास। रमणीगुणाः = रमण्या गुणाः (ष० त०)। श्रुतिगामितया = श्रुत्योर्गच्छन्तीति श्रुतिगामिनः, श्रुति+गम्+णिनिः (उप०)। श्रुतिः श्रोत्रे, तथाऽऽम्नाये, वार्तायां, श्रोत्रकर्मणी" ति विश्वः। श्रुतिगामिनां भावः तया, श्रुतिगामिन्+तल्+टाप्+टा। व्यतिभाते। वि+अति+भा+झः। पहलेके सूत्रसे आत्मनेपद और "आत्मनेपदेष्वनतः" इससे 'झ' के स्थान में अत् और पहलेके समान टिका एत्व भी। इस पद्य में "लोकयुगम्" "दृशौ" रमणीगुणाः" इन सब प्रस्तुत पदार्थोंका व्यतिभान, रूप एक क्रियाके साथ सम्बन्ध होनेसे तुल्ययोगिता और "व्यतिभाते" इसका एकवचन, द्विवचन और बहुवचन होनेसे वचनश्लेष भी है, अतः इनका एकाश्रयाऽनुप्रवेशरूप सङ्कर है ॥ २२ ॥

नलिनं मलिनं विवृण्वती, पृषतीमस्पृशती तदीक्षणे।
अपि खञ्जनमञ्जनाऽञ्चिते विदधाते रुचिगर्वदुर्विधम् ॥ २३ ॥

अन्वयः—नलिनं मलिनं विवृण्वती, पृषतीम् अस्पृशती तदीक्षणे अञ्जनाऽञ्चिते (सती) खञ्जनम् अपि रुचिगर्वदुर्विधं विदधाते ॥ २३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—नलिनं = कमलं, मलिनं = मलीमसम्, असुन्दरमिति भावः, विवृण्वती = कुर्वाणे, स्वसौन्दर्याऽतिशयेनेति भावः। पृषतीं = मृगीम्, अस्पृशती = स्पर्शम् अपि अकुर्वती, नेत्रसौन्दर्यस्पर्धायां मृगीमपि दूरात्परिहरती इति भावः। तदीक्षणे = दमयन्तीनयने, अञ्जनाञ्चिते = कज्जलपरिष्कृते सती, खञ्जनम् अपि = खञ्जरीटं पक्षिणम् अपि, रुचिगर्वदुर्विधं = सौन्दर्याऽभिमानदरिद्रं, विदधाते = कुर्वाते, दमयन्त्या नेत्रे सर्वथाऽप्यनुपमेये इति भावः ॥ ३२ ॥

अनुवादः—कमलको मलिन बनाने वाले तथा (सौन्दर्यमें) मृगीका स्पर्श भी नहीं करते हुए दमयन्तीके नेत्र, कज्जलसे परिष्कृत होते हुए, खञ्जन पक्षीको भी सौन्दर्यके अभिमानमें दरिद्र बना देते हैं ॥ २३ ॥

टिप्पणी—विवृण्वती = विवृणुत इति, वि + वृञ् + लट् (शतृ) + ङीप् + औ। पृषतीं = हरिण्यां पृषती प्रोक्ता" इति रन्तिदेवः। अस्पृशती = स्पृशत इति स्पृशती, स्पृश + लट् (शतृ) + औ। न स्पृशती (नञ्०)। तदीक्षणे = तस्या ईक्षणे (ष० त०)। अञ्जनाऽञ्चिते = अञ्जनेन अञ्चिते (तृ० त०)। खञ्जनं = "खञ्जरीटस्तु खञ्जनः" इत्यमरः। रुचिगर्वदुर्विधं = रुचेः गर्वः (ष० त०) तस्मिन् दुर्विधः तम् (स० त०) "निःस्वस्तु दुर्विधो दीनो दरिद्रो दुर्गतोऽपि सः।" इत्यमरः। विदधाते = वि + धा + लट् + आताम्। इस पद्यमें दमयन्तीके नेत्रोंके कमल आदिके मलिनीकरण आदिसे सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति और उपमानभूत नलिन आदिसे उपमेयभूत दमयन्तीके नेत्रोंके आधिक्य वर्णनसे व्यतिरेक अलङ्कार इस प्रकार दो अलङ्कारोंके अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ २३ ॥

अधरं खलु बिम्बनामकं फलमस्मादिति भव्यमव्ययम्।
लभतेऽधरबिम्बमित्यदः पदमस्या रदनच्छदं वदत् ॥ २४ ॥

1984

अन्वयः—अधरबिम्बम् इति अदः पदम् अस्या रदनच्छदं वदत् बिम्बनामकं फलम् अस्मात् अधरं खलु इति भव्यम् अन्वयं लभते ॥ २४ ॥

व्याख्या—अधरबिम्बम् = अधरबिम्बम् इत्यानुपूर्वीकम् इति = एवम्, अदः = एतत् पदं = शब्दः अस्याः = दमयन्त्याः, रदनच्छदम् = ओष्ठं, वदत् = अभिदधत् प्रतिपादयदिति भावः। बिम्बनामकं = बिम्बाऽभिधेयं, फलं=

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सस्यम्, अस्मात् = दमयन्तीरदनच्छदात्, अधरम् = अपकृष्टं, खलु = निश्चयेन, इति=अस्मात्कारणात् , भव्यम् = अबाधितम् अन्वयं = पदार्थसंसर्गं, लभते = प्राप्नोति ॥ २४ ॥

अनुवादः—"अधरबिम्ब" यह पद दमयन्तीके ओष्ठका प्रतिपादन करता हुआ बिम्ब नामका फल दमयन्तीके ओष्ठसे अधर (निकृष्ट) है इस प्रकार अबाधित अन्वय (पदार्थसंसर्ग) को प्राप्त करता है ॥ २४ ॥

टिप्पणी—रदनच्छदं = रदनानां छदः, तम् (ष० त०), "रदना दशना दन्ता रदाः" इति "ओष्ठाऽधरौ तु रदनच्छदौ दशनवाससी ।" इति चाऽमरः । वदत् = वदतीति, वद+लट् (शतृ)+सुः । बिम्बनामकं = बिम्बं नाम यस्य तत् (बहु०)। लभते = लभ+लट्+त । "अधरबिम्ब" यह पद दमयन्ती-के ओष्ठका प्रतिपादन करनेके लिए अधरं बिम्बं (बिम्बफलम्) यस्मात्तत् इस प्रकार बहुव्रीहि समाससे अबाधित अन्वर्थ हो जाता है। अन्य स्त्रीके ओष्ठ-को कहनेके लिए अधरो बिम्बम् इव इस प्रकार उपमितकर्मधारय समास करना चाहिए। आकारसे, रक्त वर्णसे और आस्वादसे उत्कृष्ट होनेसे दम-यन्तीका ओष्ठ बिम्ब फलसे उत्कृष्ट है यह तात्पर्य है। इस पद्यमें उपमानभूत बिम्ब फलसे उपमेयभूत दमयन्तीके ओष्ठके आधिक्यका वर्णन होनेसे व्यतिरेक अलङ्कार है ॥ २४ ॥

हृतसारमिवेन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा ।
कृतमध्यबिलं विलोक्यते धृतगम्भीरखनीखनीलिम ॥ २५ ॥

अन्वयः—इन्दुमण्डलं दमयन्तीवदनाय वेधसा हृतसारम् इव कृतमध्यबिलं धृतगम्भीरखनीखनीलिम विलोक्यते ॥ २५ ॥

व्याख्या—इन्दुमण्डलं = चन्द्रबिम्बं, दमयन्तीवदनाय = दमयन्तीवदनं निर्मातुं, वेधसा = ब्रह्मणा, हृतसारम् इव = गृहीतश्रेष्ठभागम् इव, कृतमध्य-बिलं = विहिताऽन्तरच्छिद्रं, सत्, धृतगम्भीरखनीखनीलिम = भृतगभीरनिम्न-गर्ताकाशनैल्यं, विलोक्यते = दृश्यते । ब्रह्मणा दमयन्त्या मुखं निर्मातुं चन्द्र-बिम्बात्सुन्दरभागो गृहीतः, अतो गृहीतसुन्दरभागे चन्द्रबिम्बे छिद्रं संजातं तत्राऽऽकाशस्य नीलिमा पतितः स एव चन्द्रस्य कलङ्क इति भावः । चन्द्रः सक-लङ्कः । दमयन्त्या मुखं निष्कलङ्कं तस्माद्धेतोश्चन्द्रापेक्षया दमयन्तीवदनं मनोहरतरमिति भावः ॥ २५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवाद—ब्रह्माजीने दमयन्तीके मुखकी रचनाके लिए चन्द्रमण्डलसे श्रेष्ठ भागको हरण कर लिया अतः उसमें (बीचमें) छेद पड़ गया उसपर जो आकाशकी नीलिमा है वही कलङ्कके रूप में दिखाई दे रही है ॥ २५ ॥

टिप्पणी—इन्दुमण्डलम् = इन्दोः मण्डलम् (ष० त०), दमयन्तीवदनाय = दमयन्त्या वदनं, तस्मै (ष० त०), "क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः" इससे चतुर्थी। हृतसारं = हृतः सारो यस्मात् तत् (बहु०)। कृतमध्यविलं = मध्ये बिलम् (स० त०), कृतं मध्यविलं यस्य तत् (बहु०)। धृतगम्भीर-खनीखनीलिम = गम्भीरा चाऽसौ खनी (क० धा०), "खनिः स्त्रियामाकरः स्यात्" इत्यमरः। "कृदिकारादक्तिनः" इस सूत्रसे ङीष् प्रत्यय होकर ईका-रान्त भी खनी शब्द हो जाता है। यहाँपर खनीका प्रसिद्ध अर्थ खान न होकर गर्त अर्थ होता है। नीलस्य भावो नीलिमा, नील+इमनिच्, खस्य नीलिमा (ष० त०)। गम्भीरखन्यां खनीलिमा (स० त०)। धृतो गम्भीर-खनीखनीलिमा येन तत् (बहु०) ब्रह्माजीने चन्द्रबिम्बस्थित उत्कृष्ट भाग तो दमयन्ती का मुख बनानेके लिए निकाल डाला तब उसके निम्न गर्तमें आकाशकी जो नीलिमा पड़ गई वही कलङ्कके रूपमें प्रसिद्ध है। चन्द्रमामें कलङ्क है दमयन्तीका मुख निष्कलङ्क होनेसे उससे उत्कृष्ट है यह तात्पर्य है। विलोक्यते = वि+लोक+लट (कर्म में)+त। इस पद्यमें कलङ्कका अपह्नव करके आकाशकी नीलिमाका आरोप करनेसे अपह्नुति 'कृतमध्यविल' यहाँपर पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग, 'हृतसारमिव' यहाँपर उत्प्रेक्षा, इस तरह अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर। आकाश रूपरहित द्रव्य है अतः उसमें महाकविने लोकप्रसिद्धिके अनुसारसे नीलिमाका वर्णन किया है ॥ २५ ॥

धृतलाञ्छनगोमयाऽञ्चनं विधुमालेपनपाण्डरं विधिः।
भ्रमयत्युचितं विदर्भजाऽऽननीराजनवर्द्धमानकम् ॥ २६ ॥

अन्वयः—विधिः धृतलाञ्छनगोमयाञ्चनम् आलेपनपाण्डरं विधुं विदर्भ-जाऽऽननीराजनवर्द्धमानकं भ्रमयति, उचितम् ॥ २६ ॥

व्याख्या—विधिः=ब्रह्मा, धृतलाञ्छनगोमयाऽञ्चनं = गृहीतमृगचिह्नगोमय-संश्लेषणम्, आलेपनपाण्डरं = पिष्टोदकशुक्लवर्णं, तत्सदृशनिजकान्तिसुधाधव-लितं, विधुं = चन्द्रमसं, विदर्भजाऽऽननीराजनवर्द्धमानकं=दमयन्ती मुखारातिक-शरावं, किरणदीपकलिकायुक्तमिति भावः। भ्रमयति = भ्रमणं कारयति, उचितं= योग्यम्, लोकोत्त रत्वादिति भावः। एवं नीराजयन्तीति देशाऽऽचारः ॥ २६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—ब्रह्माजी गोमयके सदृश कलङ्कसे युक्त, पिष्टजलके समान सफेद चन्द्रमाको दमयन्तीके मुखकी आरती उतारनेके लिए मृत्तिकापात्रके समान जो घुमाते हैं, वह उचित है ॥ २६ ॥

टिप्पणी—धृतलाञ्छनगोमयाऽञ्चनं = गोःपुरीषं गोमयं, 'गो' शब्दसे "गोश्च पुरीषे" इस सूत्रसे मयट् प्रत्यय। गोमयेन अञ्चनम् (तृ० त०)। धृतं लाञ्छनम् एव गोमयाऽञ्चनं येन, तम् (बहु०)। आलेपनपाण्डरम् = आलेपनेन पाण्डरः, तम् (तृ० त०)। विधुं = "विधुः सुधांऽशुः शुभ्रांऽशुः" इत्यमरः। विदर्भजाननीराजनवर्द्धमानकं = विदर्भजाया आननम् (ष० त०), तस्य नीराजनं (ष० त०), तस्य वर्द्धमानकं, तत् (ष० त०)। "शरावो वर्द्धमानकः" इत्यमरः। भ्रमयति = भ्रम + णिच् + लट् + तिप्। "मितां ह्रस्वः" इससे ह्रस्व हुआ है। जैसे लोकमें नीराजना करनेके लिए और दृष्टिदोष-को हटानेके लिए गोवर और पिष्टजलसे लेप करके वर्द्धमान (मिट्टीके पात्र)-को घुमाते हैं उसी तरह ब्रह्माजी दमयन्तीके मुखमें नीराजन करनेके लिए गोवरके समान कलङ्कसे युक्त और पिष्टजलके समान अपनी किरणसे सफेद चन्द्ररूप वर्धमान (मृत्तिकापात्र) को घुमाते हैं, चन्द्रमासे दमयन्तीका मुख सुन्दर है यह तात्पर्य है। इस पद्यमें साङ्गरूपक और चन्द्रमाके भ्रमणका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धका वर्णन करनेसे अतिशयोक्ति है इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभावरूप सङ्कर अलङ्कार है ॥ २६ ॥

सुषमाविषये परीक्षणे निखिलं पद्ममभाजि तन्मुखात्।
अधुनाऽपि न भङ्गलक्षणं सलिलोन्मज्जनमुज्झति स्फुटम् ॥ २७ ॥

अन्वयः—सुषमाविषये परीक्षणे निखिलं पद्मं तन्मुखात् अभाजि, (अत एव) अधुना अपि भङ्गलक्षणं सलिलोन्मज्जनं न उज्झति स्फुटम् ॥ २७ ॥

व्याख्या—सुषमाविषये = परमशोभाविषये, परीक्षणे = परीक्षायां, जल-दिव्यशोधने कृते सतीति भावः। निखिलं = समस्तं, पद्मं = कमलं, तन्मुखात्= दमयन्त्याननात्, अभाजि = अभञ्जि, स्वयमेव भग्नमभूदित्यर्थः। अत एव अधुना अपि =साम्प्रतम् अपि, भङ्गलक्षणं = पराजयचिह्नं, सलिलोन्मज्जनं = जलादूर्ध्वभवनं, न उज्झति = न जहाति, स्फुटम् = इव, जलदिव्योन्मज्जनस्य पराजयचिह्नत्वस्मरणादिति भावः ॥ २७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—परमशोभाकी परीक्षामें सम्पूर्ण कमल दमयन्तीके मुखसे हार गये, इसी कारणसे अब तक वे पराजयके चिह्नरूप जलसे उन्मज्जन नहीं छोड़ रहे हैं ऐसा मालूम हो रहा है ॥ २७ ॥

टिप्पणी—सुषमाविषये = सुषमा विषयो यस्मिन् तत्, तस्मिन् (बहु०) । "सुषमा परमा शोभा" इत्यमरः । तन्मुखात्=तस्या मुखं, तस्मात् (ष० त०) । अभाजि = "भञ्जो आमर्दने" इस धातुसे कर्मकर्तामें लुङ्, "चिण्भावकर्मणोः" इससे चिण्, "भञ्जेश्च चिणि" इससे विकल्पसे 'न' का लोप, अतः एक पक्ष-में "अभञ्जि" ऐसा भी रूप बनता है। भङ्गलक्षणं=भङ्गो लक्षणं यस्य तत (बहु०) । सलिलोन्मज्जनं=सलिलात् उन्मज्जनं, तत् (प० त०) । उज्झति= "उज्झ उत्सर्गे" धातुसे लट् + तिप् । दमयन्तीका मुख और कमलमें किसमें अधिक शोभा है इसकी परीक्षाके लिए जल दिव्य किया गया उसमें कमल जल-में न डूबकर ऊपर उठा हुआ है अत एव उसका पराजय हुआ है, दमयन्ती के मुखकी समान उसमें अधिक शोभा नहीं है इसका यहाँपर उत्प्रेक्षा को गई है । जलदिव्यके विषयमें योगीश्वर याज्ञवल्क्यने लिखा है—

> "समकालमिषुं मुक्तमानीयाऽन्यो जवी नरः ।
> गते तस्मिन्निमग्नाऽङ्गं पश्येच्चेच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥ २–१०९"

इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, "स्फुटम्" यह पद उत्प्रेक्षाका वाचक है ॥ २७ ॥

> **धनुषी रतिपञ्चबाणयोरुदिते विश्वजयाय तद्भ्रुवौ ।**
> **नलिके न तदुच्चनासिके त्वयि नालीकविमुक्तिकामयोः ॥ २८ ॥**

अन्वयः—तद्भ्रुवौ विश्वजयाय उदिते रतिपञ्चबाणयोः धनुषी, तदुच्च-नासिके त्वयि नालीकविमुक्तिकामयोः रतिपञ्चबाणयोः नलिके न ?

व्याख्या—तद्भ्रुवौ = दमयन्तीभ्रुवौ, विश्वजयाय = जगद्विजयाय, उदिते= उत्पन्ने, रतिपञ्चबाणयोः = रतिकामदेवयोः धनुषी = चापौ, ध्रुवम् । एवं च तदुच्चनासिके = दमयन्त्युन्नतनासाच्छिद्रे, त्वयि = भवति, नालीकविमुक्ति-कामयोः = बाणप्रहारार्थिनोः, रतिपञ्चबाणयोः = रतिकामदेवयोः, नलिके न = शराऽऽधारनलौ न ? अपि तु नलिके एवेति भावः । दमयन्त्या भ्रूनासिकं दृष्ट्वा सर्वोऽपि कामवशो भवतीति तात्पर्यम् ॥ २८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—दमयन्तीकी भौंहें जगत्को जीतनेके लिए उत्पन्न रति और कामदेवके धनुष् हैं क्या ? ऊनकी ऊँची नासिकाके दो छिद्र आपमें वाण छोड़नेकी इच्छा करने वाले रति और कामदेवकी नलियाँ नहीं हैं क्या ? ॥२८॥

टिप्पणी—तद्भ्रुवौ = तस्या भ्रुवौ (ष० त०)। विश्वजयाय = विश्वस्य जयः, तस्मै (ष० त०), तुमर्थाच्च भाववचनात्" इससे चतुर्थी। उदिते = उद् + इण् + क्तः + ङि। रतिपञ्चवाणयोः = पञ्च वाणा यस्य सः (वहु०)। पाँच वाण होनेके कारण कामदेवको "पञ्चवाण" वा "पञ्चशर" कहते हैं, पाँच वाण जैसे—

"अरविन्दमशोकं च चूतंच नवमल्लिका।
नीलोत्पलं च पञ्चैते पञ्चवाणस्य सायकाः।"

अर्थात् कमल, अशोक पुष्प, आमका फूल नवमल्लिका और नीलकमल ये पाँच फूल कामदेव के वाण हैं। रतिश्च पञ्चवाणश्च रतिपञ्चवाणौ, तयोः (द्वन्द्व०)। तदुच्चनासिके=उच्चे च ते नासिके (क० धा०)। नासिकाके छिद्रोंके द्वित्त्वसे नासिकामें द्विवचन किया गया है। तस्या उच्चनासिके (ष० त०)। त्वयि = विषयमें सप्तमी। नालीकविमुक्तिकामयोः = विमुक्ति कामयेते इति विमुक्तिकामौ, विमुक्ति—उपपदपूर्वक "कमु कान्तौ" धातुसे "शीलिकामिभक्ष्याचरिभ्यो णः" इस सूत्रसे ण प्रत्यय (उपपद०)। नालीकानां विमुक्तिकामौ, तयोः (ष० त०)। "नालीकं पद्मखण्डे स्त्री, नालीकः शरशल्ययोः।" इति विश्वः। यहाँपर भ्रूयुग्ममें धनुर्युग्मका आरोप होनेसे पूर्वार्द्धमें रूपक और उत्तरार्द्धमें नालिकामें नसिकात्वकी संभावना करनेसे उत्प्रेक्षा, इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है॥ २८॥

सदृशी तव शूर ! सा परं जलदुर्गस्थमृणालजिद्भुजा।
अपि मित्रजुषां सरोरुहां गृहयालुः करलीलया श्रियः॥ २९॥

अन्वयः—हे शूर ! जलदुर्गस्थमृणालजिद्भुजा मित्रजुषाम् अपि सरोरुहां श्रियः करलीलया गृहयालुः सा तव परं सदृशी॥ २९॥

व्याख्या—हे शूर = हे वीर !, जलदुर्गस्थमृणालजिद्भुजा = सलिलदुर्गस्थविसजयिवाहुः, सा = दमयन्ती, मित्रजुषाम् अपि = अर्कसेविनां, सुहृत्सहायसम्पन्नानाम् अपि, सरोरुहां = कमलानां, श्रियः = शोभाः सम्पदश्च, करलीलया=हस्तविलासेन, वलिग्रहणेन च, गृहयालुः = ग्रहणशीला, सा = दमयन्ती

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तव=भवतः, परम्=अत्यर्थं, सदृशी=तुल्या, दमयन्त्या भुजौ मृणालादपि कोमलौ, दमयन्त्याः पाणिः कमलादपि मनोहर इति भावः ॥ २९ ॥

अनुवाद—हे वीर ! जलरूप किलेमें रहनेवाले कमलको जीतनेवाले बाँहोंवाली वह (दमयन्ती) सूर्यकी सेवा करनेवाले वा मित्रसहायसे सम्पन्न कमलोंकी शोभा वा सम्पत्तियोंको हाथके विलाससे वा करग्रहणके तौरपर लेने वाली, आपके लिए अन्यन्त योग्य हैं ॥ २९ ॥

टिप्पणी—शूरः = "शूरो वीरश्च विक्रान्तः" इत्यमरः। जलदुर्गस्थ-मृणालजिद्भुजा = जलम् एव दुर्गः (रूपक०), तस्मिन् तिष्ठन्तीति जलदुर्ग-स्थानि, जलदुर्ग+स्था+कः (उपपद०), तानि च तानि मृणालानि (क० धा०), तानि जयत इति जलदुर्गस्थमृणालजितौ, जलदुर्गस्थमृणाल+जि+क्विप्। तादृशौ भुजौ यस्याः सा (बहु०)। मित्रजुषां = मित्रं जुषन्त इति मित्रजूंषि तेषाम्, मित्र+जुष्+क्विप्। मित्र पदका अर्थ यहाँपर सूर्य और सुहृत् है। "मित्रं सुहृदि, मित्रोऽर्कः" इति विश्वः। सरोरुहां = सरसि रोहन्तीति सरोरूंहि, तेषां, सरस्+रुह्+क्विप् (उपपद०)+आम्। श्रियः= "श्रीर्लक्ष्मीवेशसम्पत्सु भारतीशोभयोरपि"। इति त्रिकाण्डशेषः "गृहयालुः" इस कृदन्तपदके योगमें "कर्तृकर्मणोः कृति" इससे प्राप्त षष्ठीका "न लोकाऽ-व्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्" इससे निषेध होनेसे कर्ममें द्वितीया। करलीलया = करयोः अथवा कराणां लीला, तया (ष० त०), "बलिहस्तांऽशवः कराः" इति "लीला विलासक्रिययोः" इति चाऽमरः। गृहयालुः = गृहयते इति, "गृह ग्रहणे" इस चौरादिक धातुसे "स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्" इस सूत्रसे आलुच् प्रत्यय। "गृहयालुर्ग्रहीतरि" इत्यमरः। जो जल-रूप किलेमें रहनेवाले मृणालोंको भी अपने बाहुसे जीतती हैं और जो सूर्य-का अथवा मित्रका आश्रय लेनेवाले कमलोंकी शोभा वा सम्पत्तिको भी अपने हाथोंके विलाससे अथवा करके रूपमेंसे ग्रहण करती हैं ऐसी वीर नारी आप ऐसे वीरके लिए बहुत ही योग्य हैं यह तात्पर्य है। इस पद्यमें दमयन्ती और नलरूप योग्य व्यक्तियोंकी अनुरूपतासे श्लाघा होनेसे "सम" "अलङ्कार है, जैसे कि "समं स्यादानुरूप्येण श्लाघा या योग्यवस्तुनोः।" सा० टि० १०–९२। मित्र, कर, लीला और श्री का सूर्य, वलि, क्रिया और सम्पत्तिसे भेद होनेपर भी श्लेषसे अभेदका अध्यवसाय होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है अत एव इनका अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ २९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वयसी शिशुतातदुत्तरे सुदृशि स्वाऽभिविधिं विधित्सुनी ।
विधिनाऽपि न रोमरेखया कृतसीम्नी प्रविभज्य रज्यतः ॥ ३० ॥

अन्वयः—सुदृशि स्वाऽभिविधिं विधित्सुनी शिशुतातदुत्तरे वयसी विधिना रोमरेखया प्रविभज्य कृतसीम्नी अपि न रज्यतः ॥ ३० ॥

व्याख्या:—सुदृशि=सुलोचनायां, सुन्दर्यां दमयन्त्यामिति भावः । स्वाऽभिविधिं = निजव्याप्तिं, विधित्सुनी = विधातुम् इच्छती, शिशुतातदुत्तरे = बाल्ययौवने, वयसी = अवस्थे, विधिना = ब्रह्मणा, स(मा)ऽभिज्ञेनेति भावः । रोमरेखया = लोमपङ्क्त्या, सीमाचिह्नेनेति भावः । प्रविभज्य = प्रविभागं कृत्वा, रोमोत्पत्तेः पूर्वमत्र शैशवेन स्थातव्यं, ततः परं यौवनेनेति कालतो विभागं कृत्वेति भावः । कृतसीम्नी अपि = विहितमर्यादे अपि, न रज्यतः न सन्तुष्यतः, रम्यवस्तु दुस्त्यजमिति भावः । एतेन वयःसन्धिरुक्तः ॥ ३० ॥

अनुवादः—सुन्दरी दमयन्तीमें अपनी प्रभुताको रखनेकी इच्छा करनेवाली, बचपन और जवानी अवस्थाएँ ब्रह्माजीके रोमकी रेखासे विभाग करके मर्यादा करनेपर भी सन्तुष्ट नहीं होती हैं ॥ ३० ॥

टिप्पणी—सुदृशि = शोभने दृशौ यस्याः सा सुदृक्, तस्याम् (बहु०) । स्वाऽभिविधिं = स्वस्य अभिविधिः, तम् (ष० त०) । विधित्सुनी = विधातुमिच्छुनी, वि+धा+सन्+उ+औ । शिशुतातदुत्तरे = शिशोर्भावः शिशुता, शिशु+तल्+टाप् । तस्या उत्तरम् (ष० त०) । शिशुता च तदुत्तरं (यौवनम्) च (द्वन्द्वः), वयसी = "खगबाल्यादिनोर्वयः" इत्यमरः । रोमरेखया = रोम्णां रेखा, तया (ष० त०) । प्रविभज्य = प्र+वि+भज्+क्त्वा (ल्यप्) । कृतसीम्नी = कृता सीमा ययोस्ते (बहु०) । रज्यतः = "रञ्ज रागे" धातु से लट्+तस् । "अनिदितां हल उपधायाः क्ङिति" इससे नकारका लोप । इस पद्यमें प्रस्तुत वयोविशेषके साम्यसे अप्रस्तुत विवादकी प्रतीति होनेसे समासोक्ति अलङ्कार है ॥ ३० ॥

अपि तद्वपुषि प्रसर्पतोर्गमिते कान्तिझरैरगाधताम् ।
स्मरयौवनयोः खलु द्वयोः प्लवकुम्भौ भवतः कुचावुभौ ॥ ३१ ॥

अन्वयः—कान्तिझरैः अगाधतां गमिते तद्वपुषि प्रसर्पतोः स्मरयौवनयोः द्वयोः अपि उभौ कुचौ प्लवकुम्भौ भवतः खलु ॥ ३१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—श्लोकत्रयेण पयोधरौ वर्णयति—अपीति । कान्तिभरैः=लावण्यप्रवाहैः, अगाधताम् = अतलस्पर्शताम्, दुरवगाहतामिति, भावः । गमिते = प्रापिते, तद्वपुषि = दमयन्तीशरीरे, प्रसर्पतोः = प्रसर्पणं कुर्वतोः, प्लवमानयोरिति भावः । स्मरयौवनयोः = कामतारुण्ययोः, द्वयोरपि = उभयोरपि, उभौ = द्वौ, कुचौ = पयोधरौ, प्लवकुम्भौ = तरणकलशौ, भवतः = विद्येते, खलु = निश्चयेन, लोकेऽपि तरद्भिरनिमज्जनाय कुम्भादिकमाश्रीयते इति प्रसिद्धम् ॥ ३१ ॥

अनुवादः—लावण्यके प्रवाहोंसे अतलस्पर्शी दमयन्तीके शरीरमें, तैरते हुए कामदेव और तारुण्य दोनोंको दमयन्तीके दोनों कुच तैरनेके लिए घड़े हो रहे हैं ॥ ३१ ॥

टिप्पणी—कान्तिभरैः = कान्तीनां भराः, तैः (ष० त०), "वारिप्रवाहो निर्भरो भरः" इत्यमरः । गमिते = गम् + णिच् + क्तः + ङि । तद्वपुषि = तस्या वपुः, तस्मिन् (ष० त०) । प्रसर्पतोः = प्रसर्पत इति प्रसर्पती, तयोः, प्र + सृप् + लट् (शतृ) + ओस् । स्मरयौवनयोः = स्मरश्च यौवनं च स्मरयौवने, तयोः (द्वन्द्वः) । प्लवकुम्भौ = प्लवस्य कुम्भौ (ष० त०) । इस पद्यसे दमयन्तीके शरीरमें कान्तिकी प्रचुरता, कामदेव और यौवनका प्रादुर्भाव और दमयन्तीके कुचोंका विस्तार ऐसे अर्थ सूचित होते हैं । दमयन्तीके कुचोंमें कामदेव और यौवनके प्लवनकुम्भत्वकी उत्प्रेक्षासे कुचोंकी अतिशय वृद्धि व्यङ्ग्य होती है । इस प्रकार अलङ्कार से वस्तुध्वनि है ॥३१॥

कलसे निजहेतुदण्डजः किमु चक्रभ्रमकारितागुणः ? ।
स तदुच्चकुचौ भवन् प्रभाझरचक्रभ्रममातनोति यत् ॥ ३२ ॥

अन्वयः—निजहेतुदण्डजः चक्रभ्रमकारितागुणः कलसे किमु ? यत् स तदुच्चकुचौ भवन् प्रभाभरचक्रभ्रमम् आतनोति ॥ ३२ ॥

व्याख्या—निजहेतुदण्डजः = स्वकारणदण्डजन्यः, चक्रभ्रमकारितागुणः = कुलालभाण्डभ्रमणजनकत्वधर्मः, कलसे किमु = दण्डकार्यरूपे घटे किम्, संक्रान्त इति शेषः । यत् = यस्मात् कारणात्, सः = कलसः, तदुच्चकुचौ = दमयन्त्युन्नतपयोधरौ, भवन् = सन्, दमयन्तीकुचस्वरूपेण परिणतः सन्निति भावः । प्रभाभरचक्रभ्रमं = प्रभाभरे (लावण्यप्रवाहे) चक्रभ्रमम् (चक्रवाकभ्रान्ति, कुलालदण्डभ्रमणं च), आतनोति = प्रकरोति ॥ ३२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—अपने कारण दण्डसे उत्पन्न चक्र भ्रमणकारकत्वस्वरूप गुण कलसरूप कार्यमें संक्रान्त हुआ है क्या ? जिस कारणसे कि वह (कलस) दमयन्तीके उच्च कुचोंके स्वरूपमें परिणत होता हुआ लावण्यके प्रवाहमें चक्रवाककी भ्रान्ति वा कुम्भकारके दण्डभ्रमणको कर रहा है ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—निजहेतुदण्डजः = निजश्चासौ हेतुः (क० धा०), स चाऽसौ दण्डः (क० धा०), तस्माज्जातः, निजहेतुदण्ड + जन् + डः। चक्रभ्रमकारिता-गुणः = भ्रमणं भ्रमः, "भ्रमु अनवस्थाने" धातुसे "भावे" इस सूत्रसे भावमें घञ् और "नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः" इस सूत्रसे वृद्धिका निषेध। "भ्रमोऽम्बुनिर्गमे भ्रान्तौ कुविन्दभ्रमयोरपि।" इति मेदिनी। चक्रस्य भ्रमः (ष० त०), चक्रो गणे चक्रवाके चक्रं सैन्यरथाऽङ्गयोः। ग्रामजाले कुलालस्य भाण्डे राष्ट्राऽस्त्रयोरपि।' इति विश्वः। चक्रभ्रमं करोतीति तच्छीलः चक्रभ्रम-कारी, चक्रभ्रम + कृ + णिनि + सुः (उपपद०) चक्रभ्रमंकारिणो भावः चक्रभ्रम-कारिता, चक्रममकारिन् + तल् + टाप्। सा एव गुणः (रूपक०) "गुणः प्रधाने रूपादौ" इत्यमरः। तदुच्चकुचौ = उच्चौ च तौ कुचौ (क० धा०)। तस्या उच्चकुचौ (ष० त०)। भवन् = भवतीति, भू लट् शतृ + सुः। प्रभा-झरचक्रभ्रमं=प्रभाणां झरः (ष० त०), चक्रस्य भ्रमः (ष०त०) प्रभाझरे चक्रभ्रमः, तम् (स० त०) चक्रवाकभ्रान्ति कुलालदण्डभ्रमणं च। आतनोति = आङ् + तनु + लट् + तिप्।

महाकविने इस पद्यमें न्यायशास्त्रमें अपनी अभिज्ञता दरसाई है। न्यायशास्त्रके अनुसार कारणके तीन भेद होते हैं—समवायि कारण, असम-वायिकारण और निमित्तकारण। जिसमें समवाय सम्बन्धसे विद्यमान होकर कार्य उत्पन्न होता है उसे "समवायिकारण" कहते हैं, जैसे घटका कपाल समवायिकरण है, वेदान्ती इसे ही "उपादान कारण" कहते हैं। समवायिकारण द्रव्य ही होता है। घटका कपालद्वयसंयोग "असमवायिकारण" है। असमवायि कारण गुण वा कर्म होता है द्रव्य नहीं। समवायिकारण और असमवायिकारणसे भिन्न कारणको निमित्त कारण कहते हैं, जैसे घटका कुलाल, दण्ड आदि निमित्त कारण हैं। "कारणगुणाः कार्यगुणानारभन्ते "अर्थात् कारणके गुण कार्यके गुणोंको बनाते हैं। जैसे कि पटका तन्तु समवायिकरण है, शुक्ल तन्तु शुक्ल पटका और कृष्णतन्तु कृष्ण पटका निर्माण करते हैं, यह नियम सम-वायिकारणमें मात्र चरितार्थ होता है असमवायिकारण और निमित्त कारणमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नहीं। परन्तु कलश (घट) दमयन्तीके कुचस्वरूपमें परिणत होकर लावण्य-प्रवाहमें जो कुलालचक्रका भ्रम उत्पन्न कर रहा है सो उस कलसमें उसके हेतु (निमित्तकारण) दण्डसे उत्पन्न हुआ है ऐसा प्रतीत होता है। दमयन्तीके कुचकलशमें चक्रवाककी भ्रान्ति होती है यह दूसरा अर्थ भी होता है। इस प्रकार दमयन्तीके कुचकलशका निमित्तकारण कुलालचक्रका भ्रम कार्य-भूत दमयन्तीके कुचकलशमें भी देखा जाता है यह तात्पर्य है

इस पद्यमें "तदुच्चकुचौ भवन्" इस अंशमें रूपक, पूर्वार्द्धमें उत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्धमें उत्प्रेक्षाके वाचक इव आदि शब्दोंके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा और चक्रका कुलालभाण्ड और चक्रवाक, भ्रमका भ्रमण और भ्रान्ति इनमें भेद होनेपर भी श्लेषकी महिमासे अभेद अध्यवसाय होनेसे दो अतिशयोक्तियाँ हैं इस प्रकारसे सङ्कर है ॥३२॥

भजते खलु षण्मुखं शिखी चिकुरैर्निर्मितबर्हगर्हणः।
अपि जम्भरिपुं दमस्वसुर्जितकुम्भः कुचशोभयेभराट् ॥ ३३ ॥

अन्वयः—दमस्वसुः चिकुरैः निर्मितबर्हगर्हणः शिखी षण्मुखं भजते खलु। दमस्वसुः कुचशोभया जितकुम्भः इभराट् अपि जम्भरिपुं भजते खलु ॥ ३३ ॥

व्याख्या—दमस्वसुः = दमभगिन्याः, दमयन्त्या इत्यर्थः। चिकुरैः = केश-कलापैः, निर्मितबर्हगर्हणः = कृतपिच्छनिन्दः, शिखी = मयूरः, षण्मुखं = षडाननं, कार्तिकेयमित्यर्थः, भजते = आश्रयते, खलु = निश्चयेन। तथैव दम-स्वसुः = दमयन्त्याः, कुचशोभया = पयोधरकान्त्या, जितकुम्भः = पराजित-मस्तकपिण्डः, इभराट् अपि = ऐरावतः अपि, जम्भरिपुं = जम्भभेदिनम्, इन्द्र-मित्यर्थः, भजते = आश्रयते, खलु = निश्चयेन, उभयत्रापि भीतया उत्कर्ष-प्राप्तीच्छया वेति बोद्धव्यम् ॥ ३३ ॥

अनुवादः—दमयन्तीके केशकलापोंसे पिच्छोंका तिरस्कार किये जानेसे मयूरने कार्तिकेयका आश्रय लिया है। उसी प्रकार दमयन्तीके कुचोंकी कान्तिसे मस्तकपिण्डोंके परास्त होनेसे ऐरावत हाथीने भी इन्द्रका आश्रय लिया है ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—दमस्वसुः = दमस्य स्वसा, तस्याः (ष० त०)। निर्मितबर्ह-बर्हणः=बर्हाणां गर्हणा (ष० त०), "पिच्छबर्हे नपुंसके" इत्यमरः। निर्मिता बर्हगर्हणा यस्य सः (बहु०)। शिखी = शिखा (चूडा) अस्याऽस्तीति, शिखा-शब्दसे "व्रीह्यादिभ्यश्च" इस सूत्रसे इनि। "शिखावलः शिखी केकी"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इत्यमरः। षण्मुखं = षट् मुखानि यस्य सः, तम् (बहु०) "यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा" इससे अनुनासिक ण आदेश, एक पक्षमें "षड्मुखम्"। "कार्त्तिकेयो महासेनः शरजन्मा षडाननः।" इत्यमरः। भजते = भज सेवायाम्" धातुसे लट्+त। कुचशोभया = कुचयोः शोभा, तया (ष० त०)। जितकुम्भः = जितौ कुम्भौ यस्य सः (बहु०)। इभराट् = राजति इति राट्, "राजृ दीप्तौ" धातुसे "सत्सूद्विष०" इत्यादि सूत्रसे क्विप् प्रत्यय। इभानां राट् (ष० त०)। जम्भरिपुं = जम्भस्य रिपुः, तम् (ष० त०), "जम्भभेदी हरिहयः स्वाराण् नमुचिसूदनः।" इत्यमरः। इस पद्यमें "भजते" इस एक क्रियामें अप्रस्तुत शिखी और इभराट् इनका कर्तृत्वसे सम्बन्ध होनेसे तुल्ययोगिता, षण्मुख और जम्भरिपुके भजनके प्रति निर्मितबर्हगर्हणत्व और जितकुम्भत्वकी हेतुतासे पदार्थहेतुक दो काव्यलिङ्ग तथा वैसे हेतुसे भजनद्वयका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धका प्रतिपादन करनेसे दो अतिशयोक्तियाँ हैं, इस प्रकार इन अलङ्कारोंका सङ्कर है ॥ ३३ ॥

उदरं नतमध्यपृष्ठतास्फुरदङ्गुष्ठपदेन मुष्टिना।
चतुरङ्गुलमध्यनिर्गतत्रिवलिभ्राजि कृतं दमस्वसुः ॥ ३४ ॥

अन्वयः—दमस्वसुः उदरं नतमध्यपृष्ठतास्फुरदङ्गुष्ठपदेन मुष्टिना चतुरङ्गुलमध्यनिर्गतत्रिवलिभ्राजि कृतम् ॥ ३४ ॥

व्याख्या—दमस्वसुः = दमयन्त्याः, उदरं = जठरं, नतमध्यपृष्ठतास्फुरदङ्गुष्ठपदेन = निम्नमध्यप्रदेशपश्चाद्भागतास्फुटीभवद्वृद्धाङ्गुलिन्यासस्थानेन, मुष्टिना = सम्पिण्डिताङ्गुलिपाणिना, चतुरङ्गुलमध्यनिर्गतत्रिवलिभ्राजि = अङ्गुलिचतुष्टयाऽन्तरालनिःसृतवलित्रयशोभि, कृतं = विहितं, कौतुकिना विधिनेति शेषः। मुष्टिग्राह्यमध्येयं दमयन्तीति भावः ॥ ३४ ॥

अनुवाद—दमयन्तीका पेट, ब्रह्माजीने पीठका मध्यभाग नत होनेसे अंगूठेका स्थान व्यक्त होनेवाली मुट्ठीसे चार उंगलियोंके बीचसे निकली हुई तीन उदररेखाओंसे शोभित बनाया है ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—दमस्वसुः = दमस्य स्वसा, तस्याः (ष० त०)। उदरं = "पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम्" इत्यमरः। नतमध्यपृष्ठतास्फुरदङ्गुष्ठपदेन = नतः मध्यः यस्य तत् (बहु०), "मध्यमं चाऽवलग्नं च मध्योऽस्त्री" त्यमरः। नतमध्यं पृष्ठं यस्य (उदरस्य) तत् (बहु०), तस्य भावः तत्ता, (नतमध्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृष्ठ+तल्+टाप्)। स्फुरत् अङ्गुष्ठपदं यस्य सः (बहु०)। नतमध्यपृष्ठतया स्फुरदङ्गुष्ठपदः, तेन (तृ० त०)। चतुरङ्गुलमध्यनिर्गतत्रिवलिभ्राजि = चतसृणाम् अङ्गुलीनां समाहारः चतुरङ्गुलम्, "तद्धितार्थोत्तरपदसमाहारे च" इससे समास "संख्यापूर्वो द्विगुः" इससे उसकी द्विगुसंज्ञा, "स नपुंसकम्" इससे नपुंसकलिङ्गता और "तत्पुरुषस्याऽङ्गुलेः संख्याऽव्ययादेः" इस सूत्रसे समासाऽन्त अच् प्रत्यय। चतुरङ्गुलस्य मध्याः (ष० त०)। चतुरङ्गुलमध्येभ्यो निर्गतम् (प० त०)। तिसृणां वलीनां समाहारः त्रिवलि, पहलेके समान द्विगुसमासआदि कार्य। चतुरङ्गुलमध्यनिर्गतं च तत् त्रिवलि (क० धा०), तेन भ्राजते तच्छीलं, चतुरङ्गुलमध्यनिर्गतत्रिवलि+भ्राज्+णिनि+सुः (उपपद०)। क्रतं = क्र+क्तः (कर्ममें)। दमयन्तीकी कमर मुट्ठीसे ग्रहणकी योग्य (पतली) है। मुट्ठीसे ग्रहण करनेसे अंगूठेसे प्रेरणा करनेसे पीठके बीचमें नम्रता और पेटमें चार उंगलियोंसे प्रेरणा करनेसे तीन उदररेखाओंके आविर्भावकी उत्प्रेक्षा होती है। उत्प्रेक्षावाचक शब्द इव आदिके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥ ३४॥

> उदरं परिमाति मुष्टिना कुतुकी कोऽपि दमस्वसुः किमु ?।
> धृततच्चतुरङ्गुलीव यद्वलिभिर्भाति सहेमकाञ्चिभिः॥ ३५॥

अन्वयः—कः अपि कुतुकी दमस्वसुः उदरं मुष्टिना परिमाति किमु ? यत् सहेमकाञ्चिभिः वलिभिः धृततच्चतुरङ्गुलि इव भाति॥ ३५॥

व्याख्या—प्रकारान्तरेण उदरमेव वर्णयति—उदरमिति। कः अपि = अज्ञातनामधेयो जनः, कुतुकी=कुतूहली सन्, दमस्वसुः = दमयन्त्याः। उदरं = जठरं, मुष्टिना = सम्पिण्डिताऽङ्गुलिपाणिना, परिमाति किमु = परिच्छिनत्ति किम् ?, यत् = यस्मात्कारणात्, सहेमकाञ्चिभिः = सुवर्णमेखलासहिताभिः, वलिभिः = तिसृभिः उदररेखाभिः, तधृतच्चतुरङ्गुलि इव = धृतपरिमात्रङ्गुलीचतुष्टयम् इव, भाति = शोभते॥ ३५॥

अनुवादः—कोई पुरुष कुतूहलसे युक्त होकर दमयन्तीके पेटको मुट्ठीसे मापता है क्या ? जो कि सुवर्णमेखलाके साथ तीन उदररेखाओंसे दमयन्तीका पेट, मापनेवालेकी चार उङ्गलियोंके निशानसे युक्तके समान मालूम पड़ता है॥ ३५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—कुतुकी = कुतुकम् अस्याऽस्तीति, कुतुक + इनिः। "कौतूहलं कौतुकं च कुतुकं च कुतूहलम्। "इत्यमरः।" परिमाति = परि–उपसर्गपूर्वक "माङ् माने" धातुसे लट्। किमु = यह उत्प्रेक्षावाचक शब्द है। सहेमकाञ्चिभिः = हेम्नः काञ्चिः (ष० त०)। तया सहिताः सहेमकाञ्चयः, ताभिः (तुल्ययागवहु०)। धृततच्चतुरङ्गुलि = चतुःसंख्यका अङ्गुल्यः चतुरङ्गुल्यः (मध्यमपदलोपी स०), तस्य (परिमातुः) चतुरङ्गुल्यः (ष० त०)। धृताः तच्चतुरङ्गुल्यो येन तत् (बहु०)। तीन उदररेखाएँ और चौथी हेमकाञ्ची (सुवर्णमेखला) इसप्रकार मापनेवालेकी मुट्ठीकी चार उङ्गलियोंकी समान प्रतीत होती हैं, यह तात्पर्य है। पहलेके पद्यमें तीन उदररेखाओंकी चार उङ्गलियोंके मध्यसे निकलनेकी उत्प्रेक्षा की गई है, इसमें काञ्चीसे युक्त उन्हीं उदररेखाओंको अङ्गुलिचतुष्टयरूपमें उत्प्रेक्षा की गई है, यह भेद है। इस पद्यमें दो उत्प्रेक्षाओंका सङ्कर है॥ ३५॥

पृथुवर्तुलतन्नितम्बकृन्मिहिरस्यन्दनशिल्पशिक्षया।
विधिरेकचक्रचारिणं किमु निर्मित्सति मान्मथं रथम्?॥ ३६॥

अन्वयः—पृथुवर्तुलतन्नितम्बकृत् विधिः मिहिरस्यन्दनशिल्पशिक्षया एकचक्रचारिणं मान्मथं रथं निर्मित्सति किमु?॥ ३६॥

व्याख्या—पृथुवर्तुलतन्नितम्बकृत् = विशालवृत्तदमयन्तीकटिपश्चाद्भागनिर्माता, विधिः = ब्रह्मा, मिहिरस्यन्दनशिल्पशिक्षया = रविरथनिर्माणाऽभ्यासपाटवेन, एकचक्रचारिणम् = एकाकिरथाऽङ्गचरणशीलं, मान्मथं = मन्मथसम्बन्धिनं, रथं = स्यन्दनं, निर्मित्सति किमु = निर्मातुम् इच्छति किम्?, ब्रह्मा सूर्यस्येव मन्मथस्यापि एकचक्रं रथं निर्मातुमिच्छति किम्? इति भावः॥ ३६॥

अनुवादः—विशाल और गोल दमयन्तीके नितम्बको बनानेवाले ब्रह्माजी सूर्यके रथके निर्माणको अभ्यासपटुतासे एक ही चक्रसे चलनेवाले कामदेवके रथको बनाना चाहते हैं क्या?॥ ३६॥

टिप्पणी—पृथुवर्तुलतन्नितम्बकृत् = "पृथुश्चाऽसौ वर्तुलः (क० धा०), "विशङ्कटं पृथु बृहद्विशालम्" इति "वर्तुलं निस्तलं वृत्तम्" इत्यप्यमरः। तस्या नितम्बः (ष० त०), "पश्चान्नितम्बः स्त्रीकट्याः" इत्यमरः। पृथुवर्तुलश्चाऽसौ तन्नितम्बः (क० धा०), तं करोतीति, पृथुवर्तुलतन्नितम्ब + कृ + क्विप् + सुः (उपपद०)। मिहिरस्यन्दनशिल्पशिक्षया = मिहिरस्य स्यन्दनः (ष० त०), तस्य शिल्पं (ष० त०), तस्य शिक्षा, तया (ष० त०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एककचक्रचारिणम् = एकम् एव एककम् 'एक' शब्दसे 'एकादाकिनिच्चाऽसहाये' इस सूत्रसे कन् प्रत्यय, 'एकाकी त्वेक एककः' इत्यमरः । एककं च तत् चक्रं (क० धा०), तेन चरतीति तच्छीलः, तम्, एककचक्र+चर+णिनि+अम् (उपपद०) । मान्मथं = मन्मथस्य अयं मान्मथः, तम्, मन्मथ शब्दसे 'तस्येदम्' इस सूत्रसे अण् और 'तद्धितेष्वचामादेः' इस सूत्रसे आदिवृद्धि । निर्मित्सति=निर्-उपसर्गपूर्वक-माङ् धातुसे सन्+लट्+तिप् । 'सनि मीमाघुरभलभशकपतपदामच इस्' इससे इस् आदेश 'सः स्यार्धधातुके इससे सकारके स्थानमें तकार आदेश और 'अत्र लोपोऽभ्यासस्य' इस सूत्रसे अभ्यासका लोप होता है। इस पद्यमें भी उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ३६ ॥

तरुमूरुयुगेण सुन्दरी किमु रम्भां परिणाहिना परम् ।
तरुणीमपि जिष्णुरेव तां धनदाऽपत्यतपःफलस्तनीम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः—सुन्दरी परिणाहिना ऊरुयुगेण रम्भां तरुं परं जिष्णुः किमु ? धनदाऽपत्यतपःफलस्तनीं तां तरुणीम् अपि जिष्णुः एव ॥ ३७ ॥

व्याख्या—सुन्दरी = रुचिराऽङ्गी, दमयन्तीत्यर्थः । परिणाहिना = विपुलेन, ऊरुयुगेण = सक्थियुग्मेन, रम्भां = रम्भां नाम, तरुं = वृक्षं, परं = केवलं, जिष्णुः=जयशीला इति, किमु=किं वक्तव्यम्, अपि तु धनदाऽपत्यतपःफलस्तनीं = कुवेरपुत्रतपःफलभूतकुचां, तां = प्रसिद्धां रम्भां, तरुणीम् अपि = युवतीम् अपि, जिष्णुः एव = जयशीला एव । दमयन्ती ऊरुसौन्दर्येण न रम्भां नाम तरुमेव रम्भां नामाऽप्सरोविशेषमपि जितवतीति भावः ॥ ३७ ॥

अनुवादः—सुन्दरी दमयन्तीने विशाल दोनों ऊरुओंसे रम्भा (केला) नामके पेड़को ही जीत लिया यह क्या कहना है ? कुवेरके पुत्र नलकूबरकी तपस्याके फलभूत स्तनोंवाली रम्भा नामकी तरुणीको भी जीत ही लिया है ।

टिप्पणी—सुन्दरी = सुन्दर शब्दसे स्त्रीत्वविवक्षामें 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इस सूत्रसे ङीष् । परिणाहिना = परिणाहः अस्याऽस्तीति परिणाहि, तेन, परिणाह+इनि+टा । 'परिणाहो विशालता' इत्यमरः । ऊरुयुगेण = ऊर्वोर्युगं, तेन (ष० त०), 'कुमति च' इससे नकारके स्थानमें णत्व । 'सक्थि क्लीवे पुमानूरुः' इत्यमरः । रम्भां = 'रम्भा कदल्यप्सरसोः' इति विश्वः । 'रम्भा' शब्दसे 'जिष्णुः, पदके योगमें 'कर्तृकर्मणोः कृति' इस सूत्रसे कर्ममें षष्ठीकी प्राप्ति थी, 'न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्' इससे उसका निषेध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

होनेसे कर्ममें द्वितीया। जिष्णुः = जयशीला, 'जि' धातुसे 'ग्लाजिस्थश्च ग्स्नुः' इस सूत्रसे ग्स्नु प्रत्यय। धनदाऽपत्यतपःफलस्तनीं = धनं ददातीति धनदः, धन + दा + कः (उपपद०)। मनुष्यधर्मा धनदो राजराजो धनाऽधिपः।' इत्यमरः। धनदस्य अपत्यं (ष० त०) तस्य तपः (ष० त०)। फले इव स्तनौ यस्याः सा फलस्तनी, (बहु०)। धनदाऽपत्यतपसः फलस्तनी, ताम् (ष० त०)। रम्भे इव अथवा रम्भाया इव ऊरू यस्याः सा:, बहुव्रीहि अथवा व्यधिकरणबहुव्रीहि दोनों समासोंसे दमयन्ती "रम्भोरू" है अर्थात् दमयन्तीके ऊरु कदलीस्तम्भोंके वा रम्भा अप्सराके समान हैं अतः वह 'रम्भोरू' पदसे वाच्य है यह तात्पर्य है। इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें अर्थापत्ति और उतरार्द्धमें दमयन्तीके ऊरुओंसे रम्भा (कदली) और रम्भा अप्सराके जयका सम्वन्ध न होनेपर भी सम्वन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति है इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है॥ ३७॥

जलजे रविसेवयेव ये पदमेतत्पदतामवापतुः।

ध्रुवमेत्य रुतः सहंसकीकुरुतस्ते विधिपत्त्रदम्पती॥ ३८॥

अन्वयः—ये जलजे रविसेवया इव एतत्पदतां पदम् अवापतुः, ते विधिपत्त्रदम्पती एत्य रुतः सहंसकीकुरुतः ध्रुवम्॥ ३८॥

व्याख्या—पद्यद्वयेन दमयन्तीचरणौ वर्णयति जलजे इति। ये, जलजे = द्वे पद्मे, रविसेवया इव = सूर्योपासनया इव, एतत्पदतां = दमयन्तीचरणताम् एव, पदं = स्थानम् प्रतिष्ठामिति भावः। अवापतुः = प्रापतुः। ते = द्वे पद्मे, विधिपत्त्रदम्पती = ब्रह्मवाहनजम्पती, ब्रह्मवाहनभूतौ हंसीहंसाविति भावः। एत्य = आगत्य, रुतः = रवात्' कूजनादित्यर्थः। अथवा रुतः = कूजतः। सहंसकीकुरुतः = पादकटकयुक्ते हंसयुक्ते च कुरुतः, ध्रुवम् = इव। द्वे कमले सूर्यसेवया इव दमयन्तीचरणरूपां प्रतिष्ठां प्रापतुः। दमयन्त्याश्चरणौ कमलसदृशाविति भावः। यत्र कमलं तत्र हंस आगच्छति इति उभयोः सहस्थित्या कमलसदृशौ दमयन्तीचरणौ "सहंसकीकुरुतः" इति शब्देन पादकटकयुक्तौ अथवा हंसयुक्तौ च कुरुत इव॥ ३८॥

अनुवादः—दो कमलोंने मानों सूर्यकी उपासनासे दमयन्तीके चरणरूप प्रतिष्ठाको प्राप्त कर लिया। उन दो कमलोंको ब्रह्माके वाहन हंसी और हंस आकर शब्दसे मानों सहंसक = पादकटकोंसे वा हंसोंसे युक्त बनाते हैं॥३८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी——जलजे = जले जाते, जल + जन् + ड + औ (उपपद०) रविसेवया = रवेः सेवा, तया (ष० त०)। एतत्पदताम् = पदयोर्भावः पदता, पद + तल् + टाप्। 'पदं व्यवसितित्राणस्थानलक्ष्माङ्घ्रिवस्तुषु।' इत्यमरः, एतस्याः पदता, ताम् (ष० त०)। अवापतुः = अव + आप् + लिट् + तस् (अतुस्)। ते = यह "जलजे" का सर्वनाम कर्म है। विधिपत्त्रदम्पती = विधेः पत्त्र (ष० त०), 'सर्वं स्याद्वाहनं यानं युग्मं पत्त्रं च धारणम्।' इत्यमरः। जाया च पतिश्च दम्पती (द्वन्द्वः), 'राजदन्तादिषु परम्' इस सूत्रसे 'जाया' शब्दका 'दम्' भावका निपातन, "दम्पती जम्पती जायापती भार्यापती च तौ। "इत्यमरः। विधिपत्त्रे च ते दम्पती (क० धा०)। एत्य = आङ् + इण् + क्त्वा (ल्यप्)। रुतः = रवणं रुत्, तस्याः "रु शब्दे" धातुसे 'सम्पदादिभ्यः क्विप्' इस वार्तिकसे क्विप् प्रत्यय और "ह्रस्वस्य पिति कृति तुक्" इस सूत्रसे तुक् आगम। सहंसकोकुरुतः=हंसौ इव हंसके, 'हंस' शब्दसे "इवे प्रतिकृतौ" इस सूत्रसे कन् प्रत्यय। हंसकाभ्यां (पादकटकाभ्याम्) सहिते सहंसके, (तुल्ययोगबहु०), "हंसकः पादकटकः" इत्यमरः। असहंसके सहंसके यथा सम्पद्येते तथा कुरुतः, सहंसक + च्वि + कृ + लट् + तस्। ब्रह्माके वाहन हंसी और हंस आकर दो कमलों (दमयन्तीके चरणों)-को शब्द करके मानों पादकटकों (नूपुरों) से युक्त बनाते हैं यह तात्पर्य है। रुतः = शब्द करते हैं, इस पक्षमें 'रु शब्दे' धातुसे लट् + तस्। सहंसकीकुरुतः = हंसाभ्यां सहिते सहंसके (तुल्ययोगबहु०), 'शेषाद्विभाषा' इस सूत्रसे समासाऽन्त कप् प्रत्यय। च्विप्रत्यय पहलेके समान। ब्रह्माके वाहन हंसी और हंस आकर शब्द करते हैं और दमयन्तीके चरणकमलोंको हंसयुक्त बनाते हैं। ध्रुवम् = यह उत्प्रेक्षावाचक शब्द है। दमयन्तीके चरण कमलसरीखे हैं और वे नूपुरयुक्त होकर शब्द करते हैं यह अभिप्राय है। इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें कमल और हंसका सहस्थिति होनेसे दिव्य कमलोंकी दमयन्तीके चरणत्वमें गुणोत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्धमें दिव्यहंसोंके सहंसकत्व करनेसे क्रियोत्प्रेक्षा और हस और हंसक (पादकटक) में भेद होनेपर भी श्लेषसे अभेदका अध्यवसाय होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है, इस प्रकार इनकी निरपेक्षतासे स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है ॥ ३८ ॥

श्रितपुण्यसरःसरित् कथं न समाधिक्षपिताऽखिलक्षपम्।
जलजं गतिमेतु मञ्जुलां दमयन्तीपदनाम्नि जन्मनि ॥ ३९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—श्रितपुण्यसरःसरित् समाधिक्षपिताऽखिलक्षपं जलजं दमयन्तीपदनाम्नि जन्मनि मञ्जुलां गतिं कथं न एतु ? ॥ ३९ ॥

व्याख्या—श्रितपुण्यसरःसरित् = सेवितपवित्रकासारनदीकं, समाधिक्षपिताऽखिलक्षपं = ध्यानयापितसमस्तरजनीकं, जलजं = कमलं, दमयन्तीपदनाम्नि = दमयन्तीचरणनामधेये, जन्मनि = जनने, जन्मान्तर इति भावः। मञ्जुलां = रमणीयाम्, उत्तमामिति भावः। गतिम् = अवस्थां, कथं = केन प्रकारेण, न एतु = न प्राप्नोतु, एत्वेवेति भावः ॥ ३९ ॥

अनुवादः—पवित्र मानस आदि सरोवर और गङ्गा आदि नदियोंकी सेवा करनेवाला और समाधि (ध्यान वा मुद्रण) से समूची रातको बितानेवाला (इस प्रकार तीर्थसेवा और साधन करनेवाला) कमल, दमयन्तीके चरण ऐसे नामवाले जन्मान्तरमें उत्तम गतिको कैसे नहीं प्राप्त करेगा ? (करेगा हीं) ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—श्रितपुण्यसरःसरित् = सरांसि च सरितश्च सरःसरितः (द्वन्द्वः)। "कासारः सरसो सरः" इति "अथ नदो सरित्" इत्युभयत्राऽप्यमरः। श्रिताः पुण्याः सरःसरितो येन तत् (बहु०)। समाधिक्षपिताऽखिलक्षपं = समाधिना (ध्यानेन मुकुलीभावेन वा) क्षपिताः (तृ० त०)। "क्षै क्षये" धातुसे णिच् और पुक् आगम होकर क्त प्रत्यय होनेसे 'क्षपित' पद बनता है, मित् होनेसे "मितां ह्रस्वः" इससे ह्रस्व। अखिलाश्च ताः क्षपाः (क० धा०)। समाधिक्षपिता अखिलाः क्षपाः येन तत् (बहु०)। जलजं = जले जातम्, जल+जन्+ड (उपपद०)। दमयन्तीपदनाम्नि=दमयन्त्याः पदं (ष०त०), तत् नाम यस्य तत्, तस्मिन् (बहु०), गतिं = "गतिर्मार्गे दशायां च" इति विश्वः। एतु = इण् धातुसे संभावनामें लोट् + तिप्। मानस आदि सरोवर और गङ्गा आदि नदियोंकी सेवा करनेवाला और समाधिसे समूची रातको बितानेवाला पुरुष जैसे दूसरे जन्ममें उत्तम गतिको प्राप्त करता है उसी प्रकार सरोवर और नदियोंकी सेवा करने वाला और सूर्यके अदर्शनसे रात भर मुकुलितत्व रूप समाधि करनेवाला कमल जन्मान्तरमें दमयन्तीके चरणत्वकी प्राप्ति कैसे नहीं करेगा ? यह भाव है। इस पद्यमें श्लिष्ट विशेषणोंके साम्यसे कमलमें सरोवर और नदियोंकी सेवा करनेवाले तथा समाधि करनेवाले तपस्वीके व्यवहारका समारोपसे समासोक्ति अलङ्कार है तथा "कथं न एतु" यहाँ पर अर्थापत्ति है इस प्रकार अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ३९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरसीः परिशीलितुं मया गमिकर्मीकृतनैकनीवृता ।
अतिथित्वमनायि सा दृशोः सदसत्संशयगोचरोदरी ॥ ४० ॥

अन्वयः—सरसीः परिशीलितुं गमिकर्मीकृतनैकनीवृता मया सदसत्संशय-गोचरोदरी सा दृशोः अतिथित्वम् अनायि ॥ ४० ॥

व्याख्या—तादृशी दमयन्ती त्वया कथं दृष्टेत्यत आह सरसीरिति । सरसीः = सरांसि, उपलक्षणमेतत् सरितश्चेति । परिशीलितुं = परिचेतुं, विहर्तुमिति भावः । गमिकर्मीकृतनैकनीवृता = गमनफलाश्रयीकृताऽनेकजन-पदेन, मया = हंसेन, सदसत्संशयगोचरोदरी = भावाऽभावसन्देहास्पदो-दरी, कृशोदरीति भावः, तादृशी सा = दमयन्ती, दृशोः = नेत्रयोः, अतिथित्वं= प्राघुणिकत्वं, ग्राह्यत्वम् । अनायि प्रापिता, अवलोकितेति भावः ॥ ४० ॥

अनुवादः—जलाशयोंमें विहार करनेके लिए अनेक देशोंको गमनका कर्म बनानेवाले (भ्रमण करने वाले) मैंने है कि नहीं है ऐसे संशयके विषय-भूत उदरवाली दमयन्तीको देखा ॥ ४० ॥

टिप्पणी—सरसीः = "पिद्गौरादिभ्यश्च" इससे गौरादिगणमें पाठसे ङीष् । परिशीलितुं = परि + शील + तुमुन् । गमिकर्मीकृतनैकनीवृता=गम् धातु-से धातुका निर्देश करनेके लिए "इक्श्तिपौ धातुनिर्देशे" इस वार्तिकसे इक् प्रत्यय होकर "गमि" पद बनता है, उसका अर्थ हुआ गम् धातु । गमेः (गम् धातोः) कर्म गमिकर्म (ष० त०) । अगमिकर्म गमिकर्म यथा संपद्यते तथा कृताः गमिकर्मीकृताः गमिकर्म + च्वि + कृ + क्तः । न एके नैके, "सहसुपा" इससे समास । नितरां वर्तन्ते जना येषु ते नीवृतः, नि—उपसर्गपूर्वक "वृतु वर्तने" धातुसे "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" इस सूत्रसे क्विप् प्रत्यय और "नहिवृतिवृषि-व्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ" इससे पूर्वपदका दीर्घ । "नीवृज्जनपदः" इत्यमरः । गमिकर्मीकृता नैके नीवृतो येन सः, तेन (बहु०) सदसत्संशयगोचरोदरी = सच्च असच्च सदसत् (क० धा०), सदसति संशयः (स० त०), तस्य गोचरः (ष० त०) । सदसत्संशयगोचरः उदरं यस्याः सा (बहु०) "नासिका-दरोष्ठजङ्घादन्तकर्णशृङ्गाच्च" इस सूत्रसे स्त्रीत्वविवक्षामें ङीष् । दमयन्ती कृशोदरी है यह तात्पर्य है । सा= मुख्य कर्म, "अनायि" इससे उक्त होनेसे प्रथमा । अतिथित्वम् = अतिथेर्भावः, तत्त्वम् अतिथि + त्व, गौणकर्म होनेसे द्वितीया । अनायि = "णीञ् प्रापणे" धातुसे कर्ममें लुङ् + त । इस पद्यमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दमयन्तीके उदरमें भाव और अभावके संशयका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धको उक्ति होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥ ४० ॥

अवधृत्य दिवोऽपि यौवतैर्न सहाऽधीतवतीमिमामहम् ।
कतमस्तु विधातुराशये पतिरस्या वसतीत्यचिन्तयम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः—अहम् इमां दिवः यौवतैः अपि सह न अधीतवतीम् अवधृत्य विधातुः आशये अस्याः पतिः कतमः तु वसति इति अचिन्तयम् ॥४१ ॥

व्याख्या—अहं = हंसः, इमाम् = एतां, दमयन्तीमित्यर्थः। दिवः=स्वर्गस्य सम्बन्धिभिः, यौवतैः अपि = युवतीसमूहैः अपि, सह = समं, न अधीतवतीं = न अध्ययनकर्त्रीं, स्वर्गस्थयुवतीसमूहादपि अधिकसुन्दरीमिति भावः, अवधृत्य= निश्चित्य, विधातुः = ब्रह्मणः, आशये = हृदि, अस्याः = दमयन्त्याः, पतिः = भर्ता, कतमः = कः, तु = नु, वसति = तिष्ठति, इति=एवम्, अचिन्तयं = चिन्तितवान् । अहं देवाङ्गनाऽभ्योऽपि सुन्दर्या अस्याः पतिर्ब्रह्मणा को निश्चित इति विमृष्टवानिति भावः ॥ ४१ ॥

अनुवादः—मैंने दमयन्तीको स्वर्गके युवतीसमूहके साथ भी अध्ययन न करनेवाली, अर्थात् उनसे भी अधिक सुन्दरी निश्चय करके ब्रह्माजीने किसको इनका पति बनानेका निश्चय किया है ? ऐसा विचार किया ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—दिवः = "सुरलोको द्योदिवौ द्वे स्त्रियाम्" इत्यमरः । यौवतैः = युवतीनां समूहा यौवतानि' तैः, शतृ प्रत्ययान्त होकर ङीप्प्रत्ययान्त युवती-शब्द से "अनुदात्तादेरञ्" इस सूत्रसे अञ् प्रत्यय" । "भिक्षादिभ्योऽण्" इस सूत्रमें भिक्षाऽऽदिगणमें 'युवति' शब्दके पाठका भाष्य और कैयटने प्रत्याख्यान किया है, इसलिए, उक्त सूत्रसे अण् प्रत्ययका और 'भस्याढे तद्धिते' इससे पुंवद्भावकी कल्पनाका अवलम्बन करना मल्लिनाथजी और नारायण पण्डितका अनुचित है। अधीतवतीम्=अधि–उपसर्गपूर्वक 'इङ् अध्ययने' धातुसे क्तवतु और स्त्रीत्वविवक्षामें 'उगितश्च' इससे ङीप् । अवधृत्य = अव+धृञ्+क्त्वा (ल्यप्) । कतमः='कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने' ऐसे वचनके सामर्थ्यसे स्वार्थमें भी डतमच् प्रत्यय । अचिन्तयम् = चिन्त+ णिच्+लङ्+मिप् । इस पद्यमें उपमानभूत स्वर्गके युवतीसमूहसे भी उपमेयभूत दमयन्तीके आधिक्यका वर्णन करनेसे व्यतिरेक अलङ्कार है ॥४१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुरूपमिमं निरूपयन्नथ सर्वेष्वपि पूर्वपक्षताम् ।
युवसु व्यपनेतुमक्षमस्त्वयि सिद्धान्तधियं न्यवेशयम् ॥ ४२ ॥

अन्वयः—अथ अनुरूपम् इमं निरूपयन् सर्वेषु अपि युवसु पूर्वपक्षतां व्यपनेतुम् अक्षमः (सन्) त्वयि सिद्धान्तधियं न्यवेशयम् ॥ ४२ ॥

व्याख्या—अथ=चिन्ताऽनन्तरम्, अनुरूपं = योग्यं, दमयन्त्या इति शेषः, इमं = पतिं, निरूपयन् = आलोचयन्, सर्वेषु अपि = सकलेषु अपि, युवसु = तरुणेषु, पूर्वपक्षतां = दूष्यकोटितां, व्यपनेतुं = निवारयितुम्, अक्षमः = असमर्थः सन्, त्वयि = भवति विषये, सिद्धान्तधियं = सिद्धान्तबुद्धिं, न्यवेशयं = निवेशितवान्, अन्यान् यूनो दमयन्त्या अयोग्यान्विचार्य भवानेव तस्या अनुरूपपतिरिति निरचैषमिति भावः ॥ ४२ ॥

अनुवादः—चिन्ताके अनन्तर दमयन्तीके अनुरूप पतिकी आलोचना कर मैंने अन्य सभी युवकोंमें पूर्वपक्षता (दूष्यकोटिता) हटानेमें असमर्थ होकर आपमें सिद्धान्त-वुद्धि (दमयन्तीके योग्य पति हैं ऐसी बुद्धि) का स्थापन किया ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—अनुरूपं = रूपस्य योग्यं, योग्यता वा सादृश्यके अर्थमें अव्ययीभाव । निरूपयन् = नि + रूप + णिच् + लट् (शतृ) + सुः । युवसु = 'वयःस्थस्तरुणो युवा' इत्यमरः । पूर्वपक्षतां = पूर्वश्चाऽसौ पक्षः (क० धा०), तस्य भावस्तत्ता, ताम्, पूर्वपक्ष + तल् + टाप् + अम् । व्यपनेतुं= वि + अप + नी + तुमुन् । अक्षमः = न क्षमः (नञ्०) । त्वयि = विषयमें सप्तमी । सिद्धान्तधियं = सिद्धान्तस्य धीः ताम् (ष० त०) न्यवेशयम् = नि-उपसर्गपूर्वक 'विश' धातुसे लङ् + मिप् । शास्त्रार्थमें पूर्वपक्ष जैसे दूष्य और उत्तरपक्ष अर्थात् सिद्धान्तपक्ष स्थापनीय होता है, उसी तरह दमयन्तीके योग्य पतिकी आलोचनामें और सब युवक पूर्वपक्षस्थानीय और नल सिद्धान्तपक्षस्थानीय हैं ऐसा मैंने निश्चय किया है यही ब्रह्माका आशय है यह तात्पर्य है । इस पद्यमें सम अलङ्कार है—

'समं स्यादानुरूप्येण श्लाघा या योग्यवस्तुनोः ।' सा० १०-९२ ॥४२॥

अनया तव रूपसीमया कृतसंस्कारविबोधनस्य मे ।
चिरमप्यवलोकिताऽद्य सा स्मृतिमारूढवती शुचिस्मिता ॥ ४३ ॥

अन्वयः—चिरम् अवलोकिता अपि सा शुचिस्मिता अद्य अनया तव रूपसीमया कृतसंस्कारविबोधनस्य मे स्मृतिम् आरूढवती ॥ ४३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—चिरं = वहुपूर्वकालम्, अवलोकिता अपि = दृष्टा अपि, सा = पूर्वोक्ता, शुचिस्मिता = शुक्लहास्या, सुन्दरी दमयन्तीति भावः। अद्य = अस्मिन् दिने, अनया = संनिकृष्टस्थया, तव = भवतः, रूपसीमया = सौन्दर्यकाष्ठया, कृतसंस्कारविवोधनस्य = उद्वुद्धभावनाऽऽख्यसंस्कारस्य, मे = मम, हंसस्य, स्मृति = संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं, स्मरणमित्यर्थः। आरूढवती = आरूढा, एकसम्वन्धिज्ञानमपरसम्वन्धिस्मारकं भवतीति भावः॥ ४३॥

अनुवादः—बहुत पहले देखी गई वह सुन्दरी (दमयन्ती।) आज आपकी सौन्दर्यकी सीमासे उद्‌वुद्धसंस्कारवाले मेरे स्मरणमार्ग में आरूढ हो गईं॥४३॥

टिप्पणी—अवलोकिता = अव + लोक + क्त (कर्ममें) + टाप्। शुचिस्मिता = शुचि स्मितं यस्याः सा (वहु०)। रूपसीमया = रूपस्य सीमा, तया (ष० त०)। सीमन् शब्दसे 'डावुभाभ्यामन्यतरस्याम्' इस सूत्रसे विकल्पसे डाप् और टा विभक्ति। डाप्‌के अभावमें रूपसीम्ना। कृतसंस्कार-विवोधनस्य = संस्कारस्य विबोधनम् (ष० त०)। संस्कारके तीन भेद होते हैं—वेग, भावना और स्थितिस्थापक। यहाँपर 'भावना' नामक संस्कार उद्दिष्ट है। भावनाका लक्षण है—"अनुभवजन्यः स्मृतिहेतुर्गुणविशेषः" अनुभव-से उत्पन्न स्मरणके कारणभूत गुणविशेषको 'भावना' कहते हैं। यह आत्माका विशेष गुण है। कृतं संस्कारविवोधनं यस्य सः, तस्य (वहु०)। स्मृतिम् = स्मरणं स्मृतिः, ताम्, स्मृ + क्तिन्। वुद्धिके दो भेद होते हैं अनुभव और स्मृति। स्मृतिका लक्षण है—'संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः' अर्थात् भावना-नामक सस्कारमात्रसे उत्पन्न ज्ञानको 'स्मृति' कहते हैं। आरूढवती=आङ्+रुह+क्तवतु+ङीप्। सदृशवस्तुका दर्शन दूसरे वस्तुका स्मारक होता है, अतिशय सुन्दर आपको देखनेसे अत्यन्त सुन्दरी दमयन्तीका मुझे स्मरण हुआ, यह तात्पर्य है। इस पद्यमें स्मरण अलङ्कार है—

"सदृशाऽनुभवाद्वस्तुस्मृतिः स्मरणमुच्यते।" सा० द० १०–४०

विना सादृश्यके भी वस्तुके स्मरणसे राघवानन्दके मतके अनुसार यह अलङ्कार है॥ ४३॥

त्वयि वीर! विराजते परं दमयन्तीकिलकिञ्चितं किल।
तरुणीस्तन एव दीप्यते मणिहारावलिरामणीयकम्॥ ४४॥

अन्वयः—हे वीर! दमयन्तीकिलकिञ्चितं त्वयि परं विराजते किल। मणिहारावलिरामणीयकं तरुणीस्तन एव दीप्यते॥ ४४॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—हे वीर = हे शूर !, दमयन्तीकिलकिञ्चितं = दमयन्ती-शृङ्गारचेष्टाविशेष:, त्वयि = भवति, परम् = एव, विराजते = शोभते, किल= खलु। उक्तमर्थं दृष्टान्तेन समर्थयते—तरुणीति। मणिहारावलिरामणीयकं = मुक्ताहारपङ्क्तिसौन्दर्यं, तरुणीस्तन एव = युवतिपयोधर एव, दीप्यते = शोभते ॥ ४४ ॥

अनुवादः—हे वीर ! दमयन्तीकी शृङ्गारचेष्टाएँ आपमें ही शोभित होती हैं। मोतीकी मालाओंका सौन्दर्य तरुणीके स्तनमें ही शोभित होता है ॥४४॥

टिप्पणी—वीर=वीरयतीति वीर:, तत्सम्बुद्धौ, 'वीर विक्रान्तौ' धातुसे अच् प्रत्यय। 'शूरो वीरश्च विक्रान्त:' इत्यमर:। दमयन्तीकिलकिञ्चितं = दमयन्त्या: किलकिञ्चितम् (ष० त०)। किलकिञ्चितका लक्षण है—

"स्मितशुष्करुदितहसितत्रासक्रोधश्रमादीनाम्।
साङ्कर्यं किलकिञ्चितमभीष्टतमसंगमादिजाद्धर्षात् ॥"

सा० द० ३–११०

अर्थात् प्रियतमके संगम आदिसे उत्पन्न हर्षसे स्त्रियोंके मन्दहास्य, शुष्करोदन, हास्य, क्रोध और श्रम आदिके संमिश्रणको 'किलकिञ्चित' कहते हैं। मणिहारावलिरामणीयकं = हाराणाम् आवलि: (ष० त०), मणि-खचिता हारावलि: (मध्यमपदलोपी०)। रमणीयस्य भाव:, 'रमणीय' शब्दसे 'योपधाद् गुरूपोत्तमाद् वुञ्' इस सूत्रसे वुञ्, "युवोरनाकौ" इससे वुञ्के स्थान-में 'अक' आदेश और आदिवृद्धि। तरुणीस्तने = तरुण्या: स्तन: तस्मिन् (ष० त०), जातिमें एकवचन। दीप्यते = 'दीपी दीप्तौ' धातुसे लट् + त (कर्तामें)। इस पद्यमें उपमान और उपमेय हार और किलकिञ्चितका दो वाक्योंमें बिम्ब और प्रतिबिम्बके भावसे स्तन और नृपमें तुल्यधर्मतासे उक्ति होनेसे दृष्टान्त अलङ्कार है उसका लक्षण है—

"दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुन: प्रतिबिम्बनम्।" १०-६९ ॥ ४४ ॥

तव रूपमिदं तया विना विफलं पुष्पमिवाऽवकेशिन:।
इयमृद्धधना वृथाऽवनी स्ववनी संप्रवदत्पिकाऽपि का ? ॥ ४५ ॥

अन्वय:—(हे वीर !) तव इदं रूपं तया विना अवकेशिन: पुष्पम् इव विफलम्। ऋद्धधना इयम् अवनी वृथा, सम्प्रवदत्पिका स्ववनी अपि का ? ॥४५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—(हे वीर !) तव = भवतः इदं = दृश्यमानं, रूपं = सौन्दर्यम्, अनुत्तममिति शेषः। तया विना = दमयन्त्या विना, अवकेशिनः = वन्ध्यवृक्षस्य, पुष्पम् इव = कुसुमम् इव, विफलं = निष्फलं, निरर्थकमिति भावः। एवं च ऋद्धधना = वृद्धवित्ता, इयं = दृश्यमाना, अवनी = भूमिः, वृथा = व्यर्थप्राया, तया (दमयन्त्या) विनेति शेषः। तथैव सम्प्रवत्पिका = कूजत्कोकिला, स्ववनी अपि = निजोद्यानम् अपि, का = तुच्छा, निरर्थिकेत्यर्थः, दमयन्त्या विनेति शेषः। दमयन्तीयोगे तु भवद्रूपं, भूमिः उद्यानं च सर्वं सफलमिति भावः ॥ ४५ ॥

अनुवादः—(हे वीर !) आपका यह सौन्दर्य, दमयन्तीके न होनेपर वन्ध्य (निष्फल) वृक्षके फूलके समान निरर्थक है। धनसे पूर्ण यह पृथिवी व्यर्थ-प्राय है, उसी प्रकार कोकिलके आलापसे सम्पन्न अपना उद्यान भी निरर्थक है ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—तया = "विना" पदके योगमें "पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे तृतीया, एक पक्षमें पञ्चमी और द्वितीया विभक्ति भी होती है। अवकेशिनः = "वन्ध्योऽफलोऽवकेशी च" इत्यमरः। विफलं = विगतं फलं यस्मात् तत् (वहु०)। ऋद्धधना = ऋद्धं धनं यस्यां सा (वहु०)। अवनी = "क्रुदिकारादक्तिनः" इससे 'अवनि' शब्दसे ङीष्। वृथा = यह अव्यय है। सम्प्रवदत्पिका = सम्प्रवदन्तः पिका यस्यां सा (वहु०)। स्ववनी = अल्पं वनं वनी, 'वन' शब्दसे अवयवके अपचयकी विवक्षामें 'षिद्गौरादिभ्यश्च' इस सूत्रसे गौर आदि गणमें पढ़े जानेसे ङीष्। स्वस्य वनी (ष० त०)। का = "किं वितर्के परिप्रश्ने क्षेपे निन्दाऽपराधयोः।" इति विश्वः। इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें पूर्णोपमा अलङ्कार है, तृतीय और चतुर्थ चरणमें दमयन्तीके विना अवनी और स्ववनीकी असुन्दरताका प्रतिपादन होनेसे दो विनोक्तियां, इस प्रकार इन अलङ्कारोंकी निरपेक्षतासे संसृष्टि है। विनोक्तिका लक्षण है—

"विनोक्तिर्यद्विनाऽन्येन नाऽसाव्वन्यदसाधु वा।" १०–७३ ॥ ४५ ॥

अनयाऽमरकाम्यमानया सह योगः सुलभस्तु न त्वया।
घनसंवृतयाऽम्बुदागमे कुमुदेनेव निशाकरत्विषा ॥ ४६ ॥

अन्वयः—अमरकाम्यमानया अनया सह योगः अम्बुदागमे घनसंवृतया-निशाकरत्विषा सह योगः कुमुदेन इव त्वया न सुलभः।

अथ स्वाऽपेक्षां दर्शयितुं दमयन्त्या दौर्लभ्यं द्योतयति—अनयेति।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—अमरकाम्यमानया = देवाऽभिलष्यमाणया, अनया सह = दमयन्त्या समं, योगः = सम्बन्धः, अम्बुदागमे = मेघागमे, वर्षाकाल इति भावः। घनसंवृतया = मेघच्छन्नया, निशाकरत्विषा सह = चन्द्रकान्त्या समं, योगः = सम्बन्धः, कुमुदेन इव=कैरवेण इव, त्वया = भवता, न सुलभः = न सुप्रापः, दुर्लभ इति भावः, अतोऽहं भैमीसकाशं गत्वा वाक्कौशलेनाऽनुरागमुत्पाद्य तया सह भवतो योगं जनयिष्यामीति तात्पर्यम् ॥ ४६ ॥

अनुवादः—इन्द्र आदि देवताओंसे चाही जानेवाली दमयन्तीके साथ आपका संबन्ध वर्षाकालमें मेघसे आवृत चन्द्रकान्तिके साथ कुमुदसम्बन्धके समान सुलभ नहीं है ॥ ४६ ॥

टिप्पणी—अमरकाम्यमानया = अमरैः काम्यमाना, तया (तृ० त०) अनया = "सह" के योगमें तृतीया। अम्बुदागमे = अम्बुदस्य आगमः, तस्मिन् (ष० त०)। घनसंवृतया = घनैः संवृता, तया (तृ० त०), "घनजीमूतमुदिरजलमुग्धूमयोनयः।" इत्यमरः। निशाकरत्विषा = निशां करोतीति निशाकरः, निशा–उपपदपूर्वक "कृ" धातुसे "दिवाविभानिशा०" इत्यादि सूत्रसे ट प्रत्यय (उपपद०)। निशाकरस्य त्विट्, तया (ष० त०)। सुलभः = सुखेन लब्धुं शक्यः, सु+लभ्+खल् (उपपद०)। इस पद्यमें दमयन्तीके संयोगकी दुर्लभतामें अमरकाम्यमान पदार्थकी हेतुतासे पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग और उपमा अलङ्कार है, इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ४६ ॥

तदहं विदधे तथा तथा दमयन्त्याः सविधे तव स्तवम्।
हृदये निहितस्तया भवानपि नेन्द्रेण यथाऽपनीयते ॥ ४७ ॥

अन्वयः—तत् अहं दमयन्त्याः सविधे तथा तथा तव स्तवं विदधे, यथा तया हृदये निहितो भवान् इन्द्रेण अपि न अपनीयते ॥ ४७ ॥

व्याख्या—अथ दमयन्तीप्राप्त्युपायं प्रकाशयति—तदिति। तत्=तस्मात्कारणात्, दमयन्तीयोगस्य दौर्लभ्यादिति भावः। अहं = हंसः, दमयन्त्याः = भैम्याः, सविधे = समीपे, तथा तथा = तेन तेन प्रकारेण, तव = भवतः, स्तवं = स्तोत्रं, प्रशंसामिति भावः। विदधे = विधास्ये, करिष्यामि। यथा = येन प्रकारेण, तया = दमयन्त्या, हृदये = मनसि, निहितः = स्थापितः, पतित्वेनेति शेषः। भवान्, इन्द्रेण अपि = मघोना अपि, न अपनीयते = नो दूरीक्रियते, मनुष्येणेति तु का वार्तेति भावः। इन्द्रा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिभिः प्रलोभिताऽपि भैमी यथा भवत्येव गाढाऽनुरागा स्यात्तथा प्रयतिष्य इति तात्पर्यम् ।। ४७ ।।

अनुवादः—इस कारणसे मैं दमयन्तीके समीप उस उस प्रकारसे आपकी तारीफ करूँगा, जैसे कि दमयन्तीके हृदयमें रक्खे गये आपको इन्द्र भी नहीं हटा सकेंगे ।। ४७ ।।

टिप्पणी—तत् = यह अव्यय है। सविधे = 'सदेशाऽभ्याससविधसमर्याद-सवेशवत्' इत्यमरः। तथा = तेन प्रकारेण, तद् + थाल्, अव्यय है। विदधे = वि–उपसर्ग पूर्वक 'धा' धातुसे "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इस सूत्रसे वर्तमानके समीप भविष्यत्कालमें लट्। अथवा 'आशंसायां भूतवच्च' इससे आशंसामें भविष्यत्कालमें लट्। निहितः = नि + धा + क्तः "दधातेर्हिः" इससे 'धा' के स्थानमें हि आदेश। अपनीयते = अप + नी + लट् (कर्ममें) + त। इस पद्यमें 'इन्द्रेण अपि न अपनीयते' यहाँपर किमुत अन्येन ऐसे अन्य अर्थके आ पड़नेसे अर्थापत्ति अलङ्कार है ।। ४७ ।।

तव सम्मतिमत्र केवलामधिगन्तुं धिगिदं निवेदितम् ।
ब्रुवते हि फलेन साधवो न तु कण्ठेन निजोपयोगिताम् ।। ४८ ।।

अन्वयः—अत्र केवलां तव सम्मतिम् अधिगन्तुम् इदं निवेदितं धिक्। हि साधवो निजोपयोगितां फलेन ब्रुवते कण्ठेन, न ब्रुवते ।। ४८ ।।

तर्हि तथैव क्रियतां, किं निवेदनेनेत्यत आह—तवेति ।

व्याख्या—अत्र = अस्मिन् कार्ये, केवलाम् = एकां, तव = भवतः, सम्मतिम् = अङ्गीकारम्, अधिगन्तुं = ज्ञातुम्, इदं = पुरः प्रतिपाद्यमानं, निवेदितं=निवेदनं, धिक् = निवेदितस्य निन्देत्यर्थः। उक्तमर्थमर्थान्तरेण समर्थयते—ब्रुवत इति। हि = यस्मात् कारणात्, साधवः = सज्जनाः, निजोपयोगितां = स्वोपकारित्वं, फलेन = कार्येण, ब्रुवते = बोधयन्ति, किन्तु कण्ठेन = वाग्व्यापारेण, न ब्रुवते = नो बोधयन्ति, निजोपयोगितामिति शेषः ।।४८।।

अनुवादः—इस कार्यमें केवल आपकी सम्मति (मञ्जूरी) को जाननेके लिए किये गये इस निवेदनको धिक्कार है; क्योंकि सज्जनलोग अपनी उपयोगिताको कार्यसे दिखाते हैं, कण्ठसे नहीं बतलाते हैं ।। ४८ ।।

टिप्पणी—अत्र = अस्मिन्निति, इदम् + त्रल्। अधिगन्तुम् = अधि + गम् + तुमुन्। निवेदितं = "धिक्"के योगमें "धिगुपर्यादिषु त्रिषु" इससे द्वितीया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

हि = "हि हेतावववधारणे" इत्यमरः। निजोपयोगितां = निजस्य उपयोगिता, ताम् (ष० त०)। ब्रुवते = 'ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि' धातुसे लट्+झ। इस पद्य-में सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे 'अर्थान्तरन्यास' अलङ्कार है ॥ ४८ ॥

तदिदं विशदं वचोऽमृतं परिपीयाऽभ्युदितं द्विजाऽधिपात्।
अतितृप्ततया विनिर्ममे स तदुद्गारमिव स्मितं सितम् ॥ ४९ ॥

अन्वयः—स द्विजाऽधिपात् अभ्युदितं विशदं तत् इदं वचोऽमृतं परिपीय अतितृप्ततया तदुद्गारम् इव सितं स्मितं विनिर्ममे ॥ ४९ ॥

व्याख्या—सः = नलः, द्विजाऽधिपात् = पक्षिस्वामिनः, हंसादिति भावः, पक्षान्तरे–ब्राह्मणप्रभोः चन्द्रादिति भावः। अभ्युदितम् = आविर्भूतं, विशदं = प्रसन्नम् उज्ज्वलं च, तत् = पूर्वोक्तम्, इदम् = अनुभूयमानं, वचोऽमृतं = वाक्यपीयूषं, परिपीय = सादरमाकर्ण्य, पीत्वा च, अतितृप्ततया = अतिसौहित्येन, तदुद्गारम् इव = तदुद्गमनम् इव, सितं = शुक्लं स्मितं = मन्दहास्यं, विनिर्ममे = विनिर्मितवान्, पीतस्य शुक्लवचोमृतस्य उद्गारसदृशं स्मितमपि शुक्लं भवतीति भावः ॥ ४९ ॥

अनुवादः—नलने पक्षिराज हंससे उत्पन्न प्रसादयुक्त अथवा सफेद, वचन-रूप अमृतका पान कर अत्यन्त तृप्त होनेसे उसके डकारके सदृश सफेद मन्द हास्यका निर्माण किया ॥ ४९ ॥

टिप्पणी—द्विजाऽधिपात् = द्विजानाम् अधिपः, तस्मात् (ष० त०), "दन्तविप्राण्डजा द्विजाः" इस अमरवचनके अनुसार यहाँपर द्विजपदका अर्थ अण्डज (पक्षी) और विप्र (ब्राह्मण) दोनों ही होते हैं अतः द्विजाऽधिप= पक्षी (हंस) अथवा चन्द्रमा। "द्विजराजः शशधरो नक्षत्रेशः क्षपाकरः।" इत्यमरः। अभ्युदितम् = अभि+उद्+इण्+क्तः+सुः। वचोऽमृतं = वच एव अमृतं, तत् (रूपक०)। परिपीय=परि+पी+क्त्वा (ल्यप्)। अतितृप्त-तया = अत्यन्तं तृप्तः (गति०), अतितृप्तस्य भावः अतितृप्तता, तया। अति-तृप्त+तल्+टाप्+टा। तदुद्गारम्=उद्गरणम् उद्गारः, उद्–उपसर्गपूर्वक-"गॄ निगरणे" धातुसे "उन्न्योर्ग्रः" इस सूत्रसे घञ् प्रत्यय। तस्य उद्गारः, तम् (ष० त०)। विनिर्ममे=वि–निर्–उपसर्गपूर्वक माङ् धातुसे कर्तामें लिट्+त। सफेद वचनरूप अमृतका उद्गारस्वरूप मन्दहास्य भी श्वेत ही होता है यह तात्पर्य है। इस पद्यमें वचनमें अमृतत्वका आरोप हंसमें चन्द्रत्व आरोपके प्रति

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कारण है और 'द्विजाऽधिप' पद श्लिष्ट है श्लिष्टपरम्परितरूपक अलङ्कार और उत्प्रेक्षा भी है, अतः दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ४९ ॥

परिमृज्य भुजाऽग्रजन्मना पतगं कोकनदेन नैषधः ।
मृदु तस्य मुदेऽगिरद् गिरः प्रियवादाऽमृतकूपकण्ठजाः ॥ ५० ॥

अन्वयः—नैषधः भुजाऽग्रजन्मना कोकनदेन पतगं परिमृज्य तस्य मुदे प्रियवादामृतकूपकण्ठजाः गिरः मृदु अगिरत् ॥ ५० ॥

व्याख्या—नैषधः = नलः, भुजाऽग्रजन्मना = बाह्वग्रोत्पन्नेन, कोकनदेन = रक्तोत्पलेन, रक्तोत्पलसदृशेन पाणिना इति भावः । पतगं = पक्षिणं, हंसमित्यर्थः । परिमृज्य = संस्पृश्येत्यर्थः । तस्य = हंसस्य, मुदे = हर्षाय, प्रियवादाऽमृतकूपकण्ठजाः = इष्टवाक्यपीयूषोदपानवागिन्द्रियजाः, गिरः = वाणीः, मृदु = कोमलं यथा तथा, अगिरत् = उक्तवान् ॥ ५० ॥

अनुवादः—नल बाहुके अग्रभागसे उत्पन्न पाणिरूप रक्तकमलसे हंसका स्पर्श करके उसको हर्ष उत्पन्न करनेके लिए प्रियवचनरूप अमृतोंके कूएके समान कण्ठसे उत्पन्न वचनोंको कोमलतापूर्वक कहने लगे ॥ ५० ॥

टिप्पणी—नैषधः = निषधेषु भवः, निषध + अण् । भुजाग्रजन्मना = भुजस्य अग्रम् (ष० त०), "भुजबाहू प्रवेष्टो दोः" इत्यमरः । भुजाग्रे जन्म यस्य तेन (व्यधिकरणबहु०) । इस पदसे पाणि लक्षित होता है । कोकनदेन = रक्तोत्पलं कोकनदम्" इत्यमरः । परिमृज्य = परि + मृज् + क्त्वा (ल्यप्) । प्रियवादाऽमृतकूपकण्ठजाः = प्रियस्य वादाः (ष० त०), ते एव अमृतानि (रूपक०) । तेषां कूपः (ष० त०), स चाऽसौ कण्ठः (क० धा०), तस्माज्जाताः, ताः प्रियवादाऽमृतकूपकण्ठ + जन् + डः (उपपद०) । मृदु = यह क्रियाविशेषण है । अगिरत्="गॄ निगरणे" धातुसे लङ् + तिप् । इस पद्यमें भुजाग्रजन्मा (पाणि) में कोकनदत्वका आरोप होनेसे रूपक, प्रियवादमें अमृतत्वका आरोप कण्ठमें कूपत्वके आरोपके प्रति निमित्त है अतः परम्परितरूपक है इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ ५० ॥

न तुलाविषये तवाकृतिर्न वचोवर्त्मनि ते सुशीलता ।
त्वदुदाहरणा कृतौ गुणा इति सामुद्रिकसारमुद्रणा ॥ ५१ ॥

1926

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—(हे हंस !) तव आकृतिः तुलाविषये न, ते सुशीलता वचोवर्त्मनि न। (अत एव) आकृतौ गुणा इति सामुद्रिकसारमुद्रणा त्वदुदाहरणा ॥५१॥

व्याख्या:—(हे हंस !) तव=भवतः, आकृतिः = आकारः, तुलाविषये न = सादृश्यभूमौ न, त्वदीयाऽऽकृतिरसाधारणीति भावः। एवं च—ते=तव, सुशीलता = सच्चरित्रता, वचोवर्त्मनि न = वाक्यमार्गे न, ते सुशीलता वक्तुमशक्येति भावः। अत एव—आकृतौ=आकारे, गुणाः = दयादाक्षिण्यादयः, इति = एवंभूता, सामुद्रिकसारमुद्रणा = सामुद्रिकशास्त्रकारसिद्धान्तप्रतिपादनं, त्वदुदाहरणा = भवद्दृष्टान्तभूता, अस्तीति शेषः। "यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति" इति सामुद्रिकशास्त्रकारोक्तेरुदाहरणस्थानीयो भवानेवेति भावः ॥ ५१ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) तुम्हारा आकार सादृश्य भूमिमें नहीं है; तुम्हारी सुशीलता वचनके मार्ग में नहीं है, अतएव उत्तम आकारमें गुण होते हैं ऐसा सामुद्रिकोंके सिद्धान्तप्रतिपादनके तुम ही उदाहरणस्वरूप हो ॥ ५१ ॥

टिप्पणी—तुलाविषये = तोलनं तुला, 'तुल उन्माने' धातुसे "षिद्भिदादिभ्योऽङ्" इस सूत्रसे अङ् प्रत्यय होकर टाप्। 'तुला सादृश्यमानयोः' इति विश्वः। तुलाया विषयः, तस्मिन् (ष० त०)। ते=युष्मद् शब्दके 'तव' के स्थानमें "तेमयावेकवचनस्य" इस सूत्रसे "ते" आदेश। सुशीलता = शोभनं शीलं यस्य सः (बहु०)। तस्य भावः तत्ता, सुशील+तल्+टाप्। "शीलं स्वभावे सद्वृत्ते" इत्यमरः। वचोवर्त्मनि = वचसो वर्त्म, तस्मिन् (ष० त०)। सामुद्रिकसारमुद्रणा = समुद्रेण प्रोक्तं 'सामुद्रिकं, 'समुद्र' शब्दसे 'तेन प्रोक्तम्' इस सूत्रसे ठञ् (इक), आदिवृद्धि। समुद्रने स्त्री और पुरुषके हाथ और पैरकी रेखा आदिके शुभ अशुभ लक्षणोंका ज्ञापक शास्त्र बनाया उसे 'सामुद्रिक' कहते हैं। सामुद्रिकस्य सारः, 'सारो बले स्थिरांऽशे च, इत्यमरः। तस्य मुद्रणा (ष० त०)। त्वदुदाहरणा = त्वम् एव उदाहरणं यस्याः सा (बहु०)। इस पद्यमें आकृतिके तुलाविषयमें और सुशीलताके वचोवर्त्ममें सम्बन्ध होनेपर भी असम्बन्धकी उक्ति होनेसे दो अतिशयोक्तियाँ और परार्द्धके प्रति पूर्वार्द्धकी हेतुतासे वाक्याऽर्थहेतुक काव्यलिङ्ग, इसप्रकार तीन अलङ्कारोंकी निरपेक्षतया स्थिति होनेसे संसृष्टि है ॥ ५१ ॥

न सुवर्णमयी तनुः परं ननु किं वागपि तावकी तथा।
न परं पथि पक्षपातिताऽनवलम्बे किमु मादृशेऽपि सा ॥ ५२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—ननु ! तावकी तनुः परं सुवर्णमयी न, किं (तु) वाक् अपि तथा (सुवर्णमयी), तथा अनवलम्बे पथि परं पक्षपातिता न, अनवलम्बे मादृशे अपि सा पक्षपातिता न किमु ? (अस्ति एव) ॥ ५२ ॥

व्याख्या—ननु = हे हंस !, तावकी = त्वदीया, तनुः = मूर्तिः, परम् = एव, सुवर्णमयी न = स्वर्णमयी न, किं (तु) तावकी, वाक् अपि = वाणी अपि, तथा = तेन प्रकारेण, सुवर्णमयी = शोभनाऽक्षरमयीत्यर्थः, त्वदीया मूर्तिर्यथा सुवर्णमयी तथैव वाणी अपि सुवर्णमयी = सुन्दरवर्णमयीति भावः । तथा अनवलम्बे = अवलम्बरहिते, पथि = मार्गे, आकाशे इति भावः । परम् = एव, पक्षपातिता न = पक्षपतनशीलता न, अनवलम्बे = निराधारे, मादृशे अपि = मत्सदृशे अपि, पक्षपातिता = पक्षवर्तिता, न किमु ? = नाऽस्ति किम् ? अस्त्येवेति भावः । तव अनवलम्बे पथि (आकाशे) एव पक्षपातिता (पक्षपतन शीलता) न, प्रत्युत मादृशे अनवलम्बे (अवलम्बरहिते) अपि पक्षपातिता पक्षवर्तिता न किमु ? अस्त्येवेति भावः ॥ ५२ ॥

अनुवादः—हे हंस ! तुम्हारी केवल मूर्ति ही सुवर्णमयी नहीं है वाणी भी सुवर्णमयी (सुन्दर अक्षरोंवाली) है। उसी प्रकार अवलम्बरहित मार्ग- (आकाश) में मात्र तुम्हारी पक्षपातिता (पक्षपतनशीलता) नहीं है प्रत्युत अवलम्ब (आधार) से रहित मेरे सरीखे व्यक्तिमें भी वह पक्षपातिता (पक्षमें रहनेका गुण) नहीं है क्या ? है ही ॥ ५२ ॥

टिप्पणी—ननु="प्रश्नाऽवधारणाऽनुज्ञाऽनुनयाऽऽमन्त्रणे ननु ।" इत्यमरः । यहाँपर "ननु" पद आमन्त्रण अर्थमें है। तावकी = तव इयम्, 'युष्मद्'शब्द से 'युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च' इस सूत्रमें चकार पाठके सामर्थ्यसे अण् प्रत्यय होकर 'तवकममकावेकवचने' इस सूत्रसे तवक आदेश, आदिवृद्धि और स्त्रीत्व- विवक्षामें ङीप् प्रत्यय । सुवर्णमयी=सुवर्णस्य विकारः, सुवर्ण+मयट्+ङीप् । यह 'तनु' के पक्षमें व्युत्पत्ति है। वाक्पक्षमें शोभना वर्णाः सुवर्णाः (गति०) । प्रचुराः सुवर्णा यस्यां सा सुवर्णमयी, सुवर्णशब्दसे 'तत्प्रकृतवचने मयट्' इससे प्रचुर अर्थमें मयट्+ङीप् । प्रचुर सुन्दरवर्णोंवाली तुम्हारी वाक् (वाणी) है यह तात्पर्य है। अनवलम्बे = अविद्यमानः अवलम्बः (आधारः) यस्य सः, तस्मिन्, (नञ् बहु०) । अनवलम्बे पथि = इसका तात्पर्य आधाररहित मार्ग अर्थात् आकाशमें ऐसा होता है। पक्षपातिता = पक्षाभ्यां पततीति तच्छीलः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्षपाती (पक्ष+पत्+णिनि+सुः)। पक्षपातिनो भावः पक्षपातिन्+तल्+टाप्। आधाररहित मार्ग आकाशमें मात्र पक्षपातिता = पंखोंसे चल (उड़) नेका भाव नहीं है, अनवलम्बे मादृशेऽपि = अवलम्बसे रहित मेरे ऐसेमें भी पक्षपातिता = पक्षे पततीति तच्छीलः पक्षपाती, तस्य भावः। पक्षमें पड़नेका भाव। अर्थात् मेरे ऐसे आधाररहितमें भी पक्षपातीका भाव है। इस पद्यमें "सुवर्णमयी" और "पक्षपातिता" इन दोनों पदोंमें दो पदश्लेषोंकी निरपेक्षतासे स्थिति होनेसे संसृष्टि अलङ्कार है॥ ५२॥

भृशतापभृता मया भवान् मरुदासादि तुषारसारवान्।
धनिनामितरः सतां पुनर्गुणवत्सन्निधिरेव सन्निधिः॥ ५३॥

अन्वयः—(हे हंस!) भृशतापभृता मया भवान् तुषारसारवान् मरुत् आसादि। धनिनाम् इतरः सन्निधिः पुनः सतां गुणवत्सन्निधिः एव सन्निधिः॥ ५३॥

व्याख्या—(हे हंस!) भृशतापभृता = अतिशयसन्तप्तेन, मया = नलेन, भवान् = त्वं, तुषारसारवान् = हिमश्रेष्ठांऽशसम्पन्नः, मरुत् = वायुः आसादि = प्राप्तः, सन्तापहरत्वादिति भावः। तथा हि धनिनाम् = आढ्यानां, कुबेरादीनामिति भावः। इतरः = अन्यः, पद्मशङ्खादिः, सन्निधिः = उत्तम-शेवधिः, पुनः = भूयः, सतां = विदुषां, गुणवत्सनिधिः एव=गुणिजनसामीप्यम् एव, सन्निधिः = महानिधिः। हे हंस! मत्कृते त्वमेव शीतलमारुतः अन्यस्तु दहनप्राय इति भावः॥ ५३॥

अनुवादः—हे हंस! अत्यन्त सन्तप्त मैंने हिमके श्रेष्ठ अंशसे सम्पन्न वायुके समान तुम्हें प्राप्त कर लिया है। कुबेर आदि धनियोंको पद्म शङ्ख आदि निधि उत्तम निधि हैं परन्तु विद्वान् पुरुषोंको- गुणी पुरुषोंका सामीप्य ही श्रेष्ठ निधि है॥ ५३॥

टिप्पणी—भृशतापभृता = तापं बिभर्तीति तापभृत्, ताप+भृ+क्विप् (उपपद०)। भृशं तापभृत्, तेन (सुप्सुपा०)। तुषारसारवान् = तुषाराणां साराः (ष० त०), ते सन्ति यस्य सः, तुषारसार+मतुप्+सुः। आसादि = आङ्+सद्+णिच्+लुङ् (कर्मणि)+त। धनिनां = धन+इनि+आम्। "इभ्य आढ्यो धनी स्वामी" इत्यमरः सन्निधिः = संश्चाऽसौ निधिः "सन्महत्प-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रमोत्तमोत्कृष्टाः पूज्यमानैः" इससे समास । "निधिर्ना शेवधिर्भेदाः पद्मशङ्खादयो निधेः" इत्यमरः । निधिके नौ भेद हैं—

"महापद्मश्च पद्मश्च शङ्खो मकरकच्छपौ ।
मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव ॥"

जैसे—महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व । सतां = सन्तीति सन्तस्तेषाम्, अस् + लट् (शतृ) + आम् । "सत्ये साधौ विद्यमाने प्रशस्तेऽभ्यर्हिते च सत् ।" इत्यमरः । गुणवत्सन्निधिः = गुणाः सन्ति येषां ते गुणवन्तः, गुण + मतुप् । गुणवतां सन्निधिः (ष० त०), "सन्निधिः सन्निकर्षणम्" इत्यमरः । इस पद्यमें पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें रूपक अलङ्कार है । दो रूपकोंको संसृष्टि है ॥ ५३ ॥

शतशः श्रुतिमागतैव सा त्रिजगन्मोहमहौषधिर्मम ।
अधुना तव शंसितेन तु स्वदृशैवाऽधिगतामवैमि ताम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः—त्रिजगन्मोहमहौषधिः सा शतशो मम श्रुतिम् आगता एव । अधुना तव शंसितेन तु तां स्वदृशा एव अधिगताम् अवैमि ॥ ५४ ॥

व्याख्या—त्रिजगन्मोहमहौषधिः = त्रैलोक्यसंमोहनमहौषधं, सा = दमयन्ती, शतशः = बहुवारं, मम = नलस्य, श्रुतिं = कर्णम्, आगता एव = आयाता एव । परम्, अधुना=इदानीं, तव = भवतः, शंसितेन तु = कथनेन तु, स्वदृशा एव = आत्मदृष्ट्या एव, अधिगतां = ज्ञातां, दृष्टामिति भावः, अवैमि = जानामि, आप्तोक्तिप्रामाण्यादिति भावः ॥ ५४ ॥

अनुवादः—त्रैलोक्यके संमोहनमें महौषधिकी समान वे दमयन्ती मेरे कर्णमार्गमें आई ही हैं । इस समय तुम्हारे कथनसे तो उनको अपनी आंखोंसे ही देखी गई जानता हूँ ॥ ५४ ॥

टिप्पणी—त्रिजगन्मोहमहौषधिः = त्रयाणां जगतां समाहारः त्रिजगत् (द्विगु०) । त्रिजगतो मोहः (ष० त०) । महती चाऽसौ ओषधिः (क० धा०) । त्रिजगन्मोहे महौषधिः (स० त०) । शतशः = 'शत' शब्दसे 'बह्वल्पार्थाच्छस् कारकादन्यतरस्याम्" इससे शस् प्रत्ययः । श्रुतिं = श्रु + क्तिन् + अम् । शंसितेन = शंस + क्तः (भावमें) । स्वदृशा = स्वस्य दृक्, तया (ष० त०), गोलकमें ही द्वित्व है, इन्द्रियके एकत्वसे एकवचन । अवैमि = अव + इण् +

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लट्+मिप्। इस पद्यके पूर्वार्द्धमें रूपक, उत्तरार्धमें भविष्यत्कालमें होनेवाले दमयन्तीके अधिगमके साक्षाद्दर्शनका वर्णन होनेसे भाविक अलङ्कार है इसका लक्षण है—

अद्‌भुतस्य पदार्थस्य भूतस्याऽथ भविष्यतः।
यत्प्रत्यक्षायमाणत्वं तद्भाविकमुदाहृतम् ॥ १०—१२२ (सा० द०)

इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ ५४ ॥

अखिलं विदुषामनाविलं सुहृदा च स्वहृदा च पश्यताम्।
सविधेऽपि नसूक्ष्मसाक्षिणी वदनाऽलङ्कृतिमात्रमक्षिणी ॥ ५५ ॥

अन्वयः—सुहृदा स्वहृदा च अखिलम् अनाविलं पश्यतां विदुषां सविधे अपि नसूक्ष्मसाक्षिणी, अक्षिणी वदनाऽलङ्कृतिमात्रम् ॥ ५५ ॥

स्वदृष्टेराप्तदृष्टेर्गरीयस्त्वं प्रतिपादयति—अखिलमिति।

व्याख्या—सुहृदा = मित्रेण, आप्तेनेति भावः। स्वहृदा च = निजाऽन्तः-करणेन च, अखिलं = समस्तं पदार्थम्, अनाविलम् = अकलुषम्, असन्दिग्धं यथा तथा, पश्यतां = विलोकयतां, जानतामिति भावः। तादृशानां विदुषां = बुधानां, विवेकिनामिति भावः। सविधे अपि=समीपे अपि, नसूक्ष्मसाक्षिणी = सूक्ष्मपदार्थस्य अद्रष्टृणी, अक्षिणी = नेत्रे, वदनाऽलङ्कृतिमात्रं = मुखाऽलङ्कार-मात्रं, न तु दूरसूक्ष्मपदार्थदर्शनोपयोगिनी इति भावः ॥ ५५ ॥

अनुवाद—आप्तभूत मित्रसे और अपने अन्तःकरणसे समस्त पदार्थको अस-न्दिग्धरूपसे देखनेवाले विवेकियोंके लिए समीपमें भी सूक्ष्मपदार्थको न देखनेवाले नेत्र मुखमण्डलके अलङ्कारमात्र है ॥ ५५ ॥

टिप्पणी—सुहृदा = शोभनं हृदयं यस्य स सुहृत् (बहु०)। "सुहृद्दुर्हृदौ मित्राऽमित्रयोः" इस सूत्रसे हृदयके स्थानमें हृद् आदेश, "अथ मित्रं सखा सुहृत्" इत्यमरः। स्वहृदा = स्वस्य हृत् स्वहृत्, तेन (ष० त०), "स्वान्तं हृन्मानसं मनः" इत्यमरः। अनाविलं = न आविलं, तद्यथा तथा (नञ्त०)। यह क्रियाविशेषण है। "कलुषोऽनच्छ आविलः" इत्यमरः। पश्यतां = पश्यन्तीति पश्यन्तः, तेषाम् दृश्+लट् (शतृ)+आम्। विदुषां = विद्+लट् (शतृ)+वसुः+आम्। सन्देह और विपर्यासके विना शब्द और अनुमान आदि प्रमाणोंसे पदार्थोंको देख (जान) ने-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वालोंके यह तात्पर्य है। सविधे = "सदेशाऽभ्याससविधसमर्यादसवेशवत्" इत्यमरः, नसूक्ष्मसाक्षिणी = साक्षात् द्रष्ट्रणी साक्षिणी, साक्षात् शब्दसे "साक्षाद् द्रष्टरि संज्ञायाम्" इस सूत्रसे निपातन। सूक्ष्माणां साक्षिणी (ष० त०), न सूक्ष्मसाक्षिणी (सुप्सुपा०)। अक्षिणी = "ईक्षणं चक्षुरक्षिणी"। इत्यमरः। वदनाऽलङ्कृतिमात्रं = वदनस्य अलङ्कृतिः (ष० त०), सा एव (मयूरव्यंसकादिसमास)। "मात्रं कात्स्न्र्येऽवधारणे" इत्यमरः। यहाँपर 'मात्र' शब्द अवधारण अर्थमें है। समीपमें भी नेत्रमें स्थित कज्जल और रक्तत्वको न देखनेवाला नेत्र तो केवल मुखका अलङ्कार है यह तात्पर्य है।

इस पद्यमें नेत्रोंमें वदनाऽलङ्कृतिमात्रत्वका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धकी उक्ति होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है॥ ५५॥

अमितं मधु तत्कथा मम श्रवणप्राघुणिकीकृता जनैः।
मदनाऽनलबोधनेऽभवत्खग ! धाय्या धिगधैर्यधारिणः॥ ५६॥

अन्वयः—हे खग ! जनैः मम श्रवणप्राघुणिकीकृता अमितं मधु तत्कथा अधैर्यधारिणो मम मदनाऽनलबोधने धाय्या अभवत्। धिक् ! ॥ ५६॥

व्याख्या—हे खग = हे विहग, हंस इत्यर्थः। जनैः = लोकैः, मम = नलस्य, श्रवणप्राघुणिकीकृता = कर्णाऽतिथीकृता, श्रवणविषयीकृतेति भावः। अमितम् = अपरिमितं, मधु = क्षौद्रम्, अपरिमितमधुसमाना अतिमधुरेति भावः। तत्कथा = दमयन्तीगुणवर्णना, अधैर्यधारिणः = अत्यन्ताऽधीरस्य, मम = नलस्य, मदनाऽनलबोधने = कामाग्निप्रज्वलने, धाय्या = सामिधेनी, अग्निसमिन्धनसमर्था ऋगिति भावः। अभवत् = अभूत, धिक् = अधैर्यधारिणमिति शेषः। अधैर्यधारिणो मम निन्देति भावः॥ ५६॥

अनुवादः—हे हंस ! लोगोंसे मेरे कानोंमें अतिथि बनाई गई (पहुँचाई गई) अपरिमित मधु (शहद) की समान दमयन्तीकी कथा अधीर होनेवाले मेरे कामाऽग्निको प्रज्वलित करनेमें सामिधेनी (अग्निको प्रदीप्त करनेवाली ऋचा)-सी हुई है। अधीर मुझको धिक् ! ॥ ५६॥

टिप्पणी—श्रवणप्राघुणिकीकृता = अप्राघुणिका प्राघुणिका यथा संपद्यते तथा कृता प्राघुणिकीकृता, प्राघुणिक + च्वि + कृ + क्त + टाप। "आवेशिकः प्राघुणिक आगन्तुरतिथिस्तथा।" इति हलायुधः। श्रवणयोः प्राघुणिकीकृता (स० त०)। अमितं = न मितम् (नञ्०)। तत्कथा = तस्याः कथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ष० त०)। अधैर्यधारिणः = धैर्यं धारयतीति तच्छीलः धैर्यधारी, धैर्यं+धृ+णिच्+णिनिः (उपपद०)। न धैर्यधारी, तस्य (नञ्०)। मदनाऽनल-बोधने = मदन एव अनलः (रूपक०), तस्य बोधनं तस्मिन् (ष० त०)। धाय्या = धीयते अनया समित् इति धाय्या (ऋक्) "पाय्यसान्नाय्यनिकाय्य-धाय्या मानहविर्निवाससामिधेनीषु "इस सूत्रसे "धा" धातुसे करणमें ण्यत् होकर आय् आदेशका निपातन और टाप् प्रत्यय। "ऋक् सामिधेनी धाय्या च या स्यादग्निसमिन्धने।" इत्यमरः। अर्थात् जिस ऋक्का उच्चारण कर आग जलाते हैं उसे "सामिधेनी" और धाय्या" भी कहते हैं। ऋक्का लक्षण है—"अर्थव्यवस्थितपादा ऋचः" अर्थात् छन्दोविशेषसे जहाँपर पादव्यवस्था होती उसे "ऋक्" कहते हैं। इस पद्यमें प्रथम चरणमें रूपक, मदनमें अनलत्वका आरोप कथामें मन्त्रत्वके आरोपमें निमित्त होनेसे अश्लिष्टशब्दनिबन्धन परम्परितरूपक है इसप्रकार इन दोनोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ५६ ॥

विषमो मलयाऽहिमण्डली विषफूत्कारमयो मयोहितः।
बत! कालकलत्रदिग्भवः पवनस्तद्विरहाऽनलैधसा ॥ ५७ ॥

अन्वयः—विषमः कालकलत्रदिग्भवः पवनः तद्विरहाऽनलैधसा मया मलयाऽहिमण्डलीविषफूत्कारमय ऊहितः बत ! ॥ ५७ ॥

व्याख्या—विषमः = प्रतिकूलः, कालकलत्रदिग्भवः = यमदिशाभवः, दाक्षिणात्यः, प्राणहर इतिभावः। पवनः = वायुः, तद्विरहाऽनलैधसा = दमयन्ती-वियोगाऽग्निकाष्ठरूपेण, मया=नलेन, मलयाऽहिमण्डलीविषफूत्कारमयः = मलय-पर्वतसर्पसङ्घगरलफूत्कारस्वरूपः, ऊहितः = तर्कितः। बत = खेदे ॥ ५७ ॥

अनुवाद—यमराजकी दिशा (दक्षिण) में उत्पन्न प्रतिकूल वायुको दमयन्ती-के वियोगाऽग्निके काष्ठरूप मैंने "यह मलयपर्वतके सर्पसमूहके विषका फूत्कारस्वरूप है" ऐसी तर्कना की, खेद है ॥ ५७ ॥

टिप्पणी—कालकलत्रदिग्भवः = कालस्य कलत्रं (ष० त०), "कालो दण्ड-धरः श्राद्धदेवो वैवस्वतोऽन्तकः।' इति। "कलत्रं श्रोणिभार्ययोः" इति चाऽमरः। कालकलत्रं चाऽसौ दिक् (क० धा०) तस्यां भवः (स० त०)। तद्विरहाऽनलैधसा = तस्या विरहः (ष० त०), स एव अनलः। (रूपक०), तस्य एधः,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेन (ष० त०) । मलयाऽहिमण्डलीविषफूत्कारमयः = अहीनां मण्डली (ष० त०), मलये अहिमण्डली (स० त०) । तस्या विषं (ष० त०), प्रचुरः फूत्कारः अस्ति यस्मिन् स फूत्कारमयः, फूत्कार शब्दसे "तत्प्रकृतवचने मयट्" इस सूत्रसे मयट् प्रत्यय । मलयाऽहिमण्डलीविषस्य फूत्कारमयः (ष० त०) । ऊहितः = "ऊह वितर्के" धातुसे क्त प्रत्यय । इस पद्यमें विरहमें अनलत्वका आरोप, अपनेमें काष्ठत्वके आरोपमें निमित्त है अतः परम्परितरूपक और उत्प्रेक्षा भी है इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर है ॥ ५७ ॥

प्रतिमासमसौ निशाकरः खग ! संगच्छति यद्दिनाऽधिपम् ।
किमु तीव्रतरैस्ततः करैर्मम दाहाय स धैर्यतस्करैः ॥ ५८ ॥

अन्वयः—हे खग ! असौ निशाकरः प्रतिमासं यत् दिनाऽधिपं संगच्छति, ततः स तीव्रतरैः धैर्यतस्करैः करैः मम दाहाय संगच्छति किमु ? ॥ ५८ ॥

व्याख्या—हे खग=हे हंस !, असौ=अयं, निशाकरः = चन्द्रः, प्रतिमासं = मासे मासे, प्रतिदर्शमिति भावः । यत्, दिनाऽधिपं = सूर्यं, संगच्छति = प्राप्नोति, ततः = सूर्यसङ्गात्, सः = चन्द्रः, तीव्रतरैः = अतितीक्ष्णैः, धैर्यतस्करैः=धीरतापहारिभिः, करैः = किरणैः, मम = नलस्य, कान्तावियोगिन इति भावः । दाहाय = सन्तापाय, संगच्छति = प्राप्नोति, किमु =उत्प्रेक्षायाम् । सूर्यसङ्गादेव चन्द्रकरेषु तीक्ष्णता, अन्यथा कथं स्यादिति भावः ॥५८॥

अनुवादः—हे हंस ! ये चन्द्रमा प्रतिमास जो सूर्यसे मिलते हैं, वे उनसे अत्यन्त तीक्ष्ण और मेरे धैर्यको चुरानेवाली किरणोंसे मुझे जलानेके लिए मिलते हैं क्या ? ५८ ॥

टिप्पणी—निशाकरः = निशां करोतीति, निशा-उपपदपूर्वक 'कृ' धातुसे "दिवाविभानिशा०" इत्यादि सूत्रसे ट प्रत्यय । कहीं-कहीं "निशापतिः" ऐसा पाठान्तर है, अर्थ समान है । प्रतिमासं = मासं मासम्, वीप्सामें अव्ययीभाव । दिनाऽधिपं = दिनानाम् अधिपः, तम् (ष० त०) । संगच्छति = सं+गम्+लट्+तिप् । सकर्मक होनेसे "समोगम्यृच्छिभ्याम्" इससे आत्मनेपद नहीं हुआ । तीव्रतरैः=अतिशयेन तीव्राः, तैः, तीव्र+तरप्+भिस् ! धैर्यतस्करैः=धैर्यस्य तस्कराः, तैः (ष० त०) । दाहाय="तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या" इससे चतुर्थी । इस पद्यमें "किमु" शब्दके उत्प्रेक्षावाचक होनेसे उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ५८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कुसुमानि यदि स्मरेषवो न तु वज्रं, विषवल्लिजानि तत् ।
हृदयं यदमूमुहन्नमूर्मम यच्चातितमामतीतपन् ॥ ५९ ॥

अन्वयः—स्मरेषवः कुसुमानि यदि, न तु वज्रं, तत् विषवल्लिजानि । यत् अमूः मम हृदयम् अमूमुहन्, यत् अतितमाम् अतीतपन् ॥ ५९ ॥

व्याख्या—स्मरेषवः = कामबाणाः, कुसुमानि यदि = पुष्पाणि चेत्, न तु वज्रं = न तु अशनिः, तत्क्षणमरणाऽभावादिति भावः । तत्=तर्हि, विषवल्लिजानि = गरललतोत्पन्नानि । यत् = यस्मात्कारणात्, अमूः = स्मरेषवः, मम= नलस्य, हृदयं = मनः, अमूमुहन् = अमूर्च्छयन्, यत् = यस्मात्, अतितमाम् = अतिमात्रम्, अतीतपन् = तापितवत्यः ॥ ५९ ॥

अनुवादः—कामदेवके बाण यदि फूल हैं, वज्र नहीं तो वे विषकी लताओं-से उत्पन्न हैं । जो कि इन्होंने (कामदेवके बाणभूत फूलोंने) मेरे हृदयको मूर्च्छित और अत्यन्त सन्तप्त किया ॥ ५९ ॥

टिप्पणी—स्मरेषवः = स्मरस्य इषवः (ष० त०), "पत्री रोप इषुर्द्वयोः" इस कोषके अनुसार 'इषु' शब्द पुंलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें है, यहाँपर उत्तरवाक्य-में "अमूः" ऐसे सर्वनाम शब्दसे स्त्रीलिङ्गी है । विषवल्लिजानि = विषस्य वल्लयः (ष० त०) । "वल्ली तु व्रततिर्लता" इत्यमरः । विषवल्लिभ्यो जातानि, विषवल्लि + जन् + ड + जस् । अमूमुहन् = "मुह वैचित्ये" धातुसे णिच् प्रत्यय होकर लुङ् + झि:, च्लिके स्थानमें चङ् । अतितमाम्=अति-उपसर्गसे तमप् होकर "किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्यप्रकर्षे" इस सूत्रसे आमु प्रत्यय । अतीत-पन् = "तप सन्तापे" धातुसे णिच् प्रत्यय होकर लुङ् + झि:, च्लिके स्थानमें चङ् । इस पद्यमें स्मरेषुओंमें विषवल्लिजत्वकी संभावना करनेसे उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ५९ ॥

तदिहाऽनवधौ निमज्जतो मम कन्दर्पशराऽऽधिनीरधौ ।
भव पोत इवाऽवलम्बनं विधिनाऽऽकस्मिकसृष्टसन्निधिः ॥ ६० ॥

अन्वयः—तत् इह अनवधौ कन्दर्पशराऽऽधिनीरधौ निमज्जतो मम विधिना आकस्मिकसृष्टसन्निधिः (सन्) पोत इव अवलम्बनं भव ॥ ६० ॥

व्याख्या—तत् = तस्मात्कारणात्, इह = अस्मिन्, अनवधौ = अवधि-शून्ये, अपार इति भावः । कन्दर्पशराऽऽधिनीरधौ = कामबाणमनोव्यथासमुद्रे,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निमज्जतः = अन्तर्गतस्य, मम = नलस्य, विधिना = भाग्येन, आकस्मिकसृष्टसन्निधिः = अकस्मादुत्पादितसामीप्यः, मत्सौभाग्यादागत इति भावः। त्वमिति शेषः। पोत इव = यानपात्रम् इव, अवलम्बनम् = आलम्बनं, भव = एधि, दमयन्तीसंयोजनेन त्वं मम कामवाणमनोव्यथासमुद्रोत्तरणहेतुर्भव इति भावः ॥ ६० ॥

अनुवादः—(हे हंस !) इस कारणसे इस अपार कामवाणरूप मनोव्यथाके समुद्रमें डूबते हुए मेरे लिए भाग्यसे अकस्मात् सामीप्यसे सम्बद्ध तुम, नौकाके समान अवलम्बन बनो ॥ ६० ॥

टिप्पणी—अनवधौ = अविद्यमानः अवधिर्यस्य सः, तस्मिन् (नञ्बहु०)। कन्दर्पशराऽऽधिनीरधौ=कन्दर्पस्य शराः (ष० त०), तैः आधिः (तृ० त०), "पुंस्याधिर्मानसी व्यथा" इत्यमरः। कन्दर्पशराऽऽधिः एव नीरधिः, तस्मिन् (रूपक०)। निमज्जतः = नि + मस्ज + लट् (शतृ) + ङस्। आकस्मिकसृष्टसन्निधिः = अकस्मात् भवम् आकस्मिकम्, "अकस्मात्" इस अव्ययसे "अध्यात्मादिभ्यश्च" इससे ठक् प्रत्यय और "अव्ययानां भमात्रे टिलोपः" इससे टिलोप। सृष्टः सन्निधिः यस्य सः (वहु०.)। आकस्मिकं (यथा तथा) सृष्टसन्निधिः (सुप्सुपा०)। पोतः = "यानपात्रे शिशौ पोतः" इत्यमरः। भव=भू + लोट् + सिप्। प्रार्थनामें लोट्। इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें रूपक और उत्तरार्द्धमें उपमा इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी निरपेक्षतासे संसृष्टि है ॥ ६० ॥

> अथवा भवतः प्रवर्तना न कथं पिष्टमियं पिनष्टि नः।
> स्वत एव सतां परार्थता, ग्रहणानां हि यथा यथार्थता ॥६१॥

अन्वयः—अथवा इयं नः भवतः प्रवर्तना कथं पिष्टं न पिनष्टि; हि ग्रहणानां यथार्थता यथा सतां परार्थता स्वतः एव ॥ ६१ ॥

व्याख्या—अथवा = पक्षान्तरे, इयम् = एषा, "भव पोत इवाऽवलम्बनम्" इत्यादिवाक्यघटिता, नः = अस्माकं, भवतः = तव, प्रवर्तना = प्रेरणा, कथं = केन प्रकारेण, पिष्टं = चूर्णितमन्नादिकं, न पिनष्टि = न पुनश्चूर्णयति, भवतः स्वतः कर्तृत्वान्मदीया प्रेरणा पिष्टपेषणरूपेति भावः। उक्तमर्थं समर्थयते—स्वत इति। हि = यस्मात्कारणात्, ग्रहणानां = ज्ञानानां, यथार्थता = याथार्थ्यं, प्रामाण्यमिति भावः। यथा =इव, सतां = सज्जनानां, पराऽर्थता = पराऽर्थ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रवृत्तिः, स्वत एव = स्वभावत एव, यथा ज्ञानानां प्रामाण्यं स्वतस्तथैव सज्जनानां परार्थप्रवृत्तिः स्वभावत एव न तत्र प्रवर्तनाया अपेक्षेति भावः ॥६१॥

अनुवादः—अथवा आपको यह हमारी प्रेरणा पिष्टपेषणकी समान क्यों नहीं होगी ? क्योंकि जैसे ज्ञानोंका प्रामाण्य स्वतः होता है वैसे ही सज्जनोंकी दूसरोंके हितके लिए प्रवृत्ति भी स्वभावतः होती है ॥ ६१ ॥

टिप्पणी—नः = "अस्मदो द्वयोश्च" इस सूत्रसे एकत्वकी उक्तिमें भी अस्मद् शब्दसे षष्ठीमें बहुवचन। "प्रवर्तना" इस कृदन्तपदके योगमें "उभयप्राप्तौ कर्मणि" इस नियमसे "कर्तृकर्मणोः कृति" इस सूत्रसे कारकषष्ठीका निषेध होनेसे यह षष्ठी विभक्ति "षष्ठी" शेषे" इस सूत्रसे हुई है। प्रवर्तना = प्रवर्तनम्, णिच् प्रत्ययान्त "वृतु वर्तने" धातुसे "रायासश्रन्थो युच्" इस सूत्रसे युच् (अन) प्रत्यय होकर टाप्। पिनष्टि = पिष्लृ संचूर्णने" धातुसे लट् + तिप्। यथार्थता = यथार्थस्य भावः। यथार्थ + तल् + टाप्। परार्थता = परेषु अर्थः (प्रयोजनम्) येषां ते (व्यधिकरणबहु०), तेषां भावः, पराऽर्थ + तल् + टाप्। स्वतः = स्वस्मात् इति, स्व शब्दसे "अपादाने चाऽहीयरुहोः" इस सूत्रसे तसि प्रत्यय, यह अव्यय है। यहाँपर मीमांसकोंके सिद्धान्तके अनुसार ज्ञानका स्वतः प्रामाण्य माना गया है। नैयायिक ज्ञानका परतः प्रामाण्य मानते हैं। इस पद्यमें उपमा और अर्थान्तरन्यास, दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥६१॥

तव वर्त्मनि वर्ततां शिवं, पुनरस्तु त्वरितं समागमः।
अपिसाधय साधयेप्सितं, स्मरणीयाः समये वयं वयः ! ॥ ६२ ॥

अन्वयः—हे वयः ! तव वर्त्मनि शिवं वर्तताम्। त्वरितं पुनः समागमः अस्तु। अपिसाधय। ईप्सितम् साधय। समये वयं स्मरणीयाः ॥ ६२ ॥

व्याख्या—हे वयः = हे हंस !, तव = भवतः, वर्त्मनि = मार्गे, शिवं = मङ्गलं, वर्ततां = भवतु। त्वरितं = शीघ्रम् एव, पुनः = भूयः, समागमः = संगमः, मया सहेति शेषः। अस्तु = भवतु, कृतकार्यस्य तवेति शेषः। अपिसाधय = गच्छ। ईप्सितम् = अभीष्टं, दमयन्त्या समं मत्संयोजनरूपमिति शेषः। साधय = सम्पादय। समये = कार्यकाले, वयं, स्मरणीयाः = स्मर्तव्याः ॥६२॥

अनुवादः—हे हंस ! तुम्हारे मार्गमें मङ्गल हो। शीघ्र फिर तुम्हारे साथ हमारा समागम हो। जाओ। मेरे अभीष्ट कार्यका सम्पादन करो। उचित समयमें तुम्हें हमारा स्मरण करना चाहिए ॥ ६२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—हे वयः = "खगबाल्यादिनोर्वयः" इत्यमरः । वर्तंतां = "वृतु वर्तने" धातुसे प्रार्थनामें लोट् + त । अस्तु = "अस भुवि" धातुसे लोट + तिप् । अपिसाधय = अपि + साध् + णिच् + लोट् + सिप् । ईप्सितम् = आप्तुम् इष्टं, तत्, सन्नन्त "आप्लृ व्याप्तौ" धातु से क्त प्रत्यय और "आप्ज्ञप्यृधामीत्" इस सूत्रसे आप्का ईत्व । वयम् = "अस्मदो द्वयोश्च" इस सूत्रके अनुसार एकवचन-में भी बहुवचन । स्मरणीयाः = स्मर्तुं योग्याः, स्मृ + अनीयर् + जस् । इस पद्य-में छेक अलङ्कार है और ओज नामक काव्यलक्षण है, जैसे कि "ओजः स्यात्प्रौढिरर्थस्य संक्षेपो वाऽति भूयसः ।" अर्थात् जहांपर प्रौढि वा अधिक अर्थोंका संक्षेप होता है उसे "ओज" कहते हैं ॥ ६२ ॥

इति तं स विसृज्य धैर्यवान्नृपतिः सूनृतवाग्बृहस्पतिः ।
अविशद्वनवेश्म विस्मितः श्रुतिलग्नैः कलहंसशंसितैः ॥ ६३ ॥

अन्वयः—धैर्यवान् सूनृतवाग्बृहस्पतिः स नृपतिः इति तं विसृज्य श्रुतिलग्नैः कलहंसशंसितैः विस्मितः (सन्) वनवेश्म अविशत् ॥ ६३ ॥

व्याख्या—धैर्यवान्=धैर्ययुक्तः, उपायलाभादिति शेषः । सूनृतवाग्बृहस्पतिः= सत्यप्रियवादेषु वाचस्पतिः, प्रगल्भ इति भावः । सः = पूर्वोक्तः, नृपतिः=राजा, नल इत्यर्थः । इति = इत्थं, तं = हंसं, विसृज्य = प्रस्थाप्य, श्रुतिलग्नैः = कर्णप्रविष्टैः, कलहंसशंसितैः = हंसभाषितैः, विस्मितः = आश्चर्ययुक्तः सन्, वनवेश्म = उपवनभवनम्, अविशत् = प्रविष्टः ॥ ६३ ॥

अनुवादः—धैर्यसम्पन्न, सत्य और प्रियवचन बोलनेमें बृहस्पतिके समान राजा नलने उस (हंस) को रुखसत (छोड़कर)। कानमें घुसे हुए हंसके भाषणोंसे आश्चर्ययुक्त होकर उपवनके भवनमें प्रवेश किया ॥ ६३ ॥

टिप्पणी—धैर्यवान् = धैर्यम् अस्ति यस्य सः, धैर्य + मतुप् । सूनृतवाग्बृह-स्पतिः = सूनृताश्च ता वाचः (क० धा०), "अथ सूनृते । सत्ये प्रिये" इत्यमरः । सूनृतवाक्षु बृहस्पतिः (स० त०), नृपतिः = नृणां पतिः (ष० त०) विसृज्य = वि + सृज् + क्त्वा (ल्यप्) । कलहंसशंसितैः = कलहंसस्य शंसि-तानि, तैः (ष० त०), "कादम्बः कलहंसः स्यात्" इत्यमरः । वनवेश्म = वनस्य वेश्म, तत् (ष० त०) । अविशत् = "विश प्रवेशने" धातुसे लङ् + तिप् । "सूनृतवाग्बृहस्पतिः" इस पद्यमें लुप्तोपमा अलङ्कार है ॥ ६३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अथ भीमसुताऽवलोकनैः सफलं कर्तुमहस्तदेव सः ।
क्षितिमण्डलमण्डनायितं नगरं कुण्डिनमण्डजो ययौ ॥ ६४ ॥

अन्वयः—अथ सः अण्डजः तत् अहः एव भीमसुताऽवलोकनैः सफलं कर्तुं क्षितिमण्डलमण्डनायितं कुण्डिनं नगरं ययौ ॥ ६४ ॥

व्याख्या—अथ = यात्राऽर्थं राजाऽनुज्ञाऽनन्तरं, सः = पूर्वोक्तः, अण्डजः = पक्षी, हंस इत्यर्थः । तद् अहः एव = तद् दिनम् एव, भीमसुताऽवलोकनैः = भैमीदर्शनैः, सफलं = साऽर्थकं, कर्तुं = विधातुं, तस्मिन्नेव दिने दमयन्तीं द्रष्टुमिति भावः । क्षितिमण्डलमण्डनायितं = भूमण्डलाऽलङ्कारभूतं, कुण्डिनं = कुण्डिननामकं, नगरं = पुरं, ययौ = जगाम ॥ ६४ ॥

अनुवादः—तब वह पक्षी (राजहंस) उसी दिनको दमयन्तीके दर्शनोंसे सफल करनेके लिए भूमण्डलके अलङ्कारभूत कुण्डिन नगरको गया ॥ ६४ ॥

टिप्पणी—अण्डजः = अण्डे जातः, अण्ड + जन् + डः (उपपद०), "अण्डजाः पक्षिसर्पाद्याः" इत्यमरः । भीमसुताऽवलोकनैः = भीमस्य सुता (ष० त०), तस्या अवलोकनानि, तैः (ष० त०) । सफलं = फलेन सहितं, तत् (तुल्ययोगबहु०) । कर्तुं = कृ + तुमुन् । क्षितिमण्डलमण्डनायितं = क्षितेः मण्डलं (ष० त०) । मण्डनवत् आचरितं मण्डनायितम्, मण्डन + क्यङ् + क्तः । ययौ = या + लिट् + तिप् । इस पद्यमें "मण्डनायितम्" इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ६४ ॥

प्रथमं पथि लोचनाऽतिथिं पथिकप्रार्थितसिद्धिशंसिनम् ।
कलसं जलसंभृतं पुरः कलहंसः कलयाम्बभूव सः ॥ ६५ ॥

अन्वयः—स कलहंसः प्रथमं पथि लोचनाऽतिथिं पथिकप्रार्थितसिद्धिशंसिनं जलसंभृतं कलसं पुरः कलयाम्बभूव ॥ ६५ ॥

व्याख्या—अथ श्लोकत्रयेण शुभशकुनान्याह—प्रथममित्यादिना ।

सः = पूर्वोक्तः, कलहंसः = राजहंसः, प्रथमम् = आदौ, पथि = मार्गे, लोचनाऽतिथिं = नेत्राऽऽगन्तुकभूतं, पथिकप्रार्थितसिद्धिशंसिनं = पान्थेष्टार्थ-साफल्यसूचकं, जलसंभृतं = सलिलपूर्णं, कलसं = कुम्भं, पुरः = अग्रे, कलयाम्बभूव = ददर्श, यात्रासमये आकस्मिकरूपेण नेत्रगोचरः पूर्णघटः शकुनसूचको भवतीति भावः ॥ ६५ ॥

अनुवादः—उस राजहंसने पहले मार्गमें पथिकोंके अभीष्टकी सफलताके सूचक जलपूर्ण कलशको देख लिया ॥ ६५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—लोचनाऽतिथिं=लोचनयोः अतिथिः, तम् (ष० त०)। पथिकप्रार्थितसिद्धिशंसिनं = पन्थानं गच्छन्तीति पथिकाः, 'पथिन्' शब्दसे "पथः ष्कन्" इस सूत्रसे ष्कन् प्रत्यय और "षः प्रत्ययस्य" इस सूत्रसे 'ष्' की इत्संज्ञा। "अध्वनीनोऽध्वगोऽध्वन्यः पान्थः पथिक इत्यपि।" इत्यमरः। पथिकानां प्रार्थितं (ष० त०), तस्य सिद्धिः (ष० त०)। पथिकप्रार्थितसिद्धिं शंसतीति पथिकप्रार्थितसिद्धिशंसी, तम्, पथिकप्रार्थितसिद्धि + शंस + णिनिः (उपपद०) + अम्। जलसंभृतं=जलेन संभृतः जलसंभृतः, तम् (तृ० त०)। कलयाम्बभूव= "कल संख्याने" धातुसे णिच् होकर लिट् + तिप् (णल्)। इस पद्यमें पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धमें वृत्यनुप्रास "लसं" 'लसम्' इस अंशमें छेकानुप्रास इस प्रकार उनका एकाश्रयाऽनुप्रवेशरूप सङ्कर अलङ्कार है॥ ६५॥

अवलम्ब्य दिदृक्षयाऽम्बरे क्षणमाश्चर्यरसाऽलसं गतम्।
स विलासवनेऽवनीभुजः फलमैक्षिष्ट रसालसंगतम्॥ ६६॥

अन्वयः—स दिदृक्षया अम्बरे क्षणम् आश्चर्यरसाऽलसं गतम् अवलम्ब्य अवनीभुजो विलासवने रसालसंगतं फलम् ऐक्षिष्ट॥ ६६॥

व्याख्या—सः=हंसः दिदृक्षया =दर्शनेच्छया, स्वगन्तव्यमार्गस्येति शेषः। अम्बरे = आकाशे, क्षणं=कंचित्कालं यावत्, आश्चर्यरसालसं=विस्मयरसेन मन्दं, गतं=गतिम्, अवलम्ब्य = आश्रित्य, अवनीभुजः=राज्ञः, नलस्येत्यर्थः। विलासवने=क्रीडोपवने, रसालसंगतं = चूतवृक्षसम्बद्धं, फलम् = आम्रफलम्, ऐक्षिष्ट = दृष्टवान्, प्रस्थान आम्रफलदर्शनमपि शुभशकुनरूपमिति भावः॥ ६६॥

अनुवादः—उस हंसने मार्गदर्शनकी इच्छासे आकाशमें कुछ समयतक आश्चर्यरससे मन्द गतिका अवलम्बन कर राजाके क्रीडावनमें आमके पेड़में विद्यमान आम्रफलको देखा॥ ६६॥

टिप्पणी—दिदृक्षया=द्रष्टुमिच्छा दिदृक्षा, तया, दृश्, + सन् + अ + टाप् + टा। क्षणं = "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इस सूत्रसे द्वितीया। आश्चर्यरसाऽलसम्=आश्चर्यस्य रसः (ष० त०), तेन अलसम् (तृ० त०), तत्। गतं=गम् + क्तः + अम्। अवनीभुजः = अवनीं भुनक्तीति अवनीभुक्, तस्य अवनी + भुज् + क्विप् (उपपद०) + ङस्। अवनीभृतः" इस पाठमें अवनीं बिभर्तीति अवनीभृत्, तस्य, अवनी + भृ + क्विप् + ङस्। विलासवने=विलासस्य वनं, तस्मिन् (ष० त०)। रसालसंगतं= रसाले संगतं, तत् (स० त०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"आम्रश्चूतो रसालोऽसौ" इत्यमरः। ऐक्षिष्ट=ईक्ष + लुङ्+त। इस पद्यमें प्रथम और चतुर्थ चरणमें अन्त्ययमक है, अतः दो शब्दाऽलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ ६६ ॥

नभसः कलभैरुपासितं जलदैर्भूरितरक्षुपन्नगम्।
स ददर्श पतङ्गपुङ्गवो विटपच्छन्नतरक्षुपं नगम् ॥ ६७ ॥

अन्वयः—पतङ्गपुङ्गवः स नभसः कलभैः जलदैः उपासितं भूरितरक्षुपन्नगं विटपच्छन्नतरं क्षुपं नगं ददर्श ॥ ६७ ॥

व्याख्या—पतङ्गपुङ्गवः = पक्षिश्रेष्ठः, सः = हंसः, नभसः = आकाशस्य, कलभैः = हस्तिशावकरूपैः, जलदैः = मेघैः, उपासितं = व्याप्तं, भूरितरक्षुपन्नगं = वहुमृगादनसर्पम्, एवं च विटपच्छन्नतरक्षुपं = शाखाऽतिशयच्छादितह्रस्वशाखवृक्षं, नगं = पर्वतं, ददर्श = दृष्टवान्, पूर्णकुम्भादिदर्शनं पान्थानां क्षेमकरमिति शकुनज्ञाः ॥ ६७ ॥

अनुवादः—पक्षियोंमें श्रेष्ठ उस हंसने आकाशके हाथीके बच्चों के समान मेघोंसे व्याप्त और शाखाओंसे छिपे हुए चीते और सर्पोंसे युक्त पर्वतको देखा ॥ ६७ ॥

टिप्पणी—पतङ्गपुङ्गवः = पुमांश्चाऽसौ गौः पुङ्गवः (क० धा०), "गोरतद्धितलुकि" इससे समासाऽन्त टच् प्रत्यय। "स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः। सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठाऽर्थगोचराः।" इत्यमरः। पतङ्गश्चाऽसौ पुङ्गवः (क० धा०)। कलभैः = "कलभः करिशावकः" इत्यमरः। जलदैः = जलं ददतीति जलदाः, तैः जल-उपपदपूर्वक डुदाञ् दाने" धातुसे "आतोऽनुपसर्गे कः" इस सूत्रसे क प्रत्यय (उपपद०)+भिस्। भूरितरक्षुपन्नगम्=भूरयः तरक्षवः पन्नगाः यस्मिन्, तम् (वहु०)। "तरक्षुस्तु मृगाऽदनः" इत्यमरः। विटपच्छन्नतरक्षुपं = अतिशयेन छन्नाः छन्नतराः छन्न+तरप्+जस्। विटपैः छन्नतराः (तृ० त०)। "विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। विटपच्छन्नतराः क्षुपा यस्मिन्, तम् (वहु०)। "ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः" इत्यमरः। नगं = न गच्छतीति नगः, तम्, नञ्+गम्+डः+अम्। "नगोऽप्राणिष्वन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे नञ्का विकल्पसे प्रकृतिभाव। अतः एक पक्षमें "अगः" ऐसा रूप भी होता है। "शैलवृक्षौ नगावगौ" इत्यमरः। ददर्श = दृश्+लिट्+तिप्। इस पद्यमें "कलभैः" जलदैः, यहाँपर रूपक और द्वितीय और चतुर्थ पादोंमें अन्त्ययमक है ॥ ६७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स ययौ धुतपक्षतिः क्षणं क्षणमूर्ध्वायनदुर्विभावनः ।
विततीकृतनिश्चलच्छदः क्षणमालोककदत्तकौतुकः ॥ ६८ ॥

अन्वयः—स क्षणं धुतपक्षतिः, क्षणम् ऊर्ध्वायनदुर्विभावनः विततीकृतनिश्चलच्छदः क्षणम् आलोककदत्तकौतुकः (सन्) ययौ ॥ ६८ ॥

व्याख्या—सः = हंसः, क्षणं = कंचित्कालं यावत्, धुतपक्षतिः = कम्पितपक्षमूलः, क्षणं = कञ्चित्कालं यावत्, ऊर्ध्वायनदुर्विभावनः = उपरिगमनदुर्लक्षः, विततीकृतनिश्चलच्छदः=विस्तारितनिष्कम्पपक्षः, तथा क्षणं = कंचित्कालं यावत्, आलोककदत्तकौतुकः = दर्शकवितीर्णकुतूहलः सन् ययौ = जगाम ॥ ६८ ॥

अनुवादः—वह हंस कुछ समयतक पक्षमूलोंको हिलाता हुआ, और कुछ समयतक ऊपर जानेसे दुःखसे देखे जानावाला तथा कम्परहित पंखोंको फैलाता हुआ इस प्रकार कुछ समयतक देखनेवालोंको कौतुक देता हुआ गया ॥ ६८ ॥

टिप्पणी—क्षणं= "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इससे द्वितीया । धुतपक्षतिः= पक्षयोर्मूले पक्षती, "पक्षात्तिः" इस सूत्रसे ति प्रत्यय । "स्त्री पक्षतिः पक्षमूलम्" इत्यमरः । धुते पक्षती येन सः (बहु०) । ऊर्ध्वायनदुर्विभावनः = ऊर्ध्वं च तत् अयनं (क० धा०) । दुर्लभं विभावनं यस्य सः (बहु०) । ऊर्ध्वाऽयनेन दुर्विभावनः (तृ० त०) । विततीकृतनिश्चलच्छदः = अविततौ विततौ यथा सम्पद्येते तथा कृतौ विततीकृतौ, वितत + च्वि + कृ + क्त + औ । विततीकृतौ निश्चलौ छदौ येन सः (बहु०) । आलोककदत्तकौतुकः = आलोकयन्तीति आलोककाः, आङ् + लोक + णिच् + ण्वुल् । दत्तं कौतुकं येन सः (बहु०) । आलोककानां दत्तकौतुकः (ष० त०) । ययौ = या + लिट् + तिप् । "आत औ णलः" इस सूत्रसे णल्के स्थानमें औकार आदेश । इस पद्यमें स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ ६८ ॥

तनुदीधितिधारया रयाद्गतया लोकविलोकनामसौ ।
छदहेम कषन्निवाऽलसत् कषपाषाणनिभे नभस्तले ॥ ६९ ॥

अन्वयः—असौ रयात् लोकविलोकनां गतया तनुदीधितिधारया कषपाषाणनिभे नभस्तले छदहेम कषन् इव अलसत् ॥ ६९ ॥

व्याख्या—असौ = हंसः, रयात् = वेगात् हेतोः, लोकविलोकनां = जननयनगोचरं, गतया = प्राप्तया, तनुदीधितिधारया = शरीरकिरणरेखया, कषपा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

षाणनिभे = निकषोपलसदृशे, नभस्तले = आकाशे, छदहेम = निजपक्षसुवर्णं, कषन् इव = घर्षन् इव, अलसत् = अशोभत ॥ ६९ ॥

अनुवादः—वह (हंस) वेगसे लोगोंके दर्शन पथको प्राप्त शरीरके किरणकी रेखासे कसौटीके सदृश आकाशमें अपने पंखके सुवर्णको घिसते हुएके समान शोभित हुआ ॥ ६९ ॥

टिप्पणी—रयात्=हेतुमें पञ्चमी । लोकविलोकनां लोकानां विलोकना, ताम् (ष० त०), "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः । तनुदीधितिधारया = तनोः दीधितिः (ष० त०), तस्या धारा तया (ष० त०) । हंसके सुनहले शरीरकी किरणकी रेखासे यह अभिप्राय है । इस पदकी मल्लिनाथने दूसरी व्याख्या भी की है—तनुश्चाऽसौ दीधितिधारा, तया (क० धा०) अर्थात् हंसकी सूक्ष्म किरणकी रेखासे यह तात्पर्य है । "स्तोकाऽल्पक्षुल्लकाः सूक्ष्मं श्लक्ष्णं दभ्रं कृशं तनु ।" इत्यमरः । कषपाषाणनिभे = कषश्चाऽसौ पाषाणः (क० धा०) । तेन सदृशं कषपाषाणनिभं, तस्मिन् (तृ० त०) । "निभसङ्काशनीकाशप्रतीकाशोपमादयः ।" इत्यमरः । छदहेम=छदयोः हेम, तत् (ष० त०) । कषन् = कषतीति, कष+लट् (शतृ)+सुः । अल सत् = "लस दीप्तौ" धातुसे लङ्+तिप् । इस पद्यमें 'कषपाषाणनिभे' यहाँपर उपमा और 'कषन् इव' यहाँपर उत्प्रेक्षा इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ६९ ॥

विनमद्भिरधः स्थितैः खगैर्झटिति श्येननिपातशङ्किभिः ।
स निरैक्षि दृशैकयोपरि स्यदसाङ्कारिपतत्त्रिपद्धतिः ॥ ७० ॥

अन्वयः—स्यदसाङ्कारिपतत्त्रिपद्धतिः स श्येननिपातशङ्किभिः विनमद्भिः अधः स्थितैः खगैः झटिति एकया दृशा उपरि निरैक्षि ॥ ७० ॥

व्याख्या—स्यदसाङ्कारिपतत्रिपद्धतिः = स्यदेन (वेगेन) साङ्कारिणी ('साम्' इति शब्दं कुर्वाणा) पतत्त्रिपद्धतिः (पक्षिसरणिः) यस्य सः, तादृशः सः = हंसः, श्येननिपातशङ्किभिः = पत्त्रिनिपतनशङ्कनशीलैः, अतएव विनमद्भिः = नम्रीभूतैः, अधःस्थितैः = अधोभागे विद्यमानैः, खगैः = पक्षिभिः, झटिति = शीघ्रम्, एकया = एकसंख्यया, दृशा = दृष्ट्या, उपरि = ऊर्ध्वं, निरैक्षि = निरीक्षितः ॥ ७० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—वेगसे 'साम्' ऐसा शब्द करनेवाले पक्षियोंके मार्गमें स्थित उस हंसको बाजके आक्रमणकी शङ्का करनेवाले अतएव झुकते हुए नीचे रहनेवाले पक्षियोंने शीघ्रतासे एक ही नेत्रसे ऊपर देखा ॥ ७० ॥

टिप्पणी—स्यदसाङ्कारिपतत्त्रिपद्धतिः = सां करोतीति सांकारिणी सां + कृ + णिनिः + ङीप् + सुः । पतत्त्रिणां पद्धतिः (ष० त०) । साङ्कारिणी पतत्त्रि-पद्धतिः यस्य सः (बहु०) । स्यदेन साङ्कारिपतत्त्रिपद्धतिः (तृ० त०) । श्येन-निपातशङ्किभिः = श्येनस्य निपातः (ष० त०), 'पत्त्री श्येन' इत्यमरः । श्येन-निपातं शङ्कन्ते तच्छीलाः, तैः, श्येननिपात + शकि + णिनिः (उपपद०) + भिस् । विनमद्भिः = विनमन्तीति विनमन्तः, तैः, वि + नम + लट् (शतृ) + भिस् । निरैक्षि = निर् + ईक्ष + लुङ् (कर्ममें), इस पद्यमें पक्षिस्वभावका वर्णन होनेसे स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ ७० ॥

> ददृशे न जनेन यन्नसौ भुवि तच्छायमवेक्ष्य तत्क्षणात् ।
> दिवि दिक्षु वितीर्णचक्षुषा पृथुवेगद्रुतमुक्तदृक्पथः ॥ ७१ ॥

अन्वयः—यन् असौ भुवि तच्छायम् अवेक्ष्य तत्क्षणात् दिवि दिक्षु च वितीर्ण-चक्षुषा जनेन पृथुवेगद्रुतमुक्तदृक्पथः (सन्) न ददृशे ॥ ७१ ॥

व्याख्या—यन् = गच्छन्, असौ = हंसः, भुवि = भूमौ, तच्छायं = तस्य छायाम् (प्रतिबिम्बम्), अवेक्ष्य = दृष्ट्वा, तत्क्षणात् = तस्मिन्नेव क्षणे, दिवि = आकाशे, दिक्षु च=दिशासु, वितीर्णचक्षुषा=दत्तदृष्टिना, जनेन = लोकेन, भूतल-स्थितेनेति शेषः । पृथुवेगद्रुतमुक्तदृक्पथः = महाजवशीघ्रत्यक्तदृष्टिमार्गः सन्, न ददृशे=नो दृष्टः, अल्पक्षणेनैव हंसो नेत्रमार्गमतिक्रान्त इति भावः ॥ ७१ ॥

अनुवादः—जाते हुए उस हंसके जमीनपर उसकी छायाको देखकर, उसी क्षणमें आकाशमें और दिशाओंमें दृष्टिपात करनेवाले मनुष्यने बड़े वेगसे नेत्र-मार्गको पार करनेसे उसे नहीं देखा ॥ ७१ ॥

टिप्पणी—'यन् = एतीति, "इण् गतौ" धातुसे लट् (शतृ) + सुः । तच्छायं = तस्य छाया तच्छायं, तत् (ष० त०) "विभाषा सेनासुराच्छाया-शालानिशानाम्" इससे नपुंसकलिङ्ग हुआ है । अवेक्ष्य = अव + ईक्ष + क्त्वा (ल्यप्) । तत्क्षणात् = सचाऽसौ क्षणः, तस्मात् (क० धा०) । वितीर्णचक्षुषा= वितीर्णे चक्षुषी येन सः, तेन (बहु०) । पृथुवेगद्रुतमुक्तदृक्पथः=पृथुश्चाऽसौ वेगः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क० धा०)। द्रुतं मुक्तः (सुप्सुपा०)। दृशोः पन्था दृक्पथः (ष० त०), "ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे" इससे समासाऽन्त अप्रत्यय। द्रुतमुक्तो दृक्पथो येन सः (वहु०)। पृथुवेगेन द्रुतमुक्तदृक्पथः (तृ० त०)। ददृशे = दृश् + लिट् + त (कर्ममें)। इस पद्यमें दर्शनाऽभावके प्रति पृथु आदि पदके अर्थकी हेतुतासे पदाऽर्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥ ७१॥

न वनं पथि शिश्रियेऽमुना क्वचिदप्युच्चतरद्रुचारुतम्।
न सगोत्रजमन्ववादि वा गतिवेगप्रसरद्रुचा रुतम्॥ ७२॥

अन्वयः—गतिवेगप्रसरद्रुचा अमुना पथि क्वचित् अपि उच्चतरद्रुचारुतं वनं न शिश्रिये, सगोत्रजं रुतं वा न अन्ववादि॥ ७२॥

व्याख्या—गतिवेगप्रसरद्रुचा = गमनजवप्रसर्पत्कान्तिना, अमुना = हंसेन, पथि = मार्गे, क्वचित् अपि = कुत्रचित् अपि, उच्चतरद्रुचारुतम् = उन्नततरवृक्षसौन्दर्यं, वनं = काननं, न शिश्रिये = न आश्रितम्। तथा सगोत्रजं = वन्धुजन्यं, रुतं वा = कूजितं वा, न अन्ववादि = न अनूदितं, नलेन राजकार्यत्वरया मध्येमार्गं श्रमाऽपनयनाऽर्थं वनं नाश्रितं तथैव वन्धुसंभाषणादिकं च नो विहितमिति भावः॥ ७२॥

अनुवादः—गमनके वेगसे फैलनेवाली कान्तिवाले हंसने मार्गमें कहीं भी वृक्षोंके उन्नतसौन्दर्यसे सम्पन्न किसी वनका आश्रय नहीं लिया और न अपने बन्धु हंसोंके कूजितका उत्तर ही दिया॥ ७२॥

टिप्पणी—गतिवेगप्रसरद्रुचा = गतेर्वेगः (ष० त०)। प्रसरन्ती रुक् यस्य स 'प्रसरद्रुक् (वहु०)। गतिवेगेन प्रसरद्रुक्, तेन (तृ० त०)। उच्चतरद्रुचारुतम् = अतिशयेन उच्चा उच्चतरा, उच्च + तरप् + जस्। उच्चतराश्च ते द्रवः (क० धा०)। चारोर्भावः चारुता, चारु + तल् + टाप्। उच्चतरद्रूणां चारुता यस्मिस्तत् (व्यधिकरणवहु०)। "पलाशो द्रुद्रुमाऽगमाः" इत्यमरः। शिश्रिये = "श्रिञ् सेवायाम्" धातुसे कर्ममें लिट् + त। सगोत्रजं = समानं गोत्रं (कुलं) येषां ते सगोत्राः (वहु०), "ज्योतिर्जनपदरात्रिनाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनवन्धुषु" इस सूत्रसे 'समान' के स्थानमें "स" भाव। "गोत्रं नाम्न्यचले कुले" इति कोशः। "सगोत्रवान्धवज्ञातिबन्धुस्वस्वजनाः समाः।" इत्यमरः। सगोत्रेभ्यो जातं, सगोत्र + जन् + ड + सुः। रुतं = "तिरश्चां वाशितं रुतम्" इत्यमरः। अन्ववादि = अनु-उपसर्गपूर्वक 'वद'-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातुसे लुङ् (कर्ममें) । नलके कार्यको शीघ्र संपन्न करनेके लिए हंसने मार्गमें श्रम हटानेके लिए न किसी वनमें मुकाम किया और न अपने बन्धुओंके साथ संभाषण आदि ही किया यह भाव है। इस पद्यमें द्वितीय और चतुर्थ पादोंमें अन्त्ययमक अलङ्कार है ॥ ७२ ॥

अथ भीमभुजेन पालिता नगरी मञ्जुरसौ धराजिता ।
पतगस्य जगाम दृक्पथं हिमशैलोपमसौधराजिता ॥ ७३ ॥

अन्वयः—अथ धराजिता भीमभुजेन पालिता हिमशैलोपमसौधराजिता मञ्जुः असौ नगरी पतगस्य दृक्पथं जगाम ॥ ७३ ॥

व्याख्या—अथ = प्रस्थानाऽनन्तरं, धराजिता = भूमिजयिना, भीमभुजेन = भीमभूपवाहुना, पालिता = रक्षिता, हिमशैलोपमसौधराजिता = हिमालय-सदृशराजभवनशोभिता, मञ्जुः = मनोहरा, असौ = इयं, नगरी=पुरी, कुण्डिन-पुरीति भावः । पतगस्य = पक्षिणः, हंसस्य । दृक्पथं = नेत्रमार्गं, जगाम = ययौ, हंसः=कुण्डिनपुरीं ददर्शेति भावः ॥ ७३ ॥

अनुवादः—तव पृथ्वीको जीतनेवाले महाराज भीमके वाहुसे रक्षित हिमालय पर्वतके समान (सफेद) राजभवनोंसे शोभित, मनोहर वह कुण्डिन-पुरी पक्षी (हंस) के दृष्टिमार्गमें प्राप्त हुई ॥ ७३ ॥

टिप्पणी—धराजिता = धरां जयतीति धराजित्, तेन, धरा + जि + क्विप् (उपपद०) + टा । भीमभुजेन = बिभेति अस्मात् इति भीमः, भीमादयोऽ-पादाने" इस सूत्रसे निपातन । भीमस्य भुजः, तेन (ष० त०) । हिमशैलोपम-सौधराजिता =हिमानां शैलः (ष० त०), तस्य इव उपमा (सादृश्यम्) येषां तानि (व्यधि० वहु०) । तानि च तानि सौधानि (क० धा०), "सौधोऽस्त्री राजसदनम्" इत्यमरः । तैः राजिता (तृ० त०) । दृक्पथं=दृशोः पन्थाः दृक्पथः, तम् (ष० त०), समासाऽन्त अप्रत्यय । जगाम = गम् + लिट् + तिप् । इस पद्यमें "मञ्जुरसौ धराजिता" इस द्वितीय चरणमें 'असौ-धराजिता' और चतुर्थचरणमें 'सौधराजिता' होनेसे विरोधाभास अलङ्कार है । 'हिमशैलोपमसौधराजिता' यहाँपर उपमा है पूर्वार्द्धमें अन्त्याऽनुप्रास और द्वितीय और चतुर्थ चरणमें यमक है, इस प्रकार संसृष्टि है ॥ ७३ ॥

दयितं प्रति यत्र सन्ततं रतिहासा इव रेजिरे भुवः ।
स्फटिकोपलविग्रहा गृहाः शशभृद्भित्तनिरङ्कभित्तयः ॥ ७४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—यत्र स्फटिकोपलविग्रहाः शशभृद्भित्तनिरङ्कभित्तयः गृहा दयितं प्रति सन्ततं भुवः रतिहासा इव रेजिरे ॥ ७४ ॥

व्याख्या—अथ द्वात्रिंशत्संख्यकैः पद्यैः कुण्डिनपुरीं वर्णयति । यत्र=कुण्डिनपुर्यां, स्फटिकोपलविग्रहाः = स्फटिकमणिमयशरीराः, शशभृद्भित्तनिरङ्कभित्तयः= चन्द्रखण्डनिष्कलङ्ककुड्याः, गृहाः = भवनानि, दयितं प्रति =प्रियं प्रति, भीमभूपं प्रतीति भावः । सन्ततम् = निरन्तरं, भुवः = भूमेः, नायिकास्वरूपाया इति भावः । रतिहासा इव = केलिहास्यानि इव, कविसमये हासस्य शुक्लवर्णत्वादिति भावः । रेजिरे = शुशुभिरे ॥ ७४ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिननगरीमें स्फटिक मणिसे बने हुए चन्द्रखण्डोंके समान निष्कलङ्क दीवारोंवाले भवन, पति महाराज भीमके प्रति पृथ्वीरूप नायिकाके निरन्तर क्रीडाके हास्योंके समान शोभित होते थे ॥ ७४ ॥

टिप्पणी—स्फटिकोपलविग्रहाः = स्फटिकाश्च त उपलाः (क० धा०), त एव विग्रहाः येषां ते (बहु०) 'शरीरं वर्ष्म विग्रहः' इत्यमरः । शशभृद्भित्तनिरङ्कभित्तयः=शशं बिभर्तीति शशभृत्, शश+भृ+क्विप् (उप०) । तस्य भित्तानि (ष० त०), भित्तं शकलखण्डे वा पुंसि' इत्यमरः । निर्गतः अङ्कः (कलङ्कः) याभ्यस्ताः निरङ्काः (बहु०), शशभृद्भित्तानि इव निरङ्का भित्तयो येषां ते (बहु०) । 'भित्तिः स्त्री कुड्यमेडूकम्' इत्यमरः । गृहाः = 'गृहाः पुंसि च भूम्न्येव निकाय्यनिलयालयाः ।' इत्यमरः । दयितं = 'प्रति' इसके योगमें 'अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि' इस वार्तिकसे द्वितीया विभक्ति । रतिहासाः = रतेर्हासाः (ष० त०) । रेजिरे = 'राजृ दीप्तौ' धातुसे लिट्+झ । 'फणां च सप्तानाम्' इस सूत्रसे एत्व और अभ्यासका लोप । इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें उत्प्रेक्षा और उत्तरार्द्धमें उपमा इस प्रकार दो अलङ्कारोंकी संसृष्टि है ॥ ७४ ॥

नृपनीलमणीगृहत्विषामुपधेर्यत्र भयेन भास्वतः ।
शरणाप्तमुवास वासरेऽप्यसदावृत्युदयत्तमं तमः ॥ ७५ ॥

अन्वयः—यत्र तमः भास्वतः भयेन नृपनीलमणीगृहत्विषाम् उपधेः शरणाप्तं वासरे अपि असदावृति उदयत्तमम् (सत्) उवास ॥ ७५ ॥

व्याख्या—यत्र=यस्यां, कुण्डिननगर्यामित्यर्थः । तमः = अन्धकारं, भास्वतः= सूर्यात्, भयेन = भीत्या, नृपनीलमणीगृहत्विषां = भूपेन्द्रनीलरत्नगृहकान्तीनाम्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उपधेः = छलात्, शरणाप्तं=गृहप्राप्तं, वासरे अपि = दिवसे अपि, असदावृत्ति = पुनरावृत्तिरहितम्, अत उदयत्तमम् = उद्यत्तमं सत्, अतिनिविडमिति भावः। उवास = वसति स्म ॥ ७५ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिनपुरीमें अन्धकार, सूर्यके भयसे राजा भीमके इन्द्रनील मणियोंसे बने हुए भवनोंके वहानेसे भवनके भीतर रह कर दिनमें भी नहीं लौटता हुआ गाढ होकर रहता था ॥ ७५ ॥

टिप्पणी—भास्वतः = भासः सन्ति यस्य स भास्वान्, तस्मात्, 'भास्' शब्दसे 'तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्' इस सूत्रसे मतुप् और "तसौ मत्वर्थे' इस सूत्रसे भसंज्ञा होनेसे पदकार्य रुत्वका अभाव। 'भीत्रार्थानां भयहेतुः" इससे अपादानसंज्ञा होनेसे पञ्चमी। नृपनीलमणीगृहत्विषां = नीलाश्च ता मणयः (क० धा०)। 'रत्नं मणिर्द्वयोः' इत्यमरः। 'मणि' शब्दसे 'कृदिकारादक्तिनः' इससे ङीष् होकर 'मणी' शब्द वनता है। नीलमणीनां गृहाः (ष० त०)। नृपस्य नीलमणीगृहाः (ष० त०), तेषां त्विषः, तासाम् (ष० त०)। उपधेः = 'कपटोऽस्त्री व्याजदम्भोपधयश्छद्मकैतवे।' इत्यमरः। शरणाप्तं = शरणम् (गृहं रक्षितारं वा) आप्तम्, 'द्वितीया श्रिताऽतीतपतितगताऽत्यस्तप्राप्तापन्नैः' इससे द्वि० त०। 'शरणं गृहरक्षित्रोः' इत्यमरः। असदावृत्ति=न सती असती (नञ्०)। असती आवृत्तिर्यस्य तत् (बहु०)। उदयत्तमम् = उदेतीति उदयत्, उद्+इण्+लट् (शतृ)। अतिशयेन उदयत् उदयत्तमम्, उदयत्+तमप्। उवास = वस्+लिट्+तिप्। "लिट्यभ्यासस्योभयेषाम् "इससे अभ्यासका संप्रसारण। इस पद्यमें अन्धकारमें कार्यके द्वारा शरणार्थी जनके व्यवहारका समारोप होनेसे समासोक्ति और उदात्त अलङ्कार है दोनोंकी संसृष्टि है ॥ ७५ ॥

सितदीप्रमणिप्रकल्पिते यदगारे हसदङ्करोदसि।
निखिलान्निशि पूर्णिमा तिथीनुपतस्थेऽतिथिरेकिका तिथिः ॥ ७६ ॥

अन्वयः—सितदीप्रमणिप्रकल्पिते हसदङ्करोदसि यदगारे निशि निखिलान् तिथीन् एकिका पूर्णिमा तिथिः अतिथिः (सती) उपतस्थे ॥ ७६ ॥

व्याख्या—सितदीप्रमणिप्रकल्पिते = शुक्लदीपनशीलरत्ननिर्मिते, हसदङ्करोदसि = प्रकाशमाननिकटद्यावापृथिवीके, यदगारे = कुण्डिनगृहे, निशि = रात्रौ, निखिलान् = समस्तान्, तिथीन् = प्रतिपत्प्रभृतीन्, एकिका = एकाकिनी,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

एकैवेति भावः। पूर्णिमा = पौर्णमासी, तिथिः = राकेति भावः, अतिथिः = आगन्तुका सती, उपतस्थे = उपस्थिता, सङ्गतेति भावः। स्फटिकरत्ननिर्मित-कुण्डिनभवनानां शुक्लवर्णैर्द्यावापृथिव्यौ रात्रावपि प्रकाशमाने आस्ताम् ततश्च सर्वा अपि तिथयः पूर्णिमातुल्या जाता इति तात्पर्यम् ॥ ७६ ॥

अनुवादः—सफेद प्रकाशमान रत्नों (स्फटिकों) से बने हुए, जिनके निकट आकाश और पृथिवी प्रकाशमान हैं कुण्डिनपुरीके ऐसे गृहोंमें रातमें सब तिथियों, के पास एकमात्र पूर्णिमा तिथि अतिथि होती हुई उपस्थित होती थी ॥ ७६ ॥

टिप्पणी—सितदीप्रमणिप्रकल्पिते=दीपनशीला दीप्राः "दीपी दीप्तौ" धातुसे "नमिकम्पिस्म्यजसकमहिंसदीपो रः" इस सूत्रसे र प्रत्यय। सिताश्चते दीप्राः (क० धा०)। सितदीप्राश्च ते मणयः (क० धा०), तैः प्रकल्पितम् (तृ० त०) तस्मिन्। "यदगारे" इस पदका विशेषण। हसदङ्करोदसि = हसन् अङ्कः (मध्यभागः) ययोस्ते (बहु०)। हसदङ्के रोदस्यौ (द्यावापृथिव्यौ) यस्य तत् हसदङ्करोदः, तस्मिन् (बहु०)। यदगारे = यस्याः (कुण्डिनपुर्याः) अगारं तस्मिन् (ष० त०)। "अगारे" यह जातिमें एकवचन है। तिथीन् = "तिथयोर्द्वयोः" इत्यमरः। एकिका = एका एव, "एक" शब्दसे "एकादाकि-निच्चाऽसहाये" इस सूत्रसे स्वार्थमें कप्रत्यय। अतिथिः = "स्युरावेशिकरागन्तु-रतिथिर्ना गृहागते।" इत्यमरः। उपतस्थे = उप—उपसर्गपूर्वक 'स्था' धातुसे "उपाद् देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम्" इससे सङ्गतिकरणमें आत्मनेपद होकर लिट्+त। इस पद्यमें कुण्डिनपुरीमें स्फटिकके भवनोंकी कान्तिसे नित्य चन्द्रिकाका योग होनेसे सभी रात्रियाँ पूर्णिमाकी समान थीं इस प्रकार भेद होनेपर भी अभेदकी उक्तिसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥ ७६ ॥

सुदतीजनमज्जनार्पितैर्घुसृणैर्यत्र कषायिताऽऽशया।
न निशाऽखिलयाऽपि वापिका प्रससाद ग्रहिलेव मानिनी ॥ ७७ ॥

अन्वयः—यत्र सुदतीजनमज्जनार्पितैः घुसृणैः कषायिताऽऽशया वापिका ग्रहिला मानिनी इव अखिलया निशा अपि न प्रससाद ॥ ७७ ॥

व्याख्याः—यत्र =यस्यां नगर्यां, सुदतीजनमज्जनार्पितैः = सुन्दरीलोक-स्नानवितीर्णैः, घुसृणैः = कुङ्कुमैः, कषायिताऽऽशया = सुगन्धिताऽभ्यन्तरभागा, कलुषित न्तःकरणा च, वापिका = दीर्घिका, ग्रहिला = निर्बन्धयुक्ता, मानिनी इव = मानवती नायिका इव, अखिलया=सकलया, निशा अपि = रात्र्या अपि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रात्र्याः सर्वभागेषु व्यतीतेष्वपीति भावः, न प्रससाद = प्रसन्ना नाऽभूत् । कुण्डिनपुर्यां सुन्दरीणां स्नानेन तत्कुचाऽर्पितकुङ्कुमरञ्जिता वापिका सपत्नी-कुचकुङ्कुमसम्पर्कयुक्तं नायकं दृष्ट्वा निर्बन्धवती नायिका इव रात्रौ व्यतीता-यामपि न प्रससाद, वापी निर्मला नाभूत् नायिका च प्रसन्नमानसा नाऽभूदिति भावः ॥ ७७ ॥

अनुवाद:—जिस कुण्डिनपुरीमें सुन्दरियोंके स्नानसे फैले हुए कुङ्कुमोंसे भीतर सुगन्धित होनेवाली बावली सपत्नीके कुङ्कुमके संपर्कयुक्त पतिको देखकर हठ करनेवाली अभिमानिनी नायिकाकी समान रातके बीतने पर भी प्रसन्न (बावलीके पक्षमें निर्मल, नायिकाके पक्षमें प्रसादयुक्त) नहीं हुई ॥७७॥

टिप्पणी—सुदतीजनमज्जनाऽर्पितैः = शोभना दन्ता यासां ता सुदत्यः (बहु०), "वयसि दन्तस्य दतृ" इस सूत्रसे दन्तके स्थानमें "दतृ" आदेश और स्त्रीत्वविवक्षामें "उगितश्च" इस सूत्रसे ङीप् । सुदत्यश्च ते जनाः (क० धा०), तेषां मज्जनं (ष० त०), तेन अर्पितानि, तैः (तृ० त०) । कषायिताऽऽशया = कषायित आशयः (अभ्यन्तरभागः, अन्तःकरणं वा) यस्याः सा । वापिका = "वापी तु दीर्घिका" इत्यमरः । ग्रहिला = ग्रहः अस्ति यस्याः सा, 'ग्रह' शब्दसे "लोमादिपामादिपिच्छादिभ्यः शनेलचः" इस सूत्रसे इलच् और स्त्रीत्वविवक्षामें टाप् । मानिनी = प्रशस्तो मानः अस्या अस्तीति, मान + इनि + ङीप् । "स्त्रीणामीर्ष्याकृतः कोपो मानोऽन्यासङ्गिनि प्रिये ।" प्रियके अन्यस्त्रीके संसर्गसे स्त्रियोंको जो ईर्ष्यासे उत्पन्न कोप है उसे "मान" कहते हैं । निशा = "निशा" शब्दका "पद्दन्नोमास् हृन्निशसन्०" इत्यादि सूत्रसे निश् आदेश, टा विभक्ति । प्रससाद = प्र + सद् + लिट् + तिप् । इस पद्यमें पूर्णोपमा अलङ्कार है ॥ ७७ ॥

क्षणनीरवया यया निशि श्रितवप्रावलियोगपट्टया ।
मणिवेश्ममयं स्म निर्मलं किमपि ज्योतिरबाह्यमीक्ष्यते ॥ ७८ ॥

अन्वयः—निशि क्षणनीरवया श्रितवप्रावलियोगपट्टया यया मणिवेश्ममयं निर्मलम् अबाह्यं किमपि ज्योतिः ईक्ष्यते ॥ ७८ ॥

व्याख्या—निशि = रात्रौ, अर्धरात्र इति भावः । क्षणनीरवया = अल्पकालं निःशब्दया, नगरीपक्षे जनानां सुप्तत्वात्, योगिनीपक्षे ध्याननिश्चलत्वादिति तात्पर्यम् । श्रितवप्रावलियोगपट्टया = आश्रितयोगवस्त्रसदृशप्राकारपङ्क्तया,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यया = नगर्या, मणिवेश्ममयं = स्फटिकभवनस्वरूपं, निर्मलं = शुभ्रम् अविद्यादिदोषरहितं च, अवाह्यम् = अन्तर्वर्ति, किमपि = अवाङ्मनसगोचरं, ज्योतिः = तेजः, आत्मप्रकाशश्च, ईक्ष्यते स्म = दृश्यते स्म, "इज्यते स्म" इति पाठे पूज्यते स्मेत्यर्थः ॥ ७८ ॥

अनुवादः—आधीरातमें कुछ समय निःशब्द होकर योगवस्त्रकी समान प्राकारपङ्क्तिको धारण कर जो कुण्डिनपुरी, योगिनीके समान स्फटिकमणियोंके गृहस्वरूप निर्मल (शुक्ल) अभ्यन्तरस्मित अनिर्वाच्य प्रकाशका दर्शन करती थी ॥ ७८ ॥

टिप्पणी—क्षणनीरवया = निर्गतो रवो यस्याः सा नीरवा (बहु०)। क्षणं नीरवा (सुप्सुपा०) तया। श्रितवप्राऽऽवलियोगपट्टया = वप्राणाम् आवलिः (ष० त०), "प्राकारो वरणो वप्रः" इत्यमरः। योगस्य पट्टः (ष० त०) वप्राऽऽवलिः, योगपट्ट इव, "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे" इससे उपमितकर्मधारय। श्रितो वप्राऽऽवलियोगपट्टो यया, तया (बहु०)। यह नगरी पक्षमें है। योगिनीपक्ष में—वप्राऽऽवलिः इव योगपट्टः "उपमानानि सामान्यवचनैः" इससे समास। श्रितो वप्रावलियोगपट्टो यया, तया (बहु०)। मणिवेश्ममयं = मणीनां वेश्म (ष० त०) तत् स्वरूपं यस्य तत् (मणिवेश्म + मयट्)। निर्मलं = निर्गतं मलं यस्मात्तत् (बहु०)। ज्योतिः = प्रभा (नगरीपक्षमें), आत्मज्योतिः (योगिनीपक्षमें)। ईक्ष्यते स्म = ईक्ष + लट् (कर्ममें) + त। "इज्यते स्म" ऐसे पाठान्तरमें यज + लट् (कर्ममें)। इस पद्यमें प्रस्तुत नगरीके विशेषणके साम्यसे अप्रस्तुत योगिनीकी प्रतीति होनेसे समासोक्ति अलङ्कार है ॥ ७८ ॥

विललास जलाशयोदरे क्वचन द्यौरनुविम्बितेव या।
परिखाकपटस्फुटस्फुरत्प्रतिबिम्बाऽनवलम्बिताऽम्बुनि ॥ ७९ ॥

अन्वयः—या परिखाकपटस्फुटस्फुरत्प्रतिबिम्बाऽनवलम्बिताऽम्बुनि क्वचन जलाशयोदरे अनुबिम्बिता द्यौः इव विललास ॥ ७९ ॥

व्याख्या—या=नगरी, परिखाकपटस्फुटस्फुरत्प्रतिबिम्बाऽनवलम्बिताऽम्बुनि=खेयच्छलव्यक्तसंचलत्प्रतिमाऽसम्बद्धजले, क्वचन=कुत्रचन, जलाशयोदरे = ह्रदमध्ये, अनुबिम्बिता = प्रतिबिम्बिता, द्यौः इव = अमरावती इव, विललास = शुशुभे ॥ ७९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवाद:—जो (नगरी) खाईंके बहानेसे स्पष्ट चलनेवाले प्रतिविम्वसे जहाँ वीचका जल नहीं दिखाई देता है ऐसे किसी सरोवरके वीचमें प्रतिबिम्वित अमरावतीकी तरह शोभित होती थी ॥ ७९ ॥

टिप्पणी—परिखाकपटेत्यादि: = परित: खन्यते इति परिखा, परि-उपसर्ग-पूर्वक "खनु अवदारणे" इस धातुसे "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" इससे उप्रत्यय। "खनु अवदारणे" इस धातुसे "अन्येभ्योऽपि दृश्यते" इससे ड प्रत्यय। "खेयं तु परिखा" इत्यमर:। परिखाया: कपट: (ष० त०), स्फुरच्च तत् प्रतिबिम्वम् (क० धा०) स्फुटं स्फुरत्प्रतिबिम्बम् (सुप्सुपा०)। परिखाक-पटेन स्फुटस्फुरत्प्रतिबिम्बम् (तृ० त०)। न अवलम्बितम् (नञ्०)। अनव-लम्बितम् (मध्ये अगृह्यमाणम्) अम्बु यस्मिन् (बहु०)। प्रतिविम्वमें पड़ा हुआ जल प्रतिविम्वदेशमें प्रतीत नहीं होता है, चारों ओर प्रतीत होता है। परिखाकपटस्फुटस्फुरत्प्रतिविम्बेन अनवलम्बिताम्बु, तस्मिन् (तृ० त०)। जलाशयोदरे = जलानाम् आशय: (ष० त०) तस्य उदरं, तस्मिन् (ष० त०)। अनुबिम्बिता = अनुविम्वं संजातं यस्या: सा (अनुविम्ब + इतच् + टाप्)। द्यौ: = "सुरलोको द्योदिवौ द्वे" इत्यमर:। विललास = वि + लस + लिट्। इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति और उत्प्रेक्षा इन दोनोंकी संसृष्टि है ॥ ७९ ॥

> व्रजते दिवि यद्गृहाऽऽवलीचलचेलाऽञ्चलदण्डताडना:।
> व्यतरन्नरुणाय विश्रमं सृजते हेलिहयाऽऽलिकालनाम् ॥ ८० ॥

अन्वय:—यद्गृहाऽऽवलीचलचेलाञ्चलदण्डताडना: दिवि व्रजते हेलिहयाऽऽलि-कालनां सृजते अरुणाय विश्रमं व्यतरन् ॥ ८० ॥

व्याख्या—यद्गृहाऽऽवलीचलचेलाऽञ्चलदण्डताडना: = कुण्डिनभवनपङ्क्ति-चञ्चलपताकाऽग्रप्रतोदाघाता:, दिवि = आकाशे, व्रजते = गच्छते, हेलिहयाऽऽ-लिकालनां = सूर्याऽश्वपङ्क्तिप्रेरणां, सृजते = कुर्वते, अरुणाय = सूर्यसारथये, विश्रमं = विश्रान्ति, व्यतरन् = अददु: ॥ ८० ॥

अनुवाद:—जिस कुण्डिनपुरीके भवनोंमें चञ्चल पताकाके अग्रभागके दण्डोंके आघात आकाशमें जाते हुए और सूर्यके घोड़ोंको प्रेरणा करनेवाले अरुणको विश्राम देते थे ॥ ८० ॥

टिप्पणी—यद्गृहावलीचलचेलाऽञ्चलदण्डताडना: = गृहाणाम् आवल्य: (ष० त०)। यस्यां गृहावल्य: (स० त०)। चेलानाम् अञ्चला: (ष० त०),

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"वस्त्रमाच्छादनं वासश्चेलं वसनमंशुकम् ।" इत्यमरः । चलाश्च ते चेलाऽञ्चलाः (क० धा०) चलचेलाऽञ्चला एव दण्डाः (रूपक०) चलचेलाऽञ्चलदण्डैः ताडनाः (तृ० त०)। यद्गृहाऽऽवलीषु चलचेलाऽञ्चलदण्डताडनाः (स० त०)। यह कर्तृपद है । व्रजते = व्रज + लट् (शतृ) + ङे । हेलिहयाऽऽलिकालनां = हेलेर्हयाः (ष० त०)। "हेलिरालिङ्गने रवौ" इति यादवः । हेलिहयानाम् आलिः (ष० त०), तस्याः कालना, ताम् (ष० त०)। सृजते = सृज + लट् (शतृ) + ङे । विश्रमं=विश्रमणं विश्रमः तम्, वि—उपसर्गपूर्वक-श्रम धातुसे घञ् "नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्याऽनाचमेः" इससे वृद्धिका निषेध । व्यतरन् = वि—उपसर्गपूर्वक "तॄ प्लवनसन्तरणयोः" इस धातुसे लङ् + झिः । इस पद्यमें सूर्यके घोड़ोंके दण्डसे ताडनका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है और उससे कुण्डिनपुरीके गृहोंकी सूर्यमण्डलतक ऊँचाई व्यक्त होती है इस प्रकार अलङ्कारसे वस्तुध्वनि है ॥ ८० ॥

क्षितिगर्भधराऽम्बराऽऽलयैस्तलमध्योपरिपूरिणां पृथक् ।
जगतां खलु याऽखिलाऽद्भुताऽजनि सारैर्निजचिह्नधारिभिः ॥ ८१ ॥

अन्वयः—तलमध्योपरिपूरिणां जगतां पृथक् निजचिह्नधारिभिः सारैः क्षितिगर्भधराऽम्बराऽऽलयैः या अखिला अद्भुता अजनि खलु ॥ ८१ ॥

व्याख्या—तलमध्योपरिपूरिणाम् = अधोमध्योर्ध्वपूरकाणां, पातालभूमिस्वर्गाणामित्यर्थः । जगतां=लोकानां, पृथक् = असङ्कीर्णा, निजचिह्नधारिभिः= स्वलक्षणधारकैः, सारैः=उत्कृष्टैः, अंशैः क्षितिगर्भधराम्बराऽऽलयैः=पातालभूम्याकाशगृहैः, या = कुण्डिनपुरी, अखिला = समस्ता, अद्भुता = चित्रा, अजनि = जाता ॥ ८१ ॥

अनुवादः—अधोभाग, मध्यभाग और ऊर्ध्वभागको पूर्ण करनेवाले पाताल, भूमि और स्वर्ग इन तीनों लोकोंके भिन्न-भिन्न अपने चिह्नोंको धारण करनेवाले उत्कृष्ट पाताल, भूमि और आकाशमें स्थित भवनोंसे जो (कुण्डिनपुरी) पूर्णरूपसे अद्भुत (अनूठी) हो गई ॥ ८१ ॥

टिप्पणी—तलमध्योपरिपूरिणां = तलं च मध्यं च उपरि च (द्वन्द्वः) तलमध्योपरि पूरयन्तीति तच्छीलानि तलमध्योपरिपूरीणि, तेषाम्, तलमध्योपरि + पूर + णिनिः (उपपद०) + आम् । निजचिह्नधारिभिः = निजं च तत् चिह्नं (क० धा०), तत् धारयन्तीति तच्छीलाः निजचिह्नधारिणः, तैः, निज-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चिह्न+धृ+णिनिः (उपपद०)+भिस् । पाताल यानी भूगर्भ (तहखाना), उसका चिह्न—निधि (खजाना) आदि । धरा = पृथिवी, उसका चिह्न—धान्य आदि, आकाश—ऊर्ध्वलोक–ऊँची मञ्जिलवाले भवन उनके चिह्न—फूल चन्दन आदि भोगके उपकरण । इनको धारण करनेवाले यह तात्पर्य है । क्षितिगर्भधराऽम्बराऽऽलयैः = क्षितेर्गर्भः (ष० त०), क्षितिगर्भ कहनेसे पाताल यानी तहखाना । क्षितिगर्भश्च धरा च अम्बरं च (द्वन्द्वः), तेषु आलयैः (स० त०) । तिमञ्जिले गृहोंसे युक्त जो कुण्डिनपुरी आश्चर्यमयी थी यह तात्पर्य है । अजनि = "जनी प्रादुर्भावे" धातुसे लुङ्+त, "दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्योऽन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे च्लिके स्थानमें चिण्, "चिणो लुक्" इस सूत्रसे उसका लुक् । इस पद्यमें अन्य नगरियोंसे कुण्डिननगरीके आधिक्यके वर्णनसे व्यतिरेक अलङ्कार है ॥ ८१ ॥

दधदम्बुदनीलकण्ठतां वहदत्यच्छसुधोज्ज्वलं वपुः ।
कथमृच्छतु यत्र नाम न क्षितिभृन्मन्दिरमिन्दुमौलिताम् ॥ ८२ ॥

अन्वयः—यत्र अम्बुदनीलकण्ठतां दधत् अत्यच्छसुधोज्ज्वलं वपुः वहत् क्षितिभृन्मन्दिरम्, इन्दुमौलितां कथं नाम न ऋच्छतु ? ॥ ८२ ॥

व्याख्या—यत्र = यस्यां कुण्डिनपुर्याम्, अम्बुदनीलकण्ठतां = मेघैर्नीलकण्ठतां, दधत् = धारयत्, अत्यच्छसुधोज्ज्वलम् = अतिनिर्मललेपनद्रव्यनिर्मलं, वपुः = शरीरं, वहत् = बिभ्रत्, क्षितिभृन्मन्दिरं = राजभवनम्, इन्दुमौलितां = चन्द्रमण्डलपर्यन्तशिखरत्वं चन्द्रशेखरतां वा, कथं नाम = केन प्रकारेण, न ऋच्छतु = नो प्राप्नोतु ॥ ८२ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिनपुरीमें मेघोंसे श्याम कण्ठवाला अत्यन्त निर्मल चूनेसे उज्ज्वल शरीर धारण करनेवाला राजाका प्रासाद, शिरपर चन्द्रको धारण करनेवाले चन्द्रशेखर (शिव) के भावको क्यों नहीं प्राप्त करेगा ? ॥ ८२ ॥

टिप्पणी—अम्बुदनीलकण्ठताम् = अम्बु ददतीति अम्बुदाः, अम्बु+दा+क (उपपद०) । नीलः कण्ठो यस्य सः (बहु०) । नीलकण्ठस्य भावो नीलकण्ठता, नीलकण्ठ+तल्+टाप् । अम्बुदैः नीलकण्ठता, ताम् (तृ० त०) । दधत् = दधातीति, धा+लट्+शतृ+सुः, "उभे अभ्यस्तम्" इससे अभ्यस्तसंज्ञा होनेसे "नाऽभ्यस्ताच्छतुः" इससे नुम् आगमका निषेध । राजप्रासादकी चोटीके समीपमें मेघकी उपस्थितिसे नीलकण्ठके समान प्रासाद

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यह तात्पर्य है। अत्यच्छसुधोज्ज्वलम् = अत्यन्तम् अच्छा (सुप्सुपा०), सा चाऽसौ सुधा (क० धा०)। "सुधालेपोऽमृतं सुधा" इत्यमरः। अत्यच्छसुधया उज्ज्वलम् (तृ० त०) अत्यन्त निर्मल चूनेके लेपसे उज्ज्वल भवन। इन्दुमौलि- (शिव) के पक्षमें अत्यन्त निर्मल .अमृतके समान उज्ज्वल यह तात्पर्य है। वहत् = वहतीति, वह+लट्+शतृ। क्षितिभृन्मन्दिरं = क्षितिं बिभर्तीति क्षितिभृत्, क्षिति+भृ+क्विप् (उपपद०)। क्षितिभृतः मन्दिरम् (ष० त०)। इन्दुमौलिताम् = इन्दुमौली यस्य (व्यधिकरणबहु०)। तस्य भावः तत्ता, ताम्, इन्दुमौलि+तल्+टाप्+अम्। ऋच्छतु = ऋच्छ+लोट्+तिप्। इस पद्यसे राजभवनकी मेघमण्डलपर्यन्त ऊँचाई व्यक्त होती है। इस पद्यमें राज- भवनका इन्दुमौलित्वके साथ सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धके कथन होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है ॥ ८२ ॥

> बहुरूपकशालभञ्जिकामुखचन्द्रेषु कलङ्करङ्कवः।
> यदनेकसौधकन्धराहरिभिः कुक्षिगतीकृता इव ॥ ८३ ॥

अन्वयः—यदनेकसौधकन्धराहरिभिः बहुरूपकशालभञ्जिकामुखचन्द्रेषु कलङ्करङ्कवः कुक्षिगतीकृता इव ॥ ८३ ॥

व्याख्या—यदनेकसौधकन्धराहरिभिः = कुण्डिनपुरीबहुप्रासादमध्यभाग- स्थसिंहैः, बहुरूपकशालभञ्जिकामुखचन्द्रेषु = अधिकसौन्दर्यपाञ्चालिकाऽऽनन- सोमेषु, स्थिता इति शेषः। कलङ्करङ्कवः = लाञ्छनमृगाः, कुक्षिगतीकृता इव = भक्षिता इव, प्रतीयन्त इति शेषः ॥ ८३ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिनपुरीके प्रचुर प्रासादोंके मध्यभागमें निर्मित सिंहोंने अधिक सौन्दर्यवाली पुतलियोंके मुखचन्द्रोंमें स्थित कलङ्करूप मृगोंको मानों खा लिया है ॥ ८३ ॥

टिप्पणी—यदनेकसौधकन्धराहरिभिः = अनेककानि च तानि सौधानि (क० धा०), यस्या अनेकसौधानि (ष० त०), तेषां कन्धराः (ष० त०), यहाँ "कन्धरा" पदसे मध्यभाग लक्षित होता है। यदनेकसौधकन्धरासु हरयः तैः (स० त०)। "सिंहो मृगेन्द्रः पञ्चाऽऽस्यो हर्यक्षः केसरी हरिः।" इत्यमरः। बहुरूपकशालभञ्जिकामुखचन्द्रेषु=बहु रूपं (सौन्दर्यम्) यासां ता बहुरूपकाः (बहु०), "शेषाद्विभाषा" इस सूत्रसे समासान्त कप् प्रत्यय। बहुरूपकाश्च ताः शालभञ्जिकाः (क० धा०)। मुखानि एव चन्द्राः (रूपक०)। बहुरूपक-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शालभञ्जिकानां मुखचन्द्राः, तेषु (ष० त०)। कलङ्करङ्कवःकलङ्का एव रङ्कवः (रूपक०)। "कृष्णसाररुरुन्यङ्कुरङ्कुशम्बररौहिषाः।" इत्यमरः। कुक्षिगतीकृताः = कुक्षिं गताः (द्वि० त०), "पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम्" इत्यमरः। अकुक्षिगताः कुक्षिगता यथा संपद्यन्ते तथा कृताः कुक्षिगतीकृताः, कुक्षिगत + च्वि + कृ + क्त + जस्। पुतलियोंके मुख चन्द्रके समान थे, चन्द्रमें कलङ्क होता है, उन लोगोंके मुखचन्द्रोंमें कलङ्करूप जो मृग थे वे उनको भवनोंमें निर्मित सिंहोंने खा लिया इसीलिए नहीं दिखाई पड़ते हैं। पुतलियोंके मुखचन्द्र निष्कलङ्क थे यह तात्पर्य है। इस पद्यमें "मुखचन्द्रेषु" इस पदमें रूपक और "कुक्षिगतीकृता इव" इस पदमें उत्प्रेक्षा है इस प्रकार इनकी निरपेक्षरूपसे स्थिति होनेसे संसृष्टि है॥ ८३॥

बलिसद्म दिवं स तथ्यवागुपरि स्माऽऽह दिवोऽपि नारदः।
अधराऽथ कृता ययेव सा विपरीताऽजनि भूविभूषया॥ ८४॥

अन्वयः—स तथ्यवाक् नारदः बलिसद्मदिवं दिवः अपि उपरि आह स्म। अथ भूविभूषया यया अधरा कृता इव सा विपरीता अजनि॥ ८४॥

व्याख्या—सः = प्रसिद्धः, तथ्यवाक् = सत्यवचनः, नारदः = ब्रह्मपुत्रः, देवर्षिविशेषः। बलिसद्मदिवं = पातालस्वर्गं, दिवः अपि = स्वर्गात् अपि, उपरि = ऊर्ध्वस्थिताम्, उत्कृष्टां च, आह स्म = उक्तवान्। अथ = इदानीं, भूविभूषया = भूम्यलङ्कारभूतया, यया = कुण्डिननगर्या, अधरा = न्यूना, अधस्ताच्च, कृता इव = विहिता इव, सा = बलिसद्मद्यौः विपरीता = अन्यादृशी, नारदोक्तेरिति शेषः। हीना इति भावः, अजनि = जाता, सर्वोपरिस्थितायाः पुनरधः स्थितिर्वैपरीत्यमिति भावः॥ ८४॥

अनुवादः—प्रसिद्ध सत्यभाषी नारद ऋषिने पातालरूप स्वर्गको स्वर्गसे भी ऊपर (उत्कृष्ट) कहा था। इस समय पृथिवीकी अलङ्कारभूत जिस कुण्डिननगरीने अपने सौन्दर्यसे पातालको अधर (नीचा) सा कर दिया इस कारणसे वह (पातालरूप स्वर्ग) विपरीत (नीचा) हो गया॥ ८४॥

टिप्पणी—तथ्यवाक् = तथ्या वाक् यस्य सः (बहु०)। बलिसद्मदिवं = बलेः सद्म (ष० त०), "अधोभुवनपातालं बलिसद्म रसातलम्।" इत्यमरः। बलिसद्म एव द्यौः ताम् (रूपक०)। आह स्म = ब्रू धातुके स्थानमें "ब्रुवः पञ्चानामादित आहो ब्रुवः" इस सूत्रसे "आह" आदेश, "स्म" के योगमें भूत-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालमें लट्। नारदने विष्णुपुराणमें "स्वर्गादप्यतिरमणीयानि पातालानि" अर्थात् "पाताल स्वर्गसे भी अत्यन्त रमणीय है" ऐसा कहा है। भूविभूषया= भुवो विभूषा, तया (ष० त०)। अजनि = जन + लुङ् (कर्तामें)+त। स्वर्ग और पातालसे भी कुण्डिनपुरी रमणीय है यह तात्पर्य है। इस पद्यमें "वलिसद्मदिवम्" यहाँपर रूपक और "कृता इव" यहाँपर उत्प्रेक्षा है इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ८४ ॥

प्रतिहट्टपथे घरट्टजात् पथिकाह्वानदसक्तुसौरभे।
कलहान्न घनान् यदुत्थितानधुनाऽप्युज्झति घर्घरस्वरः ॥ ८५ ॥

अन्वयः—पथिकाह्वानदसक्तुसौरभे प्रतिहट्टपथे घरट्टजात् यदुत्थितात् कलहात् घर्घरस्वरः अधुना अपि घनान् न उज्झति ॥ ८५ ॥

व्याख्या—पथिकाह्वानदसक्तुसौरभे = पान्थाह्वायकसक्तुसुगन्धे, प्रतिहट्टपथे= प्रत्यापणमार्गे, घरट्टजात् = गोधूमादिचूर्णपाषाणजन्यात्, यदुत्थितात् = कुण्डिननगर्युत्पन्नात, कलहात् = विवादात्, जात इति शेषः, घर्घरस्वरः = निर्झरस्वरः, अधुना अपि = साम्प्रतम् अपि, घनान् = मेघान्, न उज्झति = न त्यजति। सर्वदा सर्वहट्टेषु घरट्टा मेघध्वानं कुर्वन्तीति भावः ॥ ८५ ॥

अनुवादः—पथिकोंको बुलानेवाले (आकर्षण करनेवाले) सत्तूके सौरभसे युक्त बाजारके मार्गमें चक्कियोंसे उत्पन्न जिस कुण्डिनपुरसे उठे हुए कलहसे घर्घर शब्द अबतक मेघको नहीं छोड़ रहा है ॥ ८५ ॥

टिप्पणी—पथिकाह्वानदसक्तुसौरभे = पन्थानं गच्छन्तीति पथिकाः, पथिन् शब्दसे "पथः ष्कन्" इससे ष्कन् प्रत्यय। पथिकानाम् आह्वानम् (ष० त०), तत् ददातीति पथिकाह्वानदम् पथिकाह्वान+दा+कः (उपपद०)। सक्तूनां सौरभम् (ष० त०)। पथिकाह्वानदं सक्तुसौरभं यस्मिन्, तस्मिन् (बहु०)। प्रतिहट्टपथे=हट्टस्य पन्थाः हट्टपथः (ष० त०), समासान्त अ प्रत्यय। हट्टपथं हट्टपथं प्रति प्रतिहट्टपथं, तस्मिन् (यथा शब्दके वीप्सा अर्थमें अव्ययीभाव), "तृतीयासप्तम्योर्बहुलम्" इस सूत्रसे सप्तमीमें बाहुल्येन अम्का अभाव। घरट्ट-जात् = घरट्टात् जातः घरट्टजः, तस्मात्, घरट्ट+जन्+डः (उपपद०)+ ङसिः। यदुत्थितात् = यस्या उत्थितः, तस्मात् (प० त०)। घर्घरस्वरः = घर्घरश्चाऽसौ स्वरः (क० धा०)। "घर्घर" यह अव्यक्ताऽनुकरण शब्द है। उज्झति = "उज्झी विवासे" धातुसे लट्+तिप्। कुण्डिनपुरमें सब हाटोंमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

चक्कियाँ मेघके समान शब्द करती रहती हैं यह इस पद्यका तात्पर्य है। इस पद्यमें मेघोंका चक्कियोंसे कलहका सम्बन्ध न होनेपर भी कलहसम्बन्धकी उक्ति होनेसे अतिशयोक्ति और घर्घर शब्दका कलहके हेतुके तौर उत्प्रेक्षणसे इवादि शब्दके अभावसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा इस प्रकार दो अलङ्कारोंका सङ्कर है ॥८५॥

वरणः कनकस्य मानिनीं दिवमङ्कादमराऽद्रिरागताम् ।
घनरत्नकवाटपक्षतिः परिरभ्याऽनुनयन्नुवास याम् ॥ ८६ ॥

अन्वयः—कनकस्य वरणः अमराऽद्रिः यां मानिनीम् अङ्कात् आगतां दिवं घनरत्नकवाटपक्षतिः (सन्) परिरभ्य अनुनयन् उवास ॥ ८६ ॥

व्याख्या—कनकस्य = सुवर्णस्य, वरणः = प्राकार एव, अमराऽद्रिः = सुरपर्वतः, सुमेरुरित्यर्थः, यां = नगरीम् एव, मानिनीं = कोपयुक्ताम्, अत एव अङ्कात् = निजोत्सङ्गात्, आगताम् = आयातां, भूलोकमिति शेषः। दिवं = स्वर्गम्, अमरावतीमित्यर्थः, घनरत्नकवाटपक्षतिः = निविडमणिकपाटपक्षमूलः सन्। परिरभ्य = आलिङ्ग्य, अनुनयन् = अनुनयं कुर्वन्, अनुसरन्नित्यर्थः, उवास = उषितवान्, कामिनः प्रणयकुपितां प्रेयसीमाप्रसादमनुगच्छन्तीति भावः ॥ ८६ ॥

अनुवादः—सुवर्णप्राकाररूप सुमेरुपर्वत जिस कुण्डिनपुरीरूप मानिनी और गोदसे आई हुई अमरावतीको गाढ रत्नोंवाले कपाटरूप पक्षमूलोंसे युक्त होकर आलिङ्गन कर अनुनय करता हुआ रहता था ॥ ८६ ॥

टिप्पणी—वरणः = "प्राकारो वरणो वप्रः" इत्यमरः। अमराऽद्रिः = अमरस्य अद्रिः (ष० त०)। मानिनीं = मानः अस्ति अस्याः सा मानिनी, ताम्, मान + इनिः + ङीप् + अम्। घनरत्नकवाटपक्षतिः = रत्नानां कवाटे (ष० त०), "कवाटमररं तुल्ये" इत्यमरः। घने रत्नकवाटे एव पक्षती यस्य सः (बहु०)। "स्त्री पक्षतिः पक्षमूलम्" इत्यमरः। परिरभ्य = परि + रभ् + क्त्वा (ल्यप्)। अनुनयन् = अनुनयतीति, अनु + नी + लट् (शतृ) + सुः। उवास = वस + लिट् + तिप् (णल्), इस पद्यसे विदर्भ देशमें सुवर्णका प्राकार सुमेरु पर्वतके समान है, कुण्डिननगरी अमरावतीकी सदृश है, रत्नोंके किवाड़ सुमेरुपर्वतके पक्षमूलोंके तुल्य हैं ऐसी प्रतीति होती है। इस पद्यमें सुवर्णप्राकारमें सुमेरुपर्वतका और कपाटमें पक्षतिका और कुण्डिन नगरीमें अमरावतीका आरोप होनेसे समस्तवस्तुविषय साङ्गरूपक और लिङ्गसाम्यसे सुमेरुपर्वत

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

और स्वर्गपुरी में नायक और नायिकाके व्यवहारका समारोप होनेसे समासोक्ति इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ८६ ॥

अनलैः परिवेषमेत्य या ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मभिः ।
उदयं लयमन्तरा रवेरवहद्वाणपुरीपरार्ध्यताम् ॥ ८७ ॥

अन्वयः—या रवेः उदयं लयम् अन्तरा ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मभिः अनलैः परिवेषम् एत्य बाणपुरीपरार्ध्यताम् अवहत् ॥ ८७ ॥

व्याख्या—या = कुण्डिननगरी, रवेः = सूर्यस्य, उदयम् = उद्गमं, लयम् = अस्तमयं च, अन्तरा=मध्ये, सूर्यस्योदयाऽस्तकालयोर्मध्यकाले इति भावः । ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मभिः = दीप्यमानसूर्यकान्तप्राकारोत्पन्नैः, सूर्यकिरणसम्पर्कादिति शेषः । अनलैः = अग्निभिः, परिवेषं = परिवेष्टनम्, एत्य = प्राप्य, बाणपुरीपरार्ध्यतां = बाणाऽसुरनगरीश्रेष्ठताम्, अग्निपरिवेष्टिततामिति भावः । अवहत् = धृतवान् ॥ ८७ ॥

अनुवादः—जो कुण्डिननगरी सूर्यकिरणके उदय और अस्तकालके मध्य समयमें सूर्यकिरणके सम्पर्कसे जलनेवाले सूर्यकान्तके प्राकारसे उत्पन्न अग्नियोंसे घिरी जाती हुई बाणाऽसुरकी नगरीकी श्रेष्ठताको धारण करती थी ॥ ८७ ॥

टिप्पणी—उदयं, लयम् = "अन्तरा" पदके योगमें "अन्तराऽन्तरेण युक्ते" इस सूत्रसे द्वितीया । ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मभिः = अर्कस्य उपलाः (ष० त०), ज्वलन्तश्च ते अर्कोपलाः (क० धा०) तेषां वप्रः (ष० त०) । ज्वलदर्कोपलवप्रात् जन्म येषां ते ज्वलदर्कोपलवप्रजन्मानः, तैः (व्यधिकरणबहु०) । बाणपुरीपरार्ध्यतां = बाणस्य पुरी (ष० त०) । परार्ध्यस्य भावः परार्ध्यता, परार्ध्य + तल् + टाप् । "परार्ध्याऽग्रप्राग्रहरप्राग्र्याऽग्र्याऽग्रीयमग्रियम् ।" इत्यमरः । बाणपुर्याः परार्ध्यता ताम् (ष० त०) । अवहत् = वह + लङ् + तिप् । शिवभक्त बाणाऽसुरकी नगरी शिवजीके अनुग्रहसे अग्निसे परिवेष्टित थी ऐसी पुराणकी प्रसिद्धि है । इस पद्यमें एककी परार्ध्यता दूसरी कैसे धारण करेगी इस कारण वस्तु सम्बन्धके सादृश्यका बोधन करनेसे निदर्शना अलङ्कार है ॥ ८७ ॥

बहुकम्बुमणिवराटिकागणनाटत्करकर्कटोत्करः ।
हिमबालुकयाऽच्छबालुकः पटु दध्वान यदापणार्णवः ॥ ८८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—बहुकम्बुमणिः वराटिकागणनाऽटत्करकर्कटोत्करः हिमवालुकया अच्छवालुको यदापणाऽर्णवः पटु दध्वान ॥ ८८ ॥

व्याख्या—बहुकम्बुमणिः=अधिकशङ्खरत्नयुक्तः, वराटिकागणनाऽटत्करकर्कटोत्करः=कपर्दिकासंख्यानप्रचरत्पाणिकुलीरसमूहसम्पन्नः, एवं च हिमवालुकया = कर्पूरेण, अच्छवालुकः = निर्मलसिकतः, यदापणाऽर्णवः = कुण्डिननगरीनिषद्यासमुद्रः, पटु = गम्भीरं यथा स्यात्तथा, दध्वान = ननाद ॥ ८८ ॥

अनुवादः—बहुतसे शङ्खों और रत्नोंसे युक्त, कौड़ियोंके गिननेमें चलनेवाले हस्तरूप कर्कटोंसे सम्पन्न और कर्पूरसे निर्मल वालूवाला जिस कुण्डिननगरीका बाजाररूपी समुद्र गम्भीर शब्द करता था ॥ ८८ ॥

टिप्पणी—बहुकम्बुमणिः = बहवः कम्बवो मणयो यस्मिन् सः (बहु०)। वराटिकागणनाऽटत्करकर्कटोत्करः = वराटिकानां गणना (ष० त०) कर्कटानाम् उत्कराः (ष० त०)। करा एव कर्कटोत्कराः (रूपक०)। अटन्तश्च ते करकर्कटोत्कराः (क० धा०)। वराटिकागणनायाम् अटत्करकर्कटोत्कराः (स० त०)। हिमवालुकया = "घनसारश्चन्द्रसंज्ञः सिताऽभ्रो हिमवालुका ।" इत्यमरः। अच्छवालुकः=अच्छा बालुका यस्मिन् सः (बहु०)। यदापणाऽर्णवः= आपण एव अर्णवः (रूपक०) यस्या आपणाऽर्णवः (ष० त०)। पटु = यह क्रियाविशेषण है। दध्वान = "ध्वन शब्दे" धातुसे लिट् + तिप् (णल्)। इस पद्यमें समस्तवस्तुविषय साऽङ्गरूपक अलङ्कार है ॥ ८८ ॥

यदगारघटाट्टकुट्टिमस्रवदिन्दूपलतुन्दिलापया ।
मुमुचे न पतिव्रतौचिती प्रतिचन्द्रोदयमभ्रगङ्गया ॥ ८९ ॥

अन्वयः—यदगारघटाट्टकुट्टिमस्रवदिन्दूपलतुन्दिलापया अभ्रगङ्गया प्रतिचन्द्रोदयं पतिव्रतौचिती न मुमुचे ॥ ८९ ॥

व्याख्या—यदगारेत्यादिः = कुण्डिननगरीगृहपङ्क्तिक्षौमनिवद्धभूमिस्यन्दमानचन्द्रकान्तमणीप्रवृद्धजलया, अभ्रगङ्गया = मन्दाकिन्या, प्रतिचन्द्रोदयं = चन्द्रोदये चन्द्रोदये, पतिव्रतौचिती = सत्या औचित्यं, न मुमुचे = न परित्यक्ता ॥ ८९ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिननगरीके भवनोंकी अटारियोंकी निवद्धभूमियोंमें पिघलनेवाले चन्द्रकान्त मणियोंसे बढ़े हुए जलसे युक्त आकाशगङ्गाने प्रत्येक चन्द्रोदयके अवसरमें पतिव्रताका औचित्य नहीं छोड़ा ॥ ८९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—यदगारेत्यादिः । अगाराणां घटाः (ष० त०) । यस्याम् अगार-घटाः (स० त०) । यदगारघटासु अट्टाः (स० त०), "स्यादट्टः क्षौममस्त्रियाम्" इत्यमरः । तेषां कुट्टिमाः "कुट्टिमोऽस्त्री निबद्धा भूः" इत्यमरः । इन्दोः उपलाः (ष० त०) । स्रवन्तश्च ते इन्दूपलाः (क० धा०) । यदगारघटाऽट्टकुट्टिमेषु स्रवदिन्दूपलाः (स० त०) । तुन्दिला आपः यस्याः सा, तुन्दिलाऽपा, "ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे" इस सूत्रसे समासाऽन्त अ प्रत्यय । "पिचण्डकुक्षी जठरोदरं तुन्दम्" इत्यमरः । तुन्दम् अस्याऽस्तीति तुन्दिलः, तुन्द" शब्दसे "तुन्दादिभ्य इलच्च" इस सूत्रसे इलच् प्रत्यय होता है । यद्यपि "तुन्द" शब्दका अर्थ है उदर, बढ़े हुए उदरवाले (तोंदवाले) को तुन्दिल कहते हैं, तथाऽपि यहाँपर "तुन्दिल' शब्दका लाक्षणिक अर्थ है बढ़ा हुआ । यदगार-घटाऽट्टकुट्टिमस्रवदिन्दूपलैः तुन्दिलापा, तया (तृ० त०) । अभ्रगङ्गया = अभ्रे-गङ्गा, तया (स० त०) । "द्योदिवौ द्वे स्त्रियामभ्रं व्योमपुष्करमम्बरम् ।" इत्यमरः । प्रतिचन्द्रोदयं=चन्द्रस्य उदयः (ष० त०) । चन्द्रोदये चन्द्रोदये इति, वीप्सामें अव्ययीभाव । पतिव्रतौचितीं=पत्यौ व्रतं (नियमः) यस्याः सा पतिव्रता, व्यधि० बहु०, "सुचरित्रा तु सती साध्वी पतिव्रता ।" इत्यमरः । उचितस्य भाव औचिती, "उचित" शब्दसे "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्मणि च" इस सूत्रसे ष्यञ् प्रत्यय । "षः प्रत्ययस्य" इससे 'ष' का और "हलस्तद्धितस्य" इससे 'य'-का लोप तथा षित् होनेसे "षिद्गौरादिभ्यश्च" इससे ङीष् । पतिव्रताया औचिती (ष० त०) । पतिव्रताका लक्षण है—"आर्ताऽऽर्ते, मुदिते हृष्टा, प्रोषिते मलिना कृशा । मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता ।" या० स्मृ० । मुमुचे="मुच्लृ मोक्षणे" धातुसे कर्ममें लुङ्+त । इस पद्यमें कुण्डिनपुरमें बड़े-बड़े भवन हैं, उनमें अटारियाँ आकाशके समान ऊँची हैं, वहाँपर फर्शमें चन्द्रकान्त मणि जड़े हुए हैं, चन्द्रके उगनेपर उनके किरणके सम्पर्कसे चन्द्रकान्तके पिघलनेसे पानी निकलता है, वही आकाशगङ्गा है चन्द्रोदय होनेपर जैसे आकाशगङ्गाके पति समुद्रके जलकी वृद्धि होती है वैसे ही पत्नी आकाशगङ्गामें भी पतिव्रताधर्मके पालनके कारण जलकी वृद्धि होती है, यह तात्पर्य है । इस पद्यमें चन्द्रकान्तसे पिघले हुए जलसे आकाशगङ्गामें जलवृद्धिका सम्बन्ध न होनेपर भी उसकी उक्ति होनेसे अतिशयोक्ति और समृद्धिविशिष्ट वस्तुका वर्णन होनेसे उदात्त अलङ्कार है उन दोनोंके अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर है और अतिशयोक्तिसे कुण्डिननगरीके गृहोंका औन्नत्य व्यक्त होता है इस प्रकार अलङ्कारसे वस्तुध्वनि है ॥ ८९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

रुचयोऽस्तमितस्य भास्वतः स्खलिता यत्र निरालयाः खलु ।
अनुसायमभुर्विलेपनापणकश्मीरजपण्यवीथयः ॥ ९० ॥

अन्वयः—यत्र अनुसायं विलेपनाऽऽपणकश्मीरजपण्यवीथयः अस्तम् इतस्य भास्वतः स्खलिताः निरालया रुचयः अभुः खलु ॥ ९० ॥

व्याख्या—यत्र=कुण्डिननगर्याम्, अनुसायं = प्रतिसन्ध्याकालं, विलेपनाऽऽपणकश्मीरजपण्यवीथयः = विलेपनापणेषु (सुगन्धद्रव्यनिषद्यासु) कश्मीरजपण्यवीथयः (कुङ्कुमरूपविक्रेयवस्तुश्रेणयः), अस्तम् = अस्तपर्वतम्, इतस्य = गतस्य, भास्वतः = सूर्यस्य, स्खलिताः=च्युताः अतएव निरालयाः= निराश्रयाः, रुचयः = प्रभाः, अभुः = भान्ति स्म, खलु = निश्चयेन ॥ ९० ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिननगरीमें प्रति सायङ्कालको सुगन्धद्रव्योंकी दूकानोंपर केशररूप विक्रेय पदार्थोंकी राशियाँ अस्ताचलको गये हुए सूर्यकी च्युत तथा आश्रयहीन प्रभाओंकी समान शोभित होती थीं ॥ ९० ॥

टिप्पणी—अनुसायं = सायं सायम् (वीप्सामें अव्ययीभाव०)। विलेपनाऽऽपणकश्मीरजपण्यवीथयः=विलेपनानाम् आपणाः, (ष० त०), "आपणस्तु निषद्यायाम्" इत्यमरः। कश्मीरेषु जातानि कश्मीरजानि, कश्मीर+जन्+डः। पणितुं योग्यानि पण्यानि, "पण व्यवहारे स्तुतौ च" धातुसे "अवद्यपण्यवर्या गर्ह्यपणितव्याऽनिरोधेषु" इस सूत्रसे यत्प्रत्ययान्त निपातन। कश्मीरजानि च तानि पण्यानि (क० धा०), तेषां वीथयः (ष० त०)। विलेपनाऽऽपणेषु कश्मीरजपण्यवीथयः (स० त०)। निरालयाः = निर्गत आलयो याभ्यस्ताः (बहु०)। अभुः = "भा दीप्तौ" धातुसे लुङ् + झिः। इस पद्यमें इव आदि शब्दोंके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा और सूर्यकी रुचियोंका निरालयत्व कहनेसे विशेष अलङ्कार भी है इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर है। उसका यहाँपर लक्षण है—"यदाधेयमनाधारम्" १०–७३ ॥ ९० ॥

विततं वणिजाऽऽपणेऽखिलं पणितुं यत्र जनेन वीक्ष्यते ।
मुनिनेव मृकण्डुसूनुना जगतीवस्तु पुरोदरे हरेः ॥ ९१ ॥

अन्वयः—यत्र वणिजा पणितुम् आपणे विततम् अखिलं जगतीवस्तु पुरा हरेः उदरे मृकण्डुसूनुना मुनिना इव जनेन वीक्ष्यते ॥ ९१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—यत्र = कुण्डिननगर्यां, वणिजा = पण्याजीवेन, पणितुं = व्यवहर्तुम्, आपणे = निषद्यायां, विततं = प्रसारितम्, अखिलं = समस्तं, जगतीवस्तु = लोकपदार्थः, पुरा = पूर्वकाले, हरेः = विष्णोः, उदरे = जठरे मृकण्डुसूनुना = मार्कण्डेयेन मुनिना इव = ऋषिणा इव, जनेन = लोकेन, वीक्ष्यते = अवलोक्यते ॥ ९१ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिननगरीमें व्यापारीसे बेचनेके लिए दूकानमें फैलाये गये संपूर्ण लोकोंका पदार्थ, पूर्वकालमें विष्णुके उदरमें मार्कण्डेय ऋषिके समान लोग देखा करते हैं ॥ ९१ ॥

टिप्पणी—वणिजा = "वैदेहकः सार्थवाहो नैगमो वाणिजो वणिक् ।" इत्यमरः । पणितुं = पण + तुमुन् । जगतीवस्तु = जगत्यां वस्तु (स. त.) । मृकण्डुसूनुना = मृकण्डोः सूनुःतेन (ष० त०) । वीक्ष्यते = वि + ईक्ष + लट् (कर्ममें) + त । जैसे पूर्वकालमें मार्कण्डेय मुनिने भगवान् विष्णुके उदरमें लोकका समस्त पदार्थ देखा था उसी तरह जिस कुण्डिननगरीकी दूकानमें लोग लोकके समस्त पदार्थ देखते हैं यह तात्पर्य है। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ९१ ॥

समम्रेणमदैर्यदापणे तुलयन्सौरभलोभनिश्चलम् ।
पणिता न जनाऽऽरवैरवैदपि कूजन्तमलिं मलीमसम् ॥ ९२ ॥

अन्वयः—यदापणे सौरभलोभनिश्चलं मलीमसम् अलिम् एणमदैः समं तुलयन् पणिता कूजन्तम् अपि जनाऽऽरवैः न अवैत् ॥ ९२ ॥

व्याख्या—यदापणे = कुण्डिननगरीनिषद्यायां, सौरभलोभनिश्चलं= सौगन्ध्यलोलुपत्वस्थिरं, मलीमसं = मलिनं, कस्तूरीसवर्णमिति भावः । अलिं = भ्रमरम्, एणमदैः = कस्तूरीभिः, समं = सह, तुलयन् = तोलयन्, पणिता = विक्रेता, कूजन्तम् अपि = गुञ्जन्तम् अपि, जनारवैः = लोकशब्दैः, कलकलैरित्यर्थः । न अवैत् = न ज्ञातवान्, शब्दतोऽपीति शेषः ॥ ९२ ॥

अनुवादः—कुण्डिनपुरके बाजारमें सुगन्धके लोभसे निश्चल कृष्णवर्णवाले भ्रमरको कस्तूरियोंके साथ तौलता हुआ बिक्री करता हुआ व्यापारी शब्दके करनेपर भी लोगोंके शोरगुलोंसे नहीं जानता था ॥ ९२ ॥

टिप्पणी—यदापणे = यस्या आपणः, तस्मिन् (ष० त०) । सौरभलोभनिश्चलं = सुरभेर्भावः सौरभं, सुरभि + अण् । सौरभस्य लोभः (ष० त०),

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तेन निश्चलः, तम् (तृ० त०)। मलीमसं = 'मल' शब्दसे "ज्योत्स्नातमिस्रा०" इत्यादि सूत्रसे ईमसच्प्रत्ययाऽन्त निपातन, "मलीमसं तु मलिनं कच्चरं मलदूषितम् ।" इत्यमरः। एणमदैः=एणस्य मदाः, तैः (ष० त०) "समम्" इस पदके योगमें तृतीया। तुलयन्="तुल उन्माने" धातुसे णिच् प्रत्यय होकर लट्के स्थानमें शतृ आदेश। संज्ञापूर्वक विधिसे लघूपध गुण नहीं हुआ। पणिता = पणत इति, पण + तृच् + सुः। कूजन्तं = कूज + लट् (शतृ) + अम्। जनाऽऽरवैः = जनानाम् आरवाः, तैः (ष० त०)। अवैत् = अव + इण् + लङ् + तिप्। इस पद्यमें प्रकृत भ्रमरको कृष्णवर्ण गुणसे अप्रकृत कस्तूरीसे तादात्म्यप्रतीति होनेसे "सामान्य" अलङ्कार है। उसका लक्षण है—

"सामान्यं प्रकृतस्याऽन्यतादात्म्यं सदृशैर्गुणैः ।" सा० द० १०–११६ ॥९२॥

रविकान्तमयेन सेतुना सकलाऽहं ज्वलनाऽऽहितोष्मणा ।
शिशिरे निशि गच्छतां पुरा चरणौ यत्र दुनोति नो हिमम् ॥ ९३ ॥

अन्वयः—यत्र सकलाऽहं ज्वलनाऽऽहितोष्मणा रविकान्तमयेन सेतुना गच्छतां चरणौ शिशिरे निशि हिमं पुरा नो दुनोति ॥ ९३ ॥

व्याख्या—यत्र=कुण्डिननगर्यां, सकलाऽहं=संपूर्णं दिनं, (व्याप्य), ज्वलनाऽऽहितोष्मणा=अग्निजनिततापेन, रविकान्तमयेन=सूर्यकान्तमणिस्वरूपेण, सेतुना = आलिसदृशमार्गेण, सूर्यकान्तकुट्टिमाऽध्वनेति भावः। गच्छतां=सञ्चरतां जनानां, चरणौ = पादौ। शिशिरे = शिशिरर्तौ, निशि = रात्रौ, हिमं = तुहिनं, पुरा नो दुनोति = न अपीडयत् ॥ ९३ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिननगरीमें दिनभर अग्निसे उत्पन्न तापवाले सूर्यकान्तमणिसे निबद्ध भूमिके मार्गसे चलनेवाले जनोंके चरणोंको शिशिर ऋतुमें भी रातको जाड़ा पीडित नहीं करता था ॥ ९३ ॥

टिप्पणी—सकलाऽहम् = सकलं च तत् अहः, तम् (क० धा०), "राजाऽहःसखिभ्यष्टच्" इस सूत्रसे समासाऽन्त टच् प्रत्यय, "रात्राऽह्नाहाः पुंसि" इस सूत्रसे पुंलिङ्गता "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इस सूत्रसे द्वितीया। ज्वलनाऽऽहितोष्मणा = आहित ऊष्मा (उष्णता) येन स आहितोष्मा = (बहु०)। ज्वलनेन आहितोष्मा, तेन (तृ० त०) रविकान्तमयेन = प्रचुरः रविकान्तो यस्मिन् सः तेन, "रविकान्त" शब्दसे "तत्प्रकृतवचने मयट्" इस सूत्रसे मयट्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्यय । गच्छतां = गम्+लट् (शतृ)+आम् । पुरा नो दुनोति = "पुरा" के योगमें "टुदु उपतापे" इस धातुसे "यावत्पुरानिपातयोर्लट्" इस सूत्रसे भूत-कालमें लट् । कुण्डिननगरीमें सूर्यकान्तमणिकी कुट्टिम भूमिमें दिनभर सूर्यकी किरणोंके सम्पर्कसे उत्पन्न आगकी गर्मीसे शिशिर ऋतुमें रातमें चलनेवाले मनुष्योंके चरणोंको जाड़ा नहीं सताता था यह इस पद्यका तात्पर्य है । इस पद्यमें हिमरूप कारणके रहनेपर भी उसका कार्य पीडाकी उत्पत्ति न होनेसे विशेषोक्ति अलङ्कार है, वह ऊष्मा (उष्णता) की उक्ति होनेसे उक्तनिमित्ता है और समृद्धिविशिष्ट वस्तुका वर्णन होनेसे उदात्त अलङ्कार भी है इस प्रकार दोनोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ९३ ॥

विधुदीधितिजेन यत्पथं पयसा नैषधशीलशीतलम् ।
शशिकान्तमयं तपाऽऽगमे कलितीव्रस्तपति स्म नाऽऽतपः ॥ ९४ ॥

अन्वयः—विधुदीधितिजेन पयसा नैषधशीलशीतलं शशिकान्तमयं यत्पथं तपाऽऽगमे कलितीव्र आतपः न तपति स्म ॥ ९४ ॥

व्याख्या—विधुदीधितिजेन = चन्द्रकिरणसम्पर्कोत्पन्नेन, पयसा = जलेन, नैषधशीलशीतलं = नलस्वभावसदृशशीतं, शशिकान्तमयं = चन्द्रकान्तमणि-निर्मितं, यत्पथं = कुण्डिननगरीमार्गं, कलितीव्रः = कलिसदृशतीक्ष्णः, आतपः = सूर्यतापः, न तपति स्म = न अतपत् ॥ ९४ ॥

अनुवादः—चन्द्रकिरणोंके सम्पर्कसे उत्पन्न जलसे नलके स्वभावके समान शीतल चन्द्रकान्त मणिसे बने हुए जिस कुण्डिनपुरीके मार्गको कलिकी समान तीक्ष्ण धूप ताप नहीं करती थी ॥ ९४ ॥

टिप्पणी—विधुदीधितिजेन = विधोः दीधितिः (ष० त०), तस्या जातं विधुदीधितिजं, तेन (विधुदीधिति+जन् + ड + टा) । नैषधशीलशीतलं = निषधानाम् अयं नैषधः, निषध + अण् । नैषधस्य शीलं (ष. त.) । "शीलं स्वभावे सद्वृत्ते" इत्यमरः । नैषधशीलम् इव शीतलम्, "उपमानानि सामान्य-वचनैः" इससे समास । शशिकान्तमयं = प्रचुराः शशिकान्ता यस्मिन्, तम्, शशिकान्त+मयट । यत्पथं = यस्याः पन्थाः, तम् (ष. त.) "ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षे" इस सूत्रसे समासान्त अ प्रत्यय । तपाऽऽगमे = तपस्य आगमः, तस्मिन् (ष० त०) । "निदाघ उष्णोपगम उष्ण ऊष्मागमस्तपः ।" इत्यमरः । कलितीव्रः = कलिरिव तीव्रः, (उपमानपूर्वपदकर्म०) । तपति स्म='तप सन्तापे'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धातुसे "स्म" के उत्तरपदके रहते हुए भूतकालमें लट्। चन्द्रकान्तमणिसे निर्मित जिस कुण्डिनपुरीके मार्गको चन्द्रकी किरणोंके सम्पर्कसे उत्पन्न जलके कारण ठण्डा होनेसे ग्रीष्म ऋतुके आगमनमें भी धूप ताप नहीं करती थी यह अभिप्राय है। इस पद्यमें भी ग्रीष्मके आगमन रूप कारणके रहनेपर उसके कार्य तापकी उत्पत्ति न होनेसे विशेषोक्ति अलङ्कार है, उसमें चन्द्रकिरणके सम्पर्कसे चन्द्रकान्तके पिघलनेसे जलकी उक्ति होनेसे उक्तनिमित्ता है, "कलितीव्रः" और "नैषधशीलशीतलम्" दोनो उपमा अलङ्कार हैं इस प्रकार उनकी संसृष्टि है ॥ ९४ ॥

परिखावलयच्छलेन या न परेषां ग्रहणस्य गोचरा।
फणिभाषितभाष्यफक्किका विषमा कुण्डलनामवापिता ॥ ९५ ॥

अन्वयः—परिखावलयच्छलेन कुण्डलनाम् अवापिता परेषां ग्रहणस्य न गोचरा या विषमा फणिभाषितभाष्यफक्किका ॥ ९५ ॥

व्याख्या—परिखावलयच्छलेन = खेयमण्डलव्याजेन, कुण्डलनाम् = मण्डलाकाररेखाम्, अवापिता = प्रापिता, अतएव, परेषां = शत्रूणाम्, अन्येषां च, ग्रहणस्य = आक्रमणस्य च। न गोचरा = अविषया, या = कुण्डिननगरी, विषमा = दुर्बोधा, फणिभाषितभाष्यफक्किका = पतञ्जलिकथितमहाभाष्य-कुण्डलावृतग्रन्थः, कुण्डिनपुरी पातञ्जलमहाभाष्यविनष्टग्रन्थभागसदृशी विषमा इति भावः ॥ ९५ ॥

अनुवादः—खाईके मण्डलके बहानेसे मण्डलाकार रेखाको प्राप्त कराई गई शत्रुओंके आक्रमणकी बाहर, जो कुण्डिननगरी दूसरेके ज्ञानका अविषय दुर्बोध, शेष नागसे कथित भाष्यकी फक्किका (विनष्ट ग्रन्थभाग) की सदृश थी ॥९५॥

टिप्पणी—परिखावलयच्छलेन = परितः खाताः परिखाः, परि उपसर्ग-पूर्वक "खनु अवदारणे" इस धातुसे "अन्येष्वपि दृश्यते" इस सूत्रसे डप्रत्यय और टाप् "खेयं तु परिखा" इत्यमरः। परिखाणां वलयः (ष० त०), तस्य छलं तेन (ष० त०)। अवापिता = अव+आप्+णिच्+क्त+टाप्। फणि-भाषितभाष्यफक्किका = फणा अस्याऽस्तीति फणी, "फणा" शब्दसे "व्रीह्यादि-भ्यश्च" इस सूत्रसे इनि, "कुण्डली गूढपाच्चक्षुःश्रवाः काकोदरः फणी।" इत्यमरः। फणा होनेसे सर्पको "फणी" कहते हैं। यहाँ पर "फणी" कहने से पाणिनिकी अष्टाध्यायीके महाभाष्यकार शेषनामके अवतार पतञ्जलि मुनि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवक्षित हैं। फणिना भाषितम् (तृ० त०), फणिभाषितं च तत् भाष्यम् (क० धा०)। सूत्रकी व्याख्याको "भाष्य" कहते हैं। उसका लक्षण है—

"सूत्राऽर्थो वर्ण्यते यत्र पदैः सूत्राऽनुसारिभिः।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः॥"

अर्थात् जहाँपर सूत्रके अनुसरण करनेवाले पदोंसे सूत्रार्थका और उसी प्रसङ्गमें प्रतिपादित स्वपदोंका भी वर्णन होता है उसे "भाष्य" कहते हैं। काव्यमीमांसामें राजशेखरने "आक्षिप्य भाषणाद्भाष्यम्" ऐसा लक्षण किया है। जहाँपर आक्षेपपूर्वक सूत्रार्थका वर्णन किया जाता है उसे भाष्य कहते हैं। फणिभाषितभाष्यस्य फक्किका (ष० त०)। कहा जाता है कि अष्टाध्यायीके सूत्रोंका महाभाष्य पेड़के पत्तोंपर लिखकर कोई विद्वान् ले आ रहे थे, वे मध्याह्नमें पेड़के नीचे सो रहे थे इतनेमें कुछ सूत्रोंके व्याख्याभाग भाष्यके पत्रोंको बकरीने खा लिया अतः उतने भागमें कुण्डलाकार चिह्न अङ्कित है जैसे वे सूत्रांऽश भाष्यकी अनुपलब्धिसे दुर्ज्ञेय हैं उसी तरह खाईंसे कुण्डलाकार घिरी हुई कुण्डिननगरी शत्रुओंसे आक्रमणकी विषयभूत नहीं है यह तात्पर्य है। इस पद्यमें कैतवाऽपह्नुति और नगरीका कुण्डलिग्रन्थत्वसे उत्प्रेक्षा, वह व्यञ्जक शब्दोंके अभावसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा, इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर है॥ ९५॥

मुखपाणिपदाऽक्षिण पङ्कजै रचिताऽङ्गेष्वपरेषु चम्पकैः।
स्वयमादित यत्र भीमजा स्मरपूजाकुसुमस्रजः श्रियम्॥ ९६॥

अन्वयः—यत्र मुखपाणिपदाऽक्षिण पङ्कजैः, अपरेषु अङ्गेषु चम्पकै रचिता भीमजा स्मरपूजाकुसुमस्रजः श्रियं स्वयम् आदित॥ ९६॥

व्याख्या—यत्र = कुण्डिननगर्यां, मुखपाणिपदाऽक्षिण = वदनकरचरणनेत्रे, पङ्कजैः = कमलैः, रचिता, अपरेषु = अन्येषु मुखपाणिपदाक्षिव्यतिरिक्तेष्विति भावः, अङ्गेषु = अवयवेषु, चम्पकैः = चम्पकपुष्पैः, रचिता = निर्मिता, सर्वत्र सादृश्याद् व्यपदेशः, तादृशी भीमजा = दमयन्ती, स्मरपूजाकुसुमस्रजः = कामाऽर्चनपुष्पमालायाः, श्रियं = शोभां, स्वयम् = आत्मनैव, आदित = आत्तवती, गृहीतवती॥ ९६॥

अनुवादः—जिस कुण्डिननगरीमें मुख, हाथों, चरणों और नेत्रोंमें कमलोंसे और मुख आदिसे अतिरिक्त और अङ्गोंमें चम्पक पुष्पोंसे बनाई गई दमयन्ती, कामदेवकी पूजाके फूलोंकी मालाको स्वयम् (खुद) ग्रहण करती थीं॥ ९६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—मुखपाणिपदाक्षिण = मुखं च पाणी च पदे च अक्षिणी च मुख-पाणिपदाऽक्षि, तस्मिन्। "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाऽङ्गानाम्" इस सूत्रसे समाहार द्वन्द्व। "पदाऽङ्गाऽधिकारे तस्य च तदन्तस्य च" इससे तदन्तविधिकी अनुज्ञासे "अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनङुदात्तः" इससे अनङ् और "अल्लोपोऽनः" इससे अल्लोप। भीमजा = भीमाज्जाता, भीम + जन् + ड + टाप् (उपपद०)। स्मरपूजाकुसुमस्रजः = स्मरस्य पूजा (ष० त०), तस्यां कुसुमानि (स० त०), तेषां स्रक्, तस्याः (ष० त०)। आदित=आङ्–उपसर्गपूर्वक "डुदाञ् दाने" धातुसे "आङो दोऽनास्यविहरणे" इससे आत्मनेपद होकर लुङ् + त, "स्थाघ्वोरिच्च" इससे इत्व और "ह्रस्वादङ्गात्" इससे सिच्‌का लोप। जिस कुण्डिन नगरीमें मुखमें श्वेत कमलसे हाथोंमें और चरणोंमें रक्त कमलोंसे तथा नेत्रोंमें नीलकमलों-से एवम् मुख आदिसे भिन्न अङ्गोंमें चम्पक पुष्पोंसे बनाईगई दमयन्ती, कामदेव-की पूजामें फूलोंकी मालाकी शोभाको प्राप्त करती थी अर्थात् दमयन्तीके मुख, हाथ, चरण और नेत्र कमलके समान तथा उनसे भिन्न अङ्ग चम्पक पुष्पोंके समान थे यह तात्पर्य है। इस पद्यमें कमलों और चम्पकपुष्पोंसे दमयन्तीके मुखादि अङ्गोंकी रचनाके असम्बन्धमें भी सम्बन्धकी उक्ति होनेसे अतिशयोक्ति और एककी शोभाका दूसरेसे ग्रहणके असंभव होनेसे सादृश्यका आक्षेप होकर निदर्शना इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर है ॥ ९६ ॥

जघनस्तनभारगौरवाद्वियदालम्ब्य विहर्तुमक्षमाः।
ध्रुवमप्सरसोऽवतीर्य यां शतमध्यासत तत्सखीजनः ॥ ९७ ॥

अन्वयः—जघनस्तनभारगौरवात् वियत् आलम्ब्य विहर्तुम् अक्षमाः शतम् अप्सरसः अवतीर्य तत्सखीजनः याम् अध्यासत ध्रुवम् ॥ ९७ ॥

व्याख्या—जघनस्तनभारगौरवात् = नितम्बकुचभरगुरुत्वात् हेतोः, वियत्= आकाशम्, आलम्ब्य = आश्रित्य, विहर्तुं = क्रीडितुम्, अक्षमाः = असमर्थाः, शतं=बहुसंख्यकाः, अप्सरसः=स्वर्वेश्या उर्वश्यादय इति भावः। अवतीर्य=अवरुह्य, स्वर्गादागत्येति भावः। तत्सखीजनः = दमयन्तीवयस्यागणः, दमयन्तीसख्यः सत्यः, यां = कुण्डिननगरीम् अध्यासत=अध्यतिष्ठन्, ध्रुवं = सम्भावनायाम्। अप्सरःसदृश्यो दमयन्तीसख्यो दमयन्तीमुपासत इति भावः ॥ ९७ ॥

अनुवादः—नितम्ब और कुचोंके भारकी गुरुतासे आकाशको अवलम्बन कर क्रीडा करनेके लिए असमर्थ बहुत-सी अप्सराएँ स्वर्गसे आकर दमयन्ती-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

की सखियाँ होकर जिस कुण्डिननगरीमें रहती हैं क्या? ऐसा मालूम होता था ।। ९७ ।।

टिप्पणी--जघनस्तनभारगौरवात् = जघनं च स्तनौ च जघनस्तनं, "द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाऽङ्गानाम्" इस सूत्रसे प्राण्यङ्ग होनेसे समाहार द्वन्द्व । जघनस्तनस्य भारः (ष० त०), गुरोर्भावः गौरवं, गुरु + अण् । जघनस्तन-भारस्य गौरवं, तस्मात् (ष० त०), हेतुमें पञ्चमी । आलम्ब्य = आङ् + लवि + क्त्वा (ल्यप्) । विहर्तुम् = वि + हृञ् + तुमुन् । अक्षमाः = न क्षमाः (नञ्०) । शतं="विंशत्याद्याः सदैकत्वे संख्याः संख्येयसंख्ययोः ।" इत्यमरः । अवतीर्य = अव + तॄ + क्त्वा (ल्यप्) । तत्सखीजनः = सखी चाऽसौ जनः (क० धा०), "जात्याख्यायामेकस्मिन्वहुवचनमन्यतरस्याम्" इससे जातिमें एकवचन, याम्="अध्यासत" "अधि-उपसर्गपूर्वक आस धातुके योगमें "अधि-शीङ्स्थाऽऽसां कर्म" इस सूत्रसे आधारकी कर्मता होनेसे द्वितीया । अध्यासत = अधि + शीङ् + आस + लङ् + झ । अप्सराओंकी सदृश दमयन्तीकी सखियाँ उनकी सेवा करती थीं यह तात्पर्य है। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है, "ध्रुवम्" यह पद उसका वाचक है ।। ९७ ।।

स्थितिशालिसमस्तवर्णतां न कथं चित्रमयी बिभर्तु या ।

स्वरभेदमुपैतु वा कथं कलिताऽनल्पमुखाऽऽरवा न वा ।। ९८ ।।

अन्वयः—चित्रमयी या स्थितिशालिसमस्तवर्णतां कथं न बिभर्तु? कलिताऽनल्पमुखाऽऽरवा या स्वरभेदं कथं वा न उपैतु ।। ९८ ।।

व्याख्या—चित्रमयी = आश्चर्यप्रचुरा आलेख्यप्रचुरा च, या= कुण्डिनगरी, स्थितिशालिसमस्तवर्णतां=मर्यादाशोभिसकलब्राह्मणादिवर्णताम् (आश्चर्य प्रचुरा-पक्षे), मर्यादाशोभिसकलशुक्लादिवर्णताम् (आलेख्यप्रचुरापक्षे), कथं=केन प्रकारेण न बिभर्तु=नो धारयतु, धारयत्येवेति भावः । एवं च कलिताऽनल्पमुखाऽऽरवा = प्राप्तबहुमुखशब्दा प्राप्तचतुर्मुखपञ्चमुखषण्मुखशब्दा च, या = पुरी, स्वरभेदं = ध्वनिनानात्वं (प्राप्तबहुमुखशब्दापक्षे), स्वर्गात् अभेदं (प्राप्तचतुर्मुखपञ्च मुखषण्मुखशब्दापक्षे) कथं वा = केन प्रकारेण वा, न उपैतु = न प्राप्नोतु, उपैत्येवेति भावः ।। ९८ ।।

अनुवादः—प्रचुर आश्चर्यवाली और प्रचुरचित्रवाली जो कुण्डिननगरी मर्यादावाले ब्राह्मण आदि वर्णोंसे युक्त और ठीक स्थानमें रहनेवाले शुक्ल कृष्ण

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

आदि वर्णोंसे युक्त क्यों न हो ? मनुष्य आदिके अनेक मुखोंसे शब्दों को प्राप्त करनेवाली जो नगरी स्वरके भेदको क्यों नहीं प्राप्त करेगी ? और बहुमुखवालों (चतुर्मुख = ब्रह्मा, पञ्चमुख=महादेव और षण्मुख = कार्तिकेय) शब्दको प्राप्त करनेवाली जो कुण्डिननगरी स्वर्गसे अभेदको क्यों नहीं प्राप्त करेगी ? ॥ ९८ ॥

टिप्पणी—चित्रमयी = प्रचुरं चित्रमस्ति यस्याःसा, चित्र+मयट्+ङीप् "आलेख्याऽऽश्चर्ययोश्चित्रम्" इत्यमरः। स्थितिशालिसमस्तवर्णतां = स्थित्या शाड (ल) न्ते तच्छीलाः इति स्थितिशालिनः, स्थिति+शाड्+णिनिः। "ड" और "ल" के अभेदसे "स्थितिशालिनः" ऐसा पद हुआ है। "स्थितिः स्त्रियामवस्थाने मर्यादायां च सीमनि" इत्यमरः। समस्ताश्च ते वर्णाः (क० धा०), "वर्णो द्विजाऽऽदौ शुक्लादौ स्तुतौ, वर्णं तु वाऽक्षरे।" इत्यमरः। स्थितिशालिनः समस्तवर्णा यस्याः सा (बहु०)। तस्याः भावः स्थितिशालिसमस्तवर्णता, ताम् स्थितिशालिसमस्तवर्णा+तल्+टाप्+अम्। "सामान्ये नपुंसकम्" इससे नपुंसकलिङ्गता। बिभर्तुं = डुभृञ्+लोट्+तिप्। आश्चर्यमयी इस नगरीमें ब्राह्मण आदि संपूर्ण वर्ण अपनी मर्यादामें थे, प्रचुर चित्रोंवाली इस नगरीमें चित्रोंमें शुक्ल नील आदि समस्त वर्ण (रङ्ग) ठीक स्थानमें थे। मनुष्य आदिके मुखोंके शब्दोंवाली जो नगरी स्वरोंके भेदको प्राप्त करती थी तथा बहुत मुखोंवालों (चतुर्मुख=ब्रह्मा, पञ्चमुख=महादेव और षण्मुख= कार्तिकेय) के शब्दोंको प्राप्त करनेवाली जो नगरी (स्वः अभेदम्) स्वर्गसे अभेदको प्राप्त करती थी अर्थात् जैसे स्वर्गमें चतुर्मुख, पञ्चमुख और षण्मुखके शब्द हैं वैसे ही यहां पर बहुत मुखोंके शब्द हैं यह तात्पर्य है इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें अर्थापत्ति, शब्दश्लेष और प्रकृतिश्लेषका एकाश्रयाऽनुप्रवेशरूप सङ्कर और उत्तरार्द्धमें भी वैसा ही सङ्कर है। समुदायमें संसृष्टि अलङ्कार है ॥ ९८ ॥

स्वरुचाऽरुणया पताकया दिनमर्केण समीयुषोत्तृषः।
लिलिहुर्बहुधा सुधाकरं निशिमाणिक्यमया यदालयाः ॥ ९९ ॥

अन्वयः—माणिक्यमया यदालयाः दिनं समीयुषा अर्केण उत्तृषः (सन्तः) निशि स्वरुचा अरुणया पताकया सुधाकरं बहुधा लिलिहुः ॥ ९९ ॥

व्याख्या—माणिक्यमयाः = पद्मरागरत्ननिर्मिताः, यदालयाः = कुण्डिननगरीगृहाः, दिनं = दिवसं व्याप्य, समीयुषा = सङ्गतेन, अर्केण =सूर्येण हेतुना'

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

उत्तृषः = उत्पन्नपिपासाः सन्तः, सूर्यकिरणसम्पर्कादिति शेषः । निशि = रात्रौ, स्वरुचा = आलयप्रभया, अरुणया = रक्तवर्णया, पताकया = वैजयन्त्या, रसनायमानयेति भावः । सुधाकरम् = अमृतनिधिं, चन्द्रमित्यर्थः, बहुधा = अनेकप्रकारैः, लिलिहुः = आस्वादयामासुः । दिवसे सन्तप्ता रात्रौ शीतोपचारं कुर्वन्तीति भावः ॥ ९९ ॥

अनुवादः—पद्मराग रत्नोंसे बने हुए जिस कुण्डिननगरीके भवन, दिन भर मिले हुए सूर्यके कारण प्यासे होकर रातमें भवनकी कान्तिसे लाल रसना-(जीभ) की सदृश पताकासे चन्द्रमाको अनेक प्रकारोंसे आस्वादन करते थे ॥ ९९ ॥

टिप्पणी—मणिक्यमयाः = माणिक्यानां विकाराः, माणिक्य + मयट् । यदालयाः = यस्याम् आलया (स० त०) । दिनं = 'कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे' इस सूत्रसे कालके अत्यन्त संयोगमें द्वितीया । समीयुषा = सम्-उपसर्गपूर्वक इण् धातुसे "उपेयिवाननाश्वाननूचानश्च" इस सूत्रमें "उद्" इस उपसर्गके अविवक्षित होनेसे उपसर्गरहित वा अन्य उपसर्गसे युक्त इण् धातुसे क्वसु प्रत्ययान्त निपातन । सम् + इण् + क्वसु + टा । उत्तृषः = उद्गता तृट् येषां ते (बहु०) स्वरुचा = स्वस्य रुक्, तया (ष० त०) । सुधाकरं = सुधाया आकरः, तम् (ष० त०) । बहुधा = बहुभिः प्रकारैः, "बहुगणवतुडतिसंख्या" इस सूत्रसे संख्यासंज्ञा होनेसे "बहु" शब्दसे "संख्याया विधार्थे धा" इस सूत्रसे धा प्रत्यय । लिलिहुः = "लिह आस्वादने" धातुसे लिट् + झि । इस पद्यमें पताकाओंके अपने शुक्लगुणका परित्याग कर माणिक्यमें स्थित अरुण गुणका ग्रहण करनेसे तद्गुण और कुण्डिनके आलयोंका चन्द्रलेहनकी उत्प्रेक्षा करनेमें इव आदि वाचक शब्दोंके अभावसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा इस प्रकार दो अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर है ॥ ९९ ॥

लिलिहे स्वरुचा पताकया निशि जिह्वानिभया सुधाकरम् ।
श्रितमर्ककरैः पिपासु यन्नृपसद्माऽमलपद्मरागजम् ॥ १०० ॥

अन्वयः—अमलपद्मरागजं यन्नृपसद्म :अर्ककरैः श्रितं पिपासु (सत्) स्वरुचा जिह्वानिभया पताकया निशि सुधाकरं लिलिहे ॥ १०० ॥

व्याख्या—पूर्वोक्तमेवाऽर्थं भङ्ग्यन्तरेण प्रतिपादयति लिलिह इति । अमलपद्मरागजं = निर्मलपुष्परागरत्ननिर्मितं, यन्नृपसद्म = कुण्डिननगरीराजभवनम्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अर्ककरैः = सूर्यकिरणैः, श्रितम् = अभिव्याप्तम्, अतिसामीप्यादिति शेषः। अत एव पिपासु = तृषितं सत्, स्वरुचा = स्वसदृशकान्तियुक्तया, जिह्वानिभया= रसनासदृश्या; पताकया = वैजयन्त्या, निशि = रात्रौ, सुधाकरं = चन्द्रमसं, लिलिहे = आस्वादयामास ॥ १०० ॥

अनुवादः—निर्मल पुष्परागरत्नोंसे निर्मित कुण्डिननगरीका राजप्रासाद, सूर्यकिरणोंसे अभिव्याप्त अतएव प्यासा होकर अपनी कान्तिवाली जीभकी समान पताकासे चन्द्रमाका आस्वादन करता था ॥ १०० ॥

टिप्पणी—अमलपद्मरागजम् = पद्मरागेभ्यो जातं पद्मरागजम् पद्मराग+जन्+डः। अमलं च तत् पद्मरागजम् (क० धा०)। यन्नृपसद्म = नृपस्य सद्म (ष० त०), यस्यां नृपसद्म (स० त०)। अर्ककरैः = अर्कस्य कराः, तैः (ष० त०)। श्रितं = श्रि+क्तः (कर्ममें)। पिपासु = पातुम् इच्छु, पा+सन्+उः। स्वरुचा=स्वा रुक् यस्यां सा स्वरुक्, तया (बहु०)। जिह्वानिभया= जिह्वया सदृशी जिह्वानिभा, तया (तृ० त०) लिलिहे = लिह आस्वादने" धातुसे कर्तामें लिट्+त। इस पद्यमें पहलेके समान तद्गुण, प्रतीयमानोत्प्रेक्षा और उपमा इनका अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर ॥ १०० ॥

> **अमृतद्युतिलक्ष्म पीतया मिलितं यद्वलभीपताकया।**
> **वलयायितशेषशायिनः सखितामादित पीतवाससः ॥ १०१ ॥**

अन्वयः—पीतया यद्वलभीपताकया मिलितम् अमृतद्युतिलक्ष्म वलयायितशेषशायिनः पीतवाससः सखिताम् आदित ॥ १०१ ॥

व्याख्या—पीतया=पीतवर्णया, यद्वलभीपताकया = कुण्डिननगरीवैजयन्त्या, मिलितं = संगतं, सामीप्यादिति शेषः। अमृतद्युतिलक्ष्म = चन्द्रलाञ्छनं, वलयायितशेषशायिनः = मण्डलीभूताऽनन्तनागे शयनशालिनः, पीतवाससः = पीताम्बरस्य, विष्णोरित्यर्थः। सखितां = सादृश्यम्, आदित=अग्रहीत् ॥१०१॥

अनुवादः—पीतवर्णवाली जिस कुण्डिननगरीके ऊँचे गृहकी पताकासे संगत चन्द्रमाका कलङ्क, मण्डलाकार शेषनागमें सोनेवाले पीताम्बर (विष्णु) के सादृश्यको ग्रहण करता था ॥ १०१ ॥

टिप्पणी—पीतया = "पीतो गौरो हरिद्राऽऽभः" इत्यमरः। यद्वलभीपताकया = यस्यां वलभी (स० त०)। "वलभी चन्द्रशालायां गृहे सौधोर्ध्ववेश्मनि।" इति रभसः। यद्वलभ्यां पताका, तया (स० त०)। अमृतद्युति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लक्ष्म=अमृतं द्युतिर्यस्य सः (बहु०)। अमृतद्युतेर्लक्ष्म (ष० त०)। वलयायित-शेषशायिनः = वलयवत् आचरितः वलयायितः, "वलय" शब्दसे "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इससे क्यङ् प्रत्यय होकर कर्तामें क्त प्रत्यय। वलयायितश्चाऽसौ शेषः (क० धा०)। वलयायितशेषे शेते तच्छीलः वलयायितशेषशायी, तस्य वलयायितशेष+शीङ्+णिनिः (उपपद०)+ङस्। पीतवाससः=पीतं वासो यस्य स पीतवासाः, तस्य (बहु०)। सखिताम् = सख्युर्भावः सखिता, ताम्, सखि+तल्+टाप्+अम्। आदित = आङ्-उपसर्गपूर्वक "डुदाञ् दाने" धातुसे कर्तामें लुङ्+त। इस पद्यमें चन्द्रमाका शेषनागके साथ, उनके कलङ्कका विष्णुके साथ और पीली पताकाका पीतवस्त्रके साथ सादृश्य है। इस पद्यमें वलभीपताकाके चन्द्रकलङ्कके साथ मेलनका सम्वन्ध न होनेपर भी सम्वन्धका प्रतिपादन करनेसे अतिशयोक्ति और उपमा अलङ्कार है इन दोनोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर है ॥ १०१ ॥

अश्रान्तश्रुतिपाठपूतरसनाऽऽविर्भूतभूरिस्तवा-
जिह्मब्रह्ममुखौघविघ्नितनवस्वर्गक्रियाकेलिना।
पूर्वं गाधिसुतेन सामिघटिता मुक्ता नु मन्दाकिनी
यत्प्रासाददुकूलवल्लिरनिलाऽऽन्दोलैरखेलद्दिवि ॥ १०२ ॥

अन्वयः—यत्प्रासाददुकूलवल्लिः अश्रान्तश्रुतिपाठपूतरसना० गाधिसुतेन पूर्वं सामिघटिता मुक्ता मन्दाकिनी नु अनिलान्दोलैः दिवि अखेलत् ॥ १०२ ॥

व्याख्या—यत्प्रासाददुकूलवल्लिः = कुण्डिननगरीराजभवनपताकालता, अश्रान्तश्रुतिपाठपूतरसनऽऽविर्भूतभूरिस्तवाऽजिह्मब्रह्ममुखौघविघ्नितनवस्वर्गक्रिया-केलिना = निरन्तरवेदपाठपवित्रजिह्वाप्रादुर्भूतप्रचुरस्तोत्राऽकुण्ठपितामहाऽऽनन-प्रत्यूहितनूतनसुरलोकरचनाविलासेन, गाधिसुतेन = विश्वामित्रेण, पूर्वं = प्रथमं, ब्रह्मप्रार्थनादिति शेषः। सामिघटिता = अर्धसृष्टा, प्रागिति शेषः, मुक्ता = त्यक्ता, पश्चादिति शेषः। मन्दाकिनी नु = आकाशगङ्गा किम्, अनि-लान्दोलैः = वायुचलनैः, दिवि = आकाशे, अखेलत् = अक्रीडत् ॥ १०२ ॥

अनुवादः—कुण्डिनपुरीके राजभवनकी पताका, लगातार वेदपाठ करनेसे पवित्र जीभसे प्रादुर्भूत प्रचुरस्तोत्रमें कुण्ठित न होनेवाले ब्रह्माजीके मुखोंसे नये स्वर्गलोककी रचनामें विघ्नवाले विश्वामित्रसे ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे पहले आधी बनाई गई और पीछेसे छोड़ी गई आकाशगङ्गा, वायुके आन्दोलनोंसे आकाशमें मानों खेल रही थी ॥ १०२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—यत्प्रासाददुकूलवल्लिः = यस्याः प्रासादः (ष० त०)। दुकूलं वल्लिरिव दुकूलवल्लिः (उपमितकर्म०)। यत्प्रासादे दुकूलवल्लिः (स० त०)। अश्रान्तश्रुतिपाठ० = न श्रान्तः अश्रान्तः (नञ्०)। श्रुतेः पाठः (ष० त०)। अश्रान्तश्चाऽसौ श्रुतिपाठः (क० धा०), तेन पूताः (तृ० त०)। अश्रान्तश्रुतिपाठपूताश्च ता रसनाः (क० धा०)। ताभ्य आविर्भूताः (प० त०)। भूरयश्च ते स्तवाः (क० धा०)। अश्रान्तश्रुतिपाठपूतरसनाविर्भूताश्च ते भूरिस्तवाः (क० धा०), न जिह्मः अजिह्मः (नञ्०)। ब्रह्मणो मुखानि (ष० त०), तेषाम् ओघः (ष० त०)। अजिह्मश्चाऽसौ ब्रह्ममुखौघः (क० धा०)। विघ्नः सञ्जातः अस्याः सा विघ्निता, विघ्न+इतच्+टाप्। नवश्चाऽसौ स्वर्गः (क० धा०)। तस्य क्रिया (ष० त०)। अश्रान्तश्रुतिपाठपूतरसनाऽऽविर्भूतभूरिस्तवेषु अजिह्मः (स० त०), स चाऽसौ ब्रह्ममुखौघः (क० धा०), तेन विघ्निता (तृ० त०)। सा चाऽसौ नवस्वर्गक्रिया एव केलिः यस्य तेन (बहु०)। गाधिसुतेन=गाधेः सुतः, तेन (ष० त०)। सामिघटिता, 'सामि' इस सूत्रसे समास। "सामि त्वर्धे जुगुप्सिते" इत्यमरः। मुक्ता = मुच्लृ+क्त+टाप्। अनिलान्दोलैः = अनिलस्य आन्दोलाः, तैः (ष० त०)। अखेलत् = "खेलृ चलने" इस धातुसे लङ्+तिप्। सशरीर स्वर्ग जानेके लिए यज्ञका अनुष्ठान चाहनेवाले इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न त्रिशङ्कु नामके राजाको वशिष्ठके प्रत्याख्यान करनेपर विश्वामित्रने यज्ञ कराया और उनको स्वर्गमें भिजवाया तब इन्द्रने उनको नीचे गिरा दिया तब क्रुद्ध होकर विश्वामित्रने नये स्वर्गकी सृष्टिका आरम्भ किया तब ब्रह्माजीने उनकी स्तुति (तारीफ) कर उनको उस कर्मसे विरत किया, वाल्मीकिरामायणके इस कथानकके अनुसार यह वर्णन है। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार, ओज गुण और गौडी रीति तथा शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १०२ ॥

यदतिविमलनीलवेश्मरश्मिभ्रमरितभाः शुचिवस्त्रवल्लिः।
अलभत शमनस्वसुः शिशुत्वं दिवसकराऽङ्कतले चला लुठन्ती ॥ १०३ ॥

अन्वयः—यदतिविमलनीलवेश्मरश्मिभ्रमरितभाः शुचिवस्त्रवल्लिः दिवसकराऽङ्कतले चला लुठन्ती शमनस्वसुः शिशुत्वम् अलभत ॥ १०३ ॥

व्याख्या—यदतिविमलनीलवेश्मरश्मिभ्रमरितभाः = कुण्डिननगर्यतिनिर्मलेन्द्रनीलनिकेतनकिरणभ्रमरसदृशकान्तिः, शुचिवस्त्रवल्लिः = शुक्लवसनलता,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

शुक्लवस्त्रपताकेति भावः। दिवसकराऽङ्कतले=सूर्योत्सङ्गप्रदेशे, चला = चञ्चला, लुठन्ती = परिवर्तमाना सती, शमनस्वसुः=यमभगिन्याः, यमुनायाः। शिशुत्वं = शैशवम्, अलभत = प्राप्तवती, वालयमुनेव शुशुभ इति भावः वालिकाश्च पितुरुत्सङ्गे लुठन्तीति भावः ॥ १०३ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिननगरीके अत्यन्त निर्मल नीलमके भवनोंकी किरणों-से भ्रमरके समान नीली कान्तिवाली सफेदवस्त्रकी पताकाने (अपने पिता) सूर्य-की गोदमें चञ्चल होकर लोट-पोट करती हुई यमुनाकी वाल्याऽवस्थाको प्राप्त किया ॥ १०३ ॥

टिप्पणी—यदतिविमल० = नीलं च तत् वेश्म (क० धा०)। नीलवेश्मनो रश्मयः (ष० त०)। अत्यन्तं विमलाः (सुप्सुपा०)। अतिविमलाश्च ते नील-वेश्मरश्मयः (क० धा०), यस्याम् अतिविमलनीलवेश्मरश्मयः, (स० त०)। भ्रमरः संजातः अस्यां सा भ्रमरिता, भ्रमर + इतच् + टाप्। भ्रमरिता भाः यस्याः सा (वहु०)। यदतिविमलनीलवेश्मरश्मिभिः भ्रमरितभाः (तृ० त०)। शुचिवस्त्रवल्लिः = वस्त्रम् एव वल्लिः (रूपक०)। शुचिश्चाऽसौ वस्त्रवल्लिः (क० धा०)। दिवसकराङ्कतले = दिवसं करोतीति तद्धेतुः दिवसकरः, "कृञो हेतुताच्छील्याऽऽनुलोम्येषु" इस सूत्रसे दिवस-उपपदपूर्वक "कृ" धातुसे ट प्रत्यय (उपपद०)। अङ्कस्य तलम् (ष० त०)। दिवसकरस्य अङ्कतलं तस्मिन् (ष० त०)। चला=चलतीति, चल + अच् + टाप्। लुठन्ती=लुठ + लट् (शतृ०) + ङीप्। शमनस्वसुः=शमनस्य स्वसा, तस्याः (ष० त०)। "कालिन्दी सूर्यतनया यमुना शमनस्वसा।" इत्यमरः। शिशुत्वम्=शिशु + त्व + अम्। अलभत=लभ + लङ् + त। इस पद्यमें सफेद पताकाके नीलमणि भवनोंसे नीलगुण ग्रहण करनेसे तद्गुण अलङ्कार "भ्रमरितभाः" यहाँपर उपमा, यमुनाकी शिशुताको पताका कैसे प्राप्त करेगी, इस प्रकार सादृश्यका आक्षेप होनेसे निदर्शनाका पूर्वोक्त तद्गुण रूपक और उपमासे अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है, पुष्पिताग्रा छन्द। उसका लक्षण है—"अयुजि नयुगरेफतो यकारो युजि च नजौ जरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥" १०३ ॥

स्वप्राणेश्वरनर्महर्म्यकटकाऽऽतिथ्यग्रहायोत्सुकं
पाथोदं निजकेलिसौधशिखरादारुह्य यत्कामिनी।
साक्षादप्सरसो विमानकलितव्योमान एवाऽभव-
न्नत्र प्राप निमेषमप्यतरसा यान्ती रसादध्वनि ॥ १०४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—यत्कामिनी विमानकलितव्योमानः साक्षात् अप्सरस एव अभवत्; यत् निजकेलिसौधशिखरात् स्वप्राणेश्वरनर्महर्म्यकटकाऽऽतिथ्यग्रहाय उत्सुकं पाथोदम् आरुह्य रसात् यान्ती अध्वनि अभ्रतरसा निमेषं न प्राप ॥ १०४ ॥

व्याख्या—यत्कामिनी = कुण्डिनगरीरमणी, विमानकलितव्योमानः = व्योमयानक्रान्तगगनाः, साक्षात् = प्रत्यक्षरूपाः, अप्सरस एव = दिव्याऽङ्गना एव, अभवत् = अवर्तत, यत् = यस्मात्कारणात्, निजकेलिसौधशिखरात् = स्वक्रीडागृहशृङ्गात्, स्वप्राणेश्वरनर्महर्म्यकटकाऽऽतिथ्यग्रहाय = निजवल्लभ-क्रीडासौधमध्यभागप्राघुणिकत्वस्वीकाराय, तत्र विश्रामार्थमिति भावः। उत्सुकम् = उत्कण्ठितं, पाथोदं = मेघम्, आरुह्य = आरोहणं कृत्वा, रसात् = अनुरागात्, यान्ती = गच्छन्ती सती, अध्वनि = मार्गे, अभ्रतरसा = मेघवेगेन, निमेषं = निमेषपातविलम्बं नेत्रसङ्कोचं च, न प्राप = न प्राप्तवती, स्वाभाविक-सौन्दर्येण विमानतुल्यमेघारोहणेन आकाशगमनेन निमेषाऽप्राप्तेश्च कुण्डिन-नगरीरमणी अप्सरःसमाना संजातेति भावः ॥ १०४ ॥

अनुवादः—जिस कुण्डिननगरीकी रमणी, अटारीसे आकाशका अवलम्बन कर साक्षात् अप्सरा ही हो गई, जो कि अपने क्रीडाभवनके ऊर्ध्वभागसे अपने प्रियतमके क्रीडाभवनसे आतिथ्यग्रहणके लिए उत्कण्ठित मेघपर आरोहण कर अनुरागसे जाती हुई मार्गमें मेघके वेगसे उसने निमेषको भी प्राप्त नहीं किया (पलक भी नहीं झुकाई) ॥ १०४ ॥

टिप्पणी—यत्कामिनी = यस्यां कामिनी (स० त०)। विमानकलितव्योमानः = कलितं व्योम याभिस्ताः कलितव्योमानः (बहु०), यहाँपर "अनो बहुव्रीहेः" इस सूत्रसे ङीप्का निषेध हुआ है। विमानेन कलितव्योमानः (तृ० त०)। "अप्सरसः" इसका विशेषण होनेसे बहुवचन हुआ है। अभवत् = भू + लङ् + तिप्। उद्देश्यवाचक "यत्कामिनी" इस पदके एकवचनाऽन्त होनेसे एकवचन। निजकेलिसौधशिखरात् = केलेः सौधम् (ष० त०), तस्य शिखरम् (ष० त०)। निजं च तत् केलिसौधशिखरं, तस्मात् (क० धा०)। (अपादानमें पञ्चमी)। स्वप्राणेश्वरनर्महर्म्यकटकाऽऽतिथ्यग्रहाय=प्राणानाम् ईश्वरः (ष०त०)। स्वश्चाऽसौ प्राणेश्वरः (क० धा०), नर्मणो हर्म्यम् (ष० त०), स्वप्राणेश्वरस्य नर्महर्म्यम्(ष० त०), तस्य कटकः (ष० त०), "कटकोऽस्त्री नितम्बोऽद्रेः" इत्यमरः। अतिथय इदम् आतिथ्यम्, "अतिथि" शब्दसे "अतिथेर्ञ्यः" इस सूत्रसे तादर्थ्यमें

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

ञ्य प्रत्यय, आदिवृद्धि। आतिथ्यस्य ग्रहः (ष० त०)। स्वप्राणेश्वरनर्महर्म्यकटकात् आतिथ्यग्रहः, तस्मै (प० त०)। पाथोदं = पाथो ददातीति पाथोदः, तम्, पाथस् + दा + कः (उपपद०)। आरुह्य = आङ् + रुह + क्त्वा (ल्यप्)। रसात्=हेतुमें पञ्चमी। यान्ती = यातीति, या + लट् (शतृ) + ङीप्। अभ्रतरसा=अभ्रस्य तरः, तेन ष० त० (हेतुमें तृतीया)। यहाँपर कुण्डिननगरकी स्त्री अपने स्वाभाविक सौन्दर्यसे प्रियतमके पास जानेके लिए अपनी अटारीसे विमानके समान मेघपर चढ़नेसे आकाशमें गमन-सा करनेसे प्रियतमके पास जानेकी उत्कण्ठासे पलक भी न मारनेसे अप्सरा-सी हो गई इस बातको प्रकाशित किया है। इस पद्यमें कुण्डिननगरकी स्त्री और अप्सराका भेद होनेपर भी अभेदका अध्यवसाय होनेसे तथा निमेषपातविलम्ब और नेत्रसङ्कोचका भेद होनेपर भी 'निमेष' पदके श्लेषसे अभेदका अध्यवसाय होनेसे दो अतिशयोक्ति अलङ्कारोंकी संसृष्टि है, एवम् कटक और शिखर दो पदोंसे नर्महर्म्योंकी और सौधोंकी अत्यन्त ऊँचाई व्यङ्ग्य होती है इस प्रकार शब्दशक्तिमूलवस्तुध्वनि है। शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १०४ ॥

वैदर्भीकेलिशैले मरकतशिखरादुत्थितैरंशुदर्भै-
ब्रह्माण्डाऽऽघातभग्नस्यदजमदतया ह्रीधृताऽवाङ्मुखत्वैः।
कस्या नोत्तानगाया दिवि सुरसुरभेरास्यदेशं गताऽग्रै-
र्यद्गोग्रासप्रदानव्रतसुकृतमविश्रान्तमुज्जृम्भते स्म ॥ १०५ ॥

अन्वयः—वैदर्भीकेलिशैले मरकतशिखरात् उत्थितैः ब्रह्माऽण्डाघातभग्नस्यदजमदतया ह्रीधृताऽवाङ्मुखत्वैः दिवि उत्तानगायाः कस्याः सुरसुरभेः आस्यदेशं गताऽग्रैः अंशुदर्भैः यद्गोग्रासप्रदानव्रतसुकृतम् अविश्रान्तम् उज्जृम्भते स्म ।१०५।

व्याख्या—वैदर्भीकेलिशैले = दमयन्तीक्रीडापर्वते, मरकतशिखरात् = गारुत्मतरत्नशृङ्गात्, उत्थितैः=ऊर्ध्वगामिभिः, अथ ब्रह्माण्डाघातभग्नस्यदजमदतया= ब्रह्माण्डसंघट्टनविनाशितवेगगर्वत्वेन, ह्रीधृताऽवाङ्मुखत्वैः = लज्जाकृताऽधोमुखत्वैः, अत एव, दिवि = आकाशे, उत्तानगायाः = उत्तानगामिन्याः, ऊर्ध्वमुखाया इत्यर्थः। कस्याः, सुरसुरभेः = देवधेनोः, आस्यदेशं = मुखप्रदेशं, गताऽग्रैः = प्राप्ताऽग्रैः, अंशुदर्भैः = किरणरूपकुशैः, यद्गोग्रासप्रदानव्रतसुकृतं = कुण्डिननगरीधेनुग्रासवितरणनियमपुण्यम्, अविश्रान्तं = निरन्तरम्, उज्जृम्भते स्म = वर्धते स्म ॥ १०५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—दमयन्तीके क्रीडापर्वतमें पन्नेकी चोटियोंसे उठे हुए, ब्रह्माण्डसे आघात होनेसे वेगका घमण्ड टूटनेसे लज्जासे अधोमुख, आकाशमें ऊँचा मुख करनेवाली किस देवताकी गायके मुखप्रदेशमें अग्रभागको जानेवाले किरणरूप कुशोंसे जिस कुण्डिननगरीका गोग्रास देनेके नियमका पुण्य लगातार बढ़ता था ॥ १०६ ॥

टिप्पणी—वैदर्भीकेलिशैले = विदर्भेषु भवा वैदर्भी, विदर्भ + अण् + ङीप् । केलेः शैलः (ष० त०) । वैदर्भ्याः केलिशैलः, तस्मिन् (ष० त०) मरकतशिखरात् = मरकतानां शिखरं, तस्मात् (ष० त०) । "गारुत्मतं मरकतमश्मगर्भो हरिन्मणिः" इत्यमरः । उत्थितैः = उद् + स्था + क्त + भिस् । ब्रह्माऽण्डाऽऽघातभग्नस्यदजमदतया = ब्रह्मणः अण्डं (ष० त०), ब्रह्माऽण्डेन आघातः (तृ० त०), तेन भग्नः (तृ० त०) । स्यदात् जातः स्यदजः (स्यद + जन् + डः) । स चाऽसौ मदः (क० धा०) । ब्रह्माऽण्डाऽऽघातभग्नः स्यदजमदो येषां ते (बहु०), तेषां भावः, तत्ता, तया । ब्रह्माऽण्डाऽऽघातभग्नस्यदज मद + तल् + टाप् + टा) । ह्रीधृताऽवाङ्मुखत्वैः = ह्रिया धृतम् (तृ० त०) । अवाक् मुखं येषां ते अवाङ्मुखाः (बहु०) । तेषां भावः अवाङ्मुखत्वम्, अवाङ्मुख + त्व । ह्रीधृतम् अवाङ्मुखत्वं यैस्ते, तैः (बहु०) । उत्तानगायाः = उत्तानं गच्छतीति उत्तानगा, तस्याः, उत्तान + गम् + डः + टाप् + ङस् "उत्ताना वै देवगवा वहन्ति" वेदके इस वचनके अनुसार यह उक्ति है । सुरसुरभेः = सुरस्य सुरभिः तस्याः (ष० त०) । आस्यदेशम्=आस्यस्य देशः, तम् (ष० त०) । गताऽग्रैः = गता अग्रा येषां ते, तैः (बहु०) अंशुदर्भैः = अंशव एव दर्भाः, तैः (रूपक०) यद्गोग्रासप्रदानव्रतसुकृतं = गोः ग्रासः (ष० त०), तस्य प्रदानं (ष० त०), तदेव व्रतम् (रूपक०), तस्य सुकृतं (ष० त०), "स्याद्धर्ममस्त्रियां पुण्यश्रेयसी सुकृतं वृषः ।" इत्यमरः । यस्या गोग्रासप्रदानव्रतसुकृतम् (ष० त०) । अविश्रान्तं = न विश्रान्तम् (नञ०) । अविश्रान्तं यथा तथा, यह क्रियाविशेषण है । उज्जृम्भते स्म = उद्-उपसर्ग-पूर्वक 'जृभि' धातुसे "स्म" के योगमें भूतकालमें लट् + त । बहुतसे मरकत (पन्ना) रत्नोंसे बना हुआ दमयन्तीका क्रीडापर्वत है उससे उत्पन्न किरणें ब्रह्माण्डतक पहुँची, ऊपर नहीं जानेसे मानों लज्जासे लौट रही थीं, उसी समय ऊपर मुख करनेवाली देवताओंकी गायोंके मुखमें पड़ीं, वे कुशोंके समान हरे वर्णवाली थीं इसीको लेकर वैदर्भीके क्रीडापर्वतमें गोग्रास देनेके पुण्यका वर्णन किया गया है । इस पद्यमें "अंशुदर्भैः" यहाँ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पर रूपक है। अंशुदर्भोंका ब्रह्माण्डसे आघात आदिका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धका वर्णन करनेसे अतिशयोक्ति, "लज्जासे अधोमुख" इस अर्थमें वाचक शब्दके न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा और लोकाऽतिशयसम्पत्तिका वर्णन होनेसे उदात्त अलंकार, इस प्रकार इन अलंकारोंकी संसृष्टि है। स्रग्धरा छन्द है, उसका लक्षण है—

"म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयम्।" ॥ १०५ ॥

विधुकरपरिरम्भादात्तनिष्यन्दपूर्णैः
शशिदृषदुपक्लृप्तैरालवालैस्तरूणाम्।
विफलितजलसेकप्रक्रियागौरवेण
व्यरचि स हृतचित्तस्तत्र भैमीवनेन ॥ १०६ ॥

अन्वयः—तत्र शशिदृषदुपक्लृप्तैः (अत एव) विधुकरपरिरम्भात् आत्तनिष्यन्दपूर्णैः तरूणाम् आलवालैः विफलितजलसेकप्रक्रियागौरवेण भैमीवनेन स हृतचित्तो व्यरचि ॥ १०६ ॥

व्याख्या—तत्र = तस्यां, कुण्डिननगर्याम्। शशिदृषदुपक्लृप्तैः = चन्द्रकान्तशिलानिर्मितैः, अत एव, विधुकरपरिरम्भात् = चन्द्रकिरणसम्पर्कात्, आत्तनिष्यन्दपूर्णैः = गृहीतजलप्रस्रवणपूरितैः, तरूणां = वृक्षाणाम्, आलवालैः = आवापैः, विफलितजलसेकप्रक्रियागौरवेण = व्यर्थीकृतसलिलसेचनप्रकारभारेण, भैमीवनेन = दमयन्त्युपवनेन, सः = हंसः, हृतचित्तः=आकृष्टमनाः, व्यरचि = विरचितः ॥ १०६ ॥

अनुवाद—उस कुण्डिननगरीमें चन्द्रकान्त मणियोंसे बनी हुई अत एव चन्द्रकिरणके संपर्कसे गृहीत जलसे पूर्ण पेड़ोंकी क्यारियोंसे जलसेचनकी आवश्यकतासे रहित दमयन्तीके उपवनने हंसके चित्तको आकृष्ट किया ॥ १०६ ॥

टिप्पणी—शशिदृषदुपक्लृप्तैः = शशिनो दृषत् (ष० त०)। तया उपक्लृप्तानि, तैः (तृ० त०)। विधुकरपरिरम्भात् = विधोः कराः (ष० त०), तेषां परिरम्भः, तस्मात् (ष० त०), हेतुमें पञ्चमी। "परिरम्भः परिष्वङ्गः संश्लेष उपगूहनम्"। अमरकी ऐसी उक्तिसे "परिरम्भ" पदका अर्थ आलिङ्गन है, यहाँपर लक्षणासे सम्पर्क अर्थ किया गया है। आत्तनिष्यन्दपूर्णैः = आत्ताश्च ते निष्यन्दाः (क० धा०)। "आत्म०" ऐसे पाठमें आत्मनः =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

स्वस्य, निष्यन्दाः (ष० त०) ऐसा अर्थ करना चाहिए । आत्तनिष्यन्दैः पूर्णानि, तैः (तृ० त०)। विफलितजलसेकप्रक्रियागौरवेण = विफलं कृतं विफलितम्, विफल + णिच् + क्तः । जलस्य सेकः (ष० त०), तस्य प्रक्रिया (ष० त०), तस्या गौरवम् (ष० त०) । विफलितं जलसेकप्रक्रियागौरवं यस्य तत्, तेन (बहु०) । भैमीवनेन = भैम्या वनं, तेन (ष० त०) । हृतचित्तः = हृतं चित्तं यस्य सः (बहु०) । व्यरचि = वि + रच् + लुङ् + त (कर्ममें) । इस पद्यमें आलवालोंका चन्द्रकान्त मणिसे पिघले जलसे सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है। यहाँसे चार पद्योंतक मालिनी छन्द है, उसका लक्षण है—

"ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः" ॥ १०६ ॥

अथ कनकपतत्रस्तत्र तां राजपुत्रीं
सदसि सदृशभासां विस्फुरन्तीं सखीनाम् ।
उडुपरिषदि मध्यस्थायिशीतांऽशुलेखाऽ-
नुकरणपटुलक्ष्मीमक्षिलक्षीचकार ॥ १०७ ॥

अन्वयः—अथ कनकपतत्रः तत्र सदृशभासां सखीनां सदसि विस्फुरन्तीम् उडुपरिषदि मध्यस्थायिशीतांऽशुलेखाऽनुकरणपटुलक्ष्मीं तां राजपुत्रीम् अक्षिलक्षीचकार ॥ १०७ ॥

व्याख्या—अथ = भैमीवनदर्शनाऽनन्तरं, कनकपतत्रः = सुवर्णमयपक्षः, राजहंस इत्यर्थः । तत्र=भैमीवने, सदृशभासां = स्वसदृशसौन्दर्याणां, सखीनां = वयस्यानां, सदसि = सभायां, विस्फुरन्तीं = विद्योतमानाम्, उडुपरिषदि = तारकासभायां, मध्यस्थायिशीतांऽशुलेखाऽनुकरणपटुलक्ष्मीम् = अन्तरस्थचन्द्रकलाऽनुकारसमर्थशोभां, तां = पूर्वोक्तां, राजपुत्रीं = भीमभूपदुहितरम्, अक्षिलक्षीचकार = नयनगोचरीचकार, ददर्शेत्यर्थः ॥ १०७ ॥

अनुवादः—दमयन्तीका उपवन देखनेके अनन्तर सुनहरे पंखोंवाले-(उस हंस) ने उस उपवनमें तुल्यकान्तिवाली सखियोंकी सभामें शोभित होनेवालीं, ताराओंकी सभामें बीचमें रहनेवाली चन्द्रकलाके अनुकरण-(नकल) में समर्थ शोभावाली उन राजकुमारी (दमयन्ती) को देखा ॥१०७॥

टिप्पणी—कनकपतत्रः=कनकस्य विकारौ कनके, ते पतत्रे यस्य सः (बहु०)। सदृशभासां = सदृशी भा यासां सदृशभासः, तासाम् (बहु०), "भाश्छविद्यु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तिदीप्तयः" इत्यमरः। विस्फुरन्ता=विस्फुरतीति विस्फुरन्ती, तां, वि+स्फुर+लट् (शतृ०)+ङीप्+अम्। उडुपरिषदि=उडूनां परिषत्, तस्याम् (ष० त०)। "नक्षत्रमृक्षं भं तारा तारकाऽप्युडु वा स्त्रियाम्।" इत्यमरः। मध्यस्थायिशीतांऽशुलेखाऽनुकरणपटुलक्ष्मीं = मध्ये तिष्ठतीति मध्यस्थायिनी, मध्य-उपपद-पूर्वक स्था धातुसे णिनि प्रत्यय, "आतो युक् चिण्कृतोः" इस सूत्रसे युक् आगम और स्त्रीत्वविवक्षामें ङीप्। शीता अंशवो यस्य स शीतांऽशुः (बहु०), तस्य लेखा (ष० त०), मध्यस्थायिनी चाऽसौ शीतांऽशुलेखा (क० धा०), तस्या अनुकरणं (ष० त०)। पटुः लक्ष्मीः यस्या सा पटुलक्ष्मीः (बहु०), समासाऽन्तविधिके अनित्य होनेसे " नद्यृतश्च" इससे समासाऽन्त कप् प्रत्यय नहीं हुआ। शीतांऽशुलेखाऽनुकरणे पटुलक्ष्मीः, ताम् (स० त०)। राजपुत्रीं = पुतः (तन्नामनरकात्) त्रायत इति पुत्री, पुत्+त्रै (त्रा)+क+ङीन्। "शार्ङ्गरवाद्यञो ङीन्" इससे ङीन्। "सुता तु दुहिता पुत्री" इति त्रिकाण्डशेषः। राज्ञः पुत्री, ताम् (ष० त०)। अक्षिलक्षीचकार = लक्ष्यत इति लक्षं, लक्ष+घञ्। "लक्षं लक्ष्यं शरव्यं च" इत्यमरः। अक्ष्णोर्लक्षम् (ष० त०)। अनक्षिलक्षम् अक्षिलक्षं यथा संपद्यते तथा चकार अक्षिलक्षीचकार, अक्षिलक्ष+च्वि+कृ+लिट्+तिप्। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार और मालिनी छन्द है ॥ १०७ ॥

भ्रमणरयविकीर्णस्वर्णभासा खगेन
क्वचन पतनयोग्यं देशमन्विष्यताऽधः।
मुखविधुमदसीयं सेवितुं लम्बमानः
शशिपरिधिरिवोच्चैर्मण्डलस्तेन तेने ॥ १०८ ॥

अन्वयः—अधो भूतले क्वचन पतनयोग्यं देशम् अन्विष्यता भ्रमणरयविकीर्णस्वर्णभासा तेन खगेन अदसीयं मुखविधुं सेवितुं लम्बमानः शशिपरिधिः इव उच्चैः मण्डलः तेने ॥ १०८ ॥

व्याख्या—अधः = निम्नभागे, भूतले = भूमितले, क्वचन = कुत्रचित्, पतनयोग्यम् = अवतरणाऽर्हं, देशं = स्थानम्, अन्विष्यता = गवेषमाणेन, भ्रमणरयविकीर्णस्वर्णभासा=भ्रमिवेगविक्षिप्तसुवर्णकान्तिना, तेन = पूर्वोक्तेन, खगेन = पक्षिणा, हंसेनेत्यर्थः। अदसीयं = दमयन्तीसम्बन्धिनं, मुखविधुं = वदनचन्द्रं, सेवितुं = सेवनं कर्तुं, द्रष्टुमिति भावः। लम्बमानः = स्रंसमानः, शशिपरिधिः इव = चन्द्रपरिवेष इव, उच्चैः = उपरि, मण्डलः = वलयः, तेने= वितेने ॥ १०७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—नीचे जमीनपर कहीं उतरनेके लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ़नेवाले और भ्रमणके वेगसे सुनहरी कान्तिको फैलानेवाले उस पक्षी (हंस) ने दमयन्ती-के मुखचन्द्रकी सेवा करनेके लिए लटककर चन्द्रमाके परिवेषके समान ऊपर मण्डल (चक्कर) फैलाया ॥ १०८ ॥

टिप्पणी—भूतले = भुवः तलं, तस्मिन् (ष० त०)। पतनयोग्यं = पतने योग्यः, तम् (स० त०)। अन्विष्यता=अन्विष्यतीति अन्विष्यन्, तेन, अनु+इष्+लट् (शतृ) + टा। भ्रमणरयविकीर्णस्वर्णभासा = भ्रमणस्य रयः (ष० त०), तेन विकीर्णा (तृ० त०)। स्वर्णस्य भाः (ष० त०)। भ्रमणरय-विकीर्णा स्वर्णभा येन, तेन (बहु०)। अदसीयम्=अमुष्या अयम् अदसीयः तम्। अदस् शब्दसे "त्यदादीनि च" इससे वृद्धसंज्ञा होकर "वृद्धाच्छः" इससे छ (ईय) प्रत्यय। मुखविधुं=मुखम् एव विधुः, तम् (रूपक०)। सेवितुं=सेव+तुमुन्। लम्बमानः = लबि+लट् (शानच्)+सुः। शशिपरिधिः =शशिनः परिधिः (ष० त०)। मण्डलः = "बिम्बोऽस्त्री मण्डलं त्रिषु।" इत्यमरः। तेने = "तनु विस्तारे" धातुसे कर्ममें लिट्+त। इस पद्यमें स्वभावोक्ति, 'मुखविधुम्' यहाँपर रूपक, 'शशिपरिधिः इव' यहाँपर उत्प्रेक्षा, इन अलङ्कारोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है। मालिनी छन्द है ॥ १०८ ॥

"अनुभवति शचीत्थं सा घृताचीमुखाभि-
र्न सह सहचरीभिर्नन्दनानन्दमुच्चैः"।
इति मतिरुदयासीत् पक्षिणः प्रेक्ष्य भैमीं
विपिनभुवि सखीभिः सार्धमाबद्धखेलाम् ॥ १०९ ॥

अन्वयः—विपिनभुवि सखीभिः सार्धम् आबद्धखेलां भैमीं प्रेक्ष्य पक्षिणः "सा शची घृताचीमुखाभिः सहचरीभिः सह इत्थम् उच्चैः नन्दनाऽऽनन्दं न अनुभवति" इति मतिः उदयासीत् ॥ १०९ ॥

व्याख्या—विपिनभुवि = काननभूमौ, सखीभिः = सहचरीभिः, सार्धं=सह, आबद्धखेलाम् = अनुबद्धक्रीडां, भैमीं = दमयन्तीं, प्रेक्ष्य = दृष्ट्वा, पक्षिणः = हंसस्य, सा = प्रसिद्धा, शची = इन्द्राणी, घृताचीमुखाभिः = घृताचीप्रभृतिभिः, सहचरीभिः सह = सखीभिः सार्धम्, इत्थम् = अनेन प्रकारेण, उच्चैः = उत्कृष्टं, नन्दनाऽऽनन्दं = नन्दनोपवनसुखं, न अनुभवति = नो निर्विशति, इति= एतादृशी, मतिः = बुद्धिः, उदयासीत् = उत्थिता ॥ १०९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—उपवन भूमिमें सखियोंके साथ क्रीडा करती हुई दमयन्तीको देखकर हंसकी "वे (प्रसिद्ध) इन्द्राणी भी घृताची आदि सखियोंके साथ इस प्रकारसे नन्दन वनमें भी उत्कृष्ट आनन्दका अनुभव नहीं करती हैं" ऐसी बुद्धि उत्पन्न हुई ॥ १०९ ॥

टिप्पणी—विपिनभुवि = विपिनस्य भूः, तस्याम् (ष० त०)। सखीभिः= "सार्द्धम्" पदके योगमें तृतीया। आवद्धखेलाम् = आवद्धा खेला यया सा, ताम् (वहु०)। "क्रीडा खेला च कूर्दनम्" इत्यमरः। प्रेक्ष्य = प्र + ईक्ष + क्त्वा (ल्यप्)। सा = यहाँपर यद् शव्द (या) के न होनेपर भी प्रसिद्ध अर्थ होनेसे अविमृष्टविधेयांश दोष नहीं होता है। शची="पुलोमजा शचीन्द्राणी" इत्यमरः। घृताचीमुखाभिः = घृताची (अप्सरोविशेषः) मुखं यासां ता घृताचीमुखाः, ताभिः (वहु०)। यहाँ "मुख" शव्द अङ्गवाचक न होनेसे ङीप् प्रत्यय नहीं हुआ है। सहचरीभिः = सह चरन्तीति सहचर्यः, ताभिः सह + चर + ट + ङीप् + भिस्। पचादिगणमें "चरट्" ऐसा पाठ होनेसे टित् होनेसे "टिड्ढाणञ्" इत्यादि सूत्रसे ङीप्। नन्दनाऽऽनन्दं = नन्दन आनन्दः तम् (स० त०)। उदयासीत् = उद्—उपसर्ग—पूर्वक "या प्रापणे" धातुसे लुङ्, "यमरमनमातां सक् च" इस सूत्रसे सक् और सिच्का इट्। "प्रेक्ष्य मतिः" यहाँपर मनन क्रियाकी अपेक्षासे समानकर्तृक होनेसे और पूर्वकाल होनेसे भी "प्रेक्ष्य" इसमें क्त्वा निर्देशकी उपपत्ति है। इस पद्यमें शचीरूप उपमानसे उपमेयभूत दमयन्तीके आधिक्यकी उक्तिसे व्यतिरेक अलङ्कार है ॥ १०९ ॥

> श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः सुतं
> श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम्।
> द्वैतीयीकतया मितोऽयमगमत्तस्य प्रवन्धे महा-
> काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वलः ॥ ११० ॥

अन्वयः—कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः श्रीहीरः मामल्लदेवी च जितेन्द्रियचयं यं श्रीहर्षं सुतं सुषुवे। तस्य प्रवन्धे चारुणि नैषधीयचरिते महाकाव्ये अयं द्वैतीयीकतया मितः निसर्गोज्ज्वलः सर्गः अगमत् ॥ ११० ॥

व्याख्या—व्याख्यातपूर्वः श्लोकः संक्षेपेण पुनर्व्याख्यायते। कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः = पण्डितश्रेष्ठश्रेणीकिरीटभूषणवज्रमणिः, श्रीहीरः, मामल्लदेवी च, जितेन्द्रियचयं = वशीकृतहृषीकसमूहं, यं, श्रीहर्षं, सुतं=पुत्रं सुषुवे=

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

जनयामास । तस्य = श्रीहर्षस्य, प्रबन्धे = रचनायां, चारुणि=मनोहरे नैषधीयचरिते = तदाख्ये, महाकाव्ये, अयं = सन्निकृष्टस्थः द्वैतीयीकतया = द्वितीयत्वेन, मितः = गणितः, निसर्गोज्ज्वलः = स्वभावसुन्दरः, सर्गः = अध्यायः अगमत्= गतः समाप्त इति भावः ।। ११० ।।

अनुवादः—श्रेष्ठ पण्डितोंकी श्रेणीके मुकुटके अलङ्कार हीरेके समान श्रीहीर और मामल्लदेवीने इन्द्रियोंको जीतनेवाले जिन श्रीहर्ष पुत्रको उत्पन्न किया । उनकी रचनामें सुन्दर नैषधीयचरित महाकाव्यमें यह द्वितीय रूपसे परिमित स्वभावसे मनोहर सर्ग समाप्त हुआ ।। ११० ।।

टिप्पणी—द्वैतीयीकतया = द्वयोः पूरणो द्वितीयः, 'द्वि' शब्दसे "द्वेस्तीयः" इससे पूरणार्थक तीय प्रत्यय । द्वितीय एव द्वैतीयीकः, "द्वितीय" शब्दसे "तीयादीकक् स्वार्थे वा वाच्यः" इससे ईकक् प्रत्यय । कित् होनेसे "किति च" इससे आदिवृद्धि । द्वैतीयीकस्य भावो द्वैतीयीकता, तया, द्वैतीयीक + तल् + टाप्+टा । मितः = माङ् + क्तः । निसर्गोज्ज्वलः = निसर्गेण उज्ज्वलः (तृ० त०) । अगमत् = गम्+लुङ्+तिप् । च्लिके स्थानमें अङ् ।। ११० ।।

इति चन्द्रकलाऽभिख्यायां नैषधीयचरितव्याख्यायां द्वितीयः सर्गः ।

—:०:—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नैषधीयचरितके द्वितीयसर्गमें अकारादि-क्रमसे पद्यानुक्रमणिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

नैषधीयचरितं महाकाव्यम्

चन्द्रकलाऽऽख्यया व्याख्यया हिन्द्यनुवादेन च विभूषितम्

तृतीयः सर्गः

आकुञ्चिताभ्यामथ पक्षतिभ्यां नभोविभागात्तरसाऽवतीर्य ।
निवेशदेशाऽऽततधूतपक्षः पपात भूमावुपभैमि हंसः ॥ १ ॥

अन्वयः—अथ हंस आकुञ्चिताभ्यां पक्षतिभ्यां नभोविभागात् तरसा अवतीर्य निवेशदेशाऽऽततधूतपक्षः उपभैमि भूमौ पपात ॥ १ ॥

व्याख्या—अथ=मण्डलीकरणाऽनन्तरं, हंसः = राजहंसः, आकुञ्चिताभ्यां = संकुचिताभ्यां, पक्षतिभ्यां = पक्षमूलाभ्यां, नभोविभागात् = आकाशदेशात्, तरसा = वेगेन, अवतीर्य = अवरुह्य, निवेशदेशाऽऽततधूतपक्षः = उपनिवेशस्थान-विस्तारितकम्पितपतत्रः सन्, उपभैमि = दमयन्त्याः समीपे, भूमौ = भुवि, पपात = आपतितः ॥ १ ॥

अनुवादः—मण्डलीकरणके अनन्तर हंस सङ्कुचित पक्षमूलोंसे आकाशदेशसे वेगसे उतरकर बैठनेके स्थानपर पंखोंको फैलाकर और कम्पित कर दमयन्तीके समीप उतरा ॥ १ ॥

टिप्पणी—हसतीति हंसः, "हस" धातुसे अच् प्रत्यय और "पृषोदरादीनि यथोपदिष्टम्" इसके अनुसार नुम् वर्णका आगम हुआ है। "भवेद्वर्णाऽऽगमा-द्धंसः"। पक्षतिभ्यां = "स्त्री पक्षतिः पक्षमूलम्।" इत्यमरः। नभोविभागात् = नभसो विभागः, तस्मात् (ष० त०)। अवतीर्य = अव+तॄ+क्त्वा (ल्यप्)। निवेशदेशाऽऽततधूतपक्षः = निवेशस्य देशः (ष० त०)। समन्तात् ततौ आततौ "कुगतिप्रादयः" इससे गतिसमास। आततौ धूतौ पक्षौ येन सः (बहु०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निवेशदेशे आततधूतपक्षः (स० त०)। उपभैमि = भैम्याः समीपे, समीप अर्थमें अव्ययीभाव। पपात = पत + लिट् + तिप्। इस पद्यमें स्वभावोक्ति अलङ्कार है। प्रथम चरणमें इन्द्रवज्रा और द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ चरणमें उपेन्द्रवज्रा, इस प्रकार उपजाति छन्द है। जैसे कि—"स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः, उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ। अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ पादौ यदीयावुपजातयस्ताः ॥ १ ॥

आकस्मिकः पक्षपुटाहतायाः क्षितेस्तदा यः स्वन उच्चचार।
द्रागन्यविन्यस्तदृशः स तस्याः संभ्रान्तमन्तःकरणं चकार ॥ २ ॥

अन्वयः—तदा पक्षपुटाहतायाः क्षितेः आकस्मिकः यः स्वन उच्चचार। सः अन्यविन्यस्तदृशः तस्याः अन्तःकरणं द्राक् संभ्रान्तं चकार ॥ २ ॥

व्याख्या—तदा = पतनसमये, पक्षपुटाहतायाः = पतत्रपुटताडितायाः, क्षितेः = पृथिव्याः, सकाशात्, आकस्मिकः=अकस्माद्भवः, अहेतुक इत्यर्थः। यः स्वनः = ध्वनिः, उच्चचार = उत्थितः। सः = ध्वनिः, अन्यविन्यस्तदृशः = विषयान्तरनिविष्टनयनायाः, तस्याः = दमयन्त्याः, अन्तःकरणं = मनः, द्राक् = झटिति, संभ्रान्तं = ससंभ्रमं, चकार = कृतवान्, आकस्मिकशब्दश्रवणाद्भैमी सभया साश्चर्या च जातेति भावः ॥ २ ॥

अनुवादः—हंसके पतनके समयमें उसके पंखोंसे ताडित पृथिवीसे अकस्मात् जो शब्द उत्पन्न हुआ। उसने दूसरे विषयमें चित्त देनेवाली दमयन्तीके अन्तःकरणको संभ्रमयुक्त बनाया ॥ २ ॥

टिप्पणी—पक्षपुटाहतायाः = पक्षयोः पुटं (ष० त०), तेन आहता, तस्याः (तृ० त०)। क्षितेः = अपादानमें पञ्चमी। आकस्मिकः = अकस्मात् भवः, "तत्र भवः" इससे ठक् प्रत्यय। उच्चचार = उद् + चर + लिट् + तिप्। अकर्मक होनेसे "उदश्चरः सकर्मकात्" इससे आत्मनेपद नहीं हुआ। अन्यविन्यस्तदृशः = विन्यस्ते दृशौ यया सा (बहु०), अन्यस्मिन् विन्यस्तदृक्, तस्याः (स० त०)। संभ्रान्तं = सं + भ्रम + क्त + अम्। चकार = कृ + लिट् + तिप्। इस पद्यमें स्वभावोक्ति अलङ्कार है ॥ २ ॥

नेत्राणि वैदर्भसुतासखीनां विमुक्ततत्तद्विषयग्रहाणि।
प्रापुस्तमेकं निरुपाख्यरूपं ब्रह्मेव चेतांसि यतव्रतानाम् ॥ ३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—वैदर्भसुतासखीनां नेत्राणि विमुक्ततत्तद्विषयग्रहाणि (सन्ति) एकं निरुपाख्यरूपं तं हंसं यतव्रतानां चेतांसि ब्रह्म इव प्रापुः ॥ ३ ॥

व्याख्या—वैदर्भसुतासखीनां = भैमीवयस्यानां, नेत्राणि = नयनानि, विमुक्ततत्तद्विषयग्रहाणि = परित्यक्ततत्तच्छब्दादिविषयग्रहणानि सन्ति, पदमिदं "चेतांसि" इत्यत्राऽपि योजनीयम्। एकम् = एकचरं, ब्रह्मपक्षे—अद्वितीयं, निरुपाख्यरूपम् = अनिर्वाच्याकारं, ब्रह्मपक्षे—अनिर्वचनीयस्वरूपं, तं = पुरोवर्तिनं, हंसं = राजहंसं, ब्रह्मपक्षे—तत्पदाऽर्थंभूतं यतव्रतानां = योगिनां, चेतांसि = अन्तःकरणानि, ब्रह्म इव=परात्मानम् इव, प्रापुः = आसादयामासुः अत्यादरेण अद्राक्षुरित्यर्थः ॥ ३ ॥

अनुवादः—दमयन्तीकी सखियोंके नेत्रोंने उन उन विषयोंकी आसक्तिको छोड़कर अकेले चलनेवाले, अनिर्वाच्य आकारवाले, उस हंसको, जैसे योगियोंके चित्त अद्वितीय, अनिर्वचनीय स्वरूपवाले और तत् पदके अर्थस्वरूप ब्रह्मको ग्रहण करते हैं उसी तरह ग्रहण किया ॥ ३ ॥

टिप्पणी—वैदर्भसुतासखीनां=विदर्भाणां राजा वैदर्भः, विदर्भ शब्दसे "जनपदशब्दात्क्षत्रियादञ्" इस सूत्रसे अञ् प्रत्यय। विमुक्ततत्तद्विषयग्रहाणि=ते च ते च तत्ते (क० धा०)। तत्ते च ते विषयाः तत्तद्विषयाः (क० धा०) तत्तद्विषयाणां ग्रहाः (ष० त०)। विमुक्ताः तत्तद्विषयग्रहा यैस्तानि (बहु०)। निरुपाख्यरूपं= निर्गता उपाख्या यस्मात्तत् निरुपाख्यं (बहु०), तत् रूपं यस्य, तम् (हंसपक्षे), तत् (ब्रह्मपक्षे) (बहु०), यतव्रतानां = यतं व्रतं येषां ते यतव्रताः, तेषाम् (बहु०)। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ३ ॥

हंसं तनौ सन्निहितं चरन्तं मुनेर्मनोवृत्तिरिव स्विकायाम्।
ग्रहीतुकामा दरिणा शयेन यत्नादसौ निश्चलतां जगाहे ॥ ४ ॥

अन्वयः—असौ मुनेः मनोवृत्तिः इव स्विकायां तनौ सन्निहितं चरन्तं हंसम् अदरिणा शयेन, आदरिणा आशयेन वा ग्रहीतुकामा (सती) यत्नात् निश्चलतां जगाहे ॥ ४ ॥

व्याख्या—असौ = दमयन्ती, मुनेः = योगिनः, मनोवृत्तिः इव = चित्तवृत्तिः इव, स्विकायां = स्वकीयायां, तनौ = शरीरसमीपे, मुनिमनोवृत्तिपक्षे—तन्वभ्यन्तरे, सन्निहितं = निकटस्थम्, मुनिमनोवृत्तिपक्षे—आविर्भूतं, चरन्तं=

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सञ्चरन्तं, मुनिमनोवृत्तिपक्षे—वर्तमानं, हंसं = मरालं, मुनिमनोवृत्तिपक्षे—परमात्मानं च, अदरिणा = निर्भयेन, शयेन = पाणिना, मुनिमनोवृत्तिपक्षे—आदरिणा = आदरयुक्तेन, आशयेन = चित्तेन ग्रहीतुकामा = आदातुकामा, मुनिमनोवृत्तिपक्षे—साक्षात्कर्तुकामा च सती, यत्नात् = प्रयत्नात्, निश्चलतां = निश्चलाऽङ्गत्वं, मुनिमनोवृत्तिपक्षे—स्थिरतां, जगाहे = जगाम ॥ ४ ॥

अनुवादः—जैसे मुनिकी मनोवृत्ति अपने शरीरके भीतर आविर्भूत होकर स्थित परमात्माको आदरयुक्त चित्तसे साक्षात्कार करनेकी इच्छा कर यत्नपूर्वक स्थिर होती है वैसे ही दमयन्ती भी अपने शरीरके समीप स्थित और चलते हुए हंसको निर्भय हाथसे ग्रहण करनेकी इच्छा कर यत्नपूर्वक निश्चल हुईं ॥ ४ ॥

टिप्पणी—मनोवृत्तिः = मनसो वृत्तिः (ष० त०)। स्वकायां = स्वा एव स्विका, तस्यां, स्वा शब्दसे स्वार्थिक कन्, "प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्याऽत इदाप्यसुपः" इससे इत्व । सन्निहितं = सं+नि+धा+क्तः+अम् । चरन्तं = चरतीति चरन्, तं, चर+लट्+शतृ+अम्, हंसं = "हंसो विहङ्गभेदे च परमात्मनि मत्सरे", इति विश्वः । अदरिणा=दरः अस्याऽस्तीति दरी, दर+इनिः । न दरी अदरी (नञ्०), तेन, "दरस्त्रासो भीतिर्भीः साध्वसं भयम् ।" इत्यमरः । शयेन = "पञ्चशाखः शयः पाणिः" इत्यमरः । आदरिणा = आदरः अस्याऽस्तीति आदरी, तेन, आदर+इनिः+टा । आशयेन = "अभिप्रायश्छन्द आशयः ।" इत्यमरः । ग्रहीतुकामा = ग्रहीतुं कामः अस्याः सा (वहु०)। ग्रहीतुं = ग्रह+तुमुन् । "ग्रहोऽलिटि दीर्घः" इससे दीर्घ । "तुं काममनसोरपि" इससे मकारका लोप । निश्चलतां = निश्चलस्य भावो निश्चलता, ताम्, निश्चल+तल्+टाप्+अम् । जगाहे = "गाहू विलोडने" धातुसे लिट् । इस पद्यमें श्लेप और उपमाका अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ ४ ॥

तामिङ्गितैरप्यनुमाय मायामयं न भैम्या वियदुत्पपात ।
तत्पाणिमात्मोपरिपातुकं तु मोघं वितेने प्लुतिलाघवेन ॥ ५ ॥

अन्वयः—अयं तां भैम्या मायाम् इङ्गितैः अनुमाय अपि धैर्यात् वियत् न उत्पपात । आत्मोपरिपातुकं तत्पाणिं तु प्लुतिलाघवेन मोघं वितेने ॥ ५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—अयं = हंसः, तां = पूर्वोक्तां, भैम्याः = दमयन्त्याः, मायां = कपटं, स्वग्रहणार्ऽथमिति शेषः । इङ्गितैऽ = चेष्टितैः, अनुमाय अपि = ज्ञात्वा अपि, धैर्यात् = स्थैर्यम् आस्थाय, वियत् = आकाशं प्रति, न उत्पपात = न उड्डीनः, आत्मोपरिपातुकं = स्वोपरिपतयालुं, तत्पाणिं तु = दमयन्तीहस्तं तु, प्लुतिलाघवेन=उत्पतनकौशलेन, मोघं = निष्फलं, वितेने = कृतवान्, आशामजीजनत् परं पाणिगतो नाऽभूदिति भावः ॥ ५ ॥

अनुवादः—हंस दमयन्तीके उस कपटको, पकड़नेको उनकी चेष्टाओंसे जानकर भी धैर्यपूर्वक आकाशमें नहीं उड़ा । उसने अपने ऊपर पड़नेवाले उनके हाथको उड़नेकी निपुणतासे निष्फल बना डाला ॥ ५ ॥

टिप्पणी—अनुमाय = अनु + माङ् + क्त्वा (ल्यप्), "न ल्यपि" इस सूत्रसे ईत्वका निषेध हुआ है । धैर्यात् = धीर + ष्यञ्, "ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च" इससे ल्यप्के लोपमें पञ्चमी । उत्पपात = उद् + पत् + लिट् + तिप् । आत्मोपरिपातुकं = पतनशीलः पातुकः, "पत्लृ पतने" धातुसे "लषपतपदस्थाभूवृषहनकमगमशॄभ्य उकञ्" इससे उकञ् प्रत्यय । उपरि पातुकः (सहसुपा०), आत्मन उपरिपातुकः, तम् (ष० त०) । तत्पाणिं=तस्याः पाणिः, तम् (ष० त०) । प्लुतिलाघवेन = प्लुतेर्लाघवं, तेन (ष० त०) । वितेने = वि + तनु + लिट् + त ॥ ५ ॥

व्यर्थीकृतं पत्त्ररथेन तेन तथाऽवसाय व्यवसायमस्याः ।
परस्परार्पितहस्ततालं तत्कालमालीभिरहस्यताऽलम् ॥ ६ ॥

अन्वयः—अस्या व्यवसायं तेन पत्त्ररथेन तथा व्यर्थीकृतम् अवसाय तत्कालं परस्पराम् अर्पितहस्ततालम् आलीभिः अलम् अहस्यत ॥ ६ ॥

व्याख्या—अस्याः = दमयन्त्याः, व्यवसायम् = उद्योगं, हंसग्रहणस्येति शेषः । तेन = पूर्वोक्तेन, पत्त्ररथेन = पक्षिणा, हंसेन । तथा = तेन प्रकारेण, उत्पतनेनेति भावः । व्यर्थीकृतं = निष्फलीकृतम्, अवसाय = ज्ञात्वा, तत्कालं= तस्मिन्काले, परस्परां = परस्परस्यामित्यर्थः । अर्पितहस्ततालं = दत्तकरताडनं यथा तथा, आलीभिः = सखीभिः, अलम् = अत्यर्थम्, अहस्यत = हसितम् ॥६॥

अनुवादः—दमयन्तीके पकड़नेके उद्योगको उस हंससे निष्फल क जानकर उस समय परस्परमें ताली पीटकर उनकी सखियां बहुत हँसीं ॥६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—पत्त्ररथेन = पत्त्रम् एव रथः (यानम्) यस्य स पत्त्ररथस्तेन (बहु०), "पतत्रिपत्त्रिपतगपतत्पत्त्ररथाऽण्डजाः ।" इत्यमरः । व्यर्थीकृतं = विगतः अर्थः यस्मात् सः (बहु०), अव्यर्थो व्यर्थो यथा संपद्यते तथा कृतः व्यर्थीकृतः, तम्, व्यर्थ + च्वि + कृ + क्तः + अम् । तत्कालं = तं च तं कालम्, "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इस सूत्रसे द्वितीया, "अत्यन्तसंयोगे च" इससे समास । परस्परां=परा परस्याम्, यहाँपर "कर्मव्यतिहारे सर्वनाम्नो द्वे वाच्ये समासवच्च बहुलम्" इस वार्तिकसे "द्वित्व और बहुल" का ग्रहण करनेसे समासवद्भावके न होनेसे पूर्वपदके प्रथमाके एक वचनमें कस्कादिगणमें पढ़े जानेसे सभाव और उत्तरपदमें एकवचनमें "स्त्रीनपुंसकयोरुत्तरपदस्थाया विभक्तेराम्भावो वा वक्तव्यः" इस वार्तिकसे आम् आदेश हुआ है । अर्पितहस्ततालम् = हस्ताभ्यां तालः (तृ० त०), अर्पितो हस्ततालो यस्मिन् (कर्मणि) (बहु०), तद् यथा तथा (क्रि० वि०) । अहस्यत = हस + लङ् (भावमें) + त ॥ ६ ॥

"उच्चाटनीयः करतालिकानां दानादिदानीं भवतीभिरेषः ।
याऽन्वेति मां द्रुह्यति मह्यमेव साऽत्रे" त्युपालम्भि तयाऽऽलिवर्गः ॥७॥

अन्वयः—"(हे सख्यः !) भवतीभिः एषः करतालिकानां दानात् उच्चाटनीयः ? अत्र या माम् अन्वेति सा मह्यम् एव द्रुह्यति" इति तया आलिवर्गः उपालम्भि ॥ ७ ॥

व्याख्या—(हे सख्यः !) भवतीभिः, = युष्माभिः, एषः = हंसः, करतालिकानां = हस्ततालानां, दानात् = वितरणात्, वादनादिति भावः । उच्चाटनीयः = निष्कासनीयः किम्, इति प्रश्नकाकुः, न उच्चाटनीयः इत्यर्थः । अत्र = आसु, भवतीषु मध्य इति भावः, या = काचित्, मां = भैमीम्, अन्वेति= अनुसरति, अनुसरिष्यतीति भावः । सा = सखी, मह्यम् एव = सख्यै एव, द्रुह्यति = जिघांसति, ममैव द्रोहं करिष्यतीति भावः । इति = इत्थं, तया = दमयन्त्या, आलिवर्गः = सखीसङ्घः, उपालम्भि = उपालब्धः, उपालम्भेन निवारित इति भावः ॥ ७ ॥

अनुवादः—(हे सखियों !) तुमलोग ताली पीटकर इस हंसको उड़ा दोगी क्या ? तुम लोगोंमें जो कोई मेरा पीछा करेगी वह मेरा ही द्रोह करेगी" ऐसा कहकर दमयन्तीने सखियोंको उलहना दिया ॥ ७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—करतालिकानां = करयोस्तालिकाः, तासाम् (ष० त०)। उच्चाटनीयः = उद्+चट्+णिच् + अनीयर्+सुः। यहाँपर "भिन्नकण्ठ-ध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते।" इस लक्षणके अनुसार प्रश्नाऽर्थक काकु है, अन्वेति = अनु+इण्+लट्+तिप्। द्रुह्यति = द्रुह + लट् + तिप्। दोनों क्रियापदोंमें "वर्तमानसामीप्ये वर्तमानवद्वा" इस सूत्रसे भविष्यत्कालमें लट्। मह्यम् = "द्रुह्यति" द्रुह धातुके योगमें "क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः" इससे संप्रदानसंज्ञा होकर चतुर्थी। "मह्यम्" यहाँपर अन्वादेशके होनेपर भी "एव" शब्दका योग होनेसे "न चवाहाहैवयुक्ते" इससे "मे" आदेश नहीं हुआ है। आलिवर्गः = आलीनां वर्गः (ष० त०)। उपालम्भि = उप+आङ् + लभ+लुङ् (कर्ममें) ॥ ७ ॥

धृताऽल्पकोपा हसिते सखीनां छायेव भास्वन्तमभिप्रयातुः।
श्यामाऽथ हंसस्य कराऽनवाप्तेर्मन्दाक्षलक्ष्या लगति स्म पश्चात् ॥ ८ ॥

अन्वयः—अथ सखीनां हसिते धृताऽल्पकोपा भास्वन्तम् अभिप्रयातुः छाया इव श्यामा कराऽनवाप्तेः मन्दाक्षलक्ष्या (सती) हंसस्य पश्चात् लगति स्म ॥ ८ ॥

व्याख्या—अथ = अनन्तरं, सखीनिवारणादिति शेषः। सखीनां = वयस्यानां, हसिते = हास्यविषये, धृताऽल्पकोपा = कृतमन्दक्रोधा, भास्वन्तं = सूर्यम्, अभिप्रयातुः = संमुखं गच्छतः, जनस्येत्यर्थः। छाया इव =अनातपरेखा इव, श्यामा = नीलवर्णा, अन्यत्र–यौवनमध्यस्था। कराऽनवाप्तेः = हस्तेन अप्राप्तेः, पक्षान्तरे–किरणानामप्राप्तेः, मन्दाक्षलक्ष्या = अपटुनयनग्राह्या (सती), मन्दाऽक्षैः (अपटुनयनैः) छाया लक्ष्यते न प्रकाश इति भावः। पक्षान्तरे—सलज्जा सती। हंसस्य=पक्षिणः, सूर्यस्य वा। पश्चात् = पृष्ठभागे, लगति स्म = लग्नाऽभूत्, ग्रहणाऽऽशया हंसमनुससारेति भावः ॥ ८ ॥

अनुवादः—सखियोंको उलहना देनेके अनन्तर उनकी हंसीमें कुछ कोप करनेवाली सूर्यके सम्मुख जानेवालेकी श्याम छायाकी समान श्यामा (युवती) दमयन्ती हाथसे हंसको न पानेसे लज्जायुक्त होती हुई हंसके पीछे लगीं ॥ ८ ॥

टिप्पणी—हसिते = हस+क्त+ङि। धृताऽल्पकोपा = धृतः अल्पः कोपो यया सा (बहु०)। भास्वतं = भास्+मतुप्+अम्। अभिप्रयातुः = अभि+

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्र+या+तृच्+ङस्। श्यामा = "श्यामा यौवनमध्यस्था" इत्युत्पलमाला। कराऽनवाप्तेः = न अवाप्तिः अनवाप्तिः (नञ्०) करेण अनवाप्तिः, तस्याः (तृ० त०), अथवा कराणाम् (किरणानाम्)। अनवाप्तिः, तस्याः (ष० त०), दोनों पक्षोंमें हेतुमें पञ्चमी। "बलिहस्तांऽशवः कराः" इत्यमरः। मन्दाऽक्ष-लक्ष्या = मन्दे (अपटुनी) अक्षिणी (नेत्रे) येषां ते मन्दाक्षाः (बहु०) "बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्षच्" इससे समासाऽन्त षच् प्रत्यय। मन्दाक्षैः लक्ष्या (तृ० त०)। मन्द नेत्रोंवालोंसे छाया ही देखी जाती है प्रकाश नहीं। दूसरे पक्षमें—मन्दाऽक्षेण लक्ष्या (तृ० त०) "मन्दाक्षं ह्रीस्त्रपा व्रीडा लज्जा" इत्यमरः। लज्जित होती हुईं यह तात्पर्य है। हंसस्य = "पश्चात्" इस पदके योगमें "षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन" इससे षष्ठी। "रविश्वेतच्छदौ हंसौ" इत्यमरः। लगति स्म = "लगे सङ्गे" धातुसे "स्म" के योगमें भूतकालमें लट्+तिप्। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है॥ ८॥

"शस्ता न हंसाऽभिमुखी तवेयं यात्रे"ति ताभिश्छलहस्यमाना।
साऽऽह स्म "नैवाऽशकुनीभवेन्मे भाविप्रियावेदक एष हंसः"॥ ९॥

अन्वयः—"तव इयं हंसाऽभिमुखी यात्रा शस्ता न" इति ताभिः छलहस्य-माना (सती) सा "भाविप्रियावेदक एष हंसो मे न अशकुनीभवेत् एव" इति आह स्म॥ ९॥

व्याख्या—"(हे भैमि!) तव = भवत्याः, इयम्=एषा, हंसाऽभिमुखी= राजहंससंमुखी, सूर्यसंमुखी च, यात्रा = गमनं, शस्ता न = प्रशस्ता न, राजहंस-पक्षे—श्रमकारकत्वात्, सूर्यपक्षे—सन्तापकरत्वरूपदृष्टदोषात् शास्त्रविरुद्धत्वाच्च श्रेयस्करी नेति भावः। इति = इत्थं, ताभिः = सखीभिः, छलहस्यमाना= छलेन (व्याजोक्त्या) हस्यमाना (उपहस्यमाना) सती, सा = दमयन्ती, भाविप्रियावेदकः = भविष्यत्प्रियसूचकः, मङ्गलमूर्तित्वादिति शेषः। एषः = समीपतरवर्ती, हंसः = राजहंसः। मे = मम, दमयन्त्याः। न अशकुनीभवेत् एव = न अपशकुनरूपो भवेत् एव, अथवा न अपक्षो भवेत् एव, इति = इत्थम्, आह स्म = उक्तवती। एतेन यात्रानिषेधपक्षे दोषः परिहृतः॥ ९॥

अनुवादः—"(हे दमयन्ति!) आपका यह हंसके वा सूर्यके सम्मुख गमन कल्याणकारक नहीं है" ऐसा कहकर सखियोंके छलसे उपहास करनेपर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दमयन्तीने "आगामी प्रियका सूचक यह हंस मेरे लिए अपशकुन वा अपक्षी नहीं ही होगा" ऐसा कहा ॥ ९ ॥

टिप्पणी—हंसाऽभिमुखी = हंसस्य अभिमुखी (ष० त०)। छलहस्यमाना = हस्यते इति हस्यमाना, हस + लट् (कर्ममें) + यक् + शानच् + टाप् । छलेन हस्यमाना (तृ० त०)। भाविप्रियावेदकः = भावि च तत्प्रियम् (क० धा०) तस्य आवेदकः (ष० त०), मे = "मम" के स्थानमें "ते मयावेकवचनस्य" इससे "मे" आदेश । अशकुनीभवेत् = अशकुन + च्वि + भू + लिङ् (विधिमें)। "अस्य च्वौ" इससे अवर्णके स्थानमें ईकार आदेश ! "शकुनं तु शुभाशंसा निमित्ते, शकुनः पुमान् ।" इति विश्वः। आह स्म = "ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि" धातुके स्थानमें "आह" आदेश होकर "स्म" के योगमें भूतकालमें लट् । इस पद्यमें श्लेष अलङ्कार है ॥ ९ ॥

हंसोऽप्यसौ हंसगतेः सुदत्याः पुरः पुरश्चारु चलन्बभासे ।
वैलक्ष्यहेतोर्गतिमेतदीयामग्रेऽनुकृत्योपहसन्निवोच्चैः ॥ १० ॥

अन्वयः—असौ हंसः अपि हंसगतेः सुदत्याः पुरः पुरः अग्रे चारु चलन् वैलक्ष्यहेतोः एतदीयां गतिम् अनुकृत्य उच्चैः उपहसन् इव बभासे ॥ १० ॥

व्याख्या—दमयन्तीचेष्टामभिधाय हंसव्यापारं प्रतिपादयति हंसोऽपीति । असौ = पूर्वप्रतिपादितः, हंसः अपि = राजहंसः अपि, सुदत्याः = सुन्दरदशनायाः, दमयन्त्या इत्यर्थः । पुरः पुरः = पुरतः पुरतः । अग्रे = समन्तात्, चारु = रम्यं, चलन् = गच्छन्, वैलक्ष्यहेतोः = आश्चर्योत्पादनाऽर्थम्, एतदीयां = दमयन्तीसम्बन्धिनीं, गतिं = गमनम्, अनुकृत्य = अभिनीय, उच्चैः = अतिशयेन, उपहसन् इव=उपहासं कुर्वन् इव, बभासे = बभौ, लोकेऽपि परिहासकास्तत्तच्चेष्टाऽनुकरणेन जनानां विस्मयं जनयन्ति ॥ १० ॥

अनुवादः—वह हंस भी हंसके समान चलनेवाली दमयन्तीके आगे मनोहर ढंगसे चलता हुआ आश्चर्य उत्पन्न करनेके लिए उनकी गतिकी नकल कर मानों उपहास करता हुआ शोभित हुआ ॥ १० ॥

टिप्पणी—हंसगतेः = हंसस्य इव गतिर्यस्याः सा हंसगतिः, तस्याः (व्यधिकरण०)। सुदत्याः=शोभना दन्ता यस्याः सा सुदती, तस्याः (बहु०)। "पुरः" इस पदके योगमें "षष्ठ्यतसर्थप्रत्ययेन" इस सूत्रसे षष्ठी । चलन् = चल + लट् (शतृ)। वैलक्ष्यहेतोः = वैलक्ष्यस्य हेतुः, तस्य (ष० त०), "षष्ठी हेतु-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रयोगे" इससे षष्ठी, "विलक्षो लज्जयाऽन्विते" इत्यमरः। एतदीयाम् = एतस्या इयम् एतदीया, ताम्, "त्यदादीनि च इससे वृद्धसंज्ञा होकर "वृद्धाच्छः" इस सूत्रसे छ (ईय) प्रत्यय। उपहसन् = उप + हस + लट् (शतृ)। बभासे = "भासृ दीप्तौ" धातुसे लिट् + त। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥ १०॥

पदे पदे भाविनि भाविनी तं यथा करप्राप्यमवैति नूनम्।
तथा सखेलं चलता लतासु प्रतार्य तेनाऽऽचकृषे कृशाऽङ्गी॥ ११॥

अन्वयः—भाविनी कृशाङ्गी भाविनि पदे पदे तं यथा करप्राप्यं नूनम् अवैति तथा सखेलं चलता तेन प्रतार्य लतासु आचकृषे॥ ११॥

व्याख्या—भाविनी=हंसग्रहणभावयुक्ता अथवा प्रशस्ताऽभिप्राया, कृशाङ्गी= दमयन्ती, भाविनि = भविष्यति, अनन्तरे इत्यर्थः, पदे पदे=प्रतिपदं, तं = येन हंसं, यथा प्रकारेण, करप्राप्यं = हस्तग्राह्यं, नूनं = निश्चितम्, अवैति = जानाति, तथा = तेन प्रकारेण, सखेलं = सक्रीडं, चलता = गच्छता, तेन = हंसेन, प्रतार्य = वञ्चयित्वा, लतासु = वल्लीसमीपे, आचकृषे = आकृष्टा, एकान्तं नीतेति भावः॥ ११॥

अनुवादः—हंसको पकड़नेकी इच्छा करनेवाली दमयन्ती निकटवर्ती पग-पगमें हंसको जैसे हाथसे पकड़े जानेवाला निश्चित रूपसे जानती है वैसे क्रीडासे चलनेवाले हंसने प्रतारण कर दमयन्तीको लताओंके समीप पहुँचाया॥ ११॥

टिप्पणी—भाविनी = भावयतीति, भू + णिच् + णिनि + ङीप्। कृशाङ्गी= कृशानि अङ्गानि यस्याः सा (बहु०), "अङ्गगात्रकण्ठेभ्यो वक्तव्यम्" इससे ङीप्। भाविनि = भविष्यतीति भावि तस्मिन्; भूधातुसे "भविष्यति गम्यादयः" इस सूत्रसे भविष्यत्कालमें णिनि प्रत्यय। पदे पदे = वीप्सामें द्विरुक्ति। कर-प्राप्यं = करेण प्राप्यः, तम् (तृ० त०)। अवैति = अव + इण् + लट् + तिप्। सखेलं = खेलया सहितं यथा तथा (तुल्ययोगबहु०)। चलता = चल + लट् + (शतृ) + टा। आचकृषे=आङ् + कृष + लिट् (कर्ममें) + त॥ ११॥

रुषा निषिद्धाऽलिजनां यदैनां छायाद्वितीयां कलयाञ्चकार।
तदा श्रमाऽम्भःकणभूषिताङ्गीं स कीरवन्मानुषवागवादीत्॥ १२॥

अन्वयः—रुषा निषिद्धाऽलिजनाम् एनां यदा छायाद्वितीयां कलयाञ्चकार तदा श्रमाऽम्भःकणभूषिताङ्गीं नाम स कीरवत मानुषवाक् (सन्) अवादीत्॥ १२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—रुषा = क्रोधेन हेतुना, निषिद्धाऽऽलिजनां = निवारितसखीजनाम, एनां = दमयन्तीं, यदा = यस्मिन्समये, छायाद्वितीयां = प्रतिबिम्वमात्रसहचरीम्, एकाकिनीमिति भावः। कलयाञ्चकार = ज्ञातवान्, तदा = तस्मिन् समये, श्रमाऽम्भःकणभूषिताङ्गीं = स्वेदजललवाऽलङ्कृताऽङ्गीं, तां = भैमीं, सः=हंसः, कीरवत् = शुकवत्, मानुषवाक् = मानववाणीयुक्तः सन्, अवादीत् = उक्तवान्! ॥ १२ ॥

अनुवादः—क्रोधसे सखियोंको निवारण करनेवाली दमयन्तीको जब केवल छायासे युक्त (अकेली) जान लिया, तब पसीनेके जलकी कणासे अलङ्कृत शरीरवाली उनसे उस हंसने तोतेके समान मनुष्यवाणीसे भाषण किया ॥१२॥

टिप्पणी—निषिद्धाऽऽलिजनां = निषिद्धा आलिजना यया सा, ताम् (वहु०)। छायाद्वितीयां = छाया एव द्वितीया यस्याः सा (बहु०)। अथवा छायया (कान्त्या) हेतुना अद्वितीया, ताम् (तृ० त०), कान्तिसे अद्वितीय, अतिशय सुन्दरी यह तात्पर्य है। श्रमाऽम्भःकणभूषिताङ्गीं = श्रमेण अम्भःकणाः (तृ० त०), भूषितानि अङ्गानि यस्याः सा, (बहु०)। श्रमाऽम्भःकणैः भूषिताङ्गी, ताम् (तृ० त०) कीरवत् = कीरेणतुल्यम्, कीर + वतिः। मानुषवाक् = मानुषस्य इव वाक् यस्य सः (व्यधिकरणबहु०) अवादीत् = वद + लुङ् + तिप् ॥ १२ ॥

अये! कियद्यावदुपैषि दूरं व्यर्थं ? परिश्राम्यसि वा किमर्थम् ?।
उदेति ते भीरपि किन्नु बाले ! विलोकयन्त्या न घना वनाऽऽलीः ? ॥ १३ ॥

अन्वयः—अये बाले ! व्यर्थं कियद् दूरं यावत् उपैषि ? वा किमर्थं परिश्राम्यसि ? घना वनालीः विलोकयन्त्याः ते भीः अपि न उदेति किन्नु ? ॥ १३ ॥

व्याख्या—अये बाले= हे तरुणि !, व्यर्थं = निरर्थं, कियत् = किंपरिमाणं, दूरं यावत् = विप्रकृष्टं पर्यन्तम्, उपैषि = उपैष्यसि ? वा = अथवा, किमर्थं= केन प्रयोजनेन, परिश्राम्यसि = परिश्रान्ता भवसि। घनाः = निबिडाः, वनालीः = विपिनपङ्क्तीः, विलोकयन्त्याः=पश्यन्त्याः, ते = तव, भीः अपि = भयम् अपि, न उदेति किन्नु = न उत्पद्यते किम् ?॥ १३ ॥

अनुवादः—हे बाले ! व्यर्थ कितनी दूरतक आ रही हैं ? अथवा किस लिए आप परिश्रान्त होती हैं ? गाढ वनपङ्क्तियोंको देखनेवाली आपको भय भी उत्पन्न नहीं होता है क्या ? ॥ १३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—कियत् = किंपरिमाणं, किम् + वतुप्, उपैषि = उप + इण्–धातुसे "यावत्" पदके योगमें "यावत्पुरानिपातयोर्लट्" इस सूत्रसे भविष्यत्-कालमें लट्। किमर्थं = कस्मै इदम् (चतुर्थीतत्पुरुष)। वनालीः = वनानाम् आल्यः, ताः (ष० त०)। विलोकयन्त्याः = वि + लोक् + णिच् + लट् + (शतृ) ङीप् + ङस् ॥ १३ ॥

वृथाऽर्पयन्तीमपथे पदं त्वां मरुल्ललत्पल्लवपाणिकम्पैः।
आलीव पश्य प्रतिषेधतीयं कपोतहुङ्कारगिरा वनाऽऽलिः ॥ १४ ॥

अन्वयः—वृथा अपथे पदम् अर्पयन्तीं त्वां मरुल्ललत्पल्लवपाणिकम्पैः कपोत-हुङ्कारगिरा च इयं वनालिः आली इव प्रतिषेधति। पश्य ॥ १४ ॥

व्याख्या—(हे राजकुमारि !) वृथा=व्यर्थमेव, अपथे = दुर्मार्गे, अकृत्ये च, पदं = पादं, व्यवसायं च, अर्पयन्तीम् = कुर्वतीं, (त्वाम्), मरुल्ललत्पल्लव-पाणिकम्पैः = वायुचलत्किसलयकरवेपथुभिः, कपोतहुङ्कारगिरा = पारावत-हुङ्करणवाचा, च, इयम् = एषा, वनाऽऽलिः = विपिनपङ्क्तिः, आली इव = सखी इव, प्रतिषेधति = निवारयति, पश्य = विलोकय, (वाक्यार्थः कर्म)। यथालोके कुमार्गप्रवृत्तं जनं सुहृत् पाणिना वाचा च निवारयति तथैव इयं वनालिः प्रतिषेधति इति भावः ॥ १४ ॥

अनुवादः—व्यर्थ ही दुर्मार्गमें अकृत्यमें भी पैर रखनेवाली आपको वायुसे चञ्चल पल्लवरूप हाथोंके कम्पनोंसे और कबूतरकी हुङ्कारवाणीसे भी यह वनपङ्क्ति सखीकी समान निवारण कर रही है देखिए ॥ १४ ॥

टिप्पणी—अपथे = न पन्था अपथम्, (नञ्०) तस्मिन्, "ऋक्पूरब्धूः-पथामानक्षे" इस सूत्रसे समासाऽन्त अप्रत्यय। "अपथं नपुंसकम्" इससे नपुंसक-लिङ्गता। पदं = "पदं व्यवसितत्राणस्थानलक्ष्माऽङ्घ्रिवस्तुषु।" इत्यमरः। मरुल्ललत्पल्लवाणिकम्पैः = पल्लव एव पाणिः (रूपक०), ललंश्चाऽसौ पल्लव-पाणिः (क० धा०)। मरुता ललत्पल्लवपाणिः (तृ० त०)। तस्य कम्पाः, तैः (ष० त०)। कपोतहुङ्कारगिरा = हुङ्कार एव गीः (रूपक०)। कपो-तानां हुङ्कारगीः तया (ष० त०)। वनालिः=वनानाम् आलिः (ष० त०)। प्रतिषेधति = प्रति + षिध + लट् + तिप्। इस पद्यमें रूपक और उपमाका अङ्गाङ्गिभावसे सङ्कर अलङ्कार है ॥ १४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

धार्यः कथङ्कारमहं भवत्या वियद्विहारी वसुधैकगत्या ? ।
अहो ! शिशुत्वं तव खण्डितं न स्मरस्य सख्या वयसाऽप्यनेन ॥ १५ ॥

अन्वयः—वसुधैकगत्या भवत्या वियद्विहारी अहं कथङ्कारं धार्यः ? स्मरस्य सख्या अनेन वयसा अपि तव शिशुत्वं खण्डितं न, अहो ! ॥ १५ ॥

व्याख्या—(हे राजकुमारि !) वसुधैकगत्या = भूमात्रचारिण्या, भवत्या= त्वया, वियद्विहारी = आकाशचारी, अहं = पक्षी, कथङ्कारं = केन प्रकारेण, धार्यः = ग्रहीतुं शक्यः । स्मरस्य = कामस्य, सख्या = मित्रेण, अनेन = एतेन, वयसा अपि = अवस्थया अपि, तारुण्येनापीऽति भावः । तव = भवत्याः, शिशुत्वं = शैशवम्, अज्ञत्वमित्यर्थः, खण्डितं न = निर्वर्तितं न, अहो ! = आश्चर्यम् ॥ १५ ॥

अनुवादः—भूमिमात्रमें गतिवाली आपसे आकाशमें विचरण करनेवाला मैं कैसे पकड़ा जाऊँगा ? कामदेवके मित्र इस अवस्था (तारुण्य) से भी आपका बालभाव नहीं हटा है, आश्चर्य है ! ॥ १५ ॥

टिप्पणी—वसुधैकगत्या = एका गतिर्यस्याः सा एकगतिः (बहु०) । वसुधायाम् एकगतिः तया (स० त०) । वियद्विहारी = विहरतीति तच्छीलो विहारी, वि + हृञ् + णिनिः । वियति विहारी (स० त०) । कथङ्कारं = 'कथम्' उपपदपूर्वक 'कृ' धातुसे "अन्यथैवंकथमित्थंसु सिद्धाऽप्रयोगश्चेत्" इस सूत्रसे णमुल् प्रत्यय । धार्यः = धर्तुं शक्यः, 'धृ' धातुसे "शकि लिङ् च" इस सूत्रमें 'च' का पाठ होनेसे शक्य अर्थमें ण्यत् (कृत्य) प्रत्यय । इस पद्यमें अधार्यत्वमें वसुधागति और वियद्विहाररूप पदार्थहेतुक एक काव्यलिङ्ग और शैशवके अखण्डनमें पूर्ववाक्यार्थके हेतु होनेसे दूसरा काव्यलिङ्ग, इनका सजातीय सङ्कर है ॥ १५ ॥

सहस्रपत्त्रासनपत्त्रहंसवंशस्य पत्त्राणि पतत्त्रिणः स्मः ।
अस्मादृशां चाटुरसाऽमृतानि स्वर्लोकलोकेतरदुर्लभानि ॥ १६ ॥

अन्वयः—पाठाऽनुसारी ॥ १६ ॥

व्याख्या—हंसः स्वपरिचयं प्रस्तौति—सहस्रेति । सहस्रपत्त्रासनपत्त्रहंसवंशस्य = ब्रह्मवाहनहंसकुलस्य, पत्त्राणि = वाहनानि, पतत्त्रिणः = पक्षिणः, स्मः = भवामः । वयमिति शेषः । अहं ब्रह्मवाहनहंसकुलोत्पन्नोऽस्मीति भावः ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अस्मादृशाम् = अस्मत्सदृशानां, चाटुरसाऽमृतानि = सुभाषितशृङ्गारादिरस-पीयूषाणि, स्वर्लोकलोकेतरदुर्लभानि = देवभिन्न (मनुष्य) दुष्प्राप्याणि, सन्तीति शेषः ॥ १६ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) हम ब्रह्माजीके वाहन हंसोंके कुलमें उत्पन्न वाहन पक्षी हैं। हमारे सरीखे लोगोंके सुभाषितरसरूप अमृत, देवभिन्न मनुष्योंके लिए दुर्लभ हैं ॥ १६ ॥

टिप्पणी—सहस्रपत्त्रासनपत्त्रहंसवंशस्य = सहस्रं पत्त्राणि यस्य तत् सहस्रपत्त्रं (बहु०), "सहस्रपत्त्रं कमलम्" इत्यमरः। सहस्रपत्त्रम् आसनम् यस्य स सहस्रपत्त्रासनः "विरञ्चिः कमलाऽऽसनः" इत्यमरः। पत्त्राणि च ते हंसाः (क० धा०)। सहस्रपत्त्रासनस्य पत्त्रहंसाः (ष० त०), तेषां वंशः, तस्य (ष० त०)। पत्त्राणि = "वंशो वेणौ कुले वर्गे," पत्त्रं स्याद्वाहने पर्णे" इति च विश्वः। अस्मादृशाम् = अस्मानिव पश्यन्तीति अस्मादृशः, तेषाम्, "उपपदपूर्वक 'दृश' धातुसे "त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च" इस सूत्रसे क्विन् प्रत्यय। चाटुरसाऽमृतानि = चाटुषु रसाः (स० त०), ते एव अमृतानि (रूपक०)। स्वर्लोकलोकेतरदुर्लभानि=स्वश्चाऽसौ लोकः स्वर्लोकः (क० धा०)। स्वर्लोके लोकाः (देवजनाः), (स० त०)। स्वर्लोकलोकेभ्यः इतरे (अन्ये, मनुष्या इत्यर्थः) (प० त०)। स्वर्लोकलोकेतरैः दुर्लभानि (तृ० त०)। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ १६ ॥

स्वर्गाऽऽपगाहेममृणालिनीनां नालामृणालाऽग्रभुजो भजामः ।
अन्नाऽनुरूपां तनुरूपऋद्धिं कार्यं निदानाद्धि गुणानधीते ॥ १७ ॥

अन्वयः—स्वर्गापगाहेममृणालिनीनां नालामृणालाऽग्रभुजः अन्नाऽनुरूपां तनु-रूपऋद्धिं भजामः; हि कार्यं निदानात् गुणान् अधीते ॥ १७ ॥

व्याख्या—(हे राजकुमारि !) स्वर्गाऽऽपगाहेममृणालिनीनां = मन्दाकिनी-सुवर्णकमलिनीनां, नालामृणालाऽग्रभुजः = काण्डबिसाग्रभोजिनः, वयमिति शेषः। अन्नाऽनुरूपाम् = आहारसदृशीं, तनुरूपऋद्धिं = शरीरवर्णसमृद्धिं, भजामः = प्राप्ताः स्म इति भावः। (उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन समर्थयते—कार्यमिति)। हि = यस्मात् कारणात्, कार्यं = जन्यं द्रव्यं, निदानात् = उपादानकारणात्, गुणान् = रूपादिविशेषगुणान्, अधीते = प्राप्नोतीति भावः ॥ १७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—स्वर्गकी नदी (मन्दाकिनी) की सुवर्णकमलिनियोंके काण्ड और मृणालके अग्रभागको खानेवाले हमलोग आहारकी समान शरीरके वर्णकी समृद्धिको प्राप्त किये हुए हैं, क्योंकि कार्य, कारणसे रूप आदि विशेष गुणोंको प्राप्त करता है ॥ १७ ॥

टिप्पणी—स्वर्गाऽऽपगाहेममृणालिनीनां = स्वर्गे आपगा । (स० त०), हेम्नो मृणालिन्यः (ष० त०), स्वर्गापगाया हेममृणालिन्यः, तासाम् (ष० त०) । नालामृणालाऽग्रभुजः = मृणालानामग्राणि (ष० त०) । नालाश्च मृणालाऽग्राणि च, (द्वन्द्वः), तानि भुञ्जत इति (नालामृणालाऽग्र + भुज् + क्विप् + जस्) । अन्नाऽनुरूपाम्=अन्नस्य अनुरूपा, ताम् (ष० त०) । तनु-रूपर्द्धि = रूपस्य ऋद्धिः (ष० त०), "ऋत्यकः" इससे प्रकृतिभाव होनेसे अर्गुण नहीं हुआ । तनो रूपऋद्धिः, ताम् (ष० त०) । निदानात् = "आख्यातोपयोगे" इस सूत्रसे अपादानसंज्ञा होनेसे पञ्चमी । इस पद्यमें सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ॥ १७ ॥

धातुर्नियोगादिह नैषधीयं लीलासरः सेवितुमागतेषु ।
हैमेषु हंसेष्वहमेक एव भ्रमामि भूलोकविलोकनोत्कः ॥ १८ ॥

अन्वयः—धातुः नियोगात् इह नैषधीयं लीलासरः सेवितुम् आगतेषु हैमेषु हंसेषु अहम् एक एव भूलोकविलोकनोत्कः (सन्) भ्रमामि ॥ १८ ॥

व्याख्या—(हे राजकुमारि !) धातुः = ब्रह्मणः, नियोगात् = आदेशात्, इह = अस्मिन्, भूलोक इति भावः । नैषधीयं = नलीयं, लीलासरः = विलास-कासारं, सेवितुम् = आलोडयितुम्, विहर्तुमिति भावः । आगतेषु = आयातेषु, हैमेषु = सौवर्णेषु, हंसेषु = चक्राङ्गेषु, अहम्, एक एव = एकाकी एव, भूलोक-विलोकनोत्कः = भूमिलोकदर्शनोत्कण्ठितः सन्, भ्रमामि = पर्यटामि ॥ १८ ॥

अनुवादः—ब्रह्माजीकी आज्ञासे इस भूलोकमें नलके विलासकी तालाबमें विहार करनेके लिए आये हुए सुनहरे हंसोंमें मैं अकेला ही भूलोक देखनेमें उत्कण्ठित होता हुआ पर्यटन कर रहा हूँ ॥ १८ ॥

टिप्पणी—नैषधीयं = निषधानामयं नैषधः, निषध + अण् । नैषधस्य इदम् "वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या" इससे वृद्धसंज्ञा होकर "वृद्धाच्छः" इससे छ (ईय) प्रत्यय । हैमेषु = हेम्नो विकाराः तेषु, हेमन् + अण् + सुप् । "नस्तद्धिते" इससे टिका लोप । भूलोकविलोकनोत्कः = भूश्चाऽसौ लोकः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क० धा०)। तस्य विलोकनं (ष० त०), तस्मिन् उत्कः (स० त०)। "उत्क" इसमें "उत्क उन्मनाः" इस सूत्रसे उद् उपसर्गसे कन्प्रत्ययान्त निपात। भ्रमामि = भ्रम + लट् + मिप् ॥ १८ ॥

विधेः कदाचिद् भ्रमणीविलासे श्रमाऽऽतुरेभ्यः स्वमहत्तरेभ्यः।
स्कन्धस्य विश्रान्तिमदां तदादि श्राम्यामि नाऽविश्रमविश्वगोऽपि ॥ १९ ॥

अन्वयः— कदाचित् विधेः भ्रमणीविलासे श्रमातुरेभ्यः स्वमहत्तरेभ्यः स्कन्धस्य विश्रान्तिम् अदां, तदादि अविश्रमविश्वगः अपि न श्राम्यामि ॥ १९ ॥

व्याख्या—कदाचित् = जातुचित्, विधेः = ब्रह्मणः, भ्रमणीविलासे = भुवनभ्रमणविनोदे, श्रमाऽऽतुरेभ्यः = परिश्रमाऽऽकुलेभ्यः, भारवहनादिति शेषः। स्वमहत्तरेभ्यः = निजवंशवृद्धेभ्यः, स्कन्धस्य = अंसस्य, विश्रान्ति = विश्रमम्, अदां = दत्तवान्, स्वमहत्तरेषु श्रान्तेषु तद्भारमहं गृहीतवानिति भावः। तदादि= तत्कालादारभ्य, अविश्रमविश्वगः अपि = निरन्तरसर्वलोकगामी अपि, न श्राम्यामि = श्रान्तो न भवामि, न खिद्ये इति भावः ॥ १९ ॥

अनुवादः—किसी समय ब्रह्माजीके भ्रमणके विनोदमें परिश्रमसे आतुर अपने पूर्वजोंको मैंने कन्धेको विश्राम दिया। इस कारणसे मैं उस समयसे लेकर लगातार विश्वमें भ्रमण करनेपर भी परिश्रान्त नहीं होता हूँ ॥ १९ ॥

टिप्पणी—भ्रमणीविलासे = भ्रमण्या विलासः, तस्मिन् (ष० त०)। श्रमातुरेभ्यः = श्रमेण आतुराः, तेभ्यः (तृ० त०)। स्वमहत्तरेभ्यः = अतिशयेन महान्तो महत्तराः, महत् + तरप्। स्वस्मात् महत्तराः, तेभ्यः (प० त०), "कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्" इससे संप्रदान संज्ञा होकर चतुर्थी। स्कन्धस्य = "स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्री" इत्यमरः। अदाम् = "डुदाञ् दाने" धातुसे लुङ् + मिप्। "गातिस्थाघुपाभूभ्यः सिचःपरस्मैपदेषु" इससे सिच्का लुक्। तदादि = सः (कालः) आदिः यस्मिन् (कर्मणि) (बहु०), तद् यथा तथा (क्रि० वि०)। अविश्रमविश्वगः = अविद्यमानः विश्रमः यस्मिन् कर्मणि, (नञ्बहु०) विश्वं गच्छतीति विश्वगः, विश्व-उपपद पूर्वक गम धातुसे "अन्यत्राऽपि दृश्यते" इससे ड प्रत्ययः। अविश्रमं (यथा तथा) विश्वगः (सुप्सुपा०)। श्राम्याभि = "श्रमु तपसि खेदे च" इस धातुसे लट् + मिप्। "शमामष्टानां दीर्घः श्यनि" इससे दीर्घ। इस पद्यमें काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ॥ १९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बन्धाय दिव्ये न तिरश्चि कश्चित्पाशादिरासादितपौरुषः स्यात् ।
एकं विना मादृशि तन्नरस्य स्वर्भोगभाग्यं विरलोदयस्य ॥ २० ॥

अन्वयः—मादृशि दिव्ये तिरश्चि विरलोदयस्य नरस्य एकं स्वर्भोगभाग्यं विना कश्चित् पाशादिः बन्धाय आसादितपौरुषो न स्यात् ॥ २० ॥

व्याख्या—मादृशि = मत्सदृशे, दिव्ये = सुरलोकभवे, तिरश्चि = पक्षिणि विषये, विरलोदयस्य = दुर्लभजन्मनः, नरस्य = मनुष्यस्य, अथवा विरलोदयस्य= रेफस्थाने लकारयुक्तस्य, नरस्य = नलस्येतिभावः । एकं = मुख्यं, स्वर्भोगभाग्यं विना = स्वर्गसुखभागधेयं विना, कश्चित् = कश्चन, पाशादिः=पाशाद्युपायः, बन्धाय = बन्धनाऽर्थम्, आसादितपौरुषः = प्राप्तपुरुषार्थः, न स्यात् = न भवेत्, स्वर्भोगभाग्यशालिनं नरं (नलम्) विना मां ग्रहीतुं न कोऽपि समर्थ इति भावः ॥ २० ॥

अनुवादः—मेरे सरीखे दिव्य पक्षीके विषयमें दुर्लभजन्मवाले नरके वा 'र'-के स्थानमें 'ल' से युक्त नर अर्थात् नलके मुख्य स्वर्गभोगके भाग्यको छोड़कर कुछ पाश आदि उपाय बन्धनके लिए समर्थ नहीं होगा अर्थात् नलके सिवाय मैं किसीसे ग्राह्य नहीं हूंगा ॥ २० ॥

टिप्पणी—विरलोदयस्य = विरल उदयो यस्य स विरलोदयः, तस्य (बहु०) । अथवा—विगतः रः यस्मात् सः विरः (बहु०) । लस्य उदयो यस्मिन् स लोदयः (व्यधिकरणबहु०) । विरश्चाऽसौ लोदयः विरलोदयः (क० धा०) । विरलोदयस्य नरस्य = 'र'के स्थानमें 'ल' के उदयवाले नर अर्थात् नलका यह तात्पर्य है । स्वर्भोगभाग्यं = स्वः भोगः स्वर्भोगः (ष० त०), तस्य भाग्यं, तत् (ष० त०), "विना" इस पदके योगमें द्वितीया । पाशादिः = पाश आदिर्यस्य सः (बहु०) । बन्धाय = "तुमर्थाच्च भाववचनात्" इससे चतुर्थी । आसादितपौरुषः = आसादितं पौरुषं येन सः (बहु०) । स्यात् = अस् + विधिलिङ् + तिप् ॥ २० ॥

इष्टेन पूर्तेन नलस्य वश्याः स्वर्भोगमत्राऽपि सृजन्त्यमर्त्याः ।
महीरुहो दोहदसेकशक्तेराकालिकं कोरकमुद्गिरन्ति ॥ २१ ॥

अन्वयः—इष्टेन पूर्तेन वश्या अमर्त्या नलस्य अत्र अपि स्वर्भोगं सृजन्ति । महीरुहो दोहदसेकशक्तेः आकालिकं कोरकम् उद्गिरन्ति ॥ २१ ॥

व्याख्या—नलस्य स्वर्भोगभाग्यं प्रतिपादयन्नि—इष्टेनेति । इष्टेन = यागेन,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पूर्तेन = खाताऽऽदिकर्मणा, वश्याः = वशंगताः, अमर्त्याः = देवाः, नलस्य = नैषधस्य, अत्र अपि = भूलोके अपि, स्वर्भोगं = स्वर्गसुखं, सृजन्ति = सम्पादयन्ति। अत्राऽर्थे दृष्टान्तमुपन्यस्यति—महीरुह इति। महीरुहः = वृक्षाः, दोहदसेकशक्तेः = धूपादिदोहदसेचनसामर्थ्यात्, आकालिकम् = असमयभवं, कोरकं = कलिकाम्, उद्गिरन्ति = उत्पादयन्ति। दोहदसेचनादिभ्यो वृक्षा इव इष्टपूर्तादिकर्मभ्यो देवा अपि देशकालावनपेक्ष्याऽपि फलं ददतीति भावः ॥ २१ ॥

अनुवादः—याग और खात आदि कर्मसे वशीभूत होकर देवगण नलके लिए भूलोकमें भी स्वर्गसुखका सम्पादन करते हैं। वृक्ष, धूप आदि दोहद और सेचनकी शक्तिसे असमयमें भी कलिकाको उत्पन्न करते हैं ॥ २१ ॥

टिप्पणी—इष्टेन पूर्तेन = यज् + क्तः + टा। पॄ + क्तः + टा।। "अथ क्रतुकर्मेष्टं, पूर्तं खातादिकर्मणि।" इत्यमरः। "पूर्त" यहाँपर "न ध्याख्यापॄमूर्च्छिमदाम्" इस सूत्रसे तकारका नकार नहीं हुआ। वश्याः = वशं गताः, "वशं गत" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय। अमर्त्याः="अमर्त्या अमृतान्धस" इत्यमरः। दोहदसेकशक्तेः = दोहदं च सेकश्च दोहदसेकौ (द्वन्द्वः), तयोः शक्तिः, तस्याः (ष० त०)। आकालिकम् = न कालः अकालः (नञ्०)। अकाले भवः आकालिकः, तम्, 'अकाल' शब्दसे अध्यात्मादिगणके आकृतिगण होनेसे "अध्यात्मादेष्ठञिष्यते" इससे ठञ् प्रत्यय। उद्गिरन्ति = उद् + गॄ + लट् + झिः। इस पद्यमें दृष्टान्त अलङ्कार है ॥ २१ ॥

सुवर्णशैलादवतीर्य तूर्णं स्वर्वाहिनीवारिकणाऽवतीर्णैः।
तं वीजयामः स्मरकेलिकाले पक्षैर्नृपं चामरबद्धसख्यैः ॥ २२ ॥

अन्वयः—सुवर्णशैलात् तूर्णम् अवतीर्य स्वर्वाहिनीवारिकणाऽवतीर्णैः चामरबद्धसख्यैः पक्षैः स्मरकेलिकाले तं नृपं वीजयामः ॥ २२ ॥

व्याख्या—नलस्य स्वर्गभोगं प्रतिपादयति—सुवर्णशैलादिति। सुवर्णशैलात् = सुमेरोः, तूर्णं = शीघ्रम्, अवतीर्य = अवरुह्य, स्वर्वाहिनीवारिकणाऽवकीर्णैः = मन्दाकिनीजलबिन्दुसंपृक्तैः, चामरबद्धसख्यैः = प्रकीर्णककृतमैत्रीकैः, चामरसदृशैरिति भावः। पक्षैः = पतत्रैः, स्मरकेलिकाले = रतिक्रीडासमये, तं = पूर्वोक्तं, नृपं = राजानं नलं, वीजयामः = वातं सृजाम इति भावः। राज्ञः सुरतश्रमं निवारयाम इति भावः ॥ २२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—सुमेरुपर्वतसे शीघ्र उतर कर मन्दाकिनीके जलके बिन्दुओंके सम्पर्कयुक्त चामरके समान पङ्खोंसे रतिक्रीडाके समयमें नलको हम पङ्खा झलते हैं ॥ २२ ॥

टिप्पणी—सुवर्णशैलात् = सुवर्णस्य शैलः, तस्मात् (ष० त०)। अवतीर्य = अव + तॄ + क्त्वा (ल्यप्)। स्वर्वाहिनीवारिकणाऽवकीर्णैः = वारिणः कणाः (ष० त०), स्वर्वाहिन्या वारिकणाः (ष० त०), तैः अवकीर्णाः, तैः (तृ० त०)। चामरवद्धसख्यैः=वद्धं सख्यं यैस्ते (वहु०), चामरेषु वद्धसख्याः, तैः (स० त०) स्मरकेलिकाले=स्मरस्य केलिः (ष० त०), तस्य कालः, तस्मिन् (ष. त.) ॥ २२ ॥

क्रियेत चेत्साधुविभक्तिचिन्ता, व्यक्तिस्तदा सा प्रथमाऽभिधेया।
या स्वौजसां साधयितुं विलासैस्तावत्क्षमानामपदं बहु स्यात् ॥ २३ ॥

अन्वयः—साधुविभक्तिचिन्ता क्रियेत चेत्, सा व्यक्तिः प्रथमाऽभिधेया। या स्वौजसां विलासैः तावत् वहु अनामपदम्, पक्षान्तरे—नामपदं साधयितुं क्षमा स्यात् ॥ २३ ॥

व्याख्या—साधुविभक्तिचिन्ता = सज्जनविभागविचारः, क्रियेत चेत् = विधीयेत यदि, सा = नलनामधेया, व्यक्तिः = मूर्तिः, प्रथमाऽभिधेया = प्रथमं परिगणनीया। या = नलनामधेया व्यक्तिः, स्वौजसां = निजतेजसां, विलासैः = विभवैः, वहु = प्रचुरम्, अनामपदं = परराष्ट्रं, साधयितुं = स्वायत्तीकर्तुम्, क्षमा = समर्था, स्यात् = भवेत्।

पक्षान्तरे—साधुविभक्तिचिन्ता = सप्तविभक्तिविचारः, क्रियेत चेत् = विधीयेत यदि, सा = प्रसिद्धा, प्रथमा = प्रथमाऽऽख्या, व्यक्तिः = विभक्तिः, अभिधेया = कथनीया, या=प्रथमा विभक्तिः, स्वौजसां = सु औ जस् इत्येतेषां प्रत्ययानां, विलासैः = विस्तारैः, तावत्, बहु = अनेकं, नामपदं = सुबन्तपदं, राम इत्यादिकं पदमिति भावः। साधयितुं = निष्पादयितुं, क्षमा = समर्था ॥ २३ ॥

अनुवादः—सज्जनोंके विभागका विचार किया जायगा तो "नल" नामवाले व्यक्तिको पहले परिगणन करना चाहिए। जो अपने प्रतापके विभवोंसे प्रचुर शत्रुओंके राष्ट्रको वशमें करनेके लिए समर्थ होगा।

दूसरे पक्षमें—सात विभक्तियोंका विचार किया जायगा तो उस प्रथम

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विभक्तिको पहले कहना चाहिए। जो (प्रथमा विभक्ति) सु औ जस् इन प्रत्ययोंके विस्तारोंसे बहुतसे सुवन्तपदको सिद्ध करनेके लिए समर्थ होगी ॥ २३ ॥

टिप्पणी—साधुविभक्तिचिन्ता = साधूनां विभक्तिः (विभागः) (ष० त०), तस्याश्चिन्ता (ष० त०)। विभक्तिपक्षमें—विभक्तीनां चिन्ता (ष० त०), साधु (यथा तथा) विभक्तिचिन्ता (सुप्सुपा०)। क्रियेत = कृ + लिङ् (कर्ममें) + त। प्रथमाऽभिधेया = प्रथमम् (यथा तथा) अभिधेया (सुप्सुपा०)। विभक्तिपक्षमें—प्रथमा = "प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाण-वचनमात्रे प्रथमा" इससे होनेवाली प्रथमा विभक्ति। स्वौजसां = स्वस्य ओजांसि (तेजांसि), तेषाम् (ष० त०)। विभक्तिपक्षमें—सुश्च औश्च जश्च स्वौजसः, तेषाम् (द्वन्द्वः)। अनामपदम् = नमनं नामः, 'नम्' धातुसे भावमें घञ्। अविद्यमानः नामः येषां ते अनामाः (नञ्बहु०), न झुकनेवाले अर्थात् शत्रु। अनामानां पदं (ष० त०) तत्। विभक्तिपक्षमें—नामपदं = नाम च तत्पदं, तत् (क० धा०), निरुक्तके मतके अनुसार नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चार प्रकारके पदोंमें "सत्त्वप्रधानानि नामानि" अर्थात् जिनमें सत्त्व (द्रव्य) प्रधान होते हैं उन्हें "नाम" कहते हैं, अर्थात् सुवन्त पद। छः कारकोंमें "व्यापाराश्रयः कर्ता" व्यापारका आश्रय कर्ता होता है, अतः वही प्रधान होता है, उसमें प्रथमा विभक्तिका प्रयोग होता है, इसलिए अन्य विभक्तियोंमें उसीकी प्रधानता और प्राथम्य होता है यह तात्पर्य है। इस पद्यमें प्रस्तुत अर्थ नल व्यक्तिका बोधन कर अभिधावृत्तिका विराम होनेके अनन्तर अन्वयकी अनुपपत्ति न होनेसे लक्षणाकी अप्रसक्तिसे तात्पर्यवृत्तिके पदार्थाऽन्वयका बोधन कर निवृत्त होनेपर अप्रस्तुत प्रथमा विभक्तिकी प्रतीति उपमाध्वनिसे हो जाती है ॥ २३ ॥

राजा स यज्वा विबुधव्रजत्रा कृत्वाऽध्वराऽऽज्योपमयेव राज्यम्।
भुङ्क्ते श्रितश्रोत्रियसात्कृतश्रीः पूर्वं त्वहो ! शेषमशेषमन्त्यम् ॥ २४ ॥

अन्वयः—यज्वा श्रितश्रोत्रियसात्कृतश्रीः स राजा अध्वराज्योपमया इव राज्यं विबुधव्रजत्रा कृत्वा पूर्वं शेषम्, अन्त्यं तु अशेषं भुङ्क्ते अहो ! ॥ २४ ॥

व्याख्या—यज्वा = विधिना इष्टवान्, श्रितश्रोत्रियसात्कृतश्रीः = आश्रितच्छान्दसाधीनकृतसम्पत्तिः, सः = पूर्वोक्तः, राजा = भूपतिः, नल इत्यर्थः। अध्वराज्योपमया इव = यज्ञघृतसादृश्येन इव, राज्यं = राष्ट्रं, विबुधव्रजत्रा = देवविद्वदधीनं, कृत्वा = विधाय, पूर्वं = पूर्वनिर्दिष्टम् अध्वराज्यं, शेषं = हुतशेषं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भुङ्क्ते, अन्त्यं तु = पश्चान्निर्दिष्टं राज्यं तु, अशेषम् = अखण्डं, भुङ्क्ते = उपभुङ्क्ते, अहो = आश्चर्यम् ॥ २४ ॥

अनुवादः—विधिपूर्वक यज्ञ करनेवाले और आश्रित वैदिकोंको सम्पत्ति देनेवाले वे राजा (नल) यज्ञके घृतके समान ही राज्यको देवता और विद्वानों-का अधीन कर पूर्वोक्त यज्ञके घृतका शेष भाग (हवनके अनन्तर अवशिष्ट भाग-का उपभोग करते हैं। पीछे कहे गये राज्यके अशेष (अखण्ड) भागका उपभोग करते हैं, आश्चर्य है ! ॥ २४ ॥

टिप्पणी—यज्वा = यज् + ङ्वनिप् । श्रितश्रोत्रियसात्कृतश्रीः = छन्दोऽ-धीयत इति श्रोत्रियाः, "श्रोत्रियंश्छन्दोऽधीते" इससे निपात । "जन्मना ब्राह्मणो ज्ञेयः संस्काराद् द्विज उच्यते । विद्यया याति विप्रत्वं त्रिभिः श्रोत्रिय उच्यते" । इस उक्तिके अनुसार जिसमें जन्म, संस्कार, विद्याका जुटाव होता है उसे "श्रोत्रिय" कहते हैं। श्रिताश्च ते श्रोत्रियाः (क० धा०) श्रितश्रोत्रियाऽधीनी-कृता श्रितश्रोत्रियसात्कृता "तदधीनवचने" इस सूत्रसे "कृ" के योगमें स्राति-प्रत्यय । श्रितश्रोत्रियसात्कृता श्रीर्येन सः (बहु०)। "संपत्तिः श्रीश्च लक्ष्मीश्च" इत्यमरः । अध्वराज्योपमया = अध्वरेषु आज्यम् (स० त०)। अध्वराज्यस्य उपमा, तया (ष० त०) विबुधव्रजत्रा = विबुधानां व्रजः (ष० त०)। विबुधव्रजाधीनं देयं कृत्वा ऐसा विग्रह कर "देये त्रा च" इससे विबुधव्रजसे त्रा प्रत्यय । "तद्धितश्चाऽसर्वविभक्तिः" इससे अव्ययभाव । अशेषं = न शेषम्, तत् (नञ्०)। भुङ्क्ते="भुज पालनाऽभ्यवहारयोः" इस धातुसे "भुजोऽनवने" इस सूत्रसे आत्मनेपद, लट् + त । इस पद्यमें विरोधाऽभास अलङ्कार है ॥ २४ ॥

दारिद्र्यदारिद्रविणौघवर्षैरमोघमेघव्रतमर्थिसार्थे ।
सन्तुष्टमिष्टानि तमिष्टदेवं नाथन्ति के नाम न लोकनाथम् ? ॥ २५ ॥

अन्वयः—दारिद्र्यदारिद्रविणौघवर्षैः अर्थिसार्थे अमोघमेघव्रतं सन्तुष्टम् इष्टदेवं लोकनाथं तं के नाम इष्टानि न नाथन्ति ? ॥ २५ ॥

व्याख्या—दारिद्र्यदारिद्रविणौघवर्षैः = दैन्यनिवर्तकधनराशिवृष्टिभिः, अर्थि-सार्थे = याचकसमूहे विषये, अमोघमेघव्रतम् = सफलबलाहकव्रतं, सन्तुष्टं = दानहृष्टम्, इष्टदेवं = यज्ञाराधितसुरं, लोकनाथं = राजानं, तं = नलं, के नाम= जनाः, इष्टानि = अभीष्टवस्तूनि, न नाथन्ति = नो याचन्ते, सर्वेऽपि याचन्त एवेति भावः ॥ २५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—दरिद्रताको नष्ट करनेवाले धनसमूहकी वृष्टियोंसे याचकसमूहमें सफल मेघके समान व्रत करनेवाले सन्तुष्ट, और यज्ञसे देवताओंकी आराधना करनेवाले महाराज नलसे कौन जन अभीष्ट पदार्थोंकी याचना नहीं करते हैं ? ॥ २५ ॥

टिप्पणी—दारिद्र्यदारिद्रविणौघवर्षैः = दारिद्र्यं दारयतीति दारिद्र्यदारी, दारिद्र्य + दॄ + णिच् + णिनिः । द्रविणानाम् ओघः (ष० त०)। दारिद्र्यदारी चाऽसौ द्रविणौघः (क० धा०) । तस्य वर्षाणि, तैः (ष० त०) । अर्थिसार्थे = अर्थिनां सार्थः, तस्मिन् (ष० त०) । अमोघमेघव्रतम् = न मोघम् अमोघम् (नञ्०) । मेघस्य व्रतम् (ष० त०) । अमोघं मेघव्रतं यस्य स, तम् (बहु०) । इष्टदेवम् = इष्टा देवा येन सः, तम् (बहु०) । लोकनाथं = लोकानां नाथः, तम् (ष० त०) । नाथन्ति = "नाथृ (नाधृ) याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु" इस धातुसे लट् + झि । याचनाऽर्थक नाथ् धातु दुहादिगणमें पढ़े जानेसे द्विकर्मक है । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ २५ ॥

अस्मत्किल श्रोत्रसुधां विधाय रम्भा चिरं भामतुलां नलस्य ।
तत्राऽनुरक्ता तमनाप्य भेजे तन्नामगन्धान्नलकूबरं सा ॥ २६ ॥

अन्वयः—सा रम्भा नलस्य अतुलां भाम् अस्मत् चिरं श्रोत्रसुधां विधाय तत्र अनुरक्ता (सती) तम् अनाप्य तन्नामगन्धात् नलकूबरं भेजे ॥ २६ ॥

व्याख्या—सा = प्रसिद्धा, रम्भा = देवाङ्गना, नलस्य = नैषधस्य, अतुलाम् = अनुपमां, भां = सौन्दर्यम्, अस्मत् = मत्तः, चिरं = बहुकालपर्यन्तं, श्रोत्रसुधां = कर्णाऽमृतं, विधाय=कृत्वा, अनुरागात् श्रुत्वेति भावः । तत्र = तस्मिन् नले, अनुरक्ता = अनुरागयुक्ता (सती), तम् = नलम्, अनाप्य = अप्राप्य, तन्नामगन्धात् = नलसंज्ञाऽक्षरलेशात्, नलकूबरं = कुबेरपुत्रं, भेजे = सिषेवे ॥ २६ ॥

अनुवादः—रम्भा नामकी अप्सराने नलके अनुपम सौन्दर्यको मुझसे बहुत समयतक कानोंके अमृत बनाकर (रससे सुनकर) उनमें अनुराग कर उन्हें न पानेसे नलके नामके लेश (एक खण्ड) से कुबेरके पुत्र नलकूबरका आश्रय लिया ॥ २६ ॥

टिप्पणी—सा = यहाँ तद् शब्दके प्रसिद्ध अर्थमें होनेसे यद् शब्दके न रहनेपर भी विधेयाऽविमर्श दोष नहीं हुआ । अतुलाम् = अविद्यमाना तुला (उपमा) यस्याः सा अतुला, ताम् (नञ्बहु०) । अस्मत् = अस्मद् + ङसि (भ्यस्) । श्रोत्रसुधां = श्रोत्रयोः सुधा, ताम् (ष० त०) । यह पद "भाम्" इस पदका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विधेय है। विधाय = वि + धा + क्त्वा (ल्यप्)। अनुरक्ता = अनु + रञ्ज + क्त + टाप्। अनाप्य = न आप्य (नञ्०), 'आप्य' यहाँपर आङ्—उपसर्गपूर्वक "आप्लृ व्याप्तौ" धातुसे क्त्वा, उसके स्थानमें ल्यप्। तन्नामगन्धात् = तस्य नाम (ष० त०), तस्य गन्धः, तस्मात् (ष० त०), हेतुमें पञ्चमी। "गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोः।" इति विश्वः। भेजे = भज + लिट् + त ॥ २६ ॥

स्वर्लोकमस्माभिरितः प्रयातैः केलीषु तद्गानगुणान्निपीय।
हा ! हेति गायन्यदशोचि तेन नाम्नैव हा हा ! हरिगायनोऽभूत् ॥ २७ ॥

अन्वयः—केलीषु तद्गानगुणान् निपीय इतः स्वर्लोकं प्रयातैः अस्माभिः हरिगायनः गायन् यत् "हा ! हा !" इति अशोचि, ततः नाम्ना हाहा अभूत् ॥ २७ ॥

व्याख्या—केलीषु = विनोदगोष्ठीषु, तद्गानगुणान् = नलगीतमाधुर्यादिगुणान्, निपीय = नितरां पीत्वा, सादरं श्रुत्वेति भावः। इतः = अस्माल्लोकात्, भूलोकादित्यर्थः। स्वर्लोकं = सुरलोकं, प्रयातैः = प्राप्तैः, अस्माभिः = हंसैः (कर्तृभिः), हरिगायनः = इन्द्रगायकः, गायन् = गानं कुर्वन् सन्, यत् = यस्मात् कारणात्, हा हा इति अशोचि = हा हा इति शोकविषयीकृतः, नलगानाऽपेक्षया निकृष्टगानत्वादिति शेषः। ततः =तस्मात्कारणात्, नाम्ना = संज्ञया, हाहा = हाहा इत्याकारकः, अभूत् = अभवत् ॥ २७ ॥

अनुवादः—विनोदगोष्ठियोंमें नलके गानाके गुणोंको आदरपूर्वक सुनकर भूलोकसे स्वर्गमें गये हुए हम लोगोंने गाते हुए इन्द्रके गवैयेके प्रति हा ! हा ! ! कहकर जो शोक किया उससे वे 'हाहा' नामवाले हो गये ॥ २७ ॥

टिप्पणी—तद्गानगुणान् = तस्य गानं (ष० त०), "गीतं गानमिमे समे" इत्यमरः। तद्गानस्य गुणाः, तान् (ष० त०), निपीय = नि + पी + क्त्वा (ल्यप्)। हरिगायनः = गायतीति गायनः "गै शब्दे" धातुसे "ण्युट् च" इस सूत्रसे ण्युट् प्रत्यय। हरेर्गायनः (ष० त०)। गायन् = गायतीति, गै + लट् (शतृ) + सुः। अशोचि="शुच शोके" इस धातुसे लुङ् (कर्ममें) + त। नाम्ना = "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्" इससे तृतीया। हाहाः = "हाहा हूहूश्चैवमाद्या गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम्।" इत्यमरः। इस पद्यमें "हा हा" पदका निर्वचन होनेसे पीयूषवर्ष जयदेवके चन्द्रालोकके अनुसार "निरुक्त" नामका काव्यलक्षण है जैसे कि—

"निरुक्तं स्यान्निर्वचनं नाम्नः सत्यं तथाऽनृतम्।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इस पद्यमें इन्द्रके गवैयेके शोकनिमित्तका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धका वर्णन होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है, उससे गन्धर्वके गानसे भी नलके गानका उत्कर्षरूप वस्तुकी ध्वनि है ॥ २७ ॥

शृण्वन्सदारस्तदुदारभावं हृष्यन्मुहुर्लोम पुलोमजायाः ।
पुण्येन नालोकत नाकपालः प्रमोदबाष्पाऽऽवृतनेत्रमालः ॥ २८ ॥

अन्वयः—नाकपालः सदारः तदुदारभावं शृण्वन् प्रमोदबाष्पावृतनेत्रमालः (सन्) पुलोमजायाः मुहुः हृष्यत् लोम पुण्येन न आलोकत ॥ २८ ॥

व्याख्या—नाकपालः=स्वर्गाऽधिपः, इन्द्र इत्यर्थः । सदारः=सपत्नीकः, तदुदारभावं=नलौदार्यं, शृण्वन्=आकर्णयन्, प्रमोदबाष्पाऽऽवृतनेत्रमालः = आनन्दाबाच्छादितनयनसमूहः सन्, पुलोमजायाः = इन्द्राण्याः, मुहुः = वारं वारं, हृष्यत् = उल्लसत्, नलाऽनुरागादिति शेषः । लोम = रोम, रोमाञ्चमिति भावः, पुण्येन = सुकृतेन, इन्द्राण्या भाग्येनेति भावः । न आलोकत = न अपश्यत्, अन्यथा शच्या मानसव्यभिचारं जानीयादिति भावः ॥ २८ ॥

अनुवादः—देवराज इन्द्रने पत्नीके साथ नलकी उदारताको सुनकर हर्षकी आंसुओंसे नेत्रोंकी पङ्क्ति आच्छादित होनेसे इन्द्राणीके वारंवार होनेवाले रोमाञ्चको इन्द्राणीके पुण्यसे नहीं देखा ॥ २८ ॥

टिप्पणी—नाकपालः = नाकं पालयतीति (नाक+पाल+अच्) । सदारः = दारैः सहितः (तुल्ययोग०) । तदुदारभावम् = उदारश्चाऽसौ भावः (क० धा०) । तस्य उदारभावः, तम् (ष० त०) । शृण्वन् = शृणोतीति श्रु+लट् (शतृ)+सुः । प्रमोदबाष्पाऽऽवृतनेत्रमालः = प्रमोदस्य बाष्पाणि (ष० त०) तैः अता (तृ० त०) । नेत्राणां माला (ष० त०) इन्द्रके हजार नेत्र थे, इसलिए "माला" कहना ठीक है । प्रमोदबाष्पाऽऽवृता नेत्रमाला यस्य सः (बहु०) । पुलोमजायाः=पुलोम्नो जाता, तस्याः पुलोमन्+जन्+ड+टाप्+ङस् । आलोकत = आङ् + लोक+लङ्+त । इस पद्यमें भावोदय अलङ्कार है ॥ २८ ॥

साऽपीश्वरे शृण्वति तद्गुणौघान् प्रसह्य चेतो हरतोऽर्धशम्भुः ।
अभूदपर्णाऽङ्गुलिरुद्धकर्णा कदा न कण्डूयनकैतवेन ? ॥ २९ ॥

अन्वयः—ईश्वरे प्रसह्य चेतो हरतो तद्गुणौघान् शृण्वति (सति) सा अर्धशम्भुः अपर्णा कदा कण्डूयनकैतवेन अङ्गुलिरुद्धकर्णा न अभूत् ? ॥ २९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—ईश्वरे = शङ्करे, प्रसह्य=बलात्कारेण, चेतः=चित्तं, हरतः= आकर्षतः, तद्गुणौघान् = नलगुणसमूहान्, शृण्वति = आकर्णयति सति, सा= प्रसिद्धा, अर्धशम्भुः = शम्भोरर्धाऽङ्गभूता, अपर्णा = पार्वती, कदा = कस्मि-न्काले, कण्डूयनकैतवेन = कण्डूनिवारणच्छलेन, अङ्गुलिरुद्धकर्णा = करशाखा-पिहितश्रवणा, न अभूत् = न अभवत्, अभूदेवेत्यर्थः । अन्यथा चित्तचलना-दिति भावः ॥ २९ ॥

अनुवादः—जबर्दस्तीसे चित्तको आकृष्ट करनेवाले नलके गुणोंको महादेव-जीके सुननेपर शम्भुकी अर्धाङ्गिनी पार्वतीने कब खुजलीके बहानेसे उँगलीसे कानको बन्द नहीं किया ? ॥ २९ ॥

टिप्पणी—हरतः = हरन्तीति हरन्तः, तान्, हृञ्+लट्+(शतृ)+शस् । तद्गुणौघान् = गुणानाम् ओघाः (ष० त०) । तस्य गुणौघाः तान् (ष० त०), अर्धशम्भुः = अर्धं (शरीराऽर्धम्) शम्भोः (एकदेशि०), अपर्णा = अविद्यमानं पर्णं यस्याः सा (नञ् बहु०) । ऋषि मुनियोंने तपस्यामें वृक्षका पर्ण (पत्ता) खाया था, पार्वतीने उसे भी छोड़कर अनशन कर तपस्या की थी, अतएव उनका नाम 'अपर्णा' पड़ गया इस बातको कविकुलगुरु कालिदासने कुमार-संभवमें कैसे व्यक्त किया है—

"स्वयंविशीर्णद्रुमपर्णवृत्तिता परा हि काष्ठा तपसस्तया पुनः ।
तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः ॥" ५–२८

कण्डूयनकैतवेन = कण्डूयनस्य कैतवं, तेन (ष० त०) अङ्गुलिरुद्धकर्णा= रुद्धौ कर्णौ यया सा (बहु०), अङ्गुलिभ्यां रुद्धकर्णा (तृ० त०) । इस पद्यमें व्याजोक्ति अलङ्कार है ॥ २९ ॥

अलं सजन्धर्मविधौ विधाता रुणद्धि मौनस्य मिषेण वाणीम् ।
तत्कण्ठमालिङ्ग्य रसस्य तृप्तां न वेद तां वेदजडः स वक्राम् ॥ ३० ॥

अन्वयः—विधाता धर्मविधौ अलं सजन् वाणीं मौनस्य मिषेण रुणद्धि । (किन्तु) वेदजडः स ताम् तत्कण्ठम् आलिङ्ग्य रसस्य तृप्तां वक्रां न वेद ॥३०॥

व्याख्या—विधाता = ब्रह्मा, धर्मविधौ = धर्माचरणे, अलम् = अत्यन्तं, सजन् = आसक्तो भवन्, वाणीं = स्वपत्नीं सरस्वतीं, वर्णात्मिकां वाचं च, मौनस्य = वाग्यमनव्रतस्य, मिषेण = कैतवेन, रुणद्धि = निवारयति, नलकथा-प्रङ्गादिति शेषः, तस्या उभय्या अपि नलाऽऽसक्तिभयादिति भावः । (किन्तु) वेदजडः=श्रुतिजडः, वेदपाठमात्रनिरतत्वाद्विचारहीन इति भावः, सः=विधाता

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तां = वाणीं, स्वपत्नीं वाचं चेत्युभयीमपि, तत्कण्ठं = नलगलम्, आलिङ्ग्य= आश्लिष्य, रसस्य तृप्तां=अनुरागणसन्तुष्टां शृङ्गारादिरससन्तुष्टां च। अतएव वक्रां = प्रतिकूलां, वक्रोक्त्यलङ्कारयुक्तां च, न वेद = न जानाति। स्त्रीणां रक्षा दुःशकेति भावः ॥ ३० ॥

अनुवादः—ब्रह्माजी धर्मके आचरणमें अत्यन्त आसक्त होते हुए वाणी-(अपनी पत्नी सरस्वती अथवा वाणी) को मौनके बहानेसे (नलके कथा-प्रसङ्गसे) रोकते हैं। किन्तु वेदपाठमात्र करते रहनेसे जड वे (ब्रह्माजी) अपनी पत्नी सरस्वतीको और वाणीको नलके कण्ठको आलिङ्गन कर अनुरागसे अथवा शृङ्गार आदि रससे सन्तुष्ट अतएव वक्रा (प्रतिकूल अथवा वक्रोक्ति अलङ्कारसे युक्त) नहीं जानते हैं ॥ ३० ॥

टिप्पणी—धर्मविधौ = धर्मस्य विधिः, तस्मिन् (ष० त०)। सजन् = सजतीति "षञ्ज सङ्गे" धातुसे लट् (शतृ)+सुः। रुणद्धि = रुध् + लट्+ तिप्। वेदजडः = वेदेन जडः (तृ० त०)। तत्कण्ठं = तस्य कण्ठः, तम् (ष० त०)। आलिङ्ग्य+आङ्+लिगि+क्त्वा (ल्यप्)। रसस्य = करणत्वकी विवक्षा न करके सम्बन्धविवक्षामें षष्ठी। वेद = विद+लट्+तिप्। इस पद्यमें प्रस्तुत वाणी देवी (सरस्वती) के कथनसे अप्रस्तुत वर्णात्मक वाणी-की प्रतीति होनेसे समासोक्ति अलङ्कार है ॥ ३० ॥

श्रियस्तवालिङ्गनभूर्न भूता व्रतक्षतिः काऽपि पतिव्रतायाः।
समस्तभूतात्मतया न भूतं तद्भर्तुरीर्ष्याकलुषाऽणुनापि ॥ ३१ ॥

अन्वयः—पतिव्रतायाः श्रियः तद्भर्तुः समस्तभूतात्मतया तदालिङ्गनभूः काऽपि व्रतक्षतिः न अभूत्। (अत एव) तद्भर्तुः ईर्ष्याकलुषाऽणुना अपि न भूतम् ॥ ३१ ॥

व्याख्या—पतिव्रतायाः = सत्याः, श्रियः = लक्ष्म्याः, तद्भर्तुः = लक्ष्मीपतेः, विष्णोरित्यर्थः। समस्तभूतात्मतया = सर्वभूतस्वरूपत्वेन, तदालिङ्गनभूः = नलाऽऽश्लेषभवा, काऽपि = काचिदपि, व्रतक्षतिः = पातिव्रत्यभङ्गः, न अभूत्=न अजायत, नलस्याऽपि विष्णुरूपत्वेनेति भावः। अत एव तद्भर्तुः = लक्ष्मीपतेः विष्णोः, ईर्ष्याकलुषाऽणुना अपि = असहिष्णुताकालुष्यलेशेन अपि, न भूतम् = न अभावि ॥ ३१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—पतिव्रता लक्ष्मीका, उनके पति विष्णुके समस्त प्राणियोंके स्वरूप होनेसे नलके आलिङ्गनसे होनेवाला कुछ भी पातिव्रत्यभङ्ग नहीं हुआ, इसीसे उनके पति विष्णुको ईर्ष्याके कालुष्यका लेश भी नहीं हुआ ।। ३१ ।।

टिप्पणी—पतिव्रतायाः = पत्यौ व्रतं यस्याः सा पतिव्रता, तस्याः (व्यधि० बहु०) । तद्भर्तुः = तस्या भर्ता, तस्य (ष० त०) । "याजकादिभिश्च" इससे समास । समस्तभूतात्मतया=समस्ताश्च ते भूताः (क०धा०) । आत्मनो भाव आत्मता, आत्मन्+तल्+टाप् । समस्तभूतानाम् आत्मता, तया (ष० त०), तदालिङ्गनभूः = तस्य (नलस्य) आलिङ्गनम् (ष० त०), तदालिङ्गनात् भवतीति, तदालिङ्गन + भू + क्विप् (उपपद०) + सुः । व्रतक्षतिः = व्रतस्य क्षतिः (ष० त०), तद्भर्तुः = तस्या भर्ता, तस्य, यहाँपर पत्यर्थक भर्तृशब्द होनेसे 'याजकादिभिश्च' इस सूत्रसे षष्ठीसमास । ईर्ष्याकलुषाऽणुना = ईर्ष्यया कलुषं (तृ० त०) तस्य अणुः, तेन (ष० त०) । भूतं = भू धातुसे "नपुंसके भावे क्तः" इससे क्त प्रत्यय । यहाँपर २८—३१ पद्योंतक पुलोमजा आदियोंके चित्तचाञ्चल्यकी उक्तिका नलके सौन्दर्यमें तात्पर्य होनेसे औचित्यभङ्ग नहीं समझना चाहिए । इस पद्यमें पदार्थहेतुक काव्यलिङ्ग अलङ्कार है ।। ३१ ।।

धिक् ! तं विधेः पाणिमजातलज्जं निर्माति यः पर्वणि पूर्णमिन्दुम् ।
मन्ये स विज्ञः स्मृततन्मुखश्रीः कृताऽर्धमौज्झद्भवमूर्ध्नि यस्तम् ।। ३२ ।।

अन्वयः—स्मृततन्मुखश्रीः (अपि) पर्वणि यः पूर्णम् इन्दुं निर्माति, तम् अजातलज्जं विधेः पाणिं धिक् ! यो भवमूर्ध्नि कृताऽर्धम् तम् औज्झत् सः विज्ञः (इति) मन्ये ।। ३२ ।।

व्याख्या—(हे भैमि !) स्मृततन्मुखश्रीः (अपि) = चिन्तितनलाननशोभः (अपि), पर्वणि = पूर्णिमायां, यः = विधिपाणिः, पूर्णं = षोडशकलोपेतम्, इन्दुं = चन्द्रमसं, निर्माति = रचयति, तं = तादृशम्, अजातलज्जं = निर्लज्जं, विधेः = ब्रह्मणः, पाणिं = करं, धिक् = तस्य निन्देति भावः । यः = विधिपाणिः, भवमूर्ध्नि = शिवशिरसि, कृताऽर्धं = रचितैकदेशं, तं = चन्द्रमसम्, औज्झत् = त्यक्तवान्, सः = विधिपाणिः, विज्ञः = अभिज्ञ, इति, मन्ये = चिन्तयामि, चन्द्रान्मनोहरतरं नलमुखमिति भावः ।। ३२ ।।

अनुवादः—नलकी मुखशोभाका स्मरण करके भी पूर्णिमामें जो (ब्रह्माका हाथ) पूर्ण चन्द्रका निर्माण करता है उस निर्लज्ज हाथको धिक्कार है ! जिस-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ब्रह्माजीके हाथ) ने शिवजीके शिरमें आधा बनाये गये चन्द्रमाको छोड़ दिया वह बुद्धिमान् है मैं ऐसा मानता हूँ ॥ ३२ ॥

टिप्पणी—स्मृततन्मुखश्रीः = तस्य मुखं (ष० त०), तस्य श्रीः (ष० त०) स्मृता तन्मुखश्रीर्येन सः (बहु०)। अजातलज्जं = न जाता अजाता (नञ्०)। अजाता लज्जा यस्य सः अजातलज्जस्तम् (बहु०)। पाणिम् = "धिक्" पदके योगमें "धिगुपर्यादिषु त्रिषु" इससे द्वितीया। भवमूर्ध्नि = भवस्य मूर्धा, तस्मिन् (ष० त०), कृताऽर्धं = कृतः अर्धः यस्य स कृताऽर्धः, तम् (बहु०)। भित्तं शकलखण्डे वा पुंस्यर्धः" इत्यमरः। औज्झत्=उज्झ+लङ्+त "आडजादीनाम्" इससे आट् आगम और "आटश्च" इससे वृद्धि। चन्द्रमासे नलका मुख अतीव सुन्दर है यह इस पद्यका तात्पर्य है। इस पद्यमें "प्रतीप" अलङ्कार है ॥ ३२ ॥

निलीयते ह्रीविधुरः स्वजैत्रं श्रुत्वा विधुस्तस्य मुखं मुखान्नः।
सूरे समुद्रस्य कदाऽपि पूरे कदाचिदभ्रभ्रमदभ्रगर्भे ॥ ३३ ॥

अन्वयः—विधुः स्वजैत्रं तस्य मुखं नः मुखात् श्रुत्वा ह्रीविधुरः (सन्) कदापि सूरे कदापि समुद्रस्य पूरे कदाचित् अभ्रमदभ्रगर्भे निलीयते ॥ ३३ ॥

व्याख्या—(हे भैमि !) विधुः=चन्द्रमाः, स्वजैत्रम्=निजजेतृ, तस्य=नलस्य, मुखम् = वदनं, नः = अस्माकं, मुखात् = वदनात्, श्रुत्वा = आकर्ण्य, ह्रीविधुरः = लज्जाविकलः (सन्), कदाऽपि = कदाचित्, सूरे = सूर्ये, दर्शे इति भावः। कदाऽपि = कदाचित्, समुद्रस्य = सागरस्य, पूरे = प्रवाहे, अस्तकाल इति भावः। कदाचित् = जातुचित्, अभ्रभ्रमदभ्रगर्भे = आकाशसञ्चरमाणमेघाऽभ्यन्तरे, निलीयते = अन्तर्वर्त्तते, कदाऽपि अग्रतः स्थातुं न उत्सहत इति भावः ॥ ३३ ॥

अनुवादः—चन्द्रमा अपनेको जीतनेवाले नलके मुखको हमारे मुखसे सुनकर लज्जासे पीडित होकर कभी सूर्यमें (अमावास्यामें), कभी समुद्रके प्रवाहमें (अस्तसमयमें) और कभी आकाशमें घूमते हुए मेघके भीतर छिप जाते हैं ॥ ३३ ॥

टिप्पणी—स्वजैत्रं = जयतीति जेतृ, जि+तृच्। जेतृ एव जैत्रम्, "प्रज्ञादिभ्यश्च" इस सूत्रसे जेतृ शब्दसे स्वार्थमें अण्। स्वस्य जैत्रं, तत् (ष० त०)। ह्रीविधुरः = ह्रिया विधुरः (तृ० त०)। अभ्रभ्रमदभ्रगर्भे = भ्रमच्च तत्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अभ्रम् (क० धा०), "अभ्रं मेघो वारिवाहः" इत्यमरः। अभ्रे भ्रमदभ्रम् (स० त०), "द्योदिवौ द्वे स्त्रियामभ्रम्" इत्यमरः। अभ्रभ्रमदभ्रस्य गर्भः, तस्मिन् (ष० त०)। निलीयते = नि + लीङ् + लट् + त। इस पद्यमें चन्द्रमाके स्वाभाविक सूर्य आदिमें प्रवेशमें पराजयके कारण लज्जासे छिपनेकी उत्प्रेक्षा होनेसे वाचक शब्दके अभावसे प्रतीयमाना उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ३३ ॥

संज्ञाप्य नः स्वध्वजभृत्यवर्गान् दैत्याऽरिरत्यब्जनलास्यनुत्यै ।
तत्सङ्कुचन्नाभिसरोजपीताद्धातुर्विलज्जं रमते रमायाम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः—दैत्याऽरिः स्वध्वजभृत्यवर्गान् नः अत्यब्जनलास्यनुत्यै संज्ञाप्य तत्संकुचन्नाभिसरोजपीतात् धातुः विलज्जं रमायां रमते ॥ ३४ ॥

व्याख्या—दैत्याऽरिः = विष्णुः, स्वध्वजभृत्यवर्गान् = गरुडाऽनुचरसमूहान्, नः = अस्मान्, अत्यब्जनलाऽऽस्यनुत्यै = कमलजेतृनलमुखस्तुत्यै, संज्ञाप्य = संज्ञया आज्ञाप्य, तत्सङ्कुचन्नाभिसरोजपीतात् = नलस्तुतिनिमीलन्नाभिकमलतिरोहितात्, धातुः = ब्रह्मणः, विलज्जं = लज्जाराहित्यं यथा तथा, रमायां = लक्ष्म्यां, रमते = क्रीडति ॥ ३४ ॥

अनुवादः—भगवान् विष्णु अपने वाहन गरुडके अनुचर हम लोगोंको कमलको जीतनेवाले नलके मुखकी स्तुतिके लिए इशारा कर नलकी स्तुतिसे सिकुड़े हुए नाभिकमलमें ब्रह्माजीके अदृश्य होनेसे लज्जारहित होकर लक्ष्मीमें रमण करते हैं ॥ ३४ ॥

टिप्पणी—दैत्याऽरिः = दैत्यानाम् अरिः (ष० त०)। स्वध्वजभृत्यवर्गान् = स्वस्य ध्वजः (ष० त०), गरुड इत्यर्थः। भृत्यानां वर्गाः (ष० त०)। स्वध्वजस्य भृत्यवर्गाः, तान् (ष० त०)। अत्यब्जनलाऽऽस्यनुत्यै = अब्जम् अतिक्रान्तम् अत्यब्जम् "अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया" इससे समास हुआ है। नलस्य आस्यम् (ष० त०)। अत्यब्जं च तत् नलास्यम् (क० धा०)। तस्य नुतिः, तस्यै (ष० त०)। "स्तवः स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः" इत्यमरः। संज्ञाप्य = सं + ज्ञा + णिच् + क्त्वा (ल्यप्)। तत्संकुचन्नाभिसरोजपीतात् = नाभौ सरोजं (स० त०)। संकुचच्च तत् नाभिसरोजम् (क० धा०)। तया (नुत्या) संकुचन्नाभिसरोजं (तृ० त०) तेन पीतः, तस्मात् (तृ० त०)। पीतका "तिरोहित" अर्थ लक्षणासे हुआ है। धातुः = अपादानमें पञ्चमी। विलज्जं = विगता लज्जा यस्मिन् (कर्मणि) (बहु०)। तद्यथा तथा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क्रि० वि०) । रमते = रम + लट् + त । इस पद्यमें विष्णुकी रमामें उस प्रकारसे रमणका सम्बन्ध न होनेपर भी सम्बन्धकी उक्ति होनेसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है ।। ३४ ।।

रेखाभिरास्ये गणनादिवाऽस्य द्वात्रिंशता दन्तमयीभिरन्तः ।
चतुर्दशाऽष्टादश चाऽत्र विद्या द्वेधाऽपि सन्तीति शशंस वेधाः ।। ३५ ।।

अन्वयः—अस्य आस्ये दन्तमयीभिः द्वात्रिंशता रेखाभिः गणनात् चतुर्दश अष्टादश च विद्या द्वेधा अपि अत्र सन्ति इति वेधाः शशंस इव ।। ३५ ।।

व्याख्या--अस्य = नलस्य, आस्ये = मुखे, दन्तमयीभिः = दशनरूपाभिः, द्वात्रिंशता = द्वात्रिंशत्संख्याभिः, रेखाभिः=लेखाभिः, गणनात् = संख्यानात्, चतुर्दश = चतुर्दशसंख्यकाः, अष्टादश=अष्टादशसंख्यकाः, विद्याः = वेदादिविद्याः, सन्ति = वर्तन्ते, इति = इत्थं, शशंस इव = कथयति स्म इव ।। ३५ ।।

अनुवादः—नलके मुखमें दन्तस्वरूप बत्तीस रेखाओंसे गिनती करनेसे चौदह और अठारह विद्याएँ दो प्रकारोंसे इनमें हैं ऐसा ब्रह्माजी मानों सूचना करते हैं ।। ३५ ।।

टिप्पणी--दन्तमयीभिः = दन्त + मयट् (स्वरूप अर्थमें) + ङीप् + भिस् । द्वात्रिंशता = द्वयधिका त्रिंशत् द्वात्रिंशत्, तथा (मध्यमपद०) । "द्वयष्टनः संख्यायामबहुव्रीह्यशीत्योः" इससे आत्व । "रेखाभिः" इसका विशेषण होनेपर भी "विंशत्याद्याः सदैकत्वे सर्वाः संख्येयसंख्ययोः ।" इस नियमके अनुसार एकवचन । चतुर्दश = चतस्रश्च दश च (द्वन्द्व०), अष्टादश = अष्टौ च दश च (द्वन्द्व०), पूर्व सूत्रसे आत्व ।

"पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राऽङ्गमिश्रिताः ।
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश ।। १-१-३ ।

याज्ञवल्क्यस्मृतिके इस वचनके अनुसार पुराण (ब्राह्म आदि) न्याय, मीमांसा, धर्मशास्त्र (मानव आदि), वेदाङ्ग ६ जैसे—शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष तथा ऋक्, यजु, साम और अथर्ववेद ४ वेद कुल चौदह विद्याएँ हुईं । इनमें—

"आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः ।
अर्थशास्त्रं चतुर्थं तु विद्या ह्यष्टादशैव तु ।।"

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विष्णुपुराणकी इस उक्तिके अनुसार आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र इन चार उपवेदोंका सङ्कलन करनेसे अठारह विद्याएँ हो गईं। मत-भेद दिखाया गया है। द्वेधा = द्वाभ्यां प्रकाराभ्याम्, द्वि शब्दसे "एधाच्च" इससे एधाच् प्रत्यय। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है॥ ३५॥

श्रियौ नरेन्द्रस्य निरीक्ष्य तस्य स्मराऽमरेन्द्रावपि न स्मरामः।
वासेन सम्यक् क्षमयोश्च तस्मिन् बुद्धौ न दध्मः खलु शेषबुद्धौ॥ ३६॥

अन्वयः—तस्य नरेन्द्रस्य श्रियौ निरीक्ष्य स्मरामरेन्द्रौ अपि न स्मरामः। तस्मिन् क्षमयोः सम्यक् वासेन बुद्धौ शेषबुद्धौ न दध्मः खलु॥ ३६॥

व्याख्या—तस्य = पूर्वोक्तस्य, नरेन्द्रस्य = राज्ञो नलस्य, श्रियौ = सौन्दर्य-सम्पत्ती, निरीक्ष्य = दृष्ट्वा, स्मरामरेन्द्रौ अपि=कामशक्रौ अपि, न स्मरामः = न चिन्तयामः, स्मरे सौन्दर्यमेव न सम्पत्तिः, इन्द्रे सम्पत्तिरेव न पुनः सौन्दर्यं, नले च द्विविधे अपि श्रियौ वर्तेते अतस्तस्य आधिक्यमिति भावः। एवं च तस्मिन् = नले, क्षमयोः = क्षितिक्षान्त्योः, सम्यक् = सुष्ठु, वासेन = स्थित्या, बुद्धौ = स्वमतौ, शेषबुद्धौ = अनन्तसुगतौ, न दध्मः = न धारयामः, खलु = निश्चयेन। शेषः पृथिवीमेव धारयति न क्षान्ति, बुद्धः क्षान्तिमेव धारयति न न पुनः क्षितिम्। नलस्तु उभे अपि धारयति अतस्तस्य प्रकर्षाऽतिशय इति भावः॥ ३६॥

अनुवादः—नलकी दोनों श्रियों (सौन्दर्य और सम्पत्ति) को देखकर काम-देव और इन्द्रका भी हम स्मरण नहीं करते हैं। उसी प्रकार उन (नल) में दोनों क्षमा (पृथिवी और सहनशीलता) ओंकी अच्छी तरह स्थिति होनेसे शेष और बुद्धको भी हम अपने मनमें धारण नहीं करते हैं॥ ३६॥

टिप्पणी—नरेन्द्रस्य = नराणाम् इन्द्रः, तस्य (ष० त०)। श्रियौ = श्रीश्च श्रीश्च श्रियौ, ते, "सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ" इससे एकशेष समास। "शोभासम्पत्तिपद्मासु लक्ष्मीः श्रीः" इति शाश्वतः। स्मरामरेन्द्रौ = अमरा-णाम् इन्द्रः (ष० त०)। स्मरश्च अमरेन्द्रश्च, तौ (द्वन्द्व०)। क्षमयोः = क्षमा च क्षमा च क्षमे, तयोः, पूर्वसूत्रसे एकशेष। "क्षितिक्षान्त्योः क्षमा" इत्यमरः। शेषबुद्धौ = शेषश्च बुद्धश्च, तौ (द्वन्द्व०)। दध्मः = धा + लट् + मस्। इस पद्यमें दोनों श्रियों और क्षमाओंका प्रकृत (प्रस्तुत) होनेसे केवल प्रकृतश्लेष है और सौन्दर्य आदि गुणोंसे स्मर आदियोंसे नलका आधिक्य होनेसे व्यतिरेक अलङ्कार है। यथासंख्यके साथ इनका सङ्कर है॥ ३६॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विना पतत्रं विनातातनूजैः, समीरणैरीक्षणलक्षणीयैः ।
मनोभिरासीदनणुप्रमाणैर्न निर्जिता दिक्कतमा तदश्वैः ॥ ३७ ॥

अन्वयः—पतत्रं विना विनतातनूजैः, ईक्षणलक्षणीयैः समीरणैः, अनणुप्रमाणैः मनोभिः, तदश्वैः कतमा दिक् न लङ्घिता आसीत् ॥ ३७ ॥

व्याख्या—पतत्रं = पक्षं, विना = अन्तरेण, विनतातनूजैः = गरुडैः, तदश्वैरित्यत्र सम्बन्धः, एवमन्यत्राऽपि । ईक्षणलक्षणीयैः = नयनदर्शनीयैः, समीरणैः = वायुभिः (तदश्वैः), अनणुप्रमाणैः = अणुपरिमाणरहितैः, महापरिमाणैरिति भावः । मनोभिः = अन्तःकरणैः, कतमा = का, दिक् = काष्ठा, न लङ्घिता = न अतिक्रान्ता, आसीत् = अभवत्, सर्वाऽपि दिक् लङ्घितैवासीदिति भावः ॥ ३७ ॥

अनुवादः—पङ्खके विना गरुड, नेत्रसे देखे जानेवाले वायु और अणुपरिमाणसे रहित अर्थात् महापरिमाणवाले नलके घोड़ोंने कौन सी दिशाका लङ्घन नहीं किया ?॥३७ ॥

टिप्पणी—विनतातनूजैः = विनतायास्तनूजाः, तैः (ष० त०) । ईक्षणलक्षणीयैः = ईक्षणाभ्यां लक्षणीयाः, तैः (तृ० त०) । अनणुप्रमाणैः = अणुः प्रमाणं येषां तानि (बहु०), न अणुप्रमाणानि, तैः (नञ्०) । तदश्वैः = तस्य अश्वाः, तैः (ष० त०) । कतमा = का एव, किम् शब्दसे "कतरकतमौ जातिपरिप्रश्ने" इस सूत्रसे डतमच् + टाप् । वेगवाले पदार्थोंमें गरुड, वायु और मन ये तीन प्रसिद्ध हैं, परन्तु नलके घोड़े विना पङ्खके गरुड हैं । वायुका रूप नहीं है, इसलिए केवल स्पर्शसे उसका प्रत्यक्ष होता है । परन्तु नलके घोड़े आँखोंसे देखे जानेवाले वायु हैं इसी तरह मन अणुप्रमाण है, परन्तु नलके घोड़े अणुप्रमाणसे भिन्न महाप्रमाणवाले मन हैं, इस प्रकार नलके घोड़ोंकी वेगशालिताका वर्णन किया गया है । नलके घोड़ोंमें गरुड, वायु और मनका आरोप होनेसे रूपक अलङ्कार है उसमें भी गरुडमें पतत्ररहितत्व, वायुमें ईक्षणलक्षणीयत्व और मनमें अणुप्रमाणरहितत्व अधिक विशेषण होनेसे अधिकारूढवैशिष्ट्यरूपक अलङ्कार है । जैसे कि—"अधिकारूढवैशिष्ट्यं रूपकं यत्तदेव तत् ।" १०—५० सा० द० ॥ ३७ ॥

संग्रामभूमीषु भवत्यरीणामस्त्रैर्नदीमातृकतां गतासु ।
तद्वाजिधाराविनाऽशनानां राजव्रजीयैरसुभिः सुभिक्षम् ॥ ३८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—अरीणाम् अस्रैः नदीमातृकतां गतासु संग्रामभूमीषु तद्वाणधारा-पवनाऽशनानां राजव्रजीयैः असुभिः सुभिक्षं भवति ॥ ३८ ॥

व्याख्या—अरीणां = शत्रूणां, नलस्येति शेषः । अस्रैः = रुधिरैः, नदीमातृकतां = नद्यम्बुसम्पन्नशस्याढ्यतां, गतासु = प्राप्तासु, संग्रामभूमीषु = युद्ध-भूमिषु, तद्वाणधारापवनाऽशनानां = नलशरपरम्परासर्पाणां, राजव्रजीयैः= नृपसमूहसम्बन्धिभिः, असुभिः = प्राणैः, सुभिक्षं = भिक्षाणां समृद्धिः, भवति= विद्यते ॥ ३८ ॥

अनुवादः—शत्रुओंके रुधिरोंसे नदीके जलसे शस्यसम्पन्न भावको प्राप्त युद्धभूमियोंमें नलके बाणधारारूप सर्पोंको राजाओंके प्राणोंसे सुभिक्ष हो जाता है ॥ ३८ ॥

टिप्पणी—नदीमातृकतां = नदी एव माता यासां ता नदीमातृकाः (बहु०), "नद्यृतश्च" इससे समासाऽन्त कप् प्रत्यय । नदीमातृकाणां भावो नदीमातृकता, ताम्, नदीमातृका + तल् + टाप् + अम् । "त्वतलोर्गुणवचनस्य" इससे पुंवद्भाव ।

"देशो नद्यम्बुवृष्ट्यम्बुसम्पन्नव्रीहिपालितः । स्यान्नदीमातृको देवमातृकश्च यथाक्रमम् ॥" इत्यमरः । संग्रामभूमीषु = संग्रामस्य भूम्यः, तासु (ष० त०) । तद्वाणधारापवनाऽशनानां=बाणानां धाराः (ष० त०), तस्य बाणधाराः (ष० त०), ता एव पवनाऽशनाः, तेषाम् (रूपक०) । राज-व्रजीयैः = राज्ञां व्रजाः (ष० त०), राजव्रजानाम् इमे राजव्रजीयाः, तैः "वृद्धाच्छः" इससे छ (ईय) प्रत्यय । सुभिक्षं = भिक्षाणां समृद्धिः, "अव्ययं विभक्ति०" इत्यादि सूत्रसे समृद्धिमें अव्ययीभाव । नदीके जलसे खेती किये जाने-वाले देश वा भूमिको "नदीमातृक" और वृष्टिके जलसे खेती किये जाने वाले देश वा भूमिको "देवमातृक" कहते हैं । नलके शत्रु राजाओंके रुधिरोंसे संग्राम-भूमियोंके नदीमातृक होनेपर नलके बाणधारारूप सर्पोंको नलके शत्रु राजाओं-की प्राणवायुसे सुभिक्ष होता है यह तात्पर्य है । इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ ३८ ॥

यशो यदस्याऽजनि संयुगेषु कण्डूलभावं भजता भुजेन ।
हेतोर्गुणादेव दिगापगालीकूलङ्कषत्वं व्यसनं तदीयम् ॥ ३९ ॥

अन्वयः—संयुगेषु कण्डूलभावं भजता अस्य भुजेन यत् यशः अजनि, तदीयं दिगापगालीकूलङ्कषत्वं व्यसनं हेतोः गुणात् एव ॥ ३९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—संयुगेषु = युद्धेषु, कण्डूलभावं = खर्जूं, भजता = प्राप्नुवता, अस्य = नलस्य, भुजेन = बाहुना, यत्, यशः = कीर्तिः, अजनि = जनितं, तदीयं = तद्यशःसम्बन्धि, दिगापगालीकूलङ्कषत्वं = काष्ठानदीराजितटघर्षकत्वं, व्यसनम् = आसक्तिः, हेतोः = कारणस्य, भुजस्य । गुणात् एव = कण्डूलत्वात् एव, आगतमिति शेषः ॥ ३९ ॥

अनुवादः—युद्धोंमें खुजलीको प्राप्त करनेवाली नलकी बाहुने जो यश पैदा किया, उस यशका दिशारूप नदियोंके तटको खुजलानेका व्यसन अपने कारण बाहुके गुणसे ही आ गया है ॥ ३९ ॥

टिप्पणी—कण्डूलभावं = कण्डूरस्याऽस्तीति कण्डूलः, कण्डू शब्दसे "सिध्मादिभ्यश्च" इस सूत्रसे लच् प्रत्यय अथवा कण्डूं लाति (आदत्ते) इति कण्डूलः, "आतोऽनुपसर्गे कः" इससे कप्रत्यय । "कण्डूः खर्जूश्च कण्डूया" इत्यमरः । कण्डूलस्य भावः, तम् (ष० त०)। अजनि = जन् + णिच् + लुङ् + त (कर्ममें), तदीयं = तस्य इदम्, तद् + छ (ईय)। दिगापगालीकूलङ्कषत्वं = दिश एव आपगाः (रूपक०) तासाम् आली (ष० त०)। कूलं कषतीति कूलङ्कषं, कूल-उपपदपूर्वक 'कष' धातुसे "सर्वकूलाऽभ्रकरीषेषु कषः" इस सूत्रसे खच् प्रत्यय और "अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम्" इससे मुम् आगम (उपपद०)। कूलङ्कषस्य भावः कूलङ्कषत्वं, कूलङ्कष + त्व । दिगापगाल्याः कूलङ्कषत्वम् (ष० त०)। नलका यश सब दिशाओंमें फैला हुआ है यह तात्पर्य है। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ३९ ॥

यदि त्रिलोकी गणनापरा स्यात्तस्याः समाप्तिर्यदि नायुषः स्यात् ।
पारेपरार्धं गणितं यदि स्याद्, गणेयनिःशेषगुणोऽपि स स्यात् ॥ ४० ॥

अन्वयः—त्रिलोकी गणनापरा स्यात् यदि, तस्या आयुषः समाप्तिः न स्यात् यदि, पारेपरार्धं गणितं स्यात यदि, (तदा) सः अपि गणेयनिःशेषगुणः स्यात् ॥ ४० ॥

व्याख्या—त्रिलोकी = त्रिभुवनं, गणनापरा = नलगुणसंख्यानतत्परा, स्यात् यदि = भवेत् चेत् । एवं च तस्याः = त्रिलोक्याः, आयुषः = जीवनकालस्य, समाप्तिः = समापनं, न स्यात् यदि = न भवेत् चेत्, पारेपरार्धं = परार्धात् परं, गणितं = संख्यातं, स्यात् यदि = भवेत् चेत् , (तदा = तर्हि) सः अपि= नलः अपि, गणेयनिःशेषगुणः = गणनीयसमस्तगुणः, स्यात् = भवेत्, न तु एवं, ततः नलगुणगणना कर्तुं नैव शक्येति भावः ॥ ४० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—यदि तीनों लोक नलके गुणोंको गिननेमें तत्पर हों, यदि उनकी आयुकी समाप्ति भी न हो और यदि परार्धसे ऊपर भी गणना हो सके तो नलके सब गुणोंकी गणना हो सकेगी ॥ ४० ॥

टिप्पणी—त्रिलोकी = त्रयाणां लोकानां समाहारः, "तद्धितार्थोत्तरपद-समाहारे च" इससे समास, उसकी "संख्यापूर्वो द्विगुः" इस सूत्रसे द्विगुसंज्ञा, "अकारान्तोत्तरपदो द्विगुः स्त्रियामिष्टः" इस नियमसे "द्विगोः" इस सूत्रसे ङीप् । गणनापरा = गणनायां परा (स० त०) । पारेपरार्धं = परार्द्धस्य पारे "पारे मध्ये षष्ठ्या वा" इससे अव्ययीभाव, निपातनसे एकारान्तत्व हुआ है । गणेयनिःशेषगुणः = गणयितुं योग्या गणेयाः, "गण संख्याने" धातुसे "गणेरेयः" इस उणादिसूत्रसे एय प्रत्यय । स्यात् = क्रियाऽतिपत्तिकी विवक्षा न होनेसे लृङ् नहीं हुआ, अतः संभावनामें लिङ् । इस पद्यमें गुणोंके गणेयत्वके सम्बन्धमें भी असम्बन्धकी उक्तिसे अतिशयोक्ति अलङ्कार है । चन्द्रालोककार जयदेवके मतके अनुसार 'संभावन' अलङ्कार है ॥ ४० ॥

> अवारितद्वारतया तिरश्चामन्तःपुरे तस्य निविश्य राज्ञः ।
> गतेषु रम्येष्वधिकं विशेषमध्यापयामः परमाणुमध्याः ॥ ४१ ॥

अन्वयः—तिरश्चाम् अवारितद्वारतया तस्य राज्ञः अन्तःपुरे निविश्य परमाणुमध्याः रम्येषु गतेषु अधिकं विशेषम् अध्यापयामः ॥ ४१ ॥

व्याख्या—अथ नलस्याऽन्तःपुरे हंसः स्वगतिं द्योतयति—अवारितेति । तिरश्चां = पक्षिणाम्, अवारितद्वारतया = अनिवारितप्रतीहारतया, अनिषिद्ध-प्रवेशत्वेनेति भावः । तस्य = पूर्वोक्तस्य, राज्ञः = नृपस्य, अन्तःपुरे = अवरोध, निविश्य = प्रविश्य, परमाणुमध्याः = अतिकृशोदरीः, नलाङ्गना इति भावः । रम्येषु = मनोहरेषु, गतेषु = गमनेषु विषये, अधिकम् = अपूर्वं, विशेषं = भेदम्, अध्यापयामः = अभ्यासयामः, वयमिति शेषः ॥ ४१ ॥

अनुवादः—पक्षियोंके प्रवेशमें रुकावट न होनेसे राजा नलके अन्तःपुरमें प्रवेश कर परमाणुसदृश (सूक्ष्म) कमरवाली उनकी स्त्रियोंको मनोहर गतियों-में अपूर्व भेदको हम सिखाते हैं ॥ ४१ ॥

टिप्पणी—अवारितद्वारतया = न वारितम् अवारितम् (नञ्०) । अवा-रितं द्वारं येषां ते अवारितद्वाराः (बहु०), तेषां भावः, तत्ता, तया अवारित-द्वार + तल् + टाप् + टा । निविश्य = नि + विश् + क्त्वा (ल्यप्) । परमाणु-मध्याः = परमश्चाऽसौ अणुः (क० धा०), परमाणुरिव मध्यो यासां, ताः

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(बहु०)। पदार्थोंमें सबसे सूक्ष्म पदार्थ परमाणु है यह नैयायिकोंका सिद्धान्त है। यहाँ सूक्ष्म अर्थमें तात्पर्य है। अध्यापयामः = अधि-उपसर्गपूर्वक "इङ् अध्ययने" धातुसे णिच् प्रत्यय होकर लट्+मस्। दुहादिगणमें पढ़े जानेसे द्विकर्मक ॥ ४१ ॥

पीयूषधाराऽनधराभिरन्तस्तासां रसोदन्वति मज्जयामः।
रम्भादिसौभाग्यरहःकथाभिः काव्येन काव्यं सृजताऽऽदृताभिः ॥ ४२ ॥

अन्वयः—पीयूषधाराऽनधराभिः काव्यं सृजता काव्येन आदृताभिः रम्भाऽऽदिसौभाग्यरहःकथाभिः तासाम् अन्तः रसोदन्वति मज्जयामः ॥ ४२ ॥

व्याख्या—(हे राजकुमारि !) पीयूषधाराऽनधराभिः = अमृतधाराऽन्यूनाभिः, अमृतसमानाभिरित्यर्थः। काव्यं = प्रबन्धविशेषं, सृजता = रचयित्रा, काव्येन=शुक्रेण, आदृताभिः = मानिताभिः, काव्ये प्रतिपादिताभिरिति भावः। रम्भादिसौभाग्यरहःकथाभिः = रम्भाऽऽदिवाल्लभ्यरहस्यवर्णनाभिः, तासां = नलाऽन्तःपुरस्त्रीणाम्, अन्तः = अन्तःकरणं, रसोदन्वति = शृङ्गाररससमुद्रे, मज्जयामः = अवगाहयामः ॥ ४२ ॥

अनुवादः— हे राजकुमारि ! अमृतधाराकी समान, काव्यकी रचना करनेवाले काव्य (शुक्र) से प्रतिपादित रम्भाआदि अप्सराओंके सौभाग्यकी रहस्यकथाओंसे नलके अन्तःपुरकी स्त्रियोंके अन्तःकरणको शृङ्गाररसके समुद्रमें हमलोग स्नान करा देते हैं ॥ ४२ ॥

टिप्पणी—पीयूषधाराऽनधराभिः = न अधरा अनधराः (नञ्०)। पीयूषस्य धाराः (ष० त०), ताभ्यः अनधराः ताभिः (पं० त०)। काव्यं = कवेर्भावः कर्म वा तत्, कवि शब्दसे "गुणवचनब्राह्मणादिभ्यः कर्म च "इस सूत्रसे ष्यञ् प्रत्यय। सृजता = सृजतीति सृजन्, तेन, सृज+लट् (शतृ)+टा। काव्येन = कवेरपत्यं पुमान् काव्यः, तेन, कवि शब्दसे "कुर्वादिभ्यो ण्यः" इससे ण्य प्रत्यय, "शुक्रो दैत्यगुरुः काव्य" इत्यमरः। आदृताभिः = आङ्+दृञ्+क्त+टाप्+भिस्। रम्भाऽऽदिसौभाग्यरहःकथाभिः = रम्भा आदिर्यासां ता रम्भादयः (बहु०), तासां सौभाग्यम् (पतिवाल्लभ्यम्) (ष० त०) तस्य रहःकथाः, ताभिः (ष० त०)। रसोदन्वति = रसस्य उदन्वान्, तस्मिन् (ष० त०)। मज्जयामः=(टु) मस्जो+णिच्+लट्+मस्। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ४२ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काभिर्न तत्राऽभिनवस्मराज्ञाविश्वासनिक्षेपवणिक् क्रियेऽहम् ।
जिह्रेति यन्नैव कुतोऽपि तिर्यक्, कश्चित्तिरश्चस्त्रपते न तेन ॥ ४३ ॥

अन्वयः—यत् तिर्यक् कुतः अपि न जिह्रेति एव । तिरश्चः अपि कश्चित् न त्रपते, तेन तत्र काभिः अहम् अभिनवस्मराज्ञाविश्वासनिक्षेपवणिक् न क्रिये ॥ ४३ ॥

व्याख्या—यत् = यस्मात्कारणात्, तिर्यक् = पक्षी, कुतः अपि = कस्मात् अपि जनात्, न जिह्रेति एव = न लज्जते एव, तिरश्चः अपि=पक्षिणः अपि, कश्चित् = कोऽपि जनः, न त्रपते = नो लज्जते । तेन = कारणेन, तत्र=अन्तः-पुरे, काभिः = स्त्रीभिः, अहं = तिर्यक्, हंसः । अभिनवस्मराज्ञाविश्वासनिक्षेप-वणिक् = अपूर्वरतिरहस्यवृत्तान्तविस्रम्भन्यासवाणिजकः, न क्रिये = न कृतः, अपि तु क्रिये एव । अहं नलस्य अन्तःपुरवर्तिनीनां सर्वासां रमणीनां विश्वास-कथापात्रमस्मीति भावः ॥ ४३ ॥

अनुवादः—जिस कारणसे कि पक्षी किसीसे भी नहीं ही लजाता है, और पक्षीसे भी कोई भी नहीं लजाता है; इस कारणसे नलके अन्तपुरमें कौन स्त्रियां मुझे अपूर्व रतिरहस्यके वृत्तान्तके विश्वासका धरोहर रखनेमें वणिक् नहीं बनाती हैं ? ॥ ४३ ॥

टिप्पणी—तिर्यक् = तिरः अञ्चतीति, तिरस्+अञ्च+क्विन्+सुः, "तिर-सस्तिर्यलोपे" इससे तिरस्के स्थानमें तिरि आदेश । कुतः = कस्मात् इति-किम् (कु)+ङसि (तस्), "भीत्राऽर्थानां भयहेतुः" इससे पञ्चमी । जिह्रेति = ह्री+लट्+तिप् । त्रपते = त्रपूष्+लट्+त । अभिनवस्मराज्ञा-विश्वासनिक्षेपवणिक् = स्मरस्य आज्ञा (ष० त०), अभिनवा चाऽसौ स्मराज्ञा (क० धा०), विश्वासस्य निक्षेपः (ष० त०), अभिनवस्मराज्ञाया विश्वासः (ष० त०), तस्य निक्षेपः (ष० त०) । तस्य वणिक् (ष० त०) । क्रिये = कृ+लट्+इट् (कर्ममें) । इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ ४३ ॥

वार्ता च साऽसत्यपि नाऽन्यमेति योगादरन्ध्रे हृदि यां निरुन्धे ।
विरिञ्चिनानाऽऽननवादधौतसमाधिशास्त्रश्रुतिपूर्णकर्णः ॥ ४४ ॥

अन्वयः—विरिञ्चिनानाऽऽननवादधौतसमाधिशास्त्रश्रुतिपूर्णकर्णः (अहम्) योगात् अरन्ध्रे हृदि यां निरुन्धे, सा वार्ता असती अपि अन्यं न एति ॥ ४४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—अथ हंसः स्वस्य विश्वासभाजनत्वं प्रतिपादयति—वार्तेति। विरिञ्चीत्यादिः = ब्रह्माऽनेकवदनव्याख्यानशोधितयोगशास्त्रश्रवणपूरितश्रोत्रः, अहं, योगात् = उपायात्, अरन्ध्रे = छिद्ररहिते, हृदि = हृदये, यां = वार्तां, निरुन्धे = नितराम् आवृणोमि, सा = तादृशी, वार्ता = लोकवार्ता, किमुत रहस्यवार्ता इति शेषः। असती अपि = अतथाभूता अपि, विनोदाऽर्थं कथिता अपि, किमुत सतीति भावः। अन्यम् = अपरं, बोद्धव्याद्भिन्नं पुरुषमपीति भावः, न एति = न गच्छति, अतोऽहमन्तःपुरस्त्रीणां परमविश्वसनीय इति भावः॥ ४३॥

अनुवादः—ब्रह्माजीके अनेक मुखोंके व्याख्यानसे शुद्ध किये गये योगशास्त्रके श्रवणसे पूर्ण कर्णोंवाला मैं, उपायसे छिद्ररहित हृदयमें जिस वृत्तान्तको रोक लेता हूँ, वह वृत्तान्त भले ही झूठा क्यों नहीं हो दूसरेके पास नहीं पहुँचता है॥ ४४॥

टिप्पणी—विरिञ्चिनानाननेति = विरिञ्चेः नानाऽऽननानि (ष० त०) तैः वादः (तृ० त०), तेन धौतम् (तृ० त०), तच्च तत् समाधिशास्त्रम् (क० धा०), तस्य श्रुतिः (ष० त०)। पूर्णौ कर्णौ यस्य सः (बहु०)। विरञ्चिनानाऽऽननवादधौतसमाधिशास्त्रश्रुत्या पूर्णकर्णः (तृ० त०)। अरन्ध्रे = अविद्यमानं रन्ध्रं यस्य तत्, तस्मिन् (नञ्बहु०)। निरुन्धे = नि + रुध् + लट् + इट्। असती = न सती (नञ्०)। इस पद्यमें वार्तानिरोधमें विरिञ्चि इत्यादि पदार्थोंकी हेतुतासे काव्यलिङ्ग अलङ्कार है॥ ४४॥

नलाश्रयेण त्रिदिवोपभोगं तवाऽनवाप्यं लभते बताऽन्या।
कुमुद्वतीवेन्दुपरिग्रहेण ज्योत्स्नोत्सवं दुर्लभमम्बुजिन्याः॥ ४५॥

अन्वयः—तव अनवाप्यं त्रिदिवोपभोगम् अम्बुजिन्या दुर्लभं ज्योत्स्नोत्सवम् इन्दुपरिग्रहेण कुमुद्वती इव नलाश्रयेण अन्या लभते बत!॥ ४५॥

अथ पद्यद्वयेन दमयन्त्या नलाऽनुरागमुद्दीपयति—नलाश्रयेणेति।

व्याख्या—(हे राजकुमारि!) तव = भवत्याः, अनवाप्यम् = अप्राप्यं, नलस्वीकाराऽभावादिति भावः। त्रिदिवोपभोगं = स्वर्गोपभोगं, नलस्य इन्द्रसदृशैश्वर्यत्वादिति भावः। अम्बुजिन्याः = कमलिन्याः, दुर्लभं = दुष्प्राप्यं, ज्योत्स्नोत्सवं = चन्द्रिकाभोगम्, इन्दुपरिग्रहेण = चन्द्राऽङ्गीकारेण, कुमुद्वती इव = कुमुदिनी इव, नलाश्रयेण = नलस्वीकरणेन, अन्या = भवत्या भिन्ना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

काचित् ललना, लभते = प्राप्नोति, बत = खेदस्य विषयोऽयमिति भावः ॥ ४५ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) आपसे अप्राप्य स्वर्गका उपभोग, कमलिनी-से दुष्प्राप्य चांदनीका भोग चन्द्रमाके अङ्गीकार करनेसे कुमुदिनीके समान नलके आश्रयसे दूसरी स्त्री प्राप्त करती है। खेद है ! ॥ ४५ ॥

टिप्पणी—तव = "अनवाप्यम्" इसके योगमें "कृत्यानां कर्तरि वा" इस सूत्रसे तृतीयाके अर्थमें षष्ठी। त्रिदिवोपभोगं = त्रिदिवस्य उपभोगः, तम् (ष० त०)। दुर्लभं = दुर् + लभ् + खल् + अम्। ज्योत्स्नोत्सवं = ज्योत्स्नाया उत्सवः, तम् (ष० त०)। इन्दुपरिग्रहेण = इन्दोः परिग्रहः, तेन (ष० त०) कुमुद्वती = कुमुदानि सन्ति यस्यां सा, कुमुद शब्दसे "कुमुदनडवेतसेभ्यो ड्मतुप्" इस सूत्रसे ड्मतुप् प्रत्यय। "मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः" इससे मकारके स्थानमें वकार। "उगितश्च" इस सूत्रसे ङीप्। नलाश्रयेण=नलस्य आश्रयः, तेन (ष० त०)। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ४५ ॥

तन्नैषधाऽनूढतया दुरापं शर्म त्वयाऽस्मत्कृतचाटुजन्म।
रसालवल्ल्या मधुपाऽनुविद्धं सौभाग्यमप्राप्तवसन्तयेव ॥ ४६ ॥

अन्वयः—तत् अस्मत्कृतचाटुजन्म शर्म त्वया अप्राप्तवसन्तया रसालव-ल्ल्या मधुपाऽनुविद्धं सौभाग्यम् इव नैषधाऽनूढतया दुरापम् ॥ ४६ ॥

व्याख्या—तत् = प्रसिद्धम्, अस्मत्कृतचाटुजन्म = मत्प्रयुक्तप्रियवाक्यो-त्पन्नं, शम = सुखं, त्वया = भवत्या, अप्राप्तवसन्तया = वसन्तानधिष्ठितया, रसालवल्ल्या = आम्रश्रेण्या, मधुपाऽनुविद्धं = भ्रमरकृतं, सौभाग्यम् इव = सौन्दर्यम् इव, नैषधाऽनूढतया = नलेन अपरिणीततया, दुरापं = दुष्प्राप्यम्, नलपरिग्रहाय भवत्या यत्नः कार्य इति भावः ॥ ४६ ॥

अनुवादः—मुझसे कहे गये प्रियवाक्योंसे उत्पन्न सुख, आपसे वसन्त ऋतुको अप्राप्त आम्रोंकी श्रेणीसे भौंरेसे किये गये सौन्दर्यकी तरह नलके साथ विवाह न होनेसे दुष्प्राप्य है ॥ ४६ ॥

टिप्पणी—अस्मत्कृतचाटुजन्म = अस्माभिः कृतानि (तृ० त०), अस्मत्कृ-तानि च तानि चाटूनि (क० धा०), तेभ्यो जन्म यस्य तत् (व्यधिकरण-बहु०)। अप्राप्तवसन्तया = न प्राप्तः अप्राप्तः (नञ्०)। अप्राप्तो वसन्तो यया सा अप्राप्तवसन्ता, तया (बहु०)। रसालवल्ल्या = रसालानां वल्ली,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तया (ष० त०)। मधुपाऽनुविद्धं = मधु पिबन्तीति मधुपाः, मधु+पा+कः। मधुपैः अनुविद्धम् (तृ० त०)। नैषधाऽनूढतया=निषधानामयं नैषधः, निषध+अण्। अनूढाया भावः अनूढता, अनूढा+तल्+टाप्। "सामान्ये नपुंसकम्" इससे नपुंसकता। नैषधेन अनूढता, तया (तृ० त०)। दुरापं = दुःखेन आप्तुं शक्यम्, दुर्+आप्+खल्। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ४६ ॥

तस्यैव वा यास्यसि किं न हस्तं ? दृष्टं विधेः केन मनः प्रविश्य ? ।
अजातपाणिग्रहणाऽसि तावद्रूपस्वरूपाऽतिशयाऽऽश्रयश्च ॥ ४७ ॥

अन्वयः—वा तस्य एव हस्तं किं न यास्यसि ? केन विधेः मन एव प्रविश्य दृष्टम् ? अजातपाणिग्रहणा असि, रूपस्वरूपाऽतिशयाऽऽश्रयश्च (असि) ॥ ४७ ॥

व्याख्या—अथ हंसो भैम्याः पुनर्नलप्राप्त्याशां जनयति– तस्यैवेति। वा = अथवा, तस्य एव = नलस्य एव, हस्तं = पाणिं, किं, न यास्यसि = न प्राप्स्यसि ? यास्यस्येवेत्यर्थः। केन = जनेन, विधः = ब्रह्मणः,मन एव = चित्तम् एव , प्रविश्य = प्रवेशं कृत्वा, दृष्टम् = अवलोकितम् , विध्यनुकूलताऽपि सम्भावितेति भावः। यतः—अजातपाणिग्रहणा = अकृतविवाहा, असि = वर्तसे, रूपस्वरूपाऽतिशयाऽऽश्रयश्च = सौन्दर्यशीलप्रकर्षाऽऽधारश्च, असि = विद्यसे, योग्यगुणाश्रयत्वाच्च नलहस्तमेव गमिष्यसीति भावः ॥ ४७ ॥

अनुवादः—आप नलके ही हाथोंमें क्यों नहीं पड़ेंगी ? (पड़ेंगी ही)। किसने ब्रह्माके हृदयमें प्रवेश कर देखा है ? क्योंकि आपका विवाह भी नहीं हुआ है और आप सौन्दर्य और शीलके प्रकर्षकी आधार भी हैं ॥ ४७ ॥

टिप्पणी—यास्यसि = या+लृट्+सिप्। अजातपाणिग्रहणा = न जातम् अजातम् (नञ्०)। पाणेर्ग्रहणम् (ष० त०)। अजातं पाणिग्रहणं यस्याः सा (बहु०)। रूपस्वरूपाऽतिशयाऽऽश्रयः = रूपं च स्वरूपं रूपस्वरूपे (द्वन्द्व०)। तयोः अतिशयः (ष० त०), तस्य आश्रयः (ष० त०) ॥ ४७ ॥

निशा शशाङ्कं, शिवया गिरीशं, श्रिया हरिं योजयतः प्रतीतः ।
विधेरपि स्वारसिकः प्रयासः परस्परं योग्यसमागमाय ॥ ४८ ॥

अन्वयः—निशा शशाङ्कं, शिवया गिरीशं, श्रिया हरिं योजयतः विधेः प्रयासोऽपि परस्परं योग्यसमागमाय एव स्वारसिकः प्रतीतः ॥ ४८ ॥

व्याख्या—निशा = रात्र्या, शशाङ्कं = चन्द्रमसं, शिवया = पार्वत्या, गिरीशं = शिवं, श्रिया = लक्ष्म्या, हरिं = विष्णुं, योजयतः = संयोगं प्राप-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

यतः, विधेः = ब्रह्मणः, प्रयासः अपि = यत्नः अपि, परस्परम् = अन्योन्यं, योग्यसमागमाय एव = अर्हसंघट्टनाय एव, स्वारसिकः = स्वानुरागप्रवृत्तः, प्रतीतः = प्रसिद्धः, निशाशशाङ्कादिदृष्टान्तादपि विधिसङ्कल्पः सुज्ञेय इति भावः ॥ ४८ ॥

अनुवादः—रात्रिके साथ चन्द्रमाको, पार्वतीसे शिवजीको, लक्ष्मीसे नारायणको मिलानेवाले ब्रह्माजीका प्रयत्न भी परस्परमें योग्योंके समागमके लिए ही अपने अनुरागसे प्रवृत्त है ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४८ ॥

टिप्पणी—निशा = "पद्दन्नोमास्हृन्निशसन्"० इत्यादि सूत्रसे शस् आदि विभक्तियोंके परे रहते निशाके स्थानमें निश् आदेश। शशाङ्कं = शशः अङ्कः यस्य सः, तम् (बहु०)। गिरीशं = गिरेरीशः, तम् (ष० त०) योजयतः = योजयतीति योजयन्, तस्य, युज् + णिच् + लट् (शतृ) + ङस्। योग्यसमागमाय = योग्या च योग्यश्च योग्यौ, "पुमान् स्त्रिया" इससे एकशेष। योग्ययोः समागमः, तस्मै (ष० त०)। स्वारसिकः=स्वस्य रसः (ष० त०), "शृङ्गारादौ विषे वीर्ये गुणे रागे द्रवे रसः।" इत्यमरः। स्वरसेन चरतीति, स्वरस शब्दसे "चरति" इस सूत्रसे ठक् प्रत्यय। प्रतीतः = "प्रतीते प्रथितख्यातवित्तविज्ञातविश्रुताः। इत्यमरः। इस पद्यमें सम अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"समं स्यादानुरूप्येण श्लाघा या योग्यवस्तुनोः।"

सा० द० १०-९२ ॥ ४८ ॥

वेलाऽतिगस्त्रैणगुणाऽब्धिवेणी न योगयोग्याऽसि नलेतरेण।
सन्दर्भ्यते दर्भगुणेन मल्लीमाला न मृद्वी भृशकर्कशेन ॥ ४९ ॥

अन्वयः—वेलाऽतिगस्त्रैणगुणाऽब्धिवेणी (त्वम्) नलेतरेण योगयोग्या न असि। (तथाहि) मृद्वी मल्लीमाला भृशकर्कशेन दर्भगुणेन न सन्दर्भ्यते ॥ ४९ ॥

व्याख्या—नलादितरेण भैम्याः सम्बन्धस्यानौचित्यं वैधर्म्यमूलकदृष्टान्ताऽलङ्कारेण प्रतिपादयति—वेलाऽतिगेति। (हे भैमि !) वेलाऽतिगस्त्रैणगुणाऽब्धिवेणी = निःसीमस्त्रीगुणसमुद्रप्रवाहरूपा त्वं, नलेतरेण = नलात् (नैषधात्) इतरेण (अन्येन जनेन), योगयोग्या = संबन्धाऽर्हा, न असि=नो वर्तसे। यतः-मृद्वी = कोमला, मल्लीमाला = भूपदीपुष्पस्रक्, भृशकर्कशेन = अतिशयकठोरेण, दर्भगुणेन = कुशतन्तुना, न सन्दर्भ्यते = न ग्रथ्यते ॥ ४९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—(हे दमयन्ति !) निःसीम (वेहद) स्त्रियोंके गुणरूप समुद्रकी प्रवाह सरीखी आप, नलसे भिन्न पुरुषसे सम्बन्धके लिए योग्य नहीं हैं। जैसे कि कोमल (मुलायम) वेलीकी माला अत्यन्त कठोर कुशकी रस्सीसे नहीं गूँथी जाती है ॥ ४९ ॥

टिप्पणी—वेलाऽतिगस्त्रैणगुणाऽब्धिवेणी = वेलाम् अतिक्रम्य गच्छन्तीति वेलाऽतिगाः, वेला + अति + गम् + ड + जस्। स्त्रीणाम् इमे स्त्रैणाः, स्त्री शब्दसे "स्त्रीपुंसाभ्यां नञ्स्नञौ भवनात्" इस सूत्रसे नञ् प्रत्यय। स्त्रैणाश्च ते गुणाः (क० धा०), ते एव अब्धिः (रूपक०), तस्य वेणी (ष० त०)। "वेलाऽब्धि-जलवन्धने काले सीम्नि च" इति 'वेणी तु केशवन्धे जलस्रुतौ' इति च वैजयन्ती। नलेतरेण = नलात् इतरः, तेन, नल शब्दसे 'इतर' पदके योगमें 'अन्यारादि-तरर्तेदिक्शब्दाऽञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते' इस सूत्रसे पञ्चमी विभक्ति (प० त०)। योगयोग्या = योगस्य योग्या (ष० त०), 'योगः संनहनोपायध्यानसंगति-युक्तिषु।' इत्यमरः। मृद्वी = मृदु शब्दसे 'वोतो गुणवचनात्' इस सूत्रसे ङीप्। मल्लीमाला = मल्लीनां माला (ष० त०)। 'तृणशून्यं तु मल्लिका, 'भूपदीशीतभीरुश्चे' त्यमरः। भृशकर्कशेन = भृशं (यथा तथा) कर्कशः, तेन (सुप्सुपा)। दर्भगुणेन = दर्भस्य गुणः, तेन (ष० त०), 'अस्त्री कुशं कुथो दर्भः पवित्रम्' इत्यमरः। संदभ्यंते = 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'दृभ ग्रन्थे' इस धातुसे कर्ममें लट् + त। इस पद्यमें वैधर्म्यसे दृष्टान्त अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"दृष्टान्तस्तु सधर्मस्य वस्तुनः प्रतिबिम्बनम्।" सा० द० १०–६९ ॥४९॥

> **विधिं वधूसृष्टिमपृच्छमेव तद्यानयुग्यो नलकेलियोग्याम्।**
> **त्वन्नामवर्णा इव कर्णपीता मयाऽस्य संक्रीडति चक्रचक्रे ॥ ५० ॥**

अन्वयः—विधिं तद्यानयुग्यः (सन्) नलकेलियोग्यां वधूसृष्टिम् अपृच्छम् एव। मया अस्य चक्रचक्रे संक्रीडति (सति) तन्नामवर्णा इव कर्णपीताः ॥५०॥

व्याख्या—विधिं = ब्रह्माणं, तद्यानयुग्यः = ब्रह्मरथवोढा सन्, अहमिति शेषः। नलकेलियोग्यां = नैषधक्रीडाऽर्हां, वधूसृष्टिं = स्त्रीनिर्माणम्, अपृच्छम् एव = पृष्टवान् एव। ततः, मया = हंसेन विधिवाहनेन, अस्य = विधेः, चक्रचक्रे = रथाऽङ्गसमूहे, संक्रीडति = कूजति सति, तन्नामवर्णाः = भवदाख्याऽ-क्षराः इव, कर्णपीताः = श्रोत्रेन्द्रियगृहीताः ॥ ५० ॥

अनुवादः—ब्रह्माजीसे उनके रथको ढोते हुए मैंने नलकी क्रीडाकी योग्य कौन सी स्त्री आपने रची है ऐसा पूछ ही लिया। तब मैंने ब्रह्माजीके रथके

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पहियोंकी आवाज करनेपर आपके नामके अक्षरोंको सुना हुआ-सा प्रतीत होता है ॥ ५० ॥

टिप्पणी—विधिम् = प्रच्छ धातुके द्विकर्मक होनेसे यह गौणकर्म है। तद्यानयुग्यः = युगं वहतीति युग्यः, युग शब्दसे "तद्वहति रथयुगप्रासङ्गम्" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय। तस्य यानम् (ष० त०), तस्य युग्यः (ष० त०)। नलकेलियोग्यां = नलस्य केलिः (ष० त०), तस्या योग्या, ताम् (ष० त०)। वधूसृष्टिं= वध्वाः सृष्टिः, ताम् (ष० त०)। यह मुख्यकर्म है। अपृच्छम्= प्रच्छ+लङ्+मिप्, चक्रचक्रे = चक्राणां चक्रं (समूहः) तस्मिन् (ष० त०) संक्रीडति = सं+क्रीड+लट् (शतृ) + ङि, यहाँपर "समोऽकूजने" इस वार्त्तिकसे कूजन होनेसे आत्मनेपद नहीं हुआ। त्वन्नामवर्णाः = तव नाम (ष० त०), तस्य वर्णाः (ष० त०)। कर्णपीताः = कर्णाभ्यां पीताः (तृ० त०)। पहियोंकी आवाजसे ब्रह्माजीके वाक्यको अच्छी तरहसे नहीं सुना यह तात्पर्य है ॥ ५० ॥

अन्येन पत्या त्वयि योजितायां विज्ञत्वकीर्त्या गतजन्मनो वा ।
जनाऽपवादाऽर्णवमुत्तरीतुं विधा विधातुः कतमा तरीः स्यात् ? ॥ ५१ ॥

अन्वयः—वा अन्येन पत्या त्वयि योजितायां विज्ञत्वकीर्त्या गतजन्मनः विधातुः जनाऽपवादाऽर्णवम् उत्तरीतुं कतमा विधा तरीः स्यात् ? ॥ ५१ ॥

व्याख्या—वा = अथवा, अन्येन = अपरेण, नलेतरेणेति भावः। पत्या = भर्त्रा, त्वयि = भवत्यां, योजितायां = घटितायां सत्यां, विज्ञत्वकीर्त्या = अभिज्ञत्वख्यात्या एव, गतजन्मनः = यापिताऽऽयुषः, विधातुः = ब्रह्मणः, जनापऽवादाऽर्णवं = लोकनिर्वादसमुद्रम्, उत्तरीतुं = निस्तरीतुं, कतमा विधा = कः प्रकारः, तरीः = नौका, स्यात् = भवेत्, न काऽपीत्यर्थः। अतो लोकापवादभीतेरपि ब्रह्मणा त्वं नलेनैव योजनीयेति भावः ॥ ५१ ॥

अनुवादः—अथवा दूसरे (नलसे भिन्न) पतिके साथ आपका योग करनेपर "ये अभिज्ञ (जानकार) हैं" ऐसी प्रसिद्धिसे ही आयुको बितानेवाले ब्रह्माजीके लिए लोकाऽपवादस्वरूप समुद्रको पार करनेके लिए कौनसा उपाय नौकाका काम देगा ? ॥ ५१ ॥

टिप्पणी—विज्ञत्वकीर्त्या = विज्ञस्य भावो विज्ञत्वम्, विज्ञ+त्व। विज्ञत्वस्य कीर्तिः, तया (ष० त०)। गतजन्मनः = गतं जन्म यस्य स गतजन्मा' तस्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(बहु०) । जनाऽपवादाऽर्णवं = जनानाम् अपवादः (ष० त०), "अवर्णाऽऽक्षेपनिर्वादपरीवादाऽपवादवत् ।" इत्यमरः । जनाऽपवाद एव अर्णवः, तम् (रूपक०) । उत्तरीतुम् = उद्+तॄ+तुमुन् । "वॄतो वा" इससे दीर्घ । तरीः= तरन्त्यनया इति, तॄ धातुसे "अवितॄस्तृतन्त्रिभ्य ईः" इस औणादिक सूत्रसे ई प्रत्यय । "स्त्रियां नौस्तरणिस्तरीः" इत्यमरः ।। ५१ ।।

आस्तां तदप्रस्तुतचिन्तयाऽलं, मयाऽसि तन्वि ! श्रमिताऽतिवेलम् ।
सोऽहं तदागः परिमाष्टुंकामस्तवेप्सितं किं विदधेऽभिधेहि ।। ५२ ।।

अन्वयः—तत् आस्ताम्, अप्रस्तुतचिन्तया अलम् । हे तन्वि ! मया अतिवेलं श्रमिता असि । तत् आगः परिमाष्टुंकामः सोऽहं किं तव ईप्सितं विदधे ? अभिधेहि ।। ५२ ।।

व्याख्याः—दमयन्त्या अभिप्रायं ज्ञातुमुपसंहरति आस्तामिति । (हे भैमि !) तत् = पूर्वोक्तं, नलवर्णनमित्यर्थः, आस्तां = तिष्ठतु, अप्रस्तुतचिन्तया = अप्रकृतविचारेण, अलं = पर्याप्तम्, अप्रस्तुतचिन्तया साध्यं नाऽस्तीति भावः । हे तन्वि = हे कृशाङ्गि !, मया = हंसेन, अतिवेलं = भृशं, श्रमिता = खेदिता, असि = वर्तसे, त्वमिति शेषः । तत् = श्रमणरूपम्, आगः= अपराधं, परिमाष्टुंकामः = परिहर्तुकामः, सः = तादृशः, अहम् = अपराद्धा, किं, तव = भवत्याः, ईप्सितम् = अभीष्टं, मनोरथमिति भावः, विदधे = कुर्वे, अभिधेहि = ब्रूहि ।। ५२ ।।

अनुवादः—वह वर्णन इतना ही हो । अप्रस्तुत विषयकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए । हे कृशोदरि ! आप मुझसे बहुत ही परिश्रान्त बनाई गई हैं । उस अपराधको हटानेकी इच्छा करनेवाला मैं आपका कौन-सा मनोरथ पूरा करूँ ? कहिए ।। ५२ ।।

टिप्पणी—आस्ताम् = "आस उपवेशने" धातुसे लोट्+त । अप्रस्तुतचिन्तया = न प्रस्तुतः अप्रस्तुतः (नञ्०) । तस्य चिन्ता तया (ष० त०), "अलम्" इस पदसे गम्यमान साधन क्रियाकी अपेक्षासे करण होनेसे तृतीया । श्रमिता = श्रम्+णिच्+क्त (कर्ममें) + टाप् । आगः = "आगोऽपराधो मन्तुश्च" इत्यमरः । परिमाष्टुंकामः = परिमाष्टुं कामो यस्य सः (बहु०), "तुं काममनसोरपि" इससे मकारका लोप । ईप्सितम् = आप्+सन्+क्तः । विदधे = वि+धाञ्+लट्+इट् । अभिधेहि = अभि + धा + लोट्+ सिप् ।। ५२ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

इतीरयित्वा विरराम पत्त्री स राजपुत्रीहृदयं बुभुत्सुः ।
ह्रदे गभीरे हृदि चाऽवगाढे शंसन्ति कार्याऽवतरं हि सन्तः ॥ ५३ ॥

अन्वयः—स पत्त्री इति ईरयित्वा राजपुत्रीहृदयं बुभुत्सुः विरराम । हि सन्तः गभीरे हृदि ह्रदे च च अवगाढे (सति) कार्याऽवतरं शंसन्ति ॥ ५३ ॥

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः, पत्त्री = पक्षी, हंसः, इति = पूर्वोक्तं वाक्यम्, ईरयित्वा = उक्त्वा, राजपुत्रीहृदयं = दमयन्तीचित्तं, बुभुत्सुः = जिज्ञासुः, भैमी नले साऽनुरागाऽस्ति नो वेति जिज्ञासुः सन्निति भावः । विरराम = तूष्णीं बभूव । उक्तमर्थमर्थान्तरन्यासेन द्रढयति—ह्रद इति । हि = यस्मात्कारणात्, सन्तः = सज्जनाः, कार्यज्ञा इति भावः । गभीरे=अगाधे, हृदि = चित्ते, ह्रदे च = जलाशये च, अवगाढे = प्रविश्य दृष्टे सति, कार्याऽवतरं = कार्यस्य (स्नानादेः रहस्योक्तेश्च) अवतरं (तीर्थं प्रस्तावं च) शंसन्ति = कथयन्ति, अवगाहनाऽभावे सति अनर्थः स्यादिति भावः ॥ ५३ ॥

अनुवादः—वह पक्षी (हंस) ऐसा कहकर राजपुत्री (दमयन्ती) के अभिप्रायको जाननेकी इच्छा करता हुआ चुप हो गया, क्योंकि विद्वान्लोग जैसे गम्भीर जलाशयमें प्रवेश कर देखनेपर उतरनेका प्रस्ताव करते हैं वैसे ही गम्भीर हृदयको टटोलनेपर ही रहस्य कहते हैं ॥ ५३ ॥

टिप्पणी—ईरयित्वा = ईर + णिच् + क्त्वा । राजपुत्रीहृदयं = राज्ञः पुत्री (ष० त०), तस्या हृदयं, तत् (ष० त०) । "बुभुत्सुः" इस उ प्रत्ययाऽन्तपदके योगमें "न लोकाऽव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम्" इससे षष्ठी विभक्तिका निषेध, बुभुत्सुः = बुध् + सन् + उः । विरराम="व्याङ्परिभ्यो रमः" इससे परस्मैपद । वि + रम् + लिट् + तिप् । अवगाढे = अव + गाह + क्तः + ङि । कार्याऽवतरं = कार्यस्य अवतरः तम् (ष० त०) । शंसन्ति = शंस + लट् + झिः । इस पद्यमें अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ॥ ५६ ॥

किञ्चित्तिरश्चीनविलोलमौलिर्विचिन्त्य वाच्यं मनसा मुहूर्तम् ।
पतत्त्रिणं सा पृथिवीन्द्रपुत्री जगाद वक्त्रेण तृणीकृतेन्दुः ॥ ५४ ॥

अन्वयः—किञ्चित्तिरश्चीनविलोलमौलिः वक्त्रेण तृणीकृतेन्दुः सा पृथिवीन्द्रपुत्री मुहूर्तं मनसा वाच्यं विचिन्त्य पतत्त्रिणं जगाद ॥ ५४ ॥

व्याख्या—किञ्चित्तिरश्चीनविलोलमौलिः = स्तोकतिर्यक्कृतचञ्चलकेशबन्धा, वक्त्रेण = मुखेन, तृणीकृतेन्दुः = अधःकृतचन्द्रा, सा = पूर्वोक्ता, पृथिवीन्द्रपुत्री=

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

राजकुमारी दमयन्ती, मुहूर्तं = कंचित्कालं, मनसा = चित्तेन, वाच्यं = वक्तव्यं वचनं, विचिन्त्य = विचार्य, पतत्रिणं = पक्षिणं हंसं, जगाद = उवाच ॥ ५४ ॥

अनुवाद:—चञ्चल केशबन्धको कुछ तिरछा करती हुई और मुखसे चन्द्रमाको मात करती हुई उस राजकुमारी (दमयन्ती) ने कुछ समय तक मनसे वक्तव्य वचनका विचार कर हंसको कहा ॥ ५४ ॥

टिप्पणी—किञ्चित्तिरश्चीनविलोलमौलि: = किञ्चित्तिरश्चीना विलोला मौलिर्यस्याः सा (बहु०), "चूडा किरीटं केशाश्च संयता मौलयस्त्रयः ।" इत्यमरः । तृणीकृतेन्दुः = अतृणं तृणं यथा सम्पद्यते तथा कृतस्तृणीकृतः, तृण + च्वि + कृ + क्तः । तृणीकृत इन्दुः यया सा (बहु०) । पृथिवीन्द्रपुत्री = पृथिव्या इन्द्रः (ष० त०) तस्याः पुत्री (ष० त०) । मुहूर्तं = "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इससे द्वितीया । जगाद = गद् + लिट् + तिप् । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ५४ ॥

धिक् चापले वत्सिमवत्सलत्वं, यत्प्रेरणादुत्तरलीभवन्त्या ।
समीरसङ्गादिव नीरभङ्ग्या मया तटस्थस्त्वमुपद्रुतोऽसि ॥ ५५ ॥

अन्वयः—चापले वत्सिमवत्सलत्वं धिक् ! यत्प्रेरणात् उत्तरलीभवन्त्या मया समीरसङ्गात् (उत्तरलीभवन्त्या) नीरभङ्ग्या इव तटस्थः त्वम् उपद्रुतः असि ॥ ५५ ॥

व्याख्या—चापले = चपलकर्मणि, वत्सिमवत्सलत्वं = बाल्यप्रयुक्तचापलमित्यर्थः, धिक्, यत्प्रेरणात् = चापलप्रेरणात्, उत्तरलीभवन्त्या = चपलायमानया, मया = भैम्या, समीरसङ्गात् = वाताऽऽघातात्, उत्तरलीभवन्त्या = चपलायमानया, नीरभङ्ग्या इव = जलतरङ्गेण इव, तटस्थः = उदासीनः, तीरं गतश्च, त्वं = हंसः, उपद्रुतः = पीडितः, असि = वर्तसे, मदीयं बालचापलं त्वया सोढव्यमिति भावः ॥ ५५ ॥

अनुवाद:—चञ्चल कर्ममें बालभावसे होनेवाली आसक्तिको धिक्कार है ! जिसकी प्रेरणासे चञ्चल होनेवाली मुझसे वायुके आघातसे चञ्चल होनेवाली जलकी तरङ्गसे उदासीन आप किनारेमें रहे हुए (व्यक्ति) के समान पीडित हो गये हैं ॥ ५५ ॥

टिप्पणी—चापले = चपल + अण् । वत्सिमवत्सलत्वं = वत्सस्य भावो वत्सिमा, वत्स + इमनिच् । वत्सलस्य भावो वत्सलत्वम् । वत्सल + त्व ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

वत्सिम्नि वत्सलत्वं, तत् (स० त०), 'धिक्' के योगमें द्वितीया। यत्प्रेरणात्= यस्य प्रेरणं, तस्मात् (ष० त०)। उत्तरलीभवन्त्या = उत्तरल + च्वि + भू + लट् + शतृ + ङीप् + टा। समीरसङ्गात् = समीरस्य सङ्गः, तस्मात् (ष० त०), हेतुमें पञ्चमी। नीरभङ्ग्या = नीरस्य भङ्गी, तया (ष० त०)। तटस्थः = तट + स्था + कः। उपद्रुतः = उप + द्रु + क्तः। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ५५ ॥

आदर्शतां स्वच्छतया प्रयासि, सतां स तावत्खलु दर्शनीयः।
आगः पुरस्कुर्वति सागसं मां यस्यात्मनीदं प्रतिबिम्बितं ते ॥ ५६ ॥

अन्वयः—स्वच्छतया आदर्शतां प्रयासि। यस्य ते सागसं मां पुरस्कुर्वति आत्मनि इदम् आगः प्रतिबिम्बितम्। स सतां तावत् दर्शनीयः ॥ ५६ ॥

व्याख्या—(हे हंस !) स्वच्छतया = निर्मलत्वेन, आदर्शतां = दर्पणत्वं, प्रयासि = प्राप्नोषि। यस्य = स्वच्छस्य, ते=तव, साऽऽगसं = साऽपराधां, मां= भैमीं, पुरस्कुर्वति = पूजयति, "किमीप्सितं ते विदधेऽभिधेहि" (३–५२), इत्यादिकथनेनेति भावः, अग्रे कुर्वाणे च, आत्मनि = बुद्धौ, स्वरूपे च, इदं = मदीयम्, भवद्ग्रहणोद्योगरूपमिति भावः। आगः = अपराधः, प्रतिबिम्बितं = प्रतिफलितं, पुरोवर्तिधर्माणामात्मनि संक्रमणादादर्शोऽसीत्यर्थः। ततः किम् ? इत्यत आह—सः = आदर्शः, सतां = सज्जनानां, तावत् = प्रथमं, दर्शनीयः= अवलोकनीयः पूज्यश्च ॥ ५६ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) तुम निर्मल होनेसे दर्पणके भावको प्राप्त कर रहे हो, अपराधिनी मुझे सत्कार करनेसे अथवा सामने रखनेसे स्वच्छ तुम्हारी बुद्धि-वा स्वरूपमें मेरा अपराध प्रतिबिम्बित हुआ है, वैसा आदर्श सज्जनोंको दर्शनीय और पूजनीय है ॥ ५६ ॥

टिप्पणी—स्वच्छतया = स्वच्छ + तल् + टाप् + टा। आदर्शताम् = आदर्श + तल् + टाप् + अम्। प्रयासि = प्र + या + लट् + सिप्। सागसं = आगसा सहिता साऽऽगाः, ताम् (तुल्ययोगबहु०)। पुरस्कुर्वति = पुरस्करोतीति पुरस्कुर्वन्, तस्मिन्, पुरस + कृ + लट् (शतृ) + ङि। "पुरस्कृतः पूजिते स्यादभि-युक्तेऽग्रतः कृते।" इत्यमरः। आत्मनि = "आत्मा यत्नो धृतिर्बुद्धिः स्वभावो ब्रह्म वर्ष्म च।" इत्यमरः। आदर्श (दर्पण) की दर्शनीयतामें प्रमाण है— "रोचनं चन्दनं हेम मृदङ्गं दर्पणं मणिम्। गुरुमग्निं तथा सूर्यं प्रातः पश्येत्सदा बुधः" ॥ ५६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनार्यमप्याचरितं कुमार्या भवान्मम क्षाम्यतु सौम्य ! तावत् ।
हंसोऽपि देवांऽशतयाऽसि वन्द्यः श्रीवत्सलक्ष्मेव हि मत्स्यमूर्तिः ॥ ५७ ॥

अन्वयः—हे सौम्य ! भवान् कुमार्या मम अनार्यम् अपि आचरितं तावत् क्षाम्यतु । हंसोऽपि (त्वम्) देवांऽशतया मत्स्यमूर्तिः श्रीवत्सलक्ष्मा इव वन्द्यः असि ॥ ५७ ॥

व्याख्या—हे सौम्य = हे सज्जन !, भवान्, कुमार्याः = शिशोः, मम, अनार्यम् अपि = अनुचितम् अपि, आचरितम् = आचरणं, त्वद्ग्रहणव्यवसाय-रूपमिति भावः । तावत्=प्रथमं, क्षाम्यतु = सहताम्, हंसस्य वन्द्यतां प्रतिपादयति—हंसोऽपि = मरालोऽपि, तिर्यगपि, त्वमिति शेषः, देवांऽशतया = सुरांऽशत्वेन, मत्स्यमूर्तिः = मीनाऽवतारधारी, श्रीवत्सलक्ष्मा इव = विष्णुः इव, वन्द्यः = अभिवादनीयः, असि ॥ ५७ ॥

अनुवादः—हे सज्जन ! आप, कुमारी मेरे अनुचित आचरणको सहें । हंस होते हुए भी आप देवताके अंश होनेसे मत्स्यमूर्ति भगवान् विष्णुके समान अभि-वादनके योग्य हैं ॥ ५७ ॥

टिप्पणी—हे सौम्य=सोमो देवताऽस्येति सौम्यः, तत्सम्बुद्धौ "सोमाट्ट्यण्" इस सूत्रसे सोम शब्दसे ट्यण् प्रत्यय "सौम्यं तु सुन्दरे सोमदैवते" इत्यमरः । अनार्यं = न आर्यम् (नञ्०) । क्षाम्यतु = क्षमूष् + लोट् + तिप् । देवांऽशतया= देवस्य अंशः (ष० त०), तस्य भावः देवांशता, तया देवांश + तल् + टाप् । मत्स्यमूर्तिः = मत्स्यस्य इव मूर्तिर्यस्य सः (व्यधिकरणबहु०) । श्रीवत्सलक्ष्मा= श्रीवत्सो लक्ष्म यस्य सः (बहु०) ॥ ५७ ॥

मत्प्रीतिमाधित्ससि कां ? त्वदीक्षामुदं मदक्ष्णोरपि याऽतिशेताम् ।
निजाऽमृतैर्लोचनसेचनाद्वा पृथक्किमिन्दुः सृजति प्रजानाम् ? ॥ ५८ ॥

अन्वयः—(हे हंस !) कां मत्प्रीतिम् आधित्ससि ? या मदक्ष्णोः त्वदीक्षा-मुदम् अतिशेताम् । इन्दुः प्रजानां निजाऽमृतैः लोचनसेचनात् पृथक् किं वा सृजति ? ॥ ५८ ॥

व्याख्या—"तवेप्सितं किं विदधेऽभिधेहि" इति हंसवाक्यस्य उत्तरमाह—मत्प्रीतिमिति (हे हंस) । कां=कीदृशीं, मत्प्रीतिं = मत्सुखम्, आधित्ससि = आधातुम् (कर्तुम्) इच्छसि, या = प्रीतिः, मदक्ष्णोः = मन्नयनयोः, त्वदीक्षा-मुदं = भवदीक्षणप्रीतिम्, अतिशेताम् = अतिक्रामतु । दृष्टान्तालङ्कारेणोक्तमर्थं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

समर्थयते—निजाऽमृतैरिति । इन्दुः = चन्द्रः, प्रजानां = जनानां, निजाऽमृतैः= स्वीयपीयूषैः, पीयूषतुल्यैः स्वकिरणैरिति भावः। लोचनसेचनात् = नयनसेकात्, पृथक् = अन्यत्, किं वा सृजति = किं करोति ? न किञ्चित्करोतीति भावः ॥ ५८ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) तुम कौन-सी मेरी प्रीति करनेकी इच्छा करते हो ? जो (प्रीति) मेरी आँखोंकी तुम्हारे दर्शनसे होनेवाली प्रीतिको भी मात करेगी। जैसे कि चन्द्रमा अपनी अमृततुल्य किरणोंसे नेत्रोंको सेचन करनेसे अतिरिक्त और क्या करता है ? ॥ ५८ ॥

टिप्पणी—मत्प्रीतिं = मम प्रीतिः, ताम् (ष० त०)। आधित्ससि = आङ् + धाञ् + सन् + लट् + सिप्। मदक्ष्णोः=मम अक्षिणी, तयोः (ष० त०)। त्वदीक्षामुदं = तव ईक्षा त्वदीक्षा (ष० त०), तस्या मुत्, ताम् (ष० त०)। अतिशेताम् = अति + शीङ् + लोट् + त। निजाऽमृतैः=निजस्य अमृतानि, तैः (ष० त०)। लोचनसेचनात्=लोचनयोः सेचनं, तस्मात् (स० त०), "पृथक्" के योगमें "पृथग्विनानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्" इससे पञ्चमी। सृजति =सृज+ लट् + तिप्। इस पद्यमें दृष्टान्त अलङ्कार है ॥ ५८ ॥

मनस्तु यं नोज्झति जातु, यातु मनोरथः कण्ठपथं कथं सः ?।
का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाऽभिलाषं कथयेदभिज्ञा ?॥ ५९ ॥

अन्वयः—मनः यं जातु न उज्झति, स मनोरथः कण्ठपथं कथं यातु ? अभिज्ञा का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाऽभिलाषं कथयेत् ? अथवा—हे द्विज ! अभिज्ञा का नाम बाला राजपाणिग्रहाऽभिलाषं कथयेत् ? ॥ ५९ ॥

व्याख्या—मनः=मम चित्तं, यं=मनोरथं, जातु = कदाऽपि, न उज्झति = न जहाति, सः=तादृशः, मनोरथः = अभिलाषः। कण्ठपथं = गलमार्गं, वाग्विषयम्, उपकण्ठदेशं च, कथं = केन प्रकारेण, यातु = प्राप्नोतु। मनसा प्रतिवद्धस्य मनोरथस्य कथं कण्ठपथे सञ्चरणमिति भावः। यतः—अभिज्ञा = विवेकिनी, का नाम बाला का नाम स्त्री, द्विजराजपाणिग्रहाऽभिलाषं = द्विजराजस्य (चन्द्रमसः) पाणिना (करेण) ग्रहे (ग्रहणे) अभिलाषं (मनोरथम्) कथयेत् = ब्रूयात्। अथवा हे द्विज = हे पक्षिन् !, का नाम बाला, राजपाणिग्रहाऽभिलाषं= नलपाणिग्रहणेच्छां, कथयेत् = ब्रूयात्। तथा च दुष्प्राप्यजनाऽभिलाषश्चन्द्रपाणिग्रहणसदृशः उपहासस्थानभूतः (सन्) लज्जावत्या कुमार्या कथं वक्तुं शक्य इति भावः ॥ ५९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—मेरा चित्त जिस (मनोरथ) को कभी भी नहीं छोड़ता है, वह मनोरथ कैसे कण्ठमार्ग (वचनविषय) को प्राप्त होगा ? विवेकवाली कौन-सी स्त्री चन्द्रमाके पाणिग्रहणके अभिलाषको कहेगी ? (अथवा) हे हंस ! विवेकवाली कौन-सी स्त्री राजा (नल) के पाणिग्रहणके अभिलाषको कहेगी ? ॥ ५९ ॥

टिप्पणी—कण्ठपथं = कण्ठस्य पन्थाः कण्ठपथः तम् (ष० त०)। "ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे" इससे समासान्त अ प्रत्यय। द्विजराजपाणिग्रहाऽभिलाषं = द्विजानां राजा द्विजराजः (ष० त०), तस्य पाणिः (ष० त०), तेन ग्रहः (तृ० त०), तस्मिन् अभिलाषः, तम् (स० त०) अथवा राजपाणिग्रहाऽभिलाषं=राज्ञः पाणिग्रहः (ष० त०), तस्मिन् अभिलाषः तम् (स० त०)। कथयेत् = कथ+णिच्+विधिलिङ् + तिप् इस पद्यमें श्लेष अलङ्कार है ॥ ५९ ॥

वाचं तदीयां परिपीय मृद्वीं मृद्वीकया तुल्यरसां स हंसः ।
तत्याज तोषं परपुष्टघुष्टे, घृणां च वीणाक्वणिते वितेने ॥ ६० ॥

अन्वयः—स हंसः मृद्वीकया तुल्यरसां मृद्वीं तदीयां वाचं परिपीय परपुष्टघुष्टे, तोषं तत्याज; वीणाक्वणिते च घृणां वितेने ॥ ६० ॥

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः, हंसः = मरालः मृद्वीकया = द्राक्षया, तुल्यरसां समानस्वादां, मधुराऽर्थामिति भावः। मृद्वीं = कोमलां, तदीयां = दमयन्तीसम्बन्धिनीं, वाचं = वाणीं, परिपीय = अत्यादरात् आकर्ण्य, परपुष्टघुष्टे = कोकिलकूजिते, तोषं = प्रीतिं, तत्याज = त्यक्तवान्, वीणाक्वणिते च = वल्लकीनिनादे च, घृणां = जुगुप्सां, वितेने = चकार ॥ ६० ॥

अनुवादः—उस हंसने अंगूरके समान मधुर और कोमल दमयन्तीकी वाणीको अत्यन्त आदरसे सुनकर कोयलके कूजितमें प्रीति छोड़ दी और वीनके शब्दमें भी घृणा की ॥ ६० ॥

टिप्पणी—मृद्वीकया = "मृद्वीका गोस्तनी द्राक्षा" इत्यमरः। तुल्यरसां = तुल्यो रसो यस्याः सा, ताम् (बहु०)। मृद्वीं = मृदु शब्दसे "वोतो गुणवचनात्" इससे ङीप्। तदीयां = तस्य इयं तदीया, ताम्, तद्+छ (ईय)+टाप् + अम्। परिपीय = परि+पीङ्+क्त्वा (ल्यप्)। परपुष्टघुष्टे = परेण पुष्टः (तृ० त०)। "वनप्रियः परभृतः कोकिलः पिक इत्यपि।" इत्यमरः। परपुष्टेन घुष्टं, तस्मिन् (तृ० त०)। तत्याज = त्यज+लिट्+तिप्। वीणाक्वणिते=वीणायाः क्वणितं, तस्मिन् (ष० त०) घृणां = "घृणा जुगुप्सा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृपयोः" इति विश्वः। वितेने = वि+तन्+लिट्+त। इस पद्यमें प्रतीप अलङ्कार है॥ ६०॥

मन्दाक्षमन्दाऽक्षरमुद्रमुक्त्वा तस्यां समाकुञ्चितवाचि हंसः।
तच्छंसिते किञ्चन संशयालुर्गिरा मुखाऽम्भोजमयं युयोज॥ ६१॥

अन्वयः—अयं हंसो मन्दाक्षमन्दाऽक्षरमुद्रम् उक्त्वा तस्यां समाकुञ्चितवाचि (सत्याम्) तच्छंसिते किञ्चन संशयालुः मुखाऽम्भोजं गिरा युयोज॥ ६१॥

व्याख्या—मन्दाक्षमन्दाऽक्षरमुद्रं = लज्जास्वल्पवर्णविन्यासम् (यथा तथा), उक्त्वा = अभिधाय, तस्यां = दमयन्त्यां, समाकुञ्चितवाचि = नियमितवचनायां सत्याम्, तच्छंसिते = दमयन्तीभाषिते, किञ्चन = किञ्चित्, संशयालुः= सन्दिहानः सन्, मुखाऽम्भोजं = वदनकमलं, गिरा = वाण्या, युयोज = युक्तवान्, मुखेन वाणीमुवाचेति भावः॥ ६१॥

अनुवादः—लज्जासे वर्णविन्यासको मन्द करके भाषण कर दमयन्तीके चुप रह जानेपर उनके वचनमें कुछ सन्देह करते हुए उस हंसने मुखकमलको वाणीसे युक्त किया अर्थात् कहा॥ ६१॥

टिप्पणी—मन्दाक्षमन्दाऽक्षरमुद्रं = मन्दाक्षेण मन्दा (तृ० त०)। अक्षराणां मुद्रा (ष० त०)। मन्दाक्षमन्दा अक्षरमुद्रा यस्मिन् (कर्मणि) तद्यथा तथा (बहु०)। उक्त्वा = ब्रूञ् (वच्)+क्त्वा। समाकुञ्चितवाचि = समाकुञ्चिता वाक् यया सा, तस्याम् (बहु०)। तच्छंसिते = तस्याः शंसितं, तस्मिन् (ष० त०)। संशयालुः = संशेते इति संशयालुः, सम्-उपसर्गपूर्वक "शीङ् स्वप्ने" धातुसे "स्पृहि गृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्" इस सूत्रमें "शीङो वाच्यः" इस वार्तिकसे आलुच् प्रत्यय। मुखाऽम्भोजं = मुखम् अम्भोजम् इव तत्, "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे" इससे समास। युयोज= युज+लिट्+तिप् (णल्)। इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है॥ ६१॥

करेण वाञ्छेव विधुं विधर्तुं यमित्थमात्थादरिणी, तमर्थम्।
पातुं श्रुतिभ्यामपि नाऽधिकुर्वे वर्णं श्रुतेर्वर्ण इवाऽन्तिमः किम्?॥ ६२॥

अन्वयः—(हे भैमि!) करेण विधुं विधर्तुं वाञ्छा इव यम् अर्थम् इत्थम् आदरिणी (सती) आत्थ, तम् अर्थम् अन्तिमो वर्णः श्रुतेः वर्णम् इव श्रुतिभ्यां पातुम् अपि न अधिकुर्वे किम्?॥ ६२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—(हे भैमि !) करेण=हस्तेन, विधुं=चन्द्रमसं, विधर्तुं=ग्रहीतुं, वाञ्छा इव=इच्छा इव, यम्, अर्थम्=अभिधेयम् "द्विजराजपाणिग्रहाऽभिलाषम्" इत्याद्युक्तप्रकारमित्यर्थः । आदरिणी=आदरयुक्ता सती, आत्थ = ब्रवीषि, तं= तादृशम्, अर्थम्=अभिधेयम्, अन्तिमः=चरमः, वर्णः=शूद्र इत्यर्थः । श्रुतेः=वेदस्य, वर्णम् इव = अक्षरम् इव, श्रुतिभ्यां = कर्णाभ्यां, पातुम् अपि = पानं कर्तुम् अपि, श्रोतुम् अपीति भावः। न अधिकुर्वे किम् ? = न अधिकारी भवामि किम् ? अधिकारी अस्म्येवेत्यर्थः । सोऽर्थो वक्तव्य इति भावः ॥ ६२ ॥

अनुवाद:—(हे राजकुमारि !) हाथसे चन्द्रमाको ग्रहण करनेकी इच्छाके समान जिस अर्थको इस प्रकार आदरयुक्त होकर आप कहतीं हैं, उस अर्थको अन्तिम वर्ण (शूद्र) जैसे वेदके वर्णको सुननेके लिए अधिकारी नहीं है वैसे मैं भी कानोंसे सुननेको भी अधिकारी नहीं हूँ क्या ? ॥ ६२ ॥

टिप्पणी—विधर्तुं = वि+धृञ्+तुमुन्। आदरिणी = आदर + इनि+ ङीप् । नारायण पण्डितने "आदरिणी" ऐसा पाठ भी माना है उस पक्षमें निर्भया यह अर्थ है, अदर+इनि+ङीप् । आत्थ = ब्रू (आह) + लट् + सिप् । अन्तिमः = अन्ते भवः, 'अन्त' शब्दसे "अन्ताच्चेति वक्तव्यम्" इस वार्तिकसे डिमच् प्रत्यय । "स्त्रीशूद्रौ नाऽधीयेताम्" इस उक्तिके अनुसार स्त्री और शूद्रको वेदके अध्ययनमें अधिकार न होनेसे सुननेमें भी अधिकार नहीं है यह तात्पर्य है । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ६२ ॥

अर्थाप्यते वा किमियद्भवत्या ? चित्तैकपद्यामपि वर्तते यः ।
यत्राऽन्धकारः खलु चेतसोऽपि जिह्मेतरैर्ब्रह्म तदप्यवाप्यम् ॥ ६३ ॥

अन्वयः—(हे भैमि !) भवत्या किं वा इयत् अर्थाप्यते ? यः चित्तैकपद्याम् अपि वर्तते । यत्र चेतसोऽपि अन्धकारः, तद् ब्रह्म अपि जिह्मेतरैः अवाप्यं खलु ॥ ६३ ॥

व्याख्या—ननु अत्यन्तदुर्लभत्वात्तमर्थं वक्तुं जिह्मेमीत्याशङ्क्याह-अर्थाप्यत इति । (हे भैमि !) भवत्या = त्वया, किंवा, इयत् = एतावत् यथा तथा । अर्थाप्यते = द्विजराजपाणिग्रहवत् अतिदुर्लभत्वेन आख्यायते । यः = अर्थः, चित्तैकपद्याम् अपि = मनोमार्गे अपि, वर्तते = विद्यते, अतः स कथं दुर्लभ इति भावः । तथाहि, यत्र=यस्मिन् ब्रह्मणि, चेतसोऽपि = मनसोऽपि, अन्धकारः = अग्राह्यत्वात्प्रतिबन्धः "अवाङ्मनसगोचरम्" "यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मनसा सह" इति श्रुतित इति भावः। तत् = तादृशं, दुर्लभमिति भावः, ब्रह्म अपि = शुद्धचैतन्यरूपं वस्त्वपि, जिह्मेतरैः=अकुटिलैः, कुशलबुद्धिभिरिति भावः। अवाप्यं = प्राप्यं, खलु = निश्चयेन, कुशलधीभिरमनोगोचरं ब्रह्माऽपि प्राप्यते, मनोगतं वस्तु प्राप्यत इति किं वक्तव्यमिति भावः ॥ ६३ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) जो आपके चित्तरूप मार्गमें है उसे क्यों आप दुर्लभरूप कह रही हैं, जहाँ चित्तका भी अन्धकार (प्रतिबन्ध) है वह ब्रह्म भी कुशल बुद्धिवाले पुरुषसे प्राप्य है॥ ६३ ॥

टिप्पणी—अर्थाप्यते = अर्थः क्रियते, 'अर्थ' शब्दसे "तत्करोति तदाचष्टे" इससे णिच् प्रत्यय होकर "अर्थवेदयोरप्यापुग्वक्तव्यः" इससे आपुक् होकर कर्ममें लट्। चित्तैकपद्याम्=एकः पादो यस्यां सा एकपदी (बहु०), "कुम्भपदीषु च" इससे निपातन, "सरणिः पद्धतिः पद्या वर्तन्येकपदीति च।" इत्यमरः। चित्तम् एव एकपदी, तस्याम् (रूपक०)। जिह्मेतरैः = जिह्मात् इतरे, तैः (प० त०)। अवाप्यम् = अवाप्तुं योग्यम्, अव+आप्+यत्। इस पद्यमें अर्थापत्ति अलङ्कार है ॥ ६३ ॥

ईशाऽणिमैश्वर्यविवर्तमध्ये ! लोकेशलोकेशयलोकमध्ये।
तिर्यञ्चमप्यञ्च मृषाऽनभिज्ञरसज्ञतोपज्ञसमज्ञमज्ञम् ॥ ६४ ॥

अन्वयः—हे ईशाऽणिमैश्वर्यविवर्तमध्ये ! लोकेशलोकेशयलोकमध्ये अज्ञं तिर्यञ्चम् (माम्) अपि मृषाऽनभिज्ञरसज्ञतोपज्ञसमज्ञम् अञ्च ॥ ६४ ॥

व्याख्या—हे ईशाऽणिमैश्वर्यविवर्तमध्ये = हे ईश्वराऽणुत्वविभूतिरूपान्तराऽवलग्ने !, हे कृशोदरि ! इति भावः। लोकेशलोकेशयलोकमध्ये = ब्रह्मलोकवासिजनमध्ये, अज्ञम्=अनभिज्ञं, मूढमित्यर्थः। तिर्यञ्चम् अपि=पक्षिणामपि च, मामिति शेषः। मृषाऽनभिज्ञरसज्ञतोपज्ञसमज्ञम् = अनृताऽनभिज्ञरसनताऽऽद्यज्ञानयशस्विनम्, अञ्च = विद्धि, मां सत्यवादिनं जानीहीति भावः ॥ ६४ ॥

अनुवादः—हे ईश्वरके अणिमा ऐश्वर्यके समान सूक्ष्म कमरवाली ! ब्रह्माजीके लोकमें रहनेवाले प्राणियोंके मध्यमें अनभिज्ञ और पक्षी भी मुझको झूठमें अनभिज्ञ जानकारीरूप आदिज्ञान होनेसे यशवाले अर्थात् सत्यवादी जानिए ॥ ६४ ॥

टिप्पणी—ईशाऽणिमैश्वर्यविवर्तमध्ये = अणोर्भावः अणिमा, अणु+इमनिच्। ईशस्य अणिमा (ष० त०), स च तत् ऐश्वर्यम् (क० धा०),

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तस्य विवर्तः (तत्त्वतः अन्यथाभावः), (ष० त०), ईशाऽणिमैश्वर्यविवर्तो मध्यो यस्याः सा, तत्सम्बुद्धौ (बहु०)। ईश्वरकी आठ योगसिद्धियां जिन्हें ऐश्वर्य कहते हैं, वे ये हैं—

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्वं चाऽष्टसिद्धयः॥

अर्थात् अणिमा (बहुत सूक्ष्म होना), महिमा (बहुत बड़ा होना), गरिमा (अत्यन्त गुरुता), लघिमा (अत्यन्त लघुता), प्राप्ति (पदार्थको पानेकी शक्ति), प्राकाम्य (सब अभिलाषोंको पानेकी शक्ति), ईशित्व (उत्कृष्ट सामर्थ्य) और वशित्व (उत्कृष्ट स्वातन्त्र्य)। लोकेशलोकेशयलोकमध्ये=लोकानाम् ईशः (ष०त०), "हिरण्यगर्भो लोकेशः स्वयम्भूश्चतुराननः।" इत्यमरः। लोकेशस्य लोकः (ष० त०), लोकेशलोके शेरते इति लोकेशलोकेशयाः, लोकेशलोक—उपपदपूर्वक "शीङ् स्वप्ने" धातुसे "अधिकरणे शेतेः" इस सूत्रसे अच् प्रत्यय और "शयवासवासिष्वकालात्" इस सूत्रसे अलुक् समास। लोकेशलोकेशयाश्च ते लोकाः (क० धा०), "लोकस्तु भुवने जने" इत्यमरः। लोकेशलोकेशयलोकानां मध्यं, तस्मिन् (ष० त०)। मृषाऽनभिज्ञरसज्ञतोपज्ञसमज्ञं = "मृषा" यह अव्यय है। मृषा अनभिज्ञा (ष० त०) मृषाऽनभिज्ञा रसज्ञा यस्य सः (बहु०), "रसज्ञा रसना जिह्वा" इत्यमरः। मृषाऽनभिज्ञरसज्ञस्य भावः, मृषाऽनभिज्ञ+रसज्ञ+तल्+टाप्। उपज्ञायते इति उपज्ञा, उप+उपसर्गपूर्वक 'ज्ञा' धातुसे "आतश्चोपसर्गे" इससे अङ् प्रत्यय और टाप् प्रत्यय। "उपज्ञा ज्ञानमाद्यं स्यात्" इत्यमरः। मृषाऽनभिज्ञताया उपज्ञा मृषाऽनभिज्ञरसज्ञतोपज्ञम् (ष० त०), "उपज्ञोपक्रमं तदाद्याचिख्यासायाम्" इससे नपुंसकलिङ्गता। समैर्ज्ञायते इति समज्ञा, सम + ज्ञा+ अङ्+ टाप्, पूर्वसूत्रसे अङ् प्रत्यय। "यशः कीर्तिः समज्ञा च" इत्यमरः। मृषाऽनभिज्ञरसज्ञतोपज्ञं समज्ञा यस्य सः तम् (बहु०)। अञ्च = अञ्च+लोट्+सिप्॥ ६४॥

मध्ये श्रुतीनां प्रतिवेशिनीनां सरस्वती वासवती मुखे नः।
ह्रियेव ताभ्यश्चलतीयमद्धापथान्न संसर्गगुणेन बद्धा॥ ६५॥

अन्वयः—प्रतिवेशिनीनां श्रुतीनां मध्ये वासवती इयं नः मुखे सरस्वती संसर्गगुणेन बद्धा (सती) ताभ्यः ह्रिया इव अद्धापथात् न चलति॥ ६५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—प्रतिवेशिनीनां = निकटगृहवासिनीनां, श्रुतीनां = वेदानां, ब्रह्ममुखस्थानामिति शेषः। मध्ये = अन्तरे, वासवती = निवसन्ती, इयं = निकटवर्तिनी, नः = अस्माकं, मुखे = वदने, सरस्वती = वाणी, संसर्गगुणेन = सङ्गतिगुणेन, वद्धा = नद्धा (सती), ताभ्यः = श्रुतिभ्यः, ह्रिया इव = लज्जया इव, अद्धापथात् = सत्यमार्गात्, न चलति = न गच्छति, "संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति" इति न्यायादिति भावः ॥ ६५ ॥

अनुवादः—पड़ोसिन श्रुतियोंके बीचमें रहनेवाली यह हमलोगोंकी वाणी संगतिरूप गुणसे वद्ध होती हुई उन श्रुतियोंसे मानों लज्जा कर सत्यमार्गसे विचलित नहीं होती है ॥ ६५ ॥

टिप्पणी—प्रतिवेशिनीनां=प्रतिविशन्तीति प्रतिवेशिन्यः, तासाम्, प्रति+विश्+णिनिः+ङीप्+आम् (उपपद०)। वासवती=वास+मतुप्+ङीप्+सुः। सरस्वती="गीर्वाग्वाणी सरस्वती" इत्यमरः। संसर्गगुणेन=संसर्ग एव गुणः (धर्मः तन्तुश्च), तेन (रूपक०)। बद्धा = बन्ध+क्त+टाप्+सुः। अद्धापथात्= अद्धा पन्थाः अद्धापथः, तस्मात् (ष० त०)। "तत्त्वे त्वद्धाऽञ्जसा द्वयम्" इत्यमरः। "अद्धा" यह अव्यय है। "ऋक्पूरब्धूः पथामानक्षे" इससे समासाऽन्त अ प्रत्यय। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ६५ ॥

पर्यङ्कताऽऽपन्नसरस्वदङ्कां लङ्कापुरीमप्यभिलाषि चित्तम्।
कुत्राऽपि चेद्वस्तुनि ते प्रयाति तदप्यवेहि स्वशये शयालु ॥ ६६ ॥

अन्वयः—कुत्र अपि वस्तुनि अभिलाषि ते चित्तं पर्यङ्कतापन्नसरस्वदङ्कां लङ्कापुरीम् अपि प्रयाति चेत्, तत् अपि स्वशये शयालु अवेहि ॥ ६६ ॥

व्याख्या—कुत्र अपि = कस्मिन् अपि, द्वीपान्तरस्थेऽपीति भावः। वस्तुनि= पदार्थे, अभिलाषि = साऽभिलाषं, ते = तव, चित्तं = मनः (कर्तृ), पर्यङ्कताऽऽपन्नसरस्वदङ्कां = मञ्चत्वप्राप्तसमुद्रचिह्नां, लङ्कापुरीम् अपि = सिंहलद्वीपनगरीम् अपि, प्रयाति चेत् = गच्छति यदि, तत् = वस्तु, अपि, स्वशये= निजहस्ते, शयालु = स्थितम्, अवेहि = जानीहि ॥ ६६ ॥

अनुवादः—किसी भी वस्तुमें अभिलाष करनेवाला आपका चित्त, पलंगके समान समुद्ररूप चिह्नवाली लङ्कापुरीमें भी जाता है तो उस (वस्तु)को भी आप अपने हाथमें मौजूद समझिए ॥ ६६ ॥

टिप्पणी—अभिलाषि = अभि+लष+णिनिः। पर्यङ्कताऽऽपन्नसरस्वदङ्का= पर्यङ्कस्य भावः पर्यङ्कता, पर्यङ्क+तल्+टाप्। पर्यङ्कताम् आपन्नः, "द्वितीया

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

श्रिताऽतीतपतितगताऽत्यस्तप्राप्ताऽऽपन्नैः" इस सूत्रसे द्वि० त० । पर्यङ्कतापन्नः सरस्वान् अङ्को यस्याः सा, ताम् (बहु०)। लङ्कापुरीं = लङ्का चाऽसौ पुरी, ताम् (क० धा०) । स्वशये = स्वस्य शयः, तस्मिन् (ष० त०) । "पञ्च-शाखः शयः पाणिः" इत्यमरः । शयालु = शेत इति, शीङ्+आलुच् ॥ ६६ ॥

इतीरिता पत्त्ररथेन तेन ह्रीणा च हृष्टा च बभाण भैमी।
"चेतो नलङ्कामयते मदीयं, नाऽन्यत्र कुत्रापि च साऽभिलाषम्" ॥ ६७ ॥

अन्वयः—तेन पत्त्ररथेन इति ईरिता भैमी ह्रीणा हृष्टा च (सती) बभाण—"मदीयं चेतो लङ्कां न अयते (पक्षान्तरे श्लेषेण) मदीयं चेतो नलं कामयते । अन्यत्र कुत्र अपि साऽभिलाषं न" ॥ ६७ ॥

व्याख्या—तेन=पूर्वोक्तेन, पत्त्ररथेन=हंसेन, इति = इत्थम्, ईरिता =उक्ता, भैमी = दमयन्ती, ह्रीणा = लज्जिता, स्वाऽभिप्रायकथनसङ्कोचादिति शेषः । हृष्टा च = प्रसन्ना च, उपायलाभादिति शेषः । बभाण = जगाद । मदीयं = मामकीनं, चेतः = चित्तं, लङ्कां = सिंहलद्वीपपुरीं, न अयते = नो गच्छति । (पक्षान्तरे श्लेषेण)—किन्तु नलं = नैषधं, कामयते = इच्छति । अन्यत्र = अन्यस्मिन्, कुत्र अपि = कस्मिन् अपि, वस्तुनीति शेषः । साऽभिलाषम् = इच्छुकं, न=नो वर्तते ॥ ६७ ॥

अनुवादः—उस हंसके ऐसा कहने पर दमयन्तीने लज्जित और प्रसन्न होकर कहा—"मेरा चित्त लङ्का नहीं जाता है", (पक्षान्तरमें श्लेषसे) "मेरा चित्त नलको चाहता है, और किसी भी वस्तुमें अभिलाष नहीं करता है" ॥ ६७ ॥

टिप्पणी—पत्त्ररथेन = पत्त्रं (पक्षः) रथो यस्य सः, तेन (बहु०), "पतत्पत्त्ररथाऽण्डजाः" इत्यमरः । ह्रीणा=ह्री+क्त+टाप्, "नुदविदोन्दत्राघ्रा-ह्रीभ्योऽन्यतरस्याम्" इस सूत्रसे निष्ठा तकारके स्थानमें विकल्पसे नकार । हृष्टा+हृष+क्त+टाप् । बभाण=भण+लिट्+तिप् (णल्) । अयते=अय +लट्+त । कामयते = कम्+णिङ्+लट्+त । साऽभिलाषम् = अभिलाषेण सहितम् (तुल्ययोगबहु०) । इस पद्यमें श्लेष अलङ्कार है ॥ ६७॥

विचिन्त्य बालाजनशीलशैलं लज्जानदीमज्जदनङ्गनागम् ।
जगाद विस्पष्टमभाषमाणामेनां स चक्राङ्गपतङ्गशक्रः ॥ ६८ ॥

अन्वयः—विस्पष्टम् अभाषमाणाम् एनां स चक्राङ्गपतङ्गशक्रो बालाजनशील-शैलं लज्जानदीमज्जदनङ्गनागं विचिन्त्य जगाद ॥ ६८ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—विस्पष्टं = सुव्यक्तम्, अभाषमाणाम् = न वदन्तीं, श्लेषोक्त्या सन्दिग्धमेव भाषमाणामिति भावः। एनां = दमयन्तीं, सः = पूर्वोक्तः, चक्राङ्ग-पतङ्गशक्रः = हंसपक्षिश्रेष्ठः, बालाजनशीलशैलं = मुग्धाऽङ्गनास्वभावपर्वतं, लज्जानदीमज्जदनङ्गनागं = त्रपासरिद्ब्रुडत्कामगजं, विचिन्त्य = विचार्य, जगाद = उवाच, लज्जापरित्यागार्थं वक्ष्यमाणवाक्यमुवाचेति भावः प्रकाश-व्याख्यायाम् "आचष्टे" तिपाठः तस्य उक्तवानित्यर्थः ॥ ६८ ॥

अनुवादः—स्पष्ट रूपसे भाषण न करनेवाली दमयन्तीको उस हंसश्रेष्ठने मुग्धा स्त्रीके स्वभावरूप पर्वतमें लज्जारूप नदीमें कामदेवरूप हाथी डूब रहा है ऐसा विचार कर कहा ॥ ६८ ॥

टिप्पणी—विस्पष्टम् = यह भाषण क्रियाका विशेषण है। अभाषमाणां = भाषत इति भाषमाणा, भाष + लट् + शानच् + टाप्। न भाषमाणा, ताम् (नञ्०), चक्राङ्गपतङ्गशक्रः = चक्राङ्गश्च ते पतङ्गाः (क० धा०)। "हंसास्तु श्वेतगरुतश्चक्राङ्गा मानसौकसः।" इति "पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च" इत्यप्यमरः। चक्राङ्गपतङ्गानां शक्रः (ष० त०)। बालाजनशीलशैलं=बाला चाऽसौ जनः (क० धा०), बालाजनस्य शीलम् (ष० त०)। तदेव शैलः, तम् (रूपक०)। लज्जानदीमज्जदनङ्गनागं = लज्जा एव नदी (रूपक०)। अनङ्ग एव नागः (रूपक०)। मज्जन् अनङ्गनागो यस्य सः (बहु०)। लज्जानद्यां मज्जदनङ्गनागः, तम् (स० त०)। विचिन्त्य = वि + चिन्त + णिच् + क्त्वा (ल्यप्। जगाद=गद + लिट् + तिप्। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ ६८ ॥

> नृपेण पाणिग्रहणे स्पृहेति नलं मनः कामयते ममेति।
> आश्लेषि न श्लेषकवेर्भवत्याः श्लोकद्वयाऽर्थः सुधिया मया किम् ? ॥६९॥

अन्वयः—श्लेषकवेः भवत्याः नृपेण पाणिग्रहणे स्पृहा इति मम मनो नलं कामयते इति श्लोकद्वयाऽर्थः सुधिया मया न आश्लेषि किम् ? (आश्लेषि एव) ॥ ६९ ॥

व्याख्या—(हे राजकुमारि !) श्लेषकवेः = श्लेषभङ्ग्या कवयित्र्याः, श्लिष्टशब्दप्रयोक्त्र्या इति भावः। भवत्याः = तव, नृपेण = राज्ञा, नलेन कर्त्रा, पाणिग्रहणे = करपीडने, स्पृहा = अभिलाषः, इति = एवं, "का नाम बाला० (३–५९), "चेतो नलं कामयते" (३–६७) श्लोकद्वयाऽर्थः = पद्यद्वितयाऽ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

भिधेयः, सुधिया = विदुषा, मया = हंसेन, न आश्लेषि किं = न अग्राहि किम् ? गृहीत एवेति भावः ॥ ६९ ॥

अनुवादः—हे राजकुमारि ! "श्लेषसे कविता बनानेवाली आपकी नृप (राजा) नलके साथ पाणिग्रहणमें स्पृहा (अभिलाष) है (३–५९) और मेरा मन नलकी कामना करता है (३–६७) ऐसा दो श्लोकोंका अर्थ क्या मैंने नहीं जाना ? (जाना है) ॥ ६९ ॥

टिप्पणी—श्लेषकवेः = श्लेषेण कवेः (तृ० त०)। पाणिग्रहणे = पाणेः ग्रहणं, तस्मिन्, (शेषषष्ठी० तत्पु०)। कामयते = कमु + णिङ् + लट् + त। श्लोकद्वयाऽर्थः = श्लोकयोः द्वयं (ष० त०), तस्य अर्थः (ष० त०)। सुधिया = सुष्ठु ध्यायतीति सुधीः, तेन, सु–उपसर्गपूर्वक "ध्यै चिन्तायाम्" इस धातुसे क्विप् प्रत्यय और सम्प्रसारण (उपपद०)। आश्लेषि = आङ् + श्लिष + लुङ् (कर्ममें) + त ॥ ६९ ॥

> त्वच्चेतसः स्थैर्यविपर्ययं तु संभाव्य भाव्यस्मि तदज्ञ एव।
> लक्ष्ये हि बालाहृदि लोलशीले दराऽपराद्धेषुरपि स्मरः स्यात् ॥ ७० ॥

अन्वयः—तु त्वच्चेतसः स्थैर्यविपर्ययं संभाव्य तदज्ञ एव भावी अस्मि। हि लोलशीले बालाहृदि लक्ष्ये स्मरः अपि दराऽपराद्धेषुः स्यात् ॥ ७० ॥

व्याख्या—तु=किन्तु, "नृपेण पाणिग्रहणे स्पृहा" "मम मनो नलं कामयते" इति ज्ञानेऽपीति भावः। त्वच्चेतसः = भवन्मनसः, स्थैर्यविपर्ययम् = अस्थिरत्वं, संभाव्य = आशङ्क्य, तदज्ञ एव = श्लोकद्वयाऽर्थाऽनभिज्ञ एव, भावी = भविष्यन्, अस्मि = भवामि। हि = यतः, लोलशीले = चञ्चलस्वभावे, बालाहृदि = तरुणीचित्ते, लक्ष्ये = शरव्ये, वेध्ये विषय इति भावः। स्मरोऽपि=कामदेवोऽपि, देवर्ष्यादिविजेता अपीति तात्पर्यम्। दराऽपराद्धेषुः = ईषच्च्युतसायकः, स्यात् = भवेत्, स्मरसदृशः कुशलधानुष्कोऽपि चञ्चललक्ष्ये अपराद्धपृषत्कः स्यादिति संभाव्यत इति भावः ॥ ७० ॥

अनुवादः—परन्तु "राजाके साथ पाणिग्रहणमें स्पृहा" "मेरा चित्त नलकी कामना करता है" ऐसे दो श्लोकोंका अर्थ जाननेपर भी आपके चित्तकी अस्थिरताकी आशङ्का करके मैं उस अर्थमें अनजान ही होनेवाला हूँ। क्योंकि चञ्चल स्वभाववाले तरुणीके चित्तरूप लक्ष्यमें कामदेव भी कुछ निशाना चूकने-वाला होगा ॥ ७० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—त्वच्चेतसः = तव चेतः, तस्य (ष० त०) स्थैर्यविपर्ययं = स्थैर्यस्य विपर्ययः, तम् (ष० त०) । संभाव्य = सं+भू+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) । तदज्ञः = तस्मिन् अज्ञः (स० त०) । भावी = भविष्यतीति, "भविष्यति गम्यादयः" इससे साधु, भू+णिनि+सुः । लोलशीले=लोलं शीलं यस्य तत्, तस्मिन् (बहु०) । बालाहृदि=बालाया हृत्, तस्मिन् (ष० त०) । लक्ष्ये = "लक्षं लक्ष्यं शरव्यं च" इत्यमरः । दराऽपराद्धेषुः=अपराद्धः इषुः यस्य सः (बहु०) । दरम् अपराद्धेषुः (सुप्सुपा०) इस पद्यमें अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है ॥ ७० ॥

महीमहेन्द्रः खलु नैषधेन्दुस्तद्बोधनीयः कथमित्थमेव ।
प्रयोजनं सांशयिकं प्रतीदृक्पृथग्जनेनेव स मद्विधेन ॥ ७१ ॥

अन्वयः—तत् महीमहेन्द्रः स नैषधेन्दुः इह ईदृक् सांशयिकं प्रयोजनं प्रति मद्विधेन पृथग्जनेन इव इत्थम् एव कथं बोधनीयः खलु ॥ ७१ ॥

व्याख्या—तत् = तस्मात्कारणात्, महीमहेन्द्रः = भूदेवेन्द्रः, सः = प्रसिद्धः, नैषधेन्दुः = नलचन्द्रः, इह = अस्मिन्विषये, ईदृक् = एतादृशं, सांशयिकं = संशयप्राप्तं, प्रयोजनं प्रति = कार्यं प्रति, मद्विधेन = मत्सदृशेन, प्रामाणिकजनेनेति भावः । पृथग्जनेन इव = मूर्खजनेन इव, इत्थम् एव = एतादृशम् एव, युक्ताऽयुक्तविचारमकृत्वैवेति भावः । कथं = केन प्रकारेण, बोधनीयः = ज्ञापनीयः, खलु = निश्चयेन ॥ ७१ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) उस कारणसे पृथिवीके इन्द्र, प्रसिद्ध, चन्द्र-के सदृश नल इस विषयमें ऐसे सन्दिग्ध कार्यके प्रति मेरे ऐसे प्रामाणिक जनसे मूर्ख मनुष्यके समान विना विचारके कैसे निवेदन किये जायँ ? ॥७१॥

टिप्पणी—महीमहेन्द्रः=महांश्चाऽसौ इन्द्रः (क०धा०), मह्यां महेन्द्रः (स० त०) । नैषधेन्दुः = नैषध इन्दुरिव, "उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याऽप्रयोगे" इससे समास । सांशयिकं = संशयम् आपन्नम्, "संशय" शब्दसे "संशयमापन्नः" इस सूत्रसे ठक् (इक) प्रत्यय और "किति च" इससे आदिवृद्धि । "सांशयिकः संशयाऽऽपन्नमानसः" इत्यमरः । मद्विधेन = मम इव विधा (प्रकारः) यस्य, तेन (व्यधिकरणबहु०) । पृथग्जनेन="पृथग्जनः स्मृतो नीचे मूर्खे च" इति विश्वः । बोधनीयः = बोधयितुं योग्यः, बुध+णिच्+अनीयर् । इस पद्यमें उपमा अलङ्कार है ॥ ७१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पितुर्नियोगेन निजेच्छया वा युवानमन्यं यदि वा वृणीषे ।
त्वदर्थमर्थित्वकृतिप्रतीतिः कीदृङ् मयि स्यान्निषधेश्वरस्य ? ॥ ७२ ॥

अन्वयः—पितुः नियोगेन वा निजेच्छया अन्यं युवानं वृणीषे यदि, तदा निषधेश्वरस्य मयि त्वदर्थम् अर्थित्वकृतिप्रतीतिः कीदृक् स्यात् ? ॥ ७२ ॥

व्याख्या—अविचार्य बोधने दोषं प्रतिपादयति पितुरिति । (हे राजकुमारि !) पितुः = जनकस्य, भीमभूपतेः, नियोगेन = आज्ञया, वा = अथवा, निजेच्छया = स्वेच्छया, अन्यम् = अपरं, नलाद्भिन्नमित्यर्थः । युवानं = तरुणं, वृणीषे यदि = वृणोषि चेत्, तदा = तर्हि, निषधेश्वरस्य = नलस्य, मयि = हंसे विषये, त्वदर्थं = भवत्याः कृते इति भावः, अर्थित्वकृतिप्रतीतिः = याचकत्वप्रयत्नविश्वासः, याचनाविश्वास इति भावः । कीदृक् = कीदृशी, स्यात् = भवेत् । तस्मादसन्दिग्धं वाच्यमिति भावः ॥ ७२ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि!) पिताकी आज्ञासे वा अपनी इच्छासे आप दूसरे (नलसे भिन्न) जवानको वरण करेंगी तो महाराज नलका मेरे विषयमें आपके लिए याचनाका विश्वास (भरोसा) कैसा होगा ? ॥ ७२ ॥

टिप्पणी—निजेच्छया = निजस्य इच्छा, तया (ष० त०) । युवानं = "वयःस्थस्तरुणो युवा" इत्यमरः । वृणीषे = वृञ् + लट् + थास् । निषधेश्वरस्य = निषधानाम् ईश्वरः, तस्य (ष० त०) । मयि = विषयमें सप्तमी । त्वदर्थं = तुभ्यम् इदम् (च० त०) । अर्थित्वकृतिप्रतीतिः = अर्थिनो भावः, अर्थिन् + त्व । अर्थित्वस्य कृतिः (ष० त०) । तस्यां प्रतीतिः (स० त०) । स्यात् = अस् + विधि–लिङ् + तिप् ॥ ७२ ॥

त्वयापि किं शङ्कितविक्रियेऽस्मिन्नधिक्रिये वा विषये विधातुम् ।
इतः पृथक् प्रार्थयसे तु यद्यत् कुर्वे तदुर्वीपतिपुत्रि ! सर्वम् ॥ ७३ ॥

अन्वयः—हे उर्वीपतिपुत्रि ! वा त्वया अपि किं विधातुं शङ्कितविक्रिये अस्मिन् विषये अहम् अधिक्रिये ? । इतः पृथक् यत् प्रार्थयसे तत् सर्वं कुर्वे ॥७३॥

व्याख्या—हे उर्वीपतिपुत्रि = हे राजकुमारि !, वा = अथवा, त्वया अपि = भवत्या अपि, किं, विधातुं = कर्तुं, शङ्कितविक्रिये = संशयितविकारे, अस्मिन् = इह, विषये = वैवाहिकविषये, अहं = हंसः, अधिक्रिये = विनियुज्ये, अहमस्मिन् सन्दिग्धे वैवाहिकविषये न नियोज्य इति भावः । इतः = अस्मात्,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

विवाहसंपादनकार्यात्, पृथक् = अन्यत्, यत् यत् = कार्यं, प्रार्थयसे=उपयाचसे, तत्, सर्वं = सकलं, कार्यमिति शेषः, कुर्वे = करोमि ॥ ७३ ॥

अनुवादः—हे राजकुमारि ! आप भी क्या करनेके लिए विकारके संशयवाले इस वैवाहिक कार्यमें मुझे नियुक्त करती हैं ? इससे भिन्न जिस जिस कार्यको करनेके लिए आप प्रार्थना करेंगी, उन सबको मैं करूँगा ॥ ७३ ॥

टिप्पणी—उर्वीपतिपुत्रि=उर्व्याः पतिः (ष० त०), तस्य पुत्री, तत्सम्बुद्धौ (ष० त०), शङ्कितविक्रये = शङ्किता विक्रिया यस्मिन्, सः, तस्मिन् (बहु०)। अधिक्रिये = अधि + कृ + लट् (कर्ममें) + त। प्रार्थयसे = प्र + अर्थ + णिच् + लट् + थास् ॥ ७३ ॥

श्रवःप्रविष्टा इव तद्गिरस्ता विधूय वैमत्यधुतेन मूर्ध्ना ।
ऊचे ह्रिया विश्लथिताऽनुरोधा पुनर्धरित्रीपुरुहूतपुत्री ॥ ७४ ॥

अन्वयः—धरित्रीपुरुहूतपुत्री श्रवःप्रविष्टा इव तद्गिरः वैमत्यधुतेन मूर्ध्ना विधूय ह्रिया विश्लथिताऽनुरोधा (सती) पुनः ऊचे ॥ ७४ ॥

व्याख्या—धरित्रीपुरुहूतपुत्री= भूमहेन्द्रकुमारी, भैमीतिभावः। श्रवःप्रविष्टा इव = कृतकर्णप्रवेशा इव, न तु सम्यक् प्रविष्टा इति भावः। तद्गिरः = हंसवाचः, वैमत्यधुतेन =असम्मतिकम्पितेन, मूर्ध्ना = शिरसा, विधूय = निरस्य, प्रतिषिध्येत्यर्थः। ह्रिया = लज्जया कर्त्र्या, विश्लथिताऽनुरोधा = शिथिलिताऽनुसरणा, त्यक्तलज्जा सतीति भावः। पुनः = भूयः, ऊचे = उवाच ॥ ७४ ॥

अनुवादः—राजकुमारी दमयन्ती कानोंमें घुसे हुएके समान हंसके वचनोंको असम्मति (नामञ्जूरी) से कम्पित शिरसे निवारण कर लज्जाको छोड़कर फिर कहने लगीं ॥ ७४ ॥

टिप्पणी—धरित्रीपुरुहूतपुत्री = धरित्र्याः पुरुहूतः (ष० त०), तस्य पुत्री (ष० त०)। श्रवःप्रविष्टाः=श्रवसी प्रविष्टाः, ताः (द्वि० त०)। तद्गिरः= तस्य गिरः, ताः (ष० त०) वैमत्यधुतेन = विरुद्धा मतिर्विमतिः (गति०)। विमतेर्भावो वैमत्यम्, विमति + ष्यञ्। वैमत्येन धुतः, तेन (तृ० त०)। विधूय = वि + धूञ् + क्त्वा (ल्यप्)। ह्रिया = कर्तृपद। विश्लथिताऽनुरोधा= विश्लथितः अनुरोधः यस्याः सा (बहु०)। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ ७४ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मदन्यदानं प्रति कल्पना या वेदस्त्वदीये हृदि तावदेषा ।
निशोऽपि सोमेतरकान्तशङ्कामोङ्कारमग्रेसरमस्य कुर्याः ॥ ७५ ॥

अन्वयः—(हे हंस !) मदन्यदानं प्रति या एषा कल्पना त्वदीये हृदि वेदः तावत् । निशः अपि सोमेतरकान्तशङ्काम् अस्य ओङ्कारम् अग्रेसरं कुर्याः ॥ ७५ ॥

व्याख्या—(हे हंस !) मदन्यदानं प्रति = मदपरसमर्पणं प्रति, या, एषा = इयं, कल्पना = तर्कः, "पितुर्नियोगेने" इत्यादिरूप इति भावः । वेदः = श्रुतिः, तावत्एव । (तर्हि) निशः अपि = रात्रेः अपि, सोमेतरकान्तशङ्कां = चन्द्रभिन्नवल्लभकल्पनाम्, अस्य = पूर्वोक्तस्य वेदस्य, ओङ्कारं = प्रणवम्, अग्रेसरम् = आद्यं, कुर्याः = कुरु, पितुर्नियोगेन निजेच्छया वा मत्कर्तृकं नलेतरवरणं त्वं वेदरूपं (सत्यम्) मन्यसे यदि तर्हि रात्रेरपि चन्द्रेतरवल्लभ-कल्पनं, तस्य पूर्वोक्तस्य वेदस्य पुरोवर्तिनमोङ्कारं भावय, वेदस्य ओङ्कारपूर्वक-त्वादिति भावः । यथा निशायाश्चन्द्रेतरो वल्लभो न तथैव ममाऽपि नलेतर-वरणं न भविष्यति हृदयम् ॥ ७५ ॥

अनुवाद—(हे हंस !) नलको छोड़कर किसी दूसरेको मेरा दान होगा ऐसी कल्पना तुम्हारे हृदयमें वेद (सत्य) ही है, तो रात्रिका भी चन्द्रसे भिन्न कान्त है ऐसी शङ्काको उस वेदका आदिवर्ती प्रणव (ओङ्कार) बना डालो ॥ ७५ ॥

टिप्पणी—मदन्यदानं = अन्यस्मै दानम् अन्यदानम् (च० त०), मम अन्यदानं, तत् (ष० त०), "प्रति" के योगमें द्वितीया । त्वदीये = तव इदं त्वदीयं = तस्मिन्, युष्मद् (त्वत्) + छ (ईयः) । तावत् = "यावत्तावच्च साकल्येऽवधौ मानेऽवधारणे ।" इत्यमरः । निशः = "निशा" शब्दका "पद्दन्नो-मास्-हृन्निशसन्०" इत्यादि सूत्रसे निश् आदेश + ङस् । सोमेतरकान्तशङ्कां = सोमात् इतरः (प० त०), स चाऽसौ कान्तः (क० धा०), तस्य शङ्का, ताम् (ष० त०) । ओङ्कारम् = "ओङ्कारप्रणवौ समौ" इत्यमरः । अग्रेसरम् = अग्रे सरतीति अग्रेसरः, तम्, अग्रे + उपपदपूर्वक 'सृ' धातुसे "पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्तेः" इति सूत्रसे "अग्रे" इस एदन्तत्वका निपातन होकर ट प्रत्यय (उपपद०) । जैसे रात्रिका चन्द्रसे भिन्न कान्त नहीं है वैसे ही मेरे भी नलसे अन्य कान्त नहीं हैं, यह भाव है । इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ ७५ ॥

अरोचिनीमानसरामवृत्तेरनर्कसम्पर्कमतर्कयित्वा ।
मदन्यपाणिग्रहशङ्कितेयमहो ! महीयस्तव साहसिक्यम् ॥ ७६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—सरोजिनीमानसरागवृत्तेः अनर्कसम्पर्कम् अतर्कयित्वा तव इयं मदन्यपाणिग्रहशङ्किता महीयः साहसिक्यम् अहो ! ।। ७६ ।।

व्याख्या—सरोजिनीमानसरागवृत्तेः = कमलिनीमनोऽनुरागस्थितेः, कमलिन्यभ्यन्तराऽरुणताप्रवृत्तेश्च, अनर्कसम्पर्कं = सूर्येतरकान्तसम्बन्धम्, अतर्कयित्वा = अनूहित्वा, तव = भवतः, इयम् = एषा, मदन्यपाणिग्रहशङ्किता = मम नलेतरपाणिपीडनसांशयिकता, महीयः = महत्तरं, साहसिक्यं = साहसिकत्वम्, अहो = आश्चर्यम् ।। ७६ ।।

अनुवादः—(हे हंस !) कमलिनीके मनकी अनुरागस्थितिका अथवा कमलिनीके भीतरकी अरुणता-स्थितिका सूर्यसे भिन्न प्रियके सम्बन्धकी तर्कना न करके तुम्हारा यह मेरा नलसे भिन्न पुरुषके पाणिग्रहणकी शङ्का करना बहुत ही साहसका कर्म है, आश्चर्य है ! ।। ७६ ।।

टिप्पणी—सरोजिनीमानसरागवृत्तेः = मनसि भवो मानसः, मनस् + अण् । मानसश्चाऽसौ रागः (क० धा०) । तस्य वृत्तिः (ष० त०) । सरोजिन्या मानसरागवृत्तिः, तस्याः (ष० त०) । अनर्कसम्पर्कम् = न अर्कः अनर्कः (नञ्०) । अनर्केण सम्पर्कः, तम् (तृ० त०) । अतर्कयित्वा = न तर्कयित्वा (नञ्०) । मदन्यपाणिग्रहशङ्किता = पाणेः ग्रहः (ष० त०) अन्यस्य पाणिग्रहः (ष० त०) । अन्यपाणिग्रहं शङ्कते तच्छीलः अन्यपाणिग्रहशङ्की, अन्यपाणिग्रह + शकि + णिनि। (उपपद०) । अन्यपाणिग्रहशङ्किनो भावः अन्यपाणिग्रहशङ्किन् + तल् + टाप् । मम अन्यपाणिग्रहशङ्किता (ष० त०) । महीयः = अतिशयेन महत्, महत् + ईयसुन् । साहसिक्यम् = सहसा वर्तत इति साहसिकः, सहस् शब्दसे "ओजःसहोऽम्भसा वर्तते" इस सूत्रसे ठक् (इक) प्रत्यय । साहसिकस्य भावः कर्म वा, साहसिक + ष्यञ् । जैसे कमलिनीकी अनुरागवृत्ति सूर्य भिन्नसे हो नहीं सकती वैसे ही मेरा भी नलके सिवाय किसी दूसरेसे पाणिग्रहण नहीं होगा यह भाव है ।। ७६ ।।

साधु त्वयाऽतर्कि तदेकमेव स्वेनाऽनलं यत्किल संश्रयिष्ये ।
विनाऽमुना स्वात्मनि तु प्रहर्तुं मृषागिरं त्वां नृपतौ न कर्तुम् ।। ७७ ।।

अन्वयः—स्वेन अनलं संश्रयिष्ये (इति) यत् त्वया अतर्कि तत् एकम् एव साधु अतर्कि । तु अमुना विना स्वात्मनि प्रहर्तुम् (अनलं संश्रयिष्ये), नृपतौ त्वां मृषागिरं कर्तुम् अनलं न संश्रयिष्ये ।। ७७ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

व्याख्या—(हे हंस !) स्वेन = आत्मना, स्वेच्छयेति भावः। अनलं = नलादन्यं, "निजेच्छया वे"त्याकारकत्वद्वचनाऽनुसारादिति भावः। संश्रयिष्ये = आश्रयिष्ये, प्राप्स्यामीति भावः। इति, यत्, त्वया = भवता, अतर्कि = ऊहितं, तत्, एकम्, एव, साधु = समीचीनम्, अतर्कि = तर्कितं, तु = परन्तु, अमुना विना = नलेन विना, नलाऽभावे इति भावः। स्वात्मनि = निजशरीरे, प्रहर्तुं = हिंसितुम्, अनलम् = अग्नि, संश्रयिष्ये = आश्रयिष्ये, नृपतौ=राज्ञि, नले विषये, त्वां = भवन्तम् (उद्देश्यवाचकपदम्), मृषागिरम् = असत्यवाचं, कर्तुं = विधातुम्, अनलं = नलेतरं, न संश्रयिष्ये = न आश्रयिष्ये, नलाऽभावे प्राणांस्त्यक्ष्यामीति भावः ॥ ७७ ॥

अनुवादः—(हे हंस।) 'स्वेच्छासे अनल (नलसे भिन्न पुरुष) का आश्रय करूँगी "ऐसा जो तुमने तर्कना की वह एक ठीक तर्कना की। परन्तु नलके अलाभमें अपने शरीरको नष्ट करनेके लिए अनल (अग्नि) को प्राप्त करूँगी। राजा नलके विषयमें तुमको झूठा वनानेके लिए अनल (नलसे भिन्न पुरुष)-का आश्रय नहीं लूँगी ॥ ७७ ॥

टिप्पणी—अनलं = न नलः, तम् (नञ्०)। संश्रयिष्ये = सं+श्रि+लृट्+इट्। अतर्कि = तर्क+लुङ् (कर्ममें) + त। अमुना = "विना" पदके योगमें तृतीया। स्वात्मनि = स्वस्य आत्मा तस्मिन् (ष० त०), कर्मके अधिकरणत्वकी विवक्षामें सप्तमी। प्रहर्तुम् = प्र+हृञ्+तुमुन्। अनलं = "कृशानुः पावकोऽनलः" इत्यमरः। नृपतौ=नृणां पतिः, तस्मिन्(ष० त०), मृषागिरं = मृषा गीर्यस्य स मृषागीः, तम् (बहु०)। कर्तुं=कृ+तुमुन् ॥ ७७ ॥

मद्विप्रलभ्यं पुनराह यस्त्वां तर्कः स किं तत्फलवाचि मूकः ?।
अशक्यशङ्कव्यभिचारहेतुर्वाणी न वेदा यदि सन्तु के तु ? ॥ ७८ ॥

अन्वयः—(किञ्च) यः तर्कः मद्विप्रलभ्यं त्वाम् आह स तत्फलवाचि मूकः किम् ? अशक्यशङ्कव्यभिचारहेतुः वाणी वेदा न यदि, (तर्हि) के तु वेदाः ? ॥ ७८ ॥

व्याख्या—यः=तर्कः=ऊहः, मद्विप्रलभ्यं = मया प्रतारणीयं, त्वाम्, आह = बोधयति, सः = तर्कः, तत्फलवाचि = तद्विप्रलम्भप्रयोजनकथने, मूकः किम् = अवाक् किम्, असमर्थः किमिति भावः। अशक्यशङ्कव्यभिचारहेतुः = शङ्काऽशक्यविप्रलिप्सालक्षणा, वाणी =वाक्, वेदा न यदि = प्रमाणं न चेत्, तर्हि के

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तु वेदाः सन्तु = न केऽपीति भावः। वेदवाचोऽसत्यत्वं यदि मद्वाण्यपि तथा स्यादन्यथा नेति भावः ॥ ७८ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) जो तर्क मुझसे तुम्हारे ठगे जानेकी बात कहता है, वह तर्क ठगनेसे होनेवाले प्रयोजन कहनेमें असमर्थ है क्या ? व्यभिचारके कारणकी शङ्का नहीं की जा सकनेवाली वाणी यदि वेदरूप प्रामाणिक नहीं है तो वेद क्या हैं ? ॥ ७८ ॥

टिप्पणी—तर्कः = "अव्याहारस्तर्क ऊहः" इत्यमरः। मद्विप्रलभ्यं = मया विप्रलभ्यं, तत् (तृ० त०)। विप्रलब्धुं योग्यं विप्रलभ्यम्। वि+प्र+ उपसर्गपूर्वक "लभ" धातुसे "पोरदुपधात्" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय। तत्फल-वाचि = तस्य फलं, (ष० त०), तस्य वाक् तस्याम् (ष० त०)। अशक्य-शङ्कव्यभिचारहेतुः = न शक्या (नञ्०)। अशक्या शङ्का यस्य सः (बहु०)। व्यभिचारस्य हेतुः (ष० त०)। अशक्यशङ्को व्यभिचारहेतुर्यस्याः सा (बहु०), यह पद "वाणी" का विशेषण है ॥ ७८ ॥

अनैषधायैव जुहोति किं मां तातः कृशानौ न शरीरशेषाम्।
ईष्टे तनूजन्मतनोस्तथाऽपि मत्प्राणनाथस्तु नलः स एव ॥ ७९ ॥

अन्वयः—तातः माम् अनैषधाय एव जुहोति ? (तदा) शरीरशेषां (माम्) (तत्राऽपि) कृशानौ न जुहोति किं ? स तनूजन्मतनोः ईष्टे; मत्प्राण-नाथस्तु नल एव ॥ ७९ ॥

व्याख्या—अथ "पितुर्नियोगेने" ति हंसप्रतिपादितामाशङ्कां निरस्यति-अनैषधायैवेति। तातः = मम जनकः, मां = पुत्रीम्, अनैषधाय एव = नल-भिन्नाय एव, अनलाय संप्रदानभूताय एव, जुहोति = ददाति ? (काकुः), (तदा) शरीरशेषां = देहमात्राऽवशिष्टां, मृतामित्यर्थः ताहशीं मां, न जुहोति किम् ? = हवनं न करोति किं, तदङ्गीकार्यमेवेति भावः। (कुतः) सः = जनकः, तनूजन्मतनोः = आत्मजाशरीरस्य, ईष्टे = ईशः (स्वामी) भवतीति भावः। परं, मत्प्राणनाथस्तु = मज्जीवनस्वामी तु, नल एव = नैषध एव, मत्प्राणानामजनकत्वात् न जनकः, मम शरीरमात्रं पित्रधीनं, जीवनं तु नलाऽधी-नमिति भावः। अतो मयि अविश्वासं मा कार्षीरिति तात्पर्यम् ॥ ७९ ॥

अनुवादः—पिताजी मुझे अनैषध = नलसे भिन्न व्यक्ति (अनल) को ही देते हैं ? तब तो देहमात्रसे अवशिष्ट मरी हुई मुझको अग्निमें हवन नहीं

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

करते हैं क्या ? क्योंकि वे (मेरे पिता) अपनी पुत्रीके शरीरके स्वामी हैं, परन्तु मेरे प्राणके स्वामी तो नल ही हैं ॥ ७९ ॥

टिप्पणी—तातः = "तातस्तु जनकः पिता" इत्यमरः। अनैषधाय = न नैषधः, तस्मै, तदन्य अर्थमें नञ्समास। जुहोति = "हु दानादनयोः" इस धातुसे लट् + तिप्। शरीरशेषां = शरीरम् एव शेषो यस्याः सा, ताम् (बहु०)। कृशानौ = "कृशानुः पावकोऽनल" इत्यमरः। तनूजन्मतनोः = तन्वा जन्म यस्याः सा तनूजन्मा (बहु०), तस्याः तनुः, तस्याः, (ष० त०) "अधीगर्थदयेशां कर्मणि" इस सूत्रसे 'ईश' धातुके योगमें षष्ठी। ईष्टे = "ईश ऐश्वर्ये" धातुसे लट् + त। मत्प्राणनाथः=मम प्राणाः (ष० त०), तेषां नाथः (ष० त०) ॥ ७९ ॥

तदेकदासीत्वपदादुदग्रे मदीप्सिते साधु विधित्सुता ते।
अहेलिना किं नलिनी विधत्ते सुधाऽऽकरेणाऽपि सुधाकरेण ? ॥ ८० ॥

अन्वयः—(हे हंस !) तदेकदासीत्वपदात् उदग्रे मदीप्सिते तव विधित्सुता साधु। नलिनी सुधाऽऽकरेण अपि अहेलिना सुधाकरेण किं विधत्ते ? ॥ ८० ॥

व्याख्या—(हे हंस।) तदेकदासीत्वपदात् = नलैकसेविकात्वाऽधिकारात्, उदग्रे = उन्नते, अधिक इति भावः। मदीप्सिते = मदभीष्टे, नलपत्नीत्वरूप इति भावः। तव = भवतः, विधित्सुता = चिकीर्षुता, साधु = उचितम्। दृष्टान्तेन स्वोक्तिं समर्थयते—अहेलिनेति। नलिनी = कमलिनी, सुधाऽऽकरेण अपि = अमृताधारेण अपि, अहेलिना = हेलीतरेण, सूर्यभिन्नेनेति भावः। सुधाकरेण = चन्द्रमसा, किं विधत्ते = किं करोति, यथा नलिन्याश्चन्द्रमसा तथैव ममाऽपि नलभिन्नेन यूना न प्रयोजनमिति भावः ॥ ८० ॥

अनुवादः—(हे हंस।) नलके एकदासीत्वरूप अधिकारसे अधिक मेरे अभीष्ट (पत्नीत्वरूप) विषयमें तुम्हारी कार्यसंपादकता उचित है। जैसे कि कमलिनी अमृतके आधार होनेपर भी सूर्यसे भिन्न चन्द्रसे क्या करती है ? ॥८०॥

टिप्पणी—तदेकदासीत्वपदात् = एका चाऽसौ दासी (क० धा०), तस्य एकदासी (ष० त०), तस्या भावः तदेकदासीत्वम्, तदेकदासी + त्व। तदेव पदं, तस्मात् (रूपक०)। मदीप्सिते = मम ईप्सितं, तस्मिन् (ष० त०)। विधित्सुता = विधातुमिच्छुः विधित्सुः, वि + धा + सन् + उः। विधित्सोर्भावः, विधित्सु + तल् + टाप्। सुधाकरेण = सुधाया आकरः, तेन (ष० त०)।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अहेलिना=न हेलिः अहेलिः, तेन, (नञ्०), यहांपर तदन्यत्वरूप अर्थमें नञ् है। "भगस्त्वष्टाऽर्यमाहंसो हेलिस्तेजोनिधिर्हरिः।" इति भविष्यपुराणे। सूर्यनामानि यहाँपर पहला "सुधाकर" शब्द यौगिक और दूसरा अयौगिक है इसलिए पुनरुक्ति नहीं है। इस पद्यमें "दृष्टान्त" अलङ्कार है॥ ८०॥

तदेकलुब्धे हृदि मेऽस्ति लब्धुं चिन्ता न चिन्तामणिमप्यनर्घम्।
वित्ते ममैकः स नलस्त्रिलोकीसारो निधिः पद्ममुखः स एव॥ ८१॥

अन्वयः—तदेकलुब्धे मे हृदि अनर्घं चिन्तामणिम् अपि लब्धुं चिन्ता न अस्ति। (तथा) वित्ते अपि मम स नलः त्रिलोकीसारः पद्ममुखः एकः एव॥८१॥

व्याख्या—तदेकलुब्धे = नलैकलोलुपे, मे = मम, हृदि = हृदये, अनर्घम् = अमूल्यं, चिन्तामणिम् अपि = चिन्तामणिनामकं रत्नम् अपि, लब्धुं = प्राप्तुं, चिन्ता = विचारः, न अस्ति = नो वर्तते। तथा वित्ते अपि = धने अपि, मम = दमयन्त्याः, सः = पूर्वोक्तः, प्रसिद्धो वा। नलः = नैषधः, त्रिलोकीसारः = त्रैलोक्यश्रेष्ठः, पद्ममुखः = पद्माननः, पद्मनिधिश्च, एकः = प्रमुखः, एव, नलादन्यत्र कुत्रापि ममाऽभिलाषो नाऽस्ति, किमुत युवान्तर इति भावः॥ ८१॥

अनुवादः—नलमें एकमात्र लुब्ध मेरे हृदयमें अमूल्य चिन्तामणि रत्नको भी पानेकी चिन्ता नहीं है। उसी तरह धनके विषयमें भी मेरे वे नल, त्रैलोक्यमें श्रेष्ठ कमलतुल्य मुखवाले पद्मनिधिके समान एकमात्र हैं॥ ८१॥

टिप्पणी— तदेकलुब्धे = एकं च तत् लुब्धम् (क० धा०)। तस्मिन् एकलुब्धं, तस्मिन् (स० त०)। अनर्घम् = अविद्यमानः अर्घः यस्य तम् (नञ्बहु०) "मूल्ये पूजाविधावर्घः" इत्यमरः। लब्धुं = लभ् + तुमुन्। त्रिलोकीसारः = त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी (द्विगु०)। त्रिलोक्याः सारः (ष० त०)। पद्ममुखः = पद्मम् इव मुखं यस्य सः (बहु०)। अथवा पद्मः (निधिः), मुखम् (आदिः) यस्य सः (बहु०)। इस पद्यमें श्लेष अलङ्कार है॥ ८१॥

श्रुतश्च दृष्टश्च हरित्सु मोहाद् ध्यातश्च नीरन्ध्रितबुद्धिधारम्।
ममाऽद्य तत्प्राप्तिरसुव्ययो वा हस्ते तवाऽऽस्ते द्वयमेव शेषः॥ ८२॥

अन्वयः— (सः) श्रुतः मोहात् हरित्सु दृष्टः नीरन्ध्रितबुद्धिधारं ध्यातश्च। अद्य मम तत्प्राप्तिः असुव्ययो वा द्वयम् एव शेषः तव हस्ते आस्ते॥ ८२॥

व्याख्या— (सः = नलः) श्रुतः = आकर्णितः, दूतद्विजादिमुखादिति शेषः, मोहात् = भ्रान्तेः, हरित्सु = प्राच्यादिदिक्षु, दृष्टः = अवलोकितः, नीरन्ध्रित-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धिधारं = निरन्तरीकृतनलविषयकबुद्धिप्रवाहं यथा तथा, ध्यातश्च = ध्यान-गोचरीकृतः, चिन्तित इति भावः । अथ अद्य = अस्मिन्, दिने, मम = भैम्याः तत्प्राप्तिः = नलासादनम्, असुव्ययो वा=प्राणत्यागो वा, द्वयस् एव = द्वितयम् एव, द्वयोरन्यतर एवेतिभावः । शेषः = कार्यशेषः, तव = भवतः, हस्ते = करे, आस्ते = तिष्ठति, त्वदधीन इति भावः ॥ ८२ ॥

अनुवादः—महाराज नलको मैंने दूत, ब्राह्मण आदिके मुखसे सुन लिया है और भ्रान्तिसे दशों दिशाओंमें देख भी लिया है तथा नलके विषयमें बुद्धिके प्रवाहको निरन्तर लगाकर ध्यान भी किया है । आज उनकी प्राप्ति वा प्राणत्याग दोनोंमेंसे एक कार्य तुम्हारे हाथमें है ॥ ८२ ॥

टिप्पणी—मोहात् = हेतुमें पञ्चमी । नीरन्ध्रितबुद्धिधारं = बुद्धेर्धारा (ष० त०) । नीरन्ध्रिता बुद्धिधारा यस्मिन्कर्मणि तद्यथा तथा (बहु०), क्रि० वि० । ध्यातः = ध्यै + क्तः । तत्प्राप्तिः = तस्य प्राप्तिः (ष० त०) । असुव्ययः = असूनां व्ययः (ष० त०) । द्वयम् = द्वि + तयप् (अयच्) । इस पद्यमें अभिधाके प्रस्तुत अर्थके नियन्त्रणसे तत्पदार्थ (ब्रह्म) के श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे सम्पन्न पुरुषका ब्रह्मप्राप्ति और दुःखनिवृत्तिरूप लक्षणवाला मोक्ष गुरुके अधीन ही है ऐसे अर्थान्तरकी प्रतीतिरूप ध्वनि ही है ॥ ८२ ॥

सञ्चीयतामाश्रुतपालनोत्थं मत्प्राणविश्राणनजं च पुण्यम् ।
निवार्यतामार्य ! वृथा विशङ्का, भद्रेऽपि मुद्रेयमये ! भृशं का ॥ ८३ ॥

अन्वयः—(हे हंस !) आश्रुतपालनोत्थं मत्प्राणविश्राणनजं च पुण्यं सञ्चीयताम् । हे आर्य ! वृथा विशङ्का निवार्यताम् । अये ! भद्रे अपि भृशं का इयं मुद्रा ? ॥ ८३ ॥

व्याख्या—(हे हंस !) आश्रुतपालनोत्थम् = अङ्गीकृतार्थाऽनुष्ठानजनितं, मत्प्राणविश्राणनजं च = मदसुदानजनितं च, नलेन सह मत्संघटनादिति शेषः । पुण्यं = सुकृतं, सञ्चीयतां = संगृह्यताम् । हे आर्य = हे श्रेष्ठ, वृथा = व्यर्थप्राया, विशङ्का = सन्देहः, "पितुर्नियोगेने" तिपद्यप्रतिपादितेति शेषः । निवार्यतां = दूरतस्त्यज्यताम् । अये = अङ्ग, भद्रे अपि = कल्याणरूपे विषये अपि, भृशम् = अत्यर्थं, का = कीदृशी, इयम् = एषा, मुद्रा = औदासीन्यम् । श्रेयसि विषये नोदासितव्यमिति भावः ॥ ८३ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः— (हे हंस !) अङ्गीकृत विषयके संपादनसे और मुझे प्राणदान कर उत्पन्न पुण्यका संचय करो। हे आर्य ! व्यर्थ सन्देहको छोड़ दो। कल्याण-विषयमें भी यह कैसी उदासीन मुद्रा है ? ॥ ८३ ॥

टिप्पणी—आश्रुतपालनोत्थम् = आश्रुतस्य पालनम् (ष० त०), "अङ्गीकृतमाश्रुतं प्रतिज्ञातम्" इत्यमरः। आश्रुतपालनात् उत्तिष्ठतीति, आश्रुतपालन+उद्+स्था+कः (उपपद०)। सञ्चीयतां = सं+चि+लोट्+यक्+त, (कर्ममें)। विशङ्का = विरुद्धा शङ्का (गति०)। निवार्यतां = नि+वृ+णिच्+लोट्+यक्+त (कर्ममें) ॥ ८३ ॥

अलं विलङ्घ्य प्रिय ! विज्ञ ! याच्ञां कृत्वाऽपि वाम्यं विविधं विधेये।
यशःपथादाश्रवतापदोत्थात् खलु स्खलित्वाऽस्तखलोक्तिखेलात् ॥ ८४ ॥

अन्वयः—हे प्रिय ! हे विज्ञ ! याच्ञां विलङ्घ्य अलम्। विधेये विविधं वाम्यं कृत्वा अपि अलम्। आश्रवतापदोत्थात् अस्तखलोक्तिखेलात् यशःपथात् स्खलित्वा खलु ॥ ८४ ॥

व्याख्या—हे प्रिय = हे प्रियङ्कर !, हे विज्ञ = हे विशेषज्ञ, याच्ञां = प्रार्थनां, विलङ्घ्य = अतिक्रम्य, अलं = पर्याप्तं, प्रार्थना-भङ्गो न कार्य इति भावः। विधेये=विनीतजने, विविधम्=अनेकप्रकारं, वाम्यं=वक्रतां, कृत्वा अपि= विधाय अपि, अलं = पर्याप्तं, वाम्यं न कार्यमिति भावः। आश्रवतापदोत्थात् = वचनस्थितत्वस्थानोत्पन्नात्, अस्तखलोक्तिखेलात् = निरस्तदुर्जनवाद-विनोदात्, यशःपथात् = कीर्तिमार्गात्, स्खलित्वा खलु = न स्खलितव्यमिति भावः, नो चेद्धानिः स्यादिति भावः ॥ ८४ ॥

अनुवादः—हे प्रिय ! हे विशेषज्ञ ! मेरी प्रार्थनाका लङ्घन मत करो। विनीतजनमें अनेक प्रकारकी कुटिलता भी मत करो। आज्ञाकारित्वपदसे उत्पन्न, दुर्जनका उक्तिरूप विनोदसे रहित कीर्तिमार्गसे तुम्हें स्खलित नहीं होना चाहिए ॥ ८४ ॥

टिप्पणी—प्रियः=प्रीणातीति प्रियः, तत्सम्बुद्धौ, प्री+कः। विज्ञ = विशेषेण जानातीति विज्ञस्तत्सम्बुद्धौ वि+ज्ञा+कः। याच्ञां = याच्+नङ्+टाप्। विधेये="विधेयो विनयग्राही वचनेस्थित आश्रवः।" इत्यमरः। वाम्यं= वामस्य भावो वाम्यं, तत्, वाम+ष्यञ्। आश्रवतापदोत्थात्=आश्रवस्य भाव आश्रवता, आश्रव+तल्+टाप्। आश्रवता एव पदम् (रूपक०)। आश्रवता-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पदात् उत्तिष्ठतीति आश्रवतापदोत्थः आश्रवतापद + उद् + स्था + कः, तस्मात्। अस्तखलोक्तिखेलात् = खलस्य उक्तिः (ष० त०)। खलोक्तेः खेला (ष० त०), "क्रीडा खेला च कूर्दनम्" इत्यमरः। अस्ता खलोक्तिखेला येन सः, तस्मात् (बहु०)। यशःपथात्=यशसः पन्था यथःपशः, तस्मात् (ष० त०), "ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे" इस सूत्रसे समासाऽन्त अप्रत्यय। स्खलित्वा = प्रतिषेधाऽर्थक "खलु" पदके योगमें स्खल धातुसे "अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" इससे क्त्वा प्रत्यय, इसी तरह "कृत्वा" इस पदमें भी "अलम्" पदके योगमें क्त्वा प्रत्यय हुआ है ॥ ८४ ॥

स्वजीवमप्यार्तमुदे ददद्भ्यस्तव त्रपा नेदृशबद्धमुष्टेः ? ।
मह्यं मदीयान् यदसूनदित्सोर्धर्मः कराद् भ्रश्यति कीर्तिधौतः ॥ ८५ ॥

अन्वयः—ईदृशबद्धमुष्टेः तव आर्तमुदे स्वजीवम् अपि ददद्भ्यः त्रपा न ? यत् मदीयान् एव असून् मह्यम् अदित्सोः तव कीर्तिधौतो धर्मः करात् भ्रश्यति ।।८५।।

व्याख्या—(हे हंस।) ईदृशबद्धमुष्टेः = ईदृङ्नद्धमुष्टिकस्य, कृपणस्येति भावः। तव = भवतः, आर्तमुदे = दीनहर्षाय, याचकाऽभिलाषपूर्त्यै इति भावः। स्वजीवम् = आत्मजीवनम् अपि, ददद्भ्यः=वितरद्भ्यः, स्वप्राणव्ययेन परं रक्षद्भ्य इति भावः, जीमूतवाहनादिभ्य इति शेषः। त्रपा न = लज्जा न ? इति काकुः। यत् = यस्मात् कारणात्, मदीयान् एव = मामकान् एव, असून् = प्राणान्, मह्यं = सम्प्रदानभूतायै मैम्यै, अदित्सोः = दातुम् अनिच्छोः, तव = भवतः, कीर्तिधौतः = यशोधवलः, धर्मः = पुण्यं, करात् = हस्तात्, भ्रश्यति = नश्यति, तव धर्मो यशश्च नश्यति, एतन्न तवाऽर्हमिति भावः ॥ ८५ ॥

अनुवादः—ऐसे बद्धमुष्टि (कृपण) तुम्हें दीन पुरुषकी प्रीतिके लिए अपना जीवन भी देनेवाले शिवि आदियोंसे लज्जा नहीं होती है ? क्योंकि मेरे ही प्राणोंको मुझे देनेकी इच्छा नहीं करनेवाले तुम्हारा यशसे उज्ज्वल धर्म हाथसे भ्रष्ट होता है ॥ ८५ ॥

टिप्पणी—ईदृशबद्धमुष्टेः = बद्धा मुष्टिर्येन सः (बहु०)। ईदृशश्चाऽसौ बद्धमुष्टिः, तस्य (क० धा०)। आर्तमुदे = आर्तानां मुत्, तस्यै (ष० त०)। स्वजीवं = स्वस्य जीवः, तम् (ष० त०)। ददद्भ्यः = दा + लट् + (शतृ) + भ्यस्। दीनोंकी रक्षाके लिए अपना जीवन देनेवाले जैसे—

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"कर्णस्त्वचं, शिविर्मांसं, जीवं जीमूतवाहनः ।
ददौ दधीचिरस्थीनि, किमदेयं महात्मनाम् ॥ (वृहच्छार्ङ्गधर०)

अर्थात् कर्णने सूर्यको अपना चर्म (चमड़ा), शिविने कबूतरको बचानेके लिए अपना मांस, जीमूतवाहनने शङ्खचूड नामक नागको बचानेके लिए अपना जीवन और दधीचिने वज्रके लिए देवताओंको अपना अस्थिसमूह दे दिया महात्माओंको क्या अदेय है ? मदीयान् = अस्मद् + छ (ईयः) + शस् । अदित्सोः = दातुमिच्छुः दित्सुः, दा + सन् + उः । न दित्सुः, तस्यः, (नञ्०) । कीर्तिधौतः = कीर्त्या धौतः (तृ० त०) । भ्रश्यति="भ्रंशु अधः-पतने" इस धातुसे लट् + तिप् ॥ ८५ ॥

दत्त्वात्मजीवं त्वयि जीवदेऽपि शुध्यामि, जीवाऽधिकदे तु केन ? ।
विधेहि तन्मां त्वदृणेष्वशोद्धुममुद्रदारिद्र्यसमुद्रमग्नाम् ॥ ८६ ॥

अन्वयः— (हे हंस !) जीवदे त्वयि आत्मजीवं दत्त्वा अपि शुध्यामि, जीवाऽधिकदे तु (त्वयि) केन शुध्यामि ? तत् मां त्वदृणेषु अशोद्धुम् अमुद्रदारिद्र्य-समुद्रमग्नां विधेहि ॥ ८६ ॥

व्याख्या—(हे हंस !) जीवदे = प्राणदे, त्वयि = भवति, आत्मजीवं = स्वप्राणान्, दत्त्वा अपि = वितीर्य अपि, शुध्यामि = शुद्धा भवामि, अनृणा भवामीति भावः । परं जीवाऽधिकदे तु = प्राणाऽधिक (नल) दातरि तु, त्वयि = भवति विषये, केन = पदार्थेन, शुध्यामि = शुद्धा भवामि, अनृणा भवामि । तत् = तस्मात्कारणात्, आनृण्यार्थं देयपदाऽर्थाऽभावादिति भावः । मां = भैमीं, त्वदृणेषु = भवत्पर्युदञ्चनेषु, विषये । अशोद्धुं=न अपाकर्तुम्, अमुद्रदारिद्र्यसमुद्र-मग्नाम् = अपरिमितदैन्यसागरब्रुडितां, विधेहि = कुरु, नलसंघट्टनेन मामृणग्रस्तां कुर्विति भावः ॥ ८६ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) प्राण देनेवाले तुम्हारे विषयमें अपने प्राणोंको देकर शुद्ध (अनृण) हूंगी, परन्तु प्राणोंसे अधिक (नल) को देनेवाले तुम्हारे विषयमें मैं किस पदार्थसे शुद्ध (अनृण) हूंगी । इस कारणसे मुझे तुम्हारे ऋणोंमें शुद्ध (अनृण) न करनेके लिए अपरिमित दारिद्र्यरूप समुद्रमें मग्न कर दो ॥ ८६ ॥

टिप्पणी—जीवदे = जीव + दा + क (उपपद०) + ङि । आत्मजीवम् = आत्मनो जीवः, तम् (ष० त०) । दत्त्वा = दा + क्त्वा । शुद्ध्यामि = शुध

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

+लट्+मिप् । त्वदृणेषु = तव ऋणानि, तेषु (ष० त०)। अशोढुं=न शोढुम् (नञ्०)। अमुद्रदारिद्र्यसमुद्रमग्नाम् = अविद्यमाना मुद्रा (मर्यादा) यस्य सः (नञ्बहु०)। दारिद्र्यम् एव समुद्रः (रूपक०)। अमुद्रश्चाऽसौ दारिद्र्यसमुद्रः (क० धा०), तस्मिन् मग्ना, ताम् (स० त०)। विधेहि=वि+धा+लोट्+सिप् । इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ ८६ ॥

क्रीणीष्व मज्जीवितमेव पण्यमन्यन्न चेद्वस्तु तदस्तु पुण्यम् ।
जीवेशदातर्यदि ते न दातुं यशोऽपि तावत्प्रभवामि गातुम् ॥ ८७ ॥

अन्वयः—हे जीवेशदातः ! मज्जीवितम् एव पण्यं क्रीणीष्व, अन्यत् वस्तु न चेत् (तर्हि) पुण्यम् अस्तु; ते दातुं न प्रभवामि (चेत्) तावत् यशः अपि गातुं प्रभवामि ॥ ८७ ॥

व्याख्या—हे जीवेशदातः ! = हे प्राणेश्वरद !, मज्जीवितम् एव=मज्जीवनम् एव, पण्यं = क्रेयं वस्तु, क्रीणीष्व = जीवेशमूल्यरूपेण विनिमयं कुरु । अन्यत् = अपरम्, एतन्मूल्याऽनुरूपं, वस्तु = पदार्थः, न चेत्=न भवेद्यदि, तर्हि, पुण्यं = धर्मः, अस्तु = भवतु, ते = तुभ्यं, दातुं = वितरीतुं, न प्रभवामि = न शक्नोमि यदि, तावत् = तर्हि, यशः अपि = कीर्तिम् अपि, गातुं = गानं कर्तुं, प्रभवामि = शक्नोमि, प्रसिद्धिपुण्यार्थमेवोपकुरुष्वेत्यर्थः ॥ ८७ ॥

अनुवादः—हे प्राणेश्वर (नल) को देनेवाले ! मेरे जीवनरूप क्रेय वस्तुको खरीद लो और वस्तु न होगा तो पुण्य ही हो । तुम्हें देनेके लिए समर्थ नहीं हूँ तो तुम्हारे यशको तो गानेके लिए समर्थ हूँगी ॥ ८७ ॥

टिप्पणी—जीवेशदातः = जीवस्य ईशः (ष० त०), तस्य दाता, तत्सम्बुद्धौ (ष० त०)। मज्जीवितं = मम जीवितं, तत् (ष० त०), क्रीणीष्व="डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये" इस धातुके लोट्के थास्का रूप । दातुं = दा+तुमुन् । प्रभवामि = प्र+भू+लट्+मिप् ॥ ८७ ॥

वराटिकोपक्रिययाऽपि लभ्यान्नेभ्याः कृतज्ञानथवाऽऽद्रियन्ते ।
प्राणैः पणैः स्वं निपुणं भणन्तः क्रीणन्ति तानेव तु हन्त ! सन्तः ॥ ८८ ॥

अन्वयः—वराटिकोपक्रियया अपि लभ्यान् कृतज्ञान् इभ्याः न आद्रियन्ते । सन्तः तु स्वं निपुणं भणन्तः तान् एव प्राणैः पणैः क्रीणन्ति ॥ ८८ ॥

व्याख्या—(हे हंस !) वराटिकोपक्रियया अपि = कपर्दिकोपकारेण:अपि, कपर्दिकादानेन अपि इति भावः । लभ्यान् = सुलभान्, कृतज्ञान् = उपकारज्ञान् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तावदेव बहु मन्यमानानिति भावः, इभ्या = धनिकाः, न आद्रियन्ते = न सत्कुर्वन्ति, न उपकुर्वन्तीति भावः। एतद्वैपरीत्येन, सन्तस्तु = सज्जनास्तु, विवेकिनस्तु इति भावः। स्वम् = आत्मानं, निपुणं = कुशलं, भणन्तः = कथयन्तः, "एते वयं त्वदधीना" इति साधु वदन्त इति भावः। तान् एव = कृतज्ञान् एव, प्राणैः = असुभिः एव, पणैः = मूल्यैः, क्रीणन्ति = विनिमयं कुर्वन्ति, आत्मसात्कुर्वन्ति, किमुत धनैरिति भावः। अतस्त्वयाऽपि सज्जनेन कृतज्ञाऽहमुपकर्तव्येति भावः। हन्त = हर्षद्योतकमव्ययम् ॥ ८८ ॥

अनुवादः—(हे हंस।) कौड़ी देकर भी पाये जा सकनेवाले कृतज्ञों (अहसानमन्दों) को धनी लोग आदर (उपकार) नहीं करते हैं। सज्जनलोग तो "हम आपके अधीन हैं" ऐसा कहते हुए उन्हीं कृतज्ञोंको प्राणरूप मूल्योंसे खरीद लेते हैं ॥ ८८ ॥

टिप्पणी—वराटिकोपक्रियया = वराटिकाया उपक्रियां, तया (ष० त०)। लभ्यान् = लभ्+यत्+शस्। कृतज्ञान् = कृतं जानन्तीति कृतज्ञाः, तान्। कृत+ज्ञा+क (उपपद०)+शस्। इभ्याः = इभम् अर्हन्तीति, "इभ" शब्दसे "दण्डादिभ्यो यः" इस सूत्रसे य प्रत्यय। "इभ्य आढ्यो धनी स्वामी" त्यमरः। आद्रियन्ते = आङ् + दृङ् + लट् + झ। सन्तः = अस्+लट् (शतृ)+जस्। भणन्तः = भण+लट् (शतृ)+जस्। पणैः = करणमें तृतीया। क्रीणन्ति = क्रीञ् + लट् + झिः। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ ८८ ॥

स भूभृदष्टावपि लोकपालास्तैर्मे यदेकाऽग्रधियः प्रसेदे।
न हीतरस्माद् घटते यदेत्य स्वयं तदाप्तिप्रतिभूर्ममाऽभूः ॥ ८९ ॥

अन्वयः—स भूभृत् अष्टौ अपि लोकपालाः। तदेकाऽग्रधियो मे तैः प्रसेदे। इतरस्मात् स्वयम् एत्य मम तदाप्तिप्रतिभूः अभूः यत्, तत् न घटते हि ॥८९॥

व्याख्या—(हे हंस।) सः = पूर्वोक्तः, भूभृत् = राजा, नल इत्यर्थः, अष्टौ अपि = अष्टसंख्यका अपि, लोकपालाः = इन्द्रादय इत्यर्थः, नल इन्द्राद्यष्टलोकपालात्मक इति भावः। अतएव तदेकाऽग्रधियः = नलैकतानबुद्धेः, मे = मम, तैः = अष्टाभिर्लोकपालैः। प्रसेदे = प्रसन्नम्। देवता ध्यायतो जनस्य प्रसीदन्तीति भावः। कुतः इतरस्मात् = इतरथा, लोकपालप्रसादं विना, स्वयम् = आत्मना, एत्य = आगत्य, मम = भैम्याः, तदाप्तिप्रतिभूः = नल-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्तिलग्नकः, अभूः = भूतवान् असि, यत्, तत्, न घटते = न प्रवर्तते हि = निश्चयेन । लोकपालाऽनुग्रहाऽभावे कुतो ममेदं श्रेय इति भावः ॥ ८९ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) वे राजा (नल) आठ लोकपालस्वरूप हैं। नलमें मेरी एकाग्रबुद्धि रहनेसे लोकपाल प्रसन्न हुए हैं। नहीं तो स्वयम् आकर मेरे नलकी प्राप्तिके लिए जो तुम जामिन हो गये हो वह नहीं होता था ॥ ८९ ॥

टिप्पणी—भूभृत् = भुवं बिभर्तीति, भू + भृ + क्विप् (उप०) । लोकपालाः = लोकं पालयन्तीति लोक + पाल + अच् (उपपद०) । "अष्टाभिर्लोकपालानां मात्राभिर्निर्मितो नृपः ।" (मनु० ७–५) इस उक्तिके अनुसार इन्द्र आदि लोकपालोंके आठ अंशोंसे राजा होते हैं इस कारण नल आठ लोकपालस्वरूप हैं, यह अभिप्राय है। तदेकाऽग्रधियः = एकाऽग्रा धीर्यस्याः सा (बहु०), 'तस्मिन् एकाऽग्रधीः, तस्याः (स० त०) । प्रसेदे=प्र + सद् + लिट् + त (भाववाच्य प्रयोग) । तदाप्तिप्रतिभूः = प्रतिभवतीति प्रतिभूः, प्रति–उपसर्गपूर्वक भू धातुसे "भुवः संज्ञाऽन्तरयोः" इस सूत्रसे क्विप् प्रत्यय । "स्युर्लग्नकाः प्रतिभुवः" इत्यमरः । तस्य आप्तिः (ष० त०) । तदाप्तौ प्रतिभूः (स० त०) । अभूः = भू + लुङ् + सिप् । घटते = "घट चेष्टायाम्" इस धातुसे लट् + त । इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ ८९ ॥

अकाण्डमेवात्मभुवाऽर्जितस्य भूत्वाऽपि मूलं मयि वीरणस्य ।
भवान्न मे किं नलदत्वमेत्य कर्ता हृदश्चन्दनलेपकृत्यम् ? ॥ ९० ॥

अन्वयः—(हे हंस !) विः भवान् अकाण्डम् एव आत्मभुवा मयि अर्जितस्य रणस्य मूलं भूत्वा अपि अकाण्डम् आत्मभुवा अर्जितस्य वीरणस्य मूलं भूत्वा नलदत्वम् एत्य हृदः चन्दनलेपकृत्यं न कर्ता ? ॥ ९० ॥

व्याख्या—(हे हंस ।) विः = पक्षी, भवान् = त्वम्, अकाण्डम् एव = अनवसर एव, आत्मभुवा = कामेन, मयि = मद्विषये, अर्जितस्य = कृतस्य, रणस्य = गाढप्रहारलक्षणस्य युद्धस्य, अथवा रणस्य = शब्दस्य, रहस्यकथनरूपस्येति भावः । मूलं = कारणं, हंसस्योद्दीपनत्वेनेति शेषः । भूत्वा अपि, अकाण्डं = दण्डरहितं यथा तथा, आत्मभुवा = ब्रह्मणा, अर्जितस्य = सृष्टस्य, वीरणस्य = वीरतृणस्य, मूलं = मूलाऽवयवः भूत्वा, अतएव नलदत्वं = नैषधदातृत्वं; पक्षान्तरे—उशीरत्वम्, एत्य = प्राप्य, हृदः = हृदयस्य, सन्तप्तस्येति शेषः । चन्दनलेपकृत्यं = श्रीखण्डलेपनकार्यं, शैत्योत्पादनमिति भावः । न कर्ता = न करिष्यति ?, कर्ता एवेति भावः ॥ ९० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—(हे हंस !) जैसे ब्रह्माजीसे दण्डके विना निर्मित वीरनृणका मूल उशीर होकर हृदयको चन्दनके सदृश होकर ठण्डा करता है वैसे ही पक्षी तुम (हंस) अनवसरमें ही कामदेवसे मुझमें किये गये गाढ प्रहाररूप युद्धके कारण होकर भी नलको देनेके भावको प्राप्त कर कामसन्तप्त हृदयको चन्दनके लेपके समान होकर ठण्डा नहीं करोगे ? ॥ ९० ॥

टिप्पणी—विः = "नगौकोवाजिविकिरविविष्करपतत्रयः ।" इत्यमरः । अकाण्डं = काण्डस्य अभावः (अव्ययी०) तद् यथा तथा । "कालाऽध्वनोरत्यन्तसंयोगे" इससे द्वितीया । दूसरे पक्षमें अविद्यमानः काण्डो यस्य तत् (नञ्-बहु०) "मूलम्" इसका विशेषण । "काण्डोऽस्त्री दण्डवाणाऽर्ववर्गाऽवसरवारिषु" इत्यमरः । आत्मभुवा = आत्मना भवतीति आत्मभूः, तेन आत्मन्–उपपदपूर्वक भू धातुसे "भुवः संज्ञाऽन्तरयोः" इस सूत्रसे क्विप् प्रत्यय (उपपद०) "आत्मभूर्ना विधौ कामे" इति मेदिनी । वीरणस्य = "स्याद्वीरणं वीरतृणं मूलेऽस्योशीरमस्त्रियाम् । अभयं नलदं सेव्यम्" इत्यमरः । विर्+रणस्य = "रो रि" इससे रेफका लोप और "ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" इससे दीर्घ होकर वीरणस्य । नलदत्वं = नलं ददातीति नलदः, नल+उपपदपूर्वक 'दा' धातुसे "आतोऽनुपसर्गे कः" इससे क प्रत्यय (उपपद०) । नलदस्य भावो नलदत्वं, तत्, नलद+त्व । एत्य = आङ्+इण्+क्त्वा (ल्यप्) । चन्दनलेपकृत्यं = चन्दनस्य लेपः (ष० त०), तस्य कृत्यम् (ष० त०) । कर्ता = कृ+लुट् + तिप् । इस पद्यमें "वीरणस्य" यहाँपर शब्दश्लेष है अन्यत्र अर्थश्लेष। "नलदत्वम् एत्य" यहाँपर प्रकृत और अप्रकृतके अभेदाऽध्यवसायसे हंसमें आरोप्यमाण उशीरका प्रकृतिके साथ तादात्म्यसे चन्दनकृत्यस्वरूप प्रकृत कार्यमें उपयोग होनेसे परिणाम अलङ्कार है । इस प्रकार सङ्कर अलङ्कार है ॥ ९० ॥

अलं विलम्ब्य, त्वरितुं हि वेला, कार्ये किल स्थैर्यसहे विचारः ।
गुरूपदेशं प्रतिभेव तीक्ष्णा प्रतीक्षते जातु न कालमर्तिः ॥ ९१ ॥

अन्वयः—(हे हंस !) विलम्ब्य अलं, हि त्वरितुं वेला । स्थैर्यसहे कार्ये विचारः किल । हि तीक्ष्णा प्रतिभा गुरूपदेशम् इव अर्तिः जातु कालं न प्रतीक्षते ॥ ९१ ॥

व्याख्या—(हे हंस !) विलम्ब्य = विलम्बं कृत्वा, अलं = पर्याप्तं, न विलम्बः कर्तव्य इति भावः । हि=यस्मात्कारणात्, त्वरितुं = त्वरां कर्तुं, वेला-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कालः, अयं त्वरायाः काल इति भावः। स्थैर्यसहे = विलम्बसहे, कार्ये = कर्मणि, विचारः = विमर्शः, किल = निश्चयेन। अर्थान्तरन्यासेनोक्तमर्थं द्रढयति—गुरूपदेशमिति। हि=यस्मात्कारणात्, तीक्ष्णा = तीव्रा, शीघ्रग्राहिणीति भावः। प्रतिभा = प्रज्ञा, गुरूपदेशम् इव= आचार्योपदेशम् इव, अर्तिः = पीडा, जातु = कदाऽपि, कालं = समयं, न प्रतीक्षते = न प्रतीक्षां करोति, पीडा कालक्षेपं न सहत इतिभावः ॥ ९१ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) विलम्ब नहीं करना चाहिए, शीघ्रता करनेका समय है। विलम्ब सहनेवाले कर्ममें विचार किया जाता है, क्योंकि तीक्ष्ण बुद्धि जैसे गुरुके उपदेशकी प्रतीक्षा नहीं करती है वैसे ही पीडा कालकी प्रतीक्षा नहीं करती है ॥ ९१ ॥

टिप्पणी— विलम्ब्य = वि+लवि + क्त्वा (ल्यप्), यहाँपर "अलम्" इस पदके योगमें "अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा" इस सूत्रसे क्त्वा प्रत्यय होकर ल्यप् आदेश हुआ है। त्वरितुं = त्वरा + तुमुन्, यहाँपर "वेला" पदके योगमें "कालसमयवेलासु तुमुन्" इस सूत्रसे तुमुन् प्रत्यय हुआ है। स्थैर्यसहे=स्थैर्यं सहत इति स्थैर्यसहं, तस्मिन् स्थैर्यं+सह+अच् (उपपद०)। गुरूपदेशं = गुरोरुपदेशः, तम् (ष० त०)। अर्तिः = "अर्तिः पीडाधनुष्कोट्योः" इत्यमरः। प्रतीक्षते = प्रति + ईक्ष + लट् + तिप्। इस पद्यमें उपमा और अर्थान्तरन्यासकी संसृष्टि है ॥ ९१ ॥

अभ्यर्थनीयः स गतेन राजा त्वया न शुद्धान्तगतो मदर्थम्।
प्रियाऽऽस्यदाक्षिण्यबलात्कृतो हि तदोदयेदन्यवधूनिषेधः ॥ ९२ ॥

अन्वयः—(हे हंस !) गतेन त्वया स राजा शुद्धान्तगतः (सन्) मदर्थं न अभ्यर्थनीयः। हि तदा प्रियाऽऽस्यदाक्षिण्यबलात्कृतः अन्यवधूनिषेधः उदयेत् ॥ ९२ ॥

व्याख्या—अथाऽनन्तरकृत्यं सविशेषमुपदिशति श्लोकपञ्चकेन—अभ्यर्थनीय इति। (हे हंस !) गतेन = यातेन, इति शेषः। त्वया = भवता, सः = पूर्वोक्तः, राजा = नृपः, नल इत्यर्थः। शुद्धान्तगतः = अन्तःपुरस्थितः सन्, मदर्थं = मत्प्रयोजनं, न अभ्यर्थनीयः = न प्रार्थनीयः। हि = यस्मात्कारणात्। तदा = तस्मिन् समये, राज्ञोऽन्तःपुरस्थिताविति भावः। प्रियाऽऽस्यदाक्षिण्य-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बलात्कृतः = वल्लभामुखच्छन्दाऽनुवर्तिताप्रसभीकृतः, अन्यवधूनिषेधः = अपर-रमणीप्रतिषेधः, उदयेत् = उत्पद्येत ॥ ९२ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) यहाँसे गये हुए तुम्हें अन्तःपुर (रनिवास) में रहे हुए राजा (नल) से मेरे लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उस समय प्यारी स्त्रियोंके सामने उनके मनके अनुसार चलनेके विचारसे जबर्दस्तीसे किया गया दूसरी स्त्रीका निषेध उत्पन्न होगा ॥ ९२ ॥

टिप्पणी—शुद्धान्तगतः = शुद्धाऽन्तं गतः (द्वि० त०), "शुद्धान्तश्चावरोधश्च" इत्यमरः । मदर्थं = मह्यम् इदम् (यथा तथा) (च० त०) । अभ्यर्थनीयः = अभि + अर्थ + णिच् + अनीयर् । प्रियाऽऽस्यदाक्षिण्यबलात्कृतः= प्रियाणम् आस्यानि (ष० त०) । तेषां दाक्षिण्यं (ष० त०), तेन बलात्कृतः (तृ० त०) । अन्यवधूनिषेधः = अन्या चाऽसौ वधूः (क० धा०) । तस्या निषेधः (ष० त०) । उदयेत् = उद् + इ + विधिलिङ् + ति ॥ ९२ ॥

शुद्धान्तसंभोगनितान्ततृप्ते न नैषधे कार्यमिदं निगाद्यम् ।
अपां हि तृप्ताय न वारिधारा स्वादुः सुगन्धिः स्वदते तुषारा ॥ ९३ ॥

अन्वयः—(हे हंस !) शुद्धान्तसंभोगनितान्ततृप्ते नैषधे इदं कार्यं न निगाद्यम् । अपां तृप्ताय स्वादुः सुगन्धिः तुषारा वारिधारा न स्वदते हि ॥९३॥

टिप्पणी—(हे हंस !) शुद्धान्तसंभोगनितान्ततृप्ते = अन्तःपुरस्त्रीरमणाऽतिशयसन्तुष्टे, नैषधे = नले, इदम् = एतत्, कार्यं = कर्म, मत्प्रार्थनारूपमिति शेषः । न निगाद्यं = नो वक्तव्यम् । तथाहि, अपां तृप्ताय = जलेन सन्तुष्टाय जनाय, स्वादुः = मधुरा, सुगन्धिः = शोभनगन्धा, कर्पूरादिनेति शेषः । तुषारा = शीतला, वारिधारा = जलधारा, न स्वदते हि = नो रोचते हि ॥ ९३ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) अन्तःपुरकी स्त्रीके समागमसे अतिशय तृप्त नलको यह कार्य (मेरे विषयमें प्रार्थनारूप) तुम्हें नहीं कहना चाहिए । क्योंकि जलसे तृप्त पुरुषको मधुर, खुशबूदार तथा ठण्डी जलधारा भी पसन्द नहीं होती है ॥ ९३ ॥

टिप्पणी—शुद्धान्तसंभोगनितान्ततृप्ते = शुद्धान्तस्य संभोगः (ष० त०), यहाँ शुद्धान्तपदका शुद्धान्तकी स्त्रीमें लक्षणा करनी चाहिए । नितान्तं यथा तथा तृप्तः (सुप्सुपा०) । शुद्धान्तसंभोगेन नितान्ततृप्तः, तस्मिन् (तृ० त०) ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निगाद्यम् = निगदितुं योग्यम्, नि+गद+ण्यत्। अपां = "पूरणगुणसुहितार्थसदव्ययतव्यसमानाधिकरणे" इस सूत्रमें सुहितार्थक (तृप्त्यर्थक) शब्दसे षष्ठी-समासका निषेधरूप ज्ञापकसे षष्ठी हुई है। तृप्ताय = 'स्वद' धातु रुच्यर्थक होनेसे "रुच्यर्थानां प्रीयमाणः" इस सूत्रसे सम्प्रदान संज्ञा होनेसे चतुर्थी। सुगन्धिः = शोभनो गन्धो यस्यां सा (बहु०) यहाँपर एकान्त नियमका कविने निरादर कर "गन्धस्येदुत्पूतिसुसुरभिभ्यः" इस सूत्रसे समासान्त इ प्रत्यय किया है। स्वदते = स्वद+ लट्+त। इस पद्यमें दृष्टान्त अलङ्कार है॥ ९३॥

विज्ञापनीया न गिरो मदर्थाः क्रुधा कदुष्णे हृदि नैषधस्य।
पित्तेन दूने रसने सिताऽपि तिक्तायते हंसकुलाऽवतंस!॥ ९४॥

अन्वयः—हे हंसकुलाऽवतंस! नैषधस्य हृदि क्रुधा कदुष्णे (सति) मदर्था गिरो न विज्ञापनीयाः। पित्तेन दूने रसने सिता अपि तिक्तायते॥ ९४॥

व्याख्या—हे हंसकुलाऽवतंस = हे मरालवंशभूषण!, नैषधस्य = नलस्य, हृदि = हृदये, क्रुधा = कोपेन, कदुष्णे = ईषत्तप्ते सति, मदर्थाः=मत्प्रयोजनाः, गिरः = वाचः, न विज्ञापनीयाः = नो वेदनीयाः। तथाहि—पित्तेन = मायुना, पित्तदोषेणेत्यर्थः।। रसने = रसनेन्द्रिये, दूने=उपतप्ते, दूषिते सतीति भावः। सिता अपि = शर्करा अपि, तिक्तायते = तिक्ता भवति॥ ९४॥

अनुवादः—हे हंसवंशके भूषणस्वरूप! नलका हृदय क्रोधसे कुछ तप्त होनेपर मेरे लिए प्रार्थना-वचनका निवेदन मत करो, क्योंकि पित्तके दोषसे रसना इन्द्रियके दूषित होनेपर चीनी भी कड़ुवी हो जाती है॥ ९४॥

टिप्पणी—हंसकुलाऽवतंस = हंसानां कुलं (ष० त०), तस्य अवतंसः, तत्सम्बुद्धौ (ष० त०)। कदुष्णे = ईषत् उष्णं, तस्मिन्, (गति०), "कवं चोष्णे" इस सूत्रमें चकारके पाठसे 'कु' के स्थानमें "कत्" आदेश हुआ है। मदर्थाः = मह्यम् इमाः (च० त०)। विज्ञापनीयाः वि+ज्ञा+णिच्+अनीयर+टाप्+जस्। दूने = दु+क्त+ङि। तिक्तायते = तिक्ता भवति, तिक्ता शब्दसे "लोहितादिडाज्भ्यः क्यष्" इससे क्यष् प्रत्यय और "वा क्यषः" इस सूत्रसे क्यषन्तसे आत्मनेपद, लट्+त। इस पद्यमें भी दृष्टान्त अलङ्कार है॥ ९४॥

धरातुरासाहि मदर्थयाच्ञा कार्या न कार्याऽन्तरचुम्बिचित्ते।
तदाऽर्थितस्याऽनवबोधनिद्रा बिभर्त्यवज्ञाऽऽचरणस्य मुद्राम्॥ ९५॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—(हे हंस !) धरातुरासाहि कार्याऽन्तरचुम्बिचित्ते सति मदर्थ-याच्ञा न कार्या। (तथाहि) तदा अर्थितस्य अनवबोधनिद्रा अवज्ञाऽऽचरणस्य मुद्रां बिभर्ति ॥ ९५ ॥

व्याख्या—(हे हंस !) धरातुरासाहि = महीन्द्रे, नले, कार्यान्तरचुम्बि-चित्ते = कर्मान्तरव्यासक्तमानसे सति, मदर्थयाच्ञा = मत्प्रयोजनप्रार्थना, न कार्या = नो विधेया, (तथाहि) तदा = तस्मिन् समये, कार्यान्तरव्यासङ्ग-काल इति भावः। अर्थितस्य = प्रार्थितस्य जनस्य, अनवबोधनिद्रा = अज्ञानरूप-स्वापः, प्रार्थिताऽर्थज्ञानाऽभाव इति भावः। अवज्ञाऽऽचरणस्य=अनादरकरणस्य, मुद्रां = चिह्नं बिभर्ति = धारयति, अनादरप्रतीतिं करोतीति भावः ॥ ९५ ॥

अनुवादः—(हे हंस !) पृथ्वीके इन्द्र (नल) के दूसरे कार्यमें आसक्त होनेके अवसरमें मेरे लिए प्रार्थना नहीं करनी चाहिए। क्योंकि उस समय प्रार्थना किये गये पुरुषका प्रार्थित विषयका अज्ञान, अनादर करनेके चिह्नको धारण करता है ॥ ९५ ॥

टिप्पणी—धरातुरासाहि = तुतोर्त्तीति तुरः, "तुर त्वरणे" धातुसे क प्रत्यय। तुरं (वेगवन्तम्) साहयति (अभिभवति) इति तुराषाट्, तुर-उपपद-पूर्वक णिजन्त सह धातुसे क्विप्, "नहिवृतिवृषिव्यधिरुचिसहितनिषु क्वौ" इससे पूर्वपदका दीर्घ, "सहेः साडः सः" इससे मूर्धन्य षकार। "तुराषाण्मेघ-वाहनः" इत्यमरः। धरायाः तुराषाट्, तस्मिन् (ष० त०)। ङि विभक्तिमें साड् रूपके न रहनेसे षका अभाव। कार्यान्तरचुम्बिचित्ते = अन्यत् कार्यं कार्यान्तरम् (रूपक०) तत् चुम्बतीति कार्यान्तरचुम्बि, कार्यान्तर + चुबि + णिनिः (उपपद०)। तत् चित्तं यस्य सः कार्यान्तरचुम्बिचित्तः, तस्मिन् (बहु०)। मदर्थयाच्ञा = मह्यम् इयं मदर्था (च० त०)। सा चाऽसौ याच्ञा (क० धा०)। कार्या = कृ + ण्यत् + टाप्। अर्थितस्य = अर्थ + णिच् + क्त + ङस। अनवबोधनिद्रा = न अवबोधः (नञ०), स एव निद्रा (रूपक०)। अवज्ञाऽऽचरणस्य = अवज्ञाया आचरणं, तस्य (ष० त०)। बिभर्ति = भृ + लट् + तिप् ॥ ९५ ॥

विज्ञेन विज्ञाप्यमिदं नरेन्द्रे तस्मात्त्वयाऽस्मिन्समयं समीक्ष्य।
आत्यन्तिकाऽसिद्धिविलम्बसिद्ध्योः कार्यस्य काऽऽर्यस्य शुभा बिभाति ? ॥९६॥

अन्वयः—(हे हंस) तस्मात् विज्ञेन त्वया समयं समीक्ष्य इदम् अस्मिन्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नरेन्द्रे विज्ञाप्यम् । कार्यस्य आत्यन्तिकाऽसिद्धिविलम्बसिद्ध्योः आर्यस्य का शुभा विभाति ? ।। ९६ ।।

व्याख्या—(हे हंस !) तस्मात् = कारणात्, विज्ञेन = विशेषाऽभिज्ञेन, विवेकिना इति भावः, त्वया = भवता, समयम् = अवसरं, समीक्ष्य = दृष्ट्वा, इदम् = एतत्कार्यं, मत्प्रार्थनारूपम् इति भावः । अस्मिन्=एतस्मिन्, नरेन्द्रे = राजनि नले, विज्ञाप्यं = विज्ञापनीयम् । समयप्रतीक्षायां विलम्बमाशङ्क्याह—आत्यन्तिकेति । कार्यस्य = कर्मणः, आत्यन्तिकाऽसिद्धिविलम्बसिद्ध्योः = सर्वथाऽसिद्धिदूरसिद्ध्योर्मध्ये, आर्यस्य = सभ्यस्य, विदुष इति भावः । का = कतरा, विभाति = प्रतिभाति, अप्रसङ्गविज्ञापने कार्यस्य असाफल्याद्वरं विलम्बेनाऽपि कार्यसाफल्यमिति भावः ।। ९६ ।।

अनुवादः—(हे हंस !) इस कारणसे विवेकी तुम्हें अवसर देखकर इस कार्यको राजासे निवेदन करना चाहिए । कार्यकी ऐकान्तिक असफलता और विलम्बसे सफलता इनमेंसे विद्वान् तुम्हें कौनसी उत्तम प्रतीत होती है ? ।। ९६।।

टिप्पणी—विज्ञेन = वि + ज्ञा + कः + टा । समीक्ष्य = सम् + ईक्ष + क्त्वा (ल्यप्) । नरेन्द्रे = नराणाम् इन्द्रः, तस्मिन् (ष० त०) । विज्ञाप्यं = वि + ज्ञा + णिच् + क्त्वा (यत्) । आत्यन्तिकाऽसिद्धिविलम्बसिद्ध्योः = न सिद्धिः असिद्धिः (नञ्०) । आत्यन्तिकी चाऽसौ असिद्धिः (क० धा०), "पुंवत्कर्मधारयजातीयदेशीयेषु" इस सूत्रसे पूर्वपदका पुंवद्भाव । विलम्बेन सिद्धिः (तृ० त०) । आत्यन्तिकाऽसिद्धिश्च विलम्बसिद्धिश्च आत्यन्तिकाऽसिद्धिविलम्बसिद्धी, तयोः (द्वन्द्व०) । आर्यस्य = ऋ + ण्यत् + ङस् । विभाति= वि + भा + लट् + तिप् ।। ९६ ।।

> इत्युक्तवत्या यदलोपि लज्जा, साऽनौचिती चेतसि नश्चकास्तु ।
> स्मरस्तु साक्षी तददोषतायामुन्माद्य यस्तत्तदवीवदत्ताम् ।। ९७ ।।

अन्वयः—इति उक्तवत्या (तया) यत् लज्जा अलोपि, सा अनौचिती नः चेतसि चकास्तु, तु तददोषतायां स्मरः साक्षी । यः ताम् उन्माद्य तत् अवीवदत् ।। ९७ ।।

व्याख्या—इति = इत्थम्, उक्तवत्या = कथितवत्या, भैम्येति शेषः, यत् लज्जा = व्रीडा, अलोपि = त्यक्ता, सा = तादृशी, अनौचिती = अनौचित्यं, नः = अस्माकं, शृण्वतामिति शेषः । चेतसि = चित्ते, चकास्तु = प्रकाशताम् ।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

तु = किन्तु, तददोषतायां = भैमीनिर्दोषितायां, लज्जात्यागस्येति शेषः। स्मरः = कामः, साक्षी = साक्षाद्द्रष्टा, प्रमाणमिति भावः। यः = स्मरः, तां = दमयन्तीम्, उन्माद्य = उन्मत्तां कृत्वा, तत् तत् = अनुचितं वचनम्, अवीवदत् = वादितवान्। लज्जात्यागः प्रकृतिस्थाया एव कुमार्या दोषो न तु कामोपहतचित्ताया इति भावः॥ ९७॥

अनुवादः—ऐसा कहनेवाली दमयन्तीने जो लज्जाका त्याग किया, वह अनौचित्य भले ही हमारे चित्तमें प्रकाशित हो, परन्तु दमयन्तीकी निर्दोषितामें कामदेव साक्षी है जिसने उनको उन्मत्त बनाकर ऐसा भाषण कराया॥ ९७॥

टिप्पणी—उक्तवत्या = ब्रू (वच्) क्तवतु + ङीप् + टा। अलोपि = लुप् + लुङ् + त (कर्ममें)। अनौचिती= उचितस्य भाव औचिती, उचित + ष्यञ्, "हलस्तद्धितस्य" इससे यकारका लोप और "षिद्गौरादिभ्यश्च" इससे ङीष्। एक पक्षमें "औचित्यम्" ऐसा रूप भी होता है। न औचिती (नञ्०)। चकास्तु = चकासृ + लोट् + तिप्। तददोषतायाम् = अविद्यमानो दोषो यस्य सः अदोषः (नञ्बहु०) अदोषस्य भावः अदोषता, अदोष + तल् + टाप्। तस्य (लज्जात्यागस्य) अदोषता, तस्याम् (ष० त०)। ताम् = वद् धातुके पूर्व कर्तृपदका णिच् होनेपर कर्मसंज्ञक होकर द्वितीया। उन्माद्य = उद् + मद् + णिच् + क्त्वा (ल्यप्)। अवीवदत्=वद् + णिच् + चङ् + लुङ् + तिप्॥ ९७॥

उन्मत्तमासाद्य हरः स्मरश्च द्वावप्यसीमां मुदमुद्वहेते।
पूर्वः स्मरस्पर्द्धितया प्रसूनं नूनं द्वितीयो विरहाऽऽधिदूनम्॥ ९८॥

अन्वयः—पूर्वः हरः स्मरस्पर्धितया उन्मत्तं प्रसूनं, द्वितीयः स्मरश्च विरहाऽऽधिदूनम् उन्मत्तम् आसाद्य (इत्थम्) द्वौ अपि असीमां मुदम् उद्वहेते॥ ९८॥

व्याख्या—स्मरेण सा किमर्थमुन्मादितेति प्रश्नस्य सदृष्टान्तमुत्तरमाह—उन्मत्तमिति। पूर्वः = प्रथमः, अभ्यर्हित इति भावः। हरः = महेश्वरः, स्मरस्पर्धितया = कामसंघर्षित्वेन, उन्मत्तम् = उन्मत्तनामकं, प्रसूनं = पुष्पं, धत्तूरमिति भावः, द्वितीयः = अपरः, स्मरश्च = कामश्च, विरहाऽऽधिदूनं = वियोगमनोव्यथोपतप्तम्, उन्मत्तम्=उन्मादयुक्तं जनम्, आसाद्य = प्राप्य, इत्थं च द्वौ अपि = उभौ अपि, हरस्मरावपीति भावः। असीमां = सीमारहिताम्, अपरिमितामिति भावः, मुदं = हर्षम्, उद्वहेते = धारयतः॥ ९८॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—प्रथम महेश्वर, कामदेवसे स्पर्धा करनेसे उन्मत्त नामक फूल-(धतूर) को और दूसरा कामदेव भी विरहकी मनोव्यथासे सन्तप्त उन्मत्त (उन्मादयुक्त, पागल) को पाकर इस तरह दोनों ही असीम हर्षको धारण करते हैं ॥ ९८ ॥

टिप्पणी—हरः = हृ + अच् । स्मरस्पर्धितया = स्मरं स्पर्धते तच्छीलः स्मरस्पर्धी, स्मर + स्पर्ध + णिनिः (उपपद०) । स्मरस्पर्धिनो भावः स्मरस्पर्धिता, तया, स्मरस्पर्धि + तल् + टाप् + टा । उन्मत्तम् = उद् + मद् + क्त + अम् । "उन्मत्त उन्मादवति धुस्तूरमुचुकुन्दयोः, इति विश्वः । द्वितीयः = द्वि + तीय + सु । विरहाऽऽधिदूनं = विरहेण आधिः (तृ० त०), तेन दूनः, तम् (तृ० त०) । आसाद्य = आङ् + सद् + णिच् + क्त्वा (ल्यप्) । असीमाम् = अविद्यमाना सीमा यस्याः सा असीमा, ताम् (नञ्-बहु०) । उद्वहेते = उद् + वह + लट् + आताम् । स्वरितकी इत्संज्ञा होनेसे वह धातु आत्मनेपदी भी है । इस पद्यमें शब्दश्लेष और अर्थश्लेष भी है, और उनसे उपमा व्यङ्ग्य होती है ॥ ९८ ॥

तथाऽभिधात्रीमथ राजपुत्रीं निर्णीय तां नैषधबद्धरागाम् ।
अमोचि चञ्चूपुटमौनमुद्रा विहायसा तेन विहस्य भूयः ॥ ९९ ॥

अन्वयः—अथ तथा अभिधात्रीं तां राजपुत्रीं नैषधबद्धरागां निर्णीय तेन विहायसा विहस्य भूयः चञ्चूपुटमौनमुद्रा अमोचि ॥ ९९ ॥

व्याख्या—अथ = अनन्तरं, तथा = तेन प्रकारेण, अभिधात्रीं = भाषमाणां, "श्रुतः स दृष्टश्च ३–८३" इत्यादिरूपेणेति भावः । तां = पूर्वोक्तां, राजपुत्रीं = नृपकुमारीम्, दमयन्तीम् । नैषधबद्धरागां = नले कृतप्रणयां, निर्णीय = निश्चित्य, तेन = पूर्वोक्तेन, विहायसा = पक्षिणा, हंसेन । विहस्य = हास्यं विधाय, भूयः = पुनरपि, चञ्चूपुटमौनमुद्रा = त्रोटिपुटतूष्णीकत्वचिह्नं, वचनाऽभाव इति भाव. । अमोचि = मुक्ता, पुनरपि हंसोऽवादीदिति भावः ॥ ९९ ॥

अनुवादः—तब वैसा कहनेवाली उन राजपुत्री (दमयन्ती) को नलमें प्रेम करनेवाली निश्चय करके उस पक्षी (हंस) ने हँसकर फिर मौनको भङ्ग किया, (बोलने लगा) ॥ ९९ ॥

टिप्पणी—अभिधात्रीम् = अभिदधातीति अभिधात्री, ताम्, अभि + धा + तृच् + ङीप् + अम् । राजपुत्रीं=राज्ञः पुत्री, ताम् (ष० त०), नैषधबद्धरागां=

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

बद्धो रागो यया सा वद्धरागा, (बहु०)। नैषधे वद्धरागा, ताम् (स० त०)। निर्णीय = निर्+णीञ्+क्त्वा (ल्यप्)। विहायसा = "विहायाः शकुने पुंसि गगने पुंनपुंसकम्।" इति कोशः। विहस्य = वि+ हस् + क्त्वा (ल्यप्)। चञ्चूपुटमौनमुद्रा = चञ्च्वोः पुटम् (ष० त०), मौनस्य मुद्रा (ष० त०)। चञ्चूपुटस्य मौनमुद्रा (ष० त०)। अमोचि = मुच्+लुङ्+त (कर्ममें)। इस पद्यमें "उक्तम्" इस पदार्थके लिए "अमोचि चञ्चूपुटमौनमुद्रा" ऐसे वाक्यार्थको रचना होनेसे 'ओज' नामका गुण और छेक अनुप्रास है ॥ ९९ ॥

इत्थं यदि क्ष्मापतिपुत्रि! तत्त्वं पश्यामि तन्न स्वविधेयमस्मिन्।
त्वामुच्चकैस्तापयता नृपं च पञ्चेषुणैवाजनि योजनेयम्॥ १०० ॥

अन्वयः—हे क्ष्मापतिपुत्रि! इदं तत्त्वं यदि, तत् अस्मिन् स्वविधेयं न पश्यामि। त्वां नृपं च उच्चकैः तापयता पञ्चेषुणा एव इयं योजना अजनि ॥ १०० ॥

व्याख्या—हे क्ष्मापतिपुत्रि = हे राजकुमारि!, इदं = त्वदुक्तं वचनं, तत्त्वं यदि=सत्यं चेत्, तत् = तर्हि, अस्मिन् = इह, विषये। स्वविधेयं=आत्मकृत्यं, न पश्यामि = नो विलोकयामि। तर्हि कार्यं कथं भविष्यतीत्यत्राह—त्वामिति। त्वां = भवतीं, नृपं च = नैषधं च, उच्चकैः = अत्यन्तं, तापयता = सन्तापं जनयता, पञ्चेषुणा एव = मन्मथेन एव, इयम् = एषा, योजना = घटना, अजनि = उत्पादिता, अतएव मद्व्यापारोऽत्र नाऽवशिष्यत इति भावः ॥१००॥

अनुवादः—हे राजकुमारि। आपका वचन सत्य हो तो इस विषयमें मैं अपना कार्य नहीं देख रहा हूँ, क्योंकि आपको और नलको अत्यन्त सन्तप्त करनेवाले कामदेवने ही इस योजनाको उत्पन्न किया है ॥ १०० ॥

टिप्पणी—हे क्ष्मापतिपुत्रि = क्ष्मायाः पतिः (ष० त०) तस्य पुत्री, तत्सम्बुद्धौ (ष० त०)। स्वविधेयं=स्वस्य विधेयं, तत् (ष० त०)। उच्चकैः = उच्चैरेव, उच्चैस्+अकच्। तापयता = तप+णिच्+लट् (शतृ)+टा। पञ्चेषुणा = पञ्च इषवो यस्य स पञ्चेषुः, तेन (बहु०)। अजनि = जन्+ लुङ्+च्लि (चिण्)+त (कर्ममें)॥ १०० ॥

त्वद्बद्धबुद्धेर्बहिरिन्द्रियाणां तस्योपवासव्रतिनां तपोभिः।
त्वामद्य लब्ध्वाऽमृततृप्तिभाजां स्वं देवभूयं चरिताऽर्थमस्तु॥ १०१ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—(हे भैमि !) त्वद्बद्धबुद्धेः तस्य उपवासव्रतिनां तपोभिः अद्य त्वां लब्ध्वा अमृततृप्तिभाजां बहिरिन्द्रियाणां स्वं देवभूयं चरितार्थम् अस्तु ॥ १०१ ॥

व्याख्या—(हे भैमि !) त्वद्बद्धबुद्धेः = भवन्निबद्धमतेः, त्वामेव ध्यायत इति भावः। तस्य=नलस्य, उपवासव्रतिनाम् = अनुपभोगव्रतयुक्तानां, विषयान्तरव्यावृत्तानामिति भावः। तपोभिः = उक्तोपवासव्रतरूपैः पुण्यैः, अद्य = अस्मिन्दिने, त्वां = भवतीं, लब्ध्वा = प्राप्य, अमृततृप्तिभाजां = पीयूषसौहित्ययुक्तानां, बहिरिन्द्रियाणां = चक्षुरादीनां, स्वं = स्वीयं, देवभूयं= देवत्वम्, इन्द्रियत्वं सुरत्वं च, चरितार्थं = कृतकार्यं, सफलमिति भावः। अस्तु= भवतु, अमृतपानैकफलत्वाद्देवभावो भवेदिति भावः ॥ १०१ ॥

अनुवादः—हे राजकुमारि ! आपका ही ध्यान करनेवाले नलके उपवास व्रत करनेवाले तथा तपस्याओंसे आज आपको प्राप्त करके अमृतपानसे मिलने-वाली तृप्तिको प्राप्त करनेवाले नेत्र आदि बाह्य इन्द्रियोंका अपना देवत्व सफल हो ॥ १०१ ॥

टिप्पणी—त्वद्बद्धबुद्धेः = बद्धा बुद्धिर्येन स बद्धबुद्धिः (बहु०), त्वयि बद्धबुद्धिः, तस्य (स० त०)। उपवासव्रतिनाम् = उपवासेन व्रतिनः, तेषाम् (तृ० त०)। लब्ध्वा = लभ् + क्त्वा। अमृततृप्तिभाजाम् = अमृतेन तृप्तिः (तृ० त०), तां भजन्तीति अमृततृप्तिभाञ्जि, तेषाम्, अमृततृप्ति+ भज्+ण्विः+आम् (उपपद०)। बहिरिन्द्रियाणां = बहिः स्थितानि इन्द्रियाणि तेषाम् (मध्यमपद०)। देवभूयं = देवस्य भावः, "भुवो भावे" इस सूत्रसे क्यप्, देव+भू+क्यप्। "आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्" (ऐत० २।४) इस श्रुतिवाक्यसे अर्थात् सूर्यने चक्षु होकर नेत्रोंमें प्रवेश किया। इसके अनुसार यह उक्ति है। चरितार्थम् = चरितः अर्थः यस्य तत् (बहु०)। अस्तु = अस्+लोट्+तिप् ॥ १०१ ॥

तुल्याऽऽवयोर्मूर्तिरभून्मदीया दग्धा, परं साऽस्य न ताप्यतेऽपि।
इत्यभ्यसूयन्निव देहतापं तस्याःतनुस्त्वद्विरहाद्विधत्ते ॥ १०२ ॥

अन्वयः—आवयोः मूर्तिः तुल्या अभूत्, परं मदीया दग्धा; अस्य सा न ताप्यतेऽपि; इति असूयन् इव अतनुः त्वद्विरहात् तस्य देहतापं विधत्ते ॥१०२॥

व्याख्या—(हे राजकुमारि !) आवयोः = नलस्य मम च, मूर्तिः = तनुः, तुल्या = सदृशी, समानरूपा इति भावः। अभूत् = जाता, परं=किन्तु, मदीया=

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मामकीना मूर्तिः, दग्धा = भस्मीकृता, हरतृतीयनयनेनेति शेषः, अस्य = नलस्य सा= मूर्त्तिः, न ताप्यतेऽपि=तापम् अपि न प्राप्यते, दाहस्य का कथेति शेषः। इति = अस्मात् कारणात्, असूयन् इव = ईर्ष्यंन् इव, अतनुः = अनङ्गः कामः। त्वद्विरहात् = भवत्या वियोगात्, तस्य = नलस्य, देहतापं = शरीरसन्तापं, विधत्ते=करोति ।। १०२ ।।

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) हम दोनोंके (नलके और मेरे) शरीर समान थे, परन्तु मेरा शरीर जलाया गया, नलका शरीर तापको भी प्राप्त नहीं कर रहा है, इस कारणसे मानों ईर्ष्या करता हुआ अनङ्ग (कामदेव) आपके वियोगसे नलके शरीरमें ताप कर रहा है ।। १०२ ।।

टिप्पणी—आवयोः = अहं च नलश्च आवां, तयोः "त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्" इस सूत्रसे एकशेष। मूर्तिः = "मूर्तिः काठिन्यकाययोः" इत्यमरः। तुल्या=तुलया संमिता, "नौवयोधर्म०" इत्यादि सूत्रसे यत्, तुला+यत्+टाप्। मदीया = मम इयम्, अस्मद् (मत्) +छ (ईय)+टाप्। दग्धा= दह्+क्तः+टाप्। ताप्यते = तप+णिच्+लट् (कर्म में) + यक्+त। अभ्यसूयन् = अभ्यसूयतीति अभि+पूर्वक "असूञ् उपतापे" इस कण्ड्वादि धातुसे "कण्ड्वादिभ्यो यक्" इस सूत्रसे यक्। अभि+असूञ्+यक्+लट् (शतृ)+सुः। अतनुः=अविद्यमाना तनुः यस्य सः (नञ्बहु०) त्वद्विरहात् = तव विरहः, तस्मात् (ष० त०)। देहतापं = देहस्य तापः तम् (ष० त०)। विधत्ते=वि+धा+लट्+त। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ।। १०२ ।।

लिपिं दृशा भित्तिविभूषणं त्वां नृपः पिबन्नादरनिर्निमेषम्।
चक्षुर्जलैरार्जितमात्मचक्षूरागं स धत्ते रचितं त्वया नु ? ।। १०३

अन्वयः—(हे भैमि !) स नृपः भित्तिविभूषणं लिपिं त्वां दृशा आदर-निर्निमेषं पिबन् चक्षुर्जलैः आर्जितं त्वया नु रचितम् आत्मचक्षूरागं धत्ते ।। १०३ ।।

व्याख्या—अथ कामस्य दशाऽवस्था वर्णयन् पद्यद्वयेन नयनप्रीतिं वर्णयति। (हे भैमि !) सः = पूर्वोक्तः, नृपः = राजा नलः, भित्तिविभूषणं = कुड्याऽलङ्कारभूतां, लिपिं = चित्रमयीं, त्वां = भवतीं, दृशा = नेत्रेण, आदरनिर्निमेषम् = आस्थया निमेषव्यापाररहितं यथा तथा, पिबन् = पानं कुर्वन्, प्रणयाऽतिशयेन पश्यन्निति भावः। चक्षुर्जलैः = नयनसलिलैः, अश्रुभिरिति भावः। आर्जितम् = उपार्जितं, त्वया नु = भवत्या वा, रचितं = निर्मितम् आत्मचक्षूरागं=स्वनयनलौहित्यं निजनेत्रप्रणयं च, धत्ते = धारयति ।। १०३ ।।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—(हे भैमि !) वे राजा (नल) दीवालकी अलङ्कारस्वरूप चित्रमयी आपको नेत्रोंसे आदरपूर्वक पलक भी न झुकाकर देखते हुए आँसूसे उपार्जित वा आपसे रचित अपने नेत्रोंकी अरुणता (लाली) और प्रेमको धारण करते हैं ॥ १०३ ॥

टिप्पणी—अब हंस नलकी कामसे उत्पन्न दश अवस्थाओंका वर्णन करता है। दश अवस्थाएँ ये हैं—

"नयनप्रीतिः प्रथमं, चित्ताऽऽसङ्गस्ततोऽथ संकल्पः।
निद्राच्छेदस्तनुता, विषयनिवृत्तिस्त्रपानाशः॥
उन्मादो मूर्च्छा मृतिरित्येताः स्मरदशा दशैव स्युः।"

अर्थात् नेत्रप्रीति, चित्तकी आसक्ति, संकल्प, निद्राका नाश, कृशता, विषयोंकी निवृत्ति, लज्जाका नाश, उन्माद (पागलपन), मूर्च्छा और मरण ये दश कामकृत अवस्थाएँ हैं। पहले दो श्लोकोंसे नेत्रप्रीतिका वर्णन करता है। भित्तिविभूषणं = भित्तेः विभूषणं, तत् (ष० त०)। आदरनिर्निमेषं = निर्गता निमेषाः (निमेषव्यापाराः) यत्र, (बहु०)। आदरेण निर्निमेषम् (तृ० त०) क्रि० वि०। पिबन् = पा + लट् (शतृ)। + सुः चक्षुर्जलैः = चक्षुषोर्जलानि, तैः (ष० त०)। आत्मचक्षूरागम् = आत्मनः चक्षुः (ष० त०), तस्य रागः, तम् (ष० त०)। "राग" पदके यहाँपर दो अर्थ हैं—एक अरुणता (लाली) दूसरा अनुराग (प्रेम)। धत्ते = धा + लट् + त। इस पद्यमें राजाके नेत्रका राग निर्निमेष दृष्टिसे देखनेसे हुआ है वा आपसे रचित है ऐसा सन्देह होनेसे "सन्देह" अलङ्कार है ॥ १०३ ॥

पातुर्दृशाऽऽलेख्यमयीं नृपस्य त्वामादरादस्तनिमीलयाऽस्ति।
ममेदमित्यश्रुणि नेत्रवृत्तेः प्रीतेर्निमेषच्छिदया विवादः ॥ १०४ ॥

अन्वयः—(हे राजकुमारि !) अस्तनिमीलया दृशा आलेख्यमयीं त्वाम् आदरात् पातुः नृपस्य नेत्रवृत्तेः प्रीतेः निमेषच्छिदया अश्रुणि विवादः अस्ति ॥ १०४ ॥

व्याख्या—(हे राजकुमारि !) अस्तनिमीलया = निमेषरहितया, दृशा = नेत्रेण, आलेख्यमयीं = चित्रस्थितां, त्वां = भवतीम्, आदरात् = प्रणयात्, पातुः = पानकर्तुः, द्रष्टुरिति भावः। तादृशस्य नृपस्य = राज्ञः, नलस्य, नेत्रवृत्तेः = नयनवर्तिन्याः, प्रीतेः = प्रणयस्य नेत्रप्रणयस्य, निमेषच्छिदया =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निमेषच्छेदेन सह, अश्रुणि = नेत्रजले विषये, विवादः = कलहः, अस्ति = वर्तते ॥ १०४ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) पलक न मारनेवाले नेत्रसे चित्रमें स्थित आपको आदरसे देखनेवाले राजाके नेत्रोंमें रहनेवाली प्रीतिका नेत्रोंमें रहनेवाले निमेषविच्छेदके साथ आँसूके विषयमें कलह होता है ॥ १०४ ॥

टिप्पणी—पूर्व पद्यमें वर्णित विषयको दूसरे रूपसे कहते हैं। अस्तनिमीलया= अस्तो निमीलो यस्याः सा अस्तनिमीला, तया (बहु०)। आलेख्यमयीम् = आलेख्य + मयट् (स्वरूप अर्थमें) + ङीप् + अम्। पातुः = पिबतीति पाता, तस्य, पा + तृच् + ङस्। नेत्रवृत्तेः = नेत्रयोः वृत्तिः यस्याः सा नेत्रवृत्तिः, तस्याः (व्यधिकरण बहु०)। प्रीतेः=प्री + क्तिन् + ङस्। निमेषच्छिदया=छेदनं छिदा, "छिदिर् द्वैधीकरणे" धातुसे भिदादिगणमें पाठ होनेसे "षिद्भिदादिभ्योऽङ्" इस सूत्रसे अङ् प्रत्यय, टाप्। निमेषस्य छिदा, तया (ष० त०)। विवादः = विरुद्धो वादः (गति०)। इस पद्यका तात्पर्य यह है कि हे राजकुमारि ! निर्निमेष दृष्टिसे आपके चित्रको देखनेपर राजाको जो आँसू आ गया, उसके विषयमें नेत्रप्रीति और नेत्रविच्छेदका परस्पर मेरे कारण आंसू आया है ऐसा कहकर विवाद होता है। यह नेत्रप्रीतिरूप कामदशाका वर्णन है ॥ १०४ ॥

त्वं हृद्गता भैमि ! बहिर्गताऽपि प्राणायिता नासिकयास्यगत्या।
न चित्तमाक्रामति तत्र चित्रमेतन्मनो यद्भवदेकवृत्ति ॥ १०५ ॥

अन्वयः—हे भैमि। त्वं बहिर्गता अपि हृद्गता। कया गत्या अस्य प्राणायिता न असि। (किन्तु) तत्र चित्रं चित्तं न आक्रामति। यत् एतन्मनो भवदेकवृत्ति ॥ १०५ ॥

व्याख्या—अथ मनःसङ्गमाह—हे भैमि = हे दमयन्ति !, त्वं = भवती, बहिर्गता अपि = बाह्यदेशयाता अपि, हृद्गता = अन्तर्गता, कया गत्या = केन प्रकारेण, अस्य = नलस्य, प्राणायिता = प्राणसमा, न असि = न भवसि, भवस्येवेत्यर्थः। अतः प्राणोऽपि नासिकया = नासिकाद्वारेण, आस्यगत्या = मुखद्वारेण उच्छ्वासनिःश्वासरूपेण बहिर्गतोऽपि अन्तर्गतो भवतीति शब्दश्लेषः। (किन्तु) तत्र = तस्मिन्, प्राणायितत्वे इति भावः। चित्रम् = आश्चर्यरसः, चित्तं = मनः, न आक्रामति = न उत्क्रम्य गच्छति, अत्र न किञ्चिच्चित्रमिति भावः। कुतः ? यत् = यस्मात् कारणात्, एतन्मनः = नलचित्तं, भवदेकवृत्ति = त्वदेकाऽवस्थानम् ॥ १०५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवाद:—हे भैमि। आप बाहर रहनेपर भी नलके चित्तके भीतर गई हुई हैं। कैसे आप नलके प्राणकी समान नहीं हैं ? उनमें प्राणके समान होनेपर आश्चर्यरस चित्तको नहीं छोड़ता है। जिस कारणसे कि नलका मन आपमें ही अवस्थित है ॥ १०५ ॥

टिप्पणी—हे भैमि = भीमस्य अपत्यं स्त्री भैमी, तत्सम्बुद्धौ, भीम+अण्+ङीप्। हृद्‌गता = हृत् गता (द्वि० त०)। "स्वान्तं हृन्मानसं मनः" इत्यमरः। प्राणायिता = प्राणवदाचरिता, 'प्राण' शब्दसे "कर्तुः क्यङ् सलोपश्च" इस सूत्रसे क्यङ् होकर क्त+टा। आस्यगत्या = आस्यस्य गतिः, तया (ष० त०)। एतन्मनः = एतस्य मनः (ष० त०)। भवदेकवृत्ति = एका वृत्तिर्यस्मिंस्तत् (बहु०)। भवत्याम् एकवृत्ति (स० त०)। 'भवतीं' शब्दका "सर्वनाम्नो वृतिमात्रे पुंवद्भावः" इससे पुंवद्भाव। इस पद्यमें विरोधाभास, शब्दश्लेष और उपमाका सङ्कर है ॥ १०५ ॥

अजस्रमारोहसि दूरदीर्घां सङ्कल्पसोपानततिं तदीयाम्।
श्वासान् स वर्षत्यधिकं पुनर्यद्ध्यानात्तव त्वन्मयतामवाप्य ॥ १०६ ॥

अन्वयः—(हे भैमि।) दूरदीर्घां तदीयां सङ्कल्पसोपानततिम् (त्वम्) अजस्रम् आरोहसि। यत् पुनः स नलः तव ध्यानात् तदा त्वन्मयताम् अवाप्य अधिकं श्वासान् वर्षति ॥ १०६ ॥

व्याख्या—अथ द्वाभ्यां सङ्कल्पावस्थामाह। (हे भैमि !) दूरदीर्घाम् = अत्यन्तायतां, तदीयां = नलसम्बन्धिनीं, सङ्कल्पसोपानततिं = मनोरथारोहणङ्क्ति, त्वम्, अजस्रं = निरन्तरम्, आरोहसि=अधितिष्ठिसि, "कथं भैमीं प्राप्नुयां, प्राप्तायां तस्यामहमेवं करिष्यामीत्यादिकं नलो विचारयतीति" भावः। यत् पुनः = भूयः, सः = पूर्वोक्तः, नलः = नैषधः, तव = भवत्याः, ध्यानात् = चिन्तनात्, तदा = चिन्तनसमये, त्वन्मयतां = त्वदात्मकत्वम्, अवाप्य = प्राप्य, अधिकं = प्रचुरं, यथा तथा, श्वासान्=निश्वासान्, वर्षति = मुञ्चति ॥ १०६ ॥

अनुवाद:—(हे भैमि !) अत्यन्त दीर्घ नलके मनोरथोंकी सीढ़ियोंमें आप निरन्तर चढ़ती रहती हैं। फिर वे नल आपके चिन्तनसे उस समय आपके स्वरूपको प्राप्त कर लम्बे श्वासोंको छोड़ते हैं ॥ १०६ ॥

टिप्पणी—दूरदीर्घां = दूरं दीर्घा, ताम् (सुप्सुपा०)। तदीयां = तस्येयं, ताम्, तद्+छ (ईय) +टाप्+अम्। सङ्कल्पसोपानततिं = सङ्कल्पा एव

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सोपानानि (रूपक०) । "सङ्कल्पः कर्म मानसम्" इति "आरोहणं स्यात्सोपानम्" इति चाऽमरः । सङ्कल्पसोपानानां ततिः, ताम् (ष० त०) । आरोहसि = आङ्+रुह+लट्+सिप् । त्वन्मयतां = त्वमेव स्वरूपं यस्य स त्वन्मयः, युष्मद् (त्वद्) + मयट् (स्वार्थमें) । त्वन्मयस्य भावस्त्वन्मयता ताम्, त्वन्मय+तल्+टाप्+अम् । आप्य=आङ्+आप्+क्त्वा (ल्यप्) । वर्षति = वृष+लट्+तिप् । इस पद्यमें सङ्कल्पसोपानमें आरोहणरूप कारणता दमयन्तीमें हैं और श्वासवर्षणरूप कार्यता नलमें है अतः दोनों विषयोंमें भिन्न भिन्न अधिकरण होनेसे असङ्गति अलङ्कार है और तादात्म्यमें उत्प्रेक्षा इस प्रकार दो अलङ्कारोंका सङ्कर है ॥ १०६ ॥

हृत्तस्य यां मन्त्रयते रहस्त्वां तां व्यक्तमामन्त्रयते मुखं यत् ।
तद्वैरिपुष्पायुधमित्रचन्द्रसख्यौचिती सा खलु तन्मुखस्य ॥ १०७ ॥

अन्वयः—तस्य हृत् यां त्वां रहो मन्त्रयते, तां त्वां मुखं व्यक्तम् आमन्त्रयते । सा तन्मुखस्य तद्वैरिपुष्पायुधमित्रचन्द्रसख्यौचिती खलु ॥ १०७ ॥

व्याख्या—(हे भैमि !) तस्य = नलस्य, हृत् = हृदयं, यां, त्वां = भवतीं, रहः = एकान्ते, मन्त्रयते = संभाषते । तां = तादृशीं, त्वां = भवतीं, मुखं = नलस्य आननं, व्यक्तं = प्रकाशम्, आमन्त्रयते = उच्चारयति, "हे प्रिये ! कुत्र गच्छसि, त्वां चिन्तयन्तं मां पश्ये" ति कथयतीति भावः । सा=तद्रहस्यप्रकाशनक्रिया, तन्मुखस्य = नलमुखस्य, तद्वैरिपुष्पायुधमित्रचन्द्रसख्यौचिती= नलशत्रुमदनसुहृदिन्दुमैत्र्यौचित्यम्, खलु = निश्चयेन ॥ १०७ ॥

अनुवादः—नलका हृदय जिन आपसे एकान्तमें मन्त्रणा करता है, उन आपसे नलका मुख स्पष्टरूप (प्रकाशरूप) से भाषण करता है । वह रहस्यप्रकाशनकी क्रिया नलके शत्रु कामदेवके मित्र चन्द्रसे मित्रताके औचित्यके अनुसार है ॥ १०७ ॥

टिप्पणी—रहः = "रहश्चोपांशु चाऽलिङ्गे" इत्यमरः । मन्त्रयते="मत्रि गुप्तपरिभाषणे" धातुसे णिच् होकर लट्+त । सा = विधेय "तद्वैरि० सख्यौचिती" की प्रधानतासे यह स्त्रीलिङ्गता है । तन्मुखस्य = तस्य मुखं, तस्य (ष० त०) । तद्वैरिपुष्पायुधमित्रचन्द्रसख्यौचिती = तस्य वैरी (ष० त०) । पुष्पाणि आयुधानि यस्य सः (बहु०) । तद्वैरी चाऽसौ पुष्पायुधः (क० धा०) । तस्य मित्रं (ष० त०), तेन सख्यम् (तृ० त०) । तस्य औचिती (ष० त०) । हृदयसे की गई गुप्त मन्त्रणाको मुखके प्रकाश करनेका यह भाव है कि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नलके वैरी कामदेवके मित्र चन्द्र हैं, उनके साथ नलके मुखकी मैत्री होनेसे (सादृश्यके कारण) मित्रके शत्रुका भेद-प्रकाश करना उचित ही है। यह भाव है। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार है ॥ १०७ ॥

स्थितस्य रात्रावधिशय्य शय्यां मोहे मनस्तस्य निमज्जयन्ती ।
आलिङ्ग्य या चुम्बति लोचने सा निद्राऽधुना न त्वदृतेऽङ्गना वा ॥१०८॥

अन्वयः—रात्रौ शय्याम् अधिशय्य स्थितस्य तस्य मनो मोहे निमज्जयन्ती या आलिङ्ग्य लोचने चुम्बति, सा निद्रा त्वत् ऋते अङ्गना वा अधुना न ॥१०८॥

व्याख्या—अथैकेन पद्येन निद्राच्छेदं विषयनिवृत्तिं चाह—स्थितस्येति। रात्रौ = निशायां, शय्यां = पर्यङ्कम्, अधिशय्य = शयित्वा, स्थितस्य = विद्यमानस्य, तस्य = नलस्य, मनः = मानसं, मोहे = वैचित्त्ये, सुखपारवश्य इति भावः। निमज्जयन्ती = प्रापयन्ती सती, या, आलिङ्ग्य = आश्लिष्य, लोचने = नेत्रे, चुम्बति = तत्र सम्बन्धं करोति, सा = तादृशी, निद्रा = स्वापक्रिया, त्वत् = भवत्याः, ऋते = विना, अङ्गना वा = नायिका वा, अधुना = इदानीं, न = नाऽस्ति, रात्रौ नलस्य निद्रा त्वां विना काऽपि नायिका च न वर्तत इति भावः। अत्र निद्रानिषेधाज्जागरः, अन्यस्या अङ्गनाया निषेधाद्विषयनिवृत्तिश्चोक्ता ॥ १०८ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) रातमें पलंगपर लेटनेवाले नलके मनको मोहमें डालती हुई जो आलिङ्गन कर नेत्रोंको चूमती है वह निद्रा अथवा आपके सिवाय कोई स्त्री अभी नहीं है ॥ १०८ ॥

टिप्पणी—शय्याम् = "अधिशय्या" अधिपूर्वक शीङ् धातुके योगमें "अधिशीङ्स्थाऽऽसां कर्म" इस सूत्रसे कर्मसंज्ञा होकर द्वितीया। अधिशय्य = अधि + शीङ् + क्त्वा (ल्यप्)। निमज्जयन्ती = नि + मस्ज + णिच् + लट् (शतृ) + ङीप् + सुः। चुम्बति = चुबि + लट् + तिप्। त्वत् = "ऋते" इस पदके योगमें "अन्यारादितरर्ते०" इस सूत्रसे पञ्चमी। इस पद्यमें प्रस्तुत निद्रा और अङ्गनाका चुम्बन आदि धर्मके साथ सम्बन्ध होनेसे तुल्ययोगिता अलङ्कार है ॥ १०८ ॥

स्मरेण निस्तक्ष्य वृथैव बाणैर्लावण्यशेषां कृशतामनायि ।
अनङ्गतामप्ययमाप्यमानः स्पर्धां न सार्धं विजहाति तेन ॥ १०९ ॥

अन्वयः—(हे भैमि !) अयं स्मरेण बाणैः निस्तक्ष्य वृथा एव लावण्यशेषां

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृशताम् अनायि । (अयम्) अनङ्गताम् आप्यमानोऽपि तेन सार्धं स्पर्धां न विजहाति ॥ १०९ ॥

व्याख्या—अथ नलस्य तनुताम् (कार्श्याऽवस्थाम्) आह—स्मरेणेति । (हे भैमि) अयं = नलः, स्मरेण = कामदेवेन, बाणैः = शरैः, निस्तक्ष्य = निशात्य, वृथा एव = व्यर्थम् एव, लावण्यशेषां = सौन्दर्याऽवशेषां, कृशतां = तनुताम्, अनायि = प्रापितः । वृथात्वं व्यनक्ति—अनङ्गतामिति । अनङ्गतां = कृशाऽङ्गताम्, आप्यमानोऽपि = नीयमानोऽपि, तेन = स्मरेण, सार्धं = समं, स्पर्धां = सङ्घर्षं, साम्यमिति भावः । न विजहाति = न परित्यजति । अङ्गस्य कार्श्येऽपि स्पर्धाबीजलावण्यस्य कार्श्याऽभावादङ्गकर्शनं वृथैवेति भावः ॥१०९॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) नलको कामदेवने बाणोंसे भेदन कर सौन्दर्यमात्र शेष रखकर कृश बना डाला । (परन्तु) वे (नल) अनङ्ग (कृश) होकर भी उन (कामदेव) के साथ (लावण्यमें) सङ्घर्षको नहीं छोड़ रहे हैं ॥ १०९ ॥

टिप्पणी—इस पद्यमें नलकी तनुता (कृश अवस्था) का वर्णन है । निस्तक्ष्य = निस्—उपसर्गपूर्वक "तक्ष त्वचने" धातुसे क्त्वाके स्थानमें ल्यप् । लावण्यशेषां = लावण्यम् एव शेषो यस्याः सा, ताम् (बहु०) । कान्तिविशेषको "लावण्य" कहते हैं, उसका लक्षण है—

"मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदङ्गेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ॥"

अर्थात् जैसे मोतीमें तरलता दिखाई पड़ती है वैसे ही अङ्गोंमें जो तरलता प्रतीत होती है उसे "लावण्य" कहते हैं । कृशतां = कृश + तल् + टाप् + अम् । अनायि = नी + लुङ् (कर्ममें) + त । अनङ्गताम् = अविद्यमानम् अङ्गं यस्य सः (नञ्बहु०), तस्य भावः, तत्ता, ताम् । अनङ्ग + तल् + टाप् + अम् । यहाँपर नञ् अल्पाऽर्थक है । आप्यमानः = आप् + लट् (कर्ममें) (शानच्) यक् + सु । तेन = "सार्धम्" के योगमें तृतीया । विजहाति = वि + हा + लट् + तिप् । कामदेवने नलके सौन्दर्यसे क्रुद्ध होकर उन्हें बाणोंसे भेदन कर अत्यन्त कृश बना डाला, तो भी सौन्दर्यमात्र शेष होकर भी नल कामदेवके साथ स्पर्धा नहीं छोड़ रहे हैं, यह इस पद्यका भावार्थ है । इस पद्यमें विशेषोक्ति अलङ्कार है ॥ १०९ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

त्वत्प्रापकात् त्रस्यति नैनसोऽपि, त्वय्येव दास्येऽपि न लज्जते यत् ।
स्मरेण बाणैरतितक्ष्य तीक्ष्णैर्लूनः स्वभावोऽपि कियान् किमस्य ? ॥ ११०

अन्वयः—(हे भैमि ।) स्मरेण तीक्ष्णैः बाणैः अतितक्ष्य अस्य स्वभावोऽपि कियान् अपि लूनः किम् ? यत् त्वत्प्रापकात् एनसः अपि न त्रस्यति, त्वयि दास्ये अपि न लज्जते एव ॥ ११० ॥

व्याख्या—अथ द्वाभ्यां पद्याभ्यां लज्जात्यागमाह । (हे भैमि !) स्मरेण = कामदेवेन, तीक्ष्णैः = निशितैः, बाणैः = शरैः, अतितक्ष्य = भृशं तनूकृत्य, शरीरमिति शेषः । अस्य = नलस्य, स्वभावोऽपि = पापभीरुत्वादिरूपा प्रकृतिरपि, कियान् अपि=अल्पः अपि, लूनः किं = छिन्नः किम् ? यत् = यस्मात्कारणात्, त्वत्प्रापकात् = त्वत्प्राप्तिसाधनात् । एनसः अपि = पापात् अपि, न त्रस्यति = नो बिभेति, एवं च—त्वयि = भवत्यां, दास्ये अपि = दासकर्मणि अपि, न लज्जते एव = नो जिह्रेति एव, स इति शेषः ॥ ११० ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) कामदेवने तीखे बाणोंसे अत्यन्त भेदन कर नलके स्वभावको भी कुछ छिन्न कर दिया है क्या ? जो कि नल आपको पानेके साधनभूत पापसे भी नहीं डरते हैं और आपके दासभावमें भी लज्जित नहीं ही हो रहे हैं ॥ ११० ॥

टिप्पणी—लूनः = लूञ् + क्तः + सुः । त्वत्प्रापकात् = तव प्रापकं तस्मात् (ष० त०) । एनसः = त्रस धातुके योगमें "भीत्राऽर्थानां भयहेतुः" इससे अपादानसंज्ञक होकर पञ्चमी । त्रस्यति = "त्रसी उद्वेगे" धातुसे "वा भ्राशभ्लाशभ्रमुक्लमुत्रसित्रुटिलषः" इससे विकल्पसे श्यन्, लट् + तिप् ॥ ११० ॥

स्मारं ज्वरं घोरमपत्रपिष्णोः सिद्धाऽगदङ्कारचये चिकित्सौ ।
निदानमौनादविशद्विशाला सांक्रामिकी तस्य रुजेव लज्जा ॥ १११ ॥

अन्वयः—घोरं स्मारं ज्वरं चिकित्सौ सिद्धाऽगदङ्कारचये निदानमौनात् अपत्रपिष्णोः तस्य विशाला लज्जा सांक्रामिकी रुजा इव अविशत् ॥ १११ ॥

व्याख्या—घोरं = दारुणं, स्मारं = स्मरसम्बन्धितं, ज्वरं = रोगविशेषं, कामसन्तापमित्यर्थः । चिकित्सौ = रोगप्रतिकर्तरि, सिद्धाऽगदङ्कारचये = समर्थवैद्यसमूहे, निदानमौनात् = रोगकारणाऽनभिधानात्, अपत्रपिष्णोः = लज्जाशीलस्य, तस्य = नलस्य, विशाला = महती, लज्जा = व्रीडा, सांक्रामिकी = संसर्गजनिता, रुजा इव = रोग इव, अविशत् = प्रविष्टा ॥ १११ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अनुवादः—दारुण कामसन्तापका प्रतिकार करनेवाले समर्थ वैद्यसमूहमें रोगके कारणको नहीं कहनेसे लज्जाशील नलकी बड़ी लज्जा संसर्गसे उत्पन्न रोगके समान प्रविष्ट हुई ॥ १११ ॥

टिप्पणी—स्मारं = स्मरस्य अयं स्मारः, तम्, स्मर + अण् + अम् । चिकित्सौ = केतितुम् इच्छुः चिकित्सुः, तस्मिन्, "कित निवासे रोगाऽपनयने च" इस धातुसे "गुप्तिज्किद्भ्यः सन्" इससे सन् होकर "सनाशंसभिक्ष उः" इससे उप्रत्यय । सिद्धाऽगदङ्कारचये = अगदं कुर्वन्तीति अगदङ्काराः, अगद- उपपदपूर्वक-कृ धातुसे "कर्मण्यण्" इससे अण् प्रत्यय । "कारे सत्याऽगदस्य" इससे मुम् आगम । सिद्धाश्च ते अगदङ्काराः (क० धा०), तेषां चयः, तस्मिन्, (ष० त०) । निदानमौनात् = निदानस्य मौनं, तस्मात् (ष० त०), हेतुमें पञ्चमी । अपत्रपिष्णोः = अपत्रपते तच्छीलः अपत्रपिष्णुः, तस्य, अप + त्रपूष् + इष्णुच् । "लज्जाशीलोऽपत्रपिष्णुः" इत्यमरः । सांक्रामिकी = संक्रमात् आगता, संक्रम शब्दसे "अध्यात्मादेष्ठञिष्यते" इससे ठञ् (इक) प्रत्यय और "अनुशतिकादीनां च" इससे उभयपदवृद्धि । रुजा = स्त्रीरुग्रुजा चोपताप-रोगव्याधिगदामयाः ।" इत्यमरः । संसर्गसे उत्पन्न रोगको 'सांक्रामिक' कहते हैं, जैसे कि—

"अक्षिरोगो ज्वरः कुष्ठं तथाऽपस्मार एव च ।
सहभुक्त्यादिसम्बन्धात्संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥"

अर्थात् नेत्ररोग, ज्वर (बुखार), कुष्ठ (कोढ़), अपस्मार (मिरगी) ये रोग सहभोज आदि सम्बन्धसे एक मनुष्यसे दूसरे मनुष्यके पास संक्रान्त होते हैं । अविशत् = विश + लङ् + तिप् ॥ १११ ॥

बिभेति रुष्टाऽसि किलेत्यकस्मात्स त्वां किलोपेत्य हसत्यकाण्डे ।
यान्तीमिव त्वामनुयात्यहेतोरुक्तस्त्वयेव प्रतिवक्ति मोघम् ॥ ११२ ॥

अन्वयः—सः अकस्मात् रुष्टा असि इति विभेति, अकाण्डे उपेत्य किल हसति; अहेतोः यान्तीम् इव त्वाम् अनुयाति, त्वया उक्त इव मोघं प्रतिवक्ति ॥ ११२ ॥

व्याख्या—अथ उन्मादाऽवस्थामाह—बिभेतीति । (हे भैमि ।) सः = नलः, अकस्मात् = अकाण्डे, रुष्टा = कुपिता, असि = भवसि, त्वमिति शेषः । इति = संभाव्य, बिभेति = त्रस्यति । अकाण्डे = अनवसरे, उपेत्य = प्राप्य,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

किल = इव, त्वामिति शेषः । हसति = हास्यं करोति । अहेतोः = अकारणात्, यान्तीम् इव = गच्छन्तीम् इव, त्वां = भवतीम् अनुयाति = अनुसरति, त्वया = भवत्या, उक्त इव = संभाषित इव, मोघं = निष्फलं, प्रतिवक्ति = प्रत्युत्तरयति । अयं सर्वोऽप्युन्मादाऽनुभावः ॥ ११२ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) वे (नल) अकस्मात् आप कुपित हैं ऐसा समझकर डर जाते हैं । अनवसरमें ही आप प्राप्त हो गई हैं ऐसा विचार कर हँसते हैं । विना कारणके ही आप जा रही हैं ऐसा समझ कर अनुसरण करते हैं और वे (नल) आपसे भाषित-से होकर उत्तर देते हैं ॥ ११२ ॥

टिप्पणी—रुष्टा = रुष्+क्त+टाप्+सुः । बिभेति = भी+लट्+तिप् । अकाण्डे = न काण्डः (नञ्०) तस्मिन् । उपेत्य = उप+आङ्+इण्+क्त्वा (ल्यप्) । हसति = हस्+लट्+तिप् । अहेतोः = न हेतुः, तस्मात् (नञ्०) । यान्तीं = या+लट् (शतृ)+ङीप्+अम् । प्रतिवक्ति = प्रति+वच्+तिप् । यह सब उन्मादका कार्य है ॥ ११२ ॥

भवद्वियोगाद् भिदुरार्तिधारायमस्वसुर्मज्जति निःशरण्यः ।
मूर्च्छामयद्वीपमहाऽऽन्ध्यपङ्के हा हा ! महीभृद्भटकुञ्जरोऽयम् ॥ ११३ ॥

अन्वयः—(हे भैमि !) भवद्वियोगात् भिदुरार्तिधारायमस्वसुः मूर्च्छामयद्वीपमहाऽऽन्ध्यपङ्के अयं महीभृद्भटकुञ्जरः निःशरण्यः (सन्) मज्जति । हा हा ! ॥ ११३ ॥

व्याख्या—अथ मूर्च्छाऽवस्थामाह—भवदिति । भवद्वियोगात् = त्वद्विरहात् हेतोः, भिदुराऽऽर्तिधारायमस्वसुः = अविच्छिन्नदुःखपरम्परायमुनायाः, मूर्च्छामयद्वीपमहाऽऽन्ध्यपङ्के = मूर्च्छारूपजलमध्यस्थानमहामोहकर्दमे, अयम् = एषः, महीभृद्भटकुञ्जरः = राजवीरकरी, निःशरण्यः = निरवलम्बः सन्, मज्जति = ब्रुडति । हा हा इति खेदाऽतिशयः ॥ ११३ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) आपके वियोगसे अविच्छिन्नदुःखधारा-रूप यमुनाके मूर्च्छारूपद्वीपके महामोहरूप कीचड़में पड़कर ये वीर राजा नल, हाथीके समान अवलम्बनहीन होकर डूब रहे हैं, हाय हाय ! ॥ ११३ ॥

टिप्पणी—भवद्वियोगात् = भवत्या वियोगः, तस्मात् (ष० त०), "सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पुंवद्भावः" इस नियमसे पुंवद्भाव, हेतुमें पञ्चमी । भिदुरार्तिधारायमस्वसुः = आर्तेर्धारा (ष० त०) । नारायणी टीकामें "भिदुरा"के बदलेमें "छिदुरा" ऐसा पाठ है, "अच्छिदुरा"का अर्थ हुआ

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

निरन्तर। भिदुरा चाऽसौ आर्तिधारा (क० धा०)। यमस्य स्वसा (ष०त०)। भिदुराऽऽर्तिधारा एव यमस्वसा, तस्याः (रूपक०)। मूर्च्छामयद्वीपमहाऽऽन्ध्य-पङ्के = मूर्च्छा एव मूर्च्छामयम्, मूर्च्छा+मयट् (स्वरूप अर्थमें)। मूर्च्छामयं च तद्द्वीपम् (क० धा०)। अन्धस्य भावः आन्ध्यम् (अन्ध+ष्यञ्)। महच्च तत् आन्ध्यम् (क० धा०)। मूर्च्छामयद्वीपे महान्ध्यं, (स० त०), तदेव पङ्कं, तस्मिन् (रूपक०)। महीभृद्भटकुञ्जरः = महीं बिभर्तीति महीभृत्, मही+भृ+क्विप् (उपपद०)। स चाऽसौ भटः (क० धा०)। स एव कुञ्जरः (रूपक०)। निःशरण्यः = निर्गतः शरण्यो यस्मात् सः (बहु०)। मज्जति = (टु)+मस्जो+लट्+तिप्। इस पद्यमें आर्तिधारामें यमस्वसाका आरोप होनेसे रूपक अलङ्कार है ॥ ११३ ॥

सव्याऽपसव्यत्यजनाद् द्विरुक्तैः पञ्चेषुबाणैः पृथगर्जितासु।
दशासु शेषा खलु तद्दशा या तया नभः पुष्प्यतु कोरकेण ॥ ११४ ॥

अन्वयः—सव्याऽपसव्यत्यजनात् द्विरुक्तैः पञ्चेषुबाणैः पृथक् अर्जितासु दशासु शेषा या तद्दशा तया कोरकेण नभः पुष्प्यतु ॥ ११४ ॥

व्याख्या—दशमी कामदशा तु कदाऽपि माभूदिति आह—सव्येति। (हे भैमि !) सव्याऽपसव्यत्यजनात् = वामदक्षिणहस्तमोचनात्, द्विः=द्विवारम्, उक्तैः = प्रतिपादितैः, द्विगुणीकृतैः, पञ्चेषुबाणैः=कामशरैः, दशभिरिति भावः। पृथक् = प्रत्येकम्, अर्जितासु = उत्पादितासु, दशासु = अवस्थासु, शेषा = अवशिष्टा, या तद्दशा =दशमावस्था, तया = दशमाऽवस्थया, कोरकेण=कलिकया, नभः = आकाशं, पुष्प्यतु = पुष्पितम् अस्तु, नलस्य सा दशमी (मरणरूपा) अवस्था नभःपुष्पकल्पा अस्तु, कदापि मा भूदिति भावः। त्वत्प्राप्तेरिति शेषः ॥ ११४ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) वायें और दाहिने हाथोंसे छोड़नेसे काम-देवके दुगुने (दश) बाणोंसे अलग-अलग उत्पन्न अवस्थाओंमें अवशिष्ट जो दशवीं अवस्था (मरणरूपवाली) है उस अवस्थारूप कलीसे आकाश पुष्पित हो, अर्थात् कदाऽपि न हो ॥ ११४ ॥

टिप्पणी—सव्याऽपसव्यत्यजनात् = सव्यश्च अपसव्यश्च सव्याऽपसव्यौ (द्वन्द्वः), ताभ्यां त्यजनं, तस्मात् (तृ० त०)। द्विः = द्वि शब्दसे "द्वित्रि-चतुर्भ्यः सुच्" इस सुत्रसे सूच् प्रत्यय। पञ्चेषुबाणैः = पञ्च इषवो यस्य सः (बहु०), पञ्चेषोः बाणाः, तैः (ष० त०)। तद्दशा = सा चाऽसौ दशा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(क० धा०), मरणरूप दशा अशुभ होनेसे उसका यद् और तद् शब्दसे निर्देश किया गया है। तया कोरकेण = उस दशमी अवस्थामें कोरकका आरोप होनेसे रूपक अलङ्कार है। "कलिका कोरकः पुमान्" इत्यमरः। पुष्प्यतु = "पुष्प विकसने" धातुसे लोट् + तिप् ॥ ११४ ॥

धन्याऽसि वैदर्भि ! गुणैरुदारैर्यया समाकृष्यत नैषधोऽपि।

इतः स्तुतिः का खलु चन्द्रिकाया यदब्धिमप्युत्तरलीकरोति ॥ ११५ ॥

अन्वयः—हे वैदर्भि ! धन्या असि, यया उदारैः गुणैः नैषधोऽपि समाकृष्यत। चन्द्रिकायाः यत् अब्धिम् अपि उत्तरलीकरोति, इतः का स्तुतिः खलु ॥ ११५ ॥

व्याख्या—हे वैदर्भि=हे दमयन्ति ! हे वैदर्भि रीते ! इत्यपि गम्यते। धन्या= पुण्यवती, असि = वर्तसे, यया = त्वया, उदारैः = उत्कृष्टैः, गुणैः = लावण्य-विनयादिभिः, अन्यत्र श्लेषप्रसादादिभिः गुणैः, नैषधोऽपि = नलोऽपि, तादृशो धीरोपि, समाकृष्यत = सम्यक् आकृष्टः, वशीकृत इति भावः। चन्द्रिकायाः = कौमुद्याः, यत् = यस्माद्धेतोः, अब्धिम् अपि = समुद्रम् अपि, गभीरमपीति भावः, उत्तरलीकरोति = क्षोभयति; इतः = अस्मात्, का, स्तुतिः खलु = का, वर्णना, खलु। न काऽपीति भावः ॥ ११५ ॥

अनुवादः—हे विदर्भदेशकी राजकुमारि ! आप धन्य हैं, जिन आपने नलको भी आकृष्ट कर दिया है। जो चन्द्रिका समुद्रको भी क्षुब्ध कर देती है, इससे अधिक उसका क्या वर्णन किया जा सकता है ? ॥ ११५ ॥

टिप्पणी—वैदर्भि = विदर्भ+अण्+ङीप्+सु (सम्बुद्धिमें)। एक पक्षमें वैदर्भीरीति। धन्या = धनं लब्ध्री, धन शब्दसे "धनगणं लब्धा" इस सूत्रसे यत् प्रत्यय, स्त्रीत्वविवक्षामें टाप्। गुणैः = वैदर्भी रीतिके पक्षमें श्लेष प्रसाद आदि गुण लिये जाते हैं। समाकृष्यत=सम्+आङ्+कृष+लङ् (कर्ममें)+त। उत्तरलीकरोति = उत्तरल+च्वि+कृ+लट्+तिप्। इस पद्यमें प्रति-वस्तूपमा अलङ्कार है, जैसे कि साहित्यदर्पणमें उसका लक्षण है—

"प्रतिवस्तूपमा साम्याद्वाक्ययोर्गम्यसाम्ययोः।
एकोऽपि धर्मः सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक् ॥" १०–६८।

इसमें समाकर्षण और उत्तरलीकरण क्रिया एक ही है। पुनरुक्ति हटानेके लिए भिन्नवाचक शब्दसे निर्देश किया गया है ॥ ११६ ॥

नलेन भायाः शशिना निशेव, त्वया स भायान्निशया शशीव।

पुनः पुनस्तद्युगयुग् विधाता स्वभ्यासमास्ते नु युवां युयुक्षुः ॥ ११७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

अन्वयः—शशिना निशा इव (त्वम्) नलेन भायाः । सः (अपि) निशया शशी इव त्वया भायात् । पुनः पुनः तद्युगयुक् विधाता युवां युयुक्षुः स्वभ्यासम् आस्ते नु ? ॥ ११७ ॥

व्याख्या—(हे भैमि !) शशिना = चन्द्रमसा, निशा इव = रात्रिः इव, (त्वं = भवती), नलेन = नैषधेन, भायाः = शोभस्व । सः = नलः अपि, निशया = रात्र्या, शशी इव = चन्द्रमा इव, त्वया = भवत्या, भायात् = शोभताम् । पुनः पुनः = वारं वारं, प्रतिमासमिति भावः । तद्युगयुक् = निशा-शशियुगलयोजकः, विधाता=ब्रह्मा, युवां = नलं त्वां च, युयुक्षुः = योजनेच्छुः, सन् । स्वभ्यासं = निरन्तराऽभ्यासे । आस्ते नु=तिष्ठति किम् ? ॥ ११७ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) चन्द्रके साथ रात्रिके समान आप नलसे शोभित हों । नल भी रात्रिके साथ चन्द्रके समान आपसे शोभित हों । इस प्रकार वारंवार रात्रि और चन्द्रकी जोड़ीको मिलानेवाले ब्रह्माजी आप दोनोंको भी मिलानेकी इच्छा करते हुए निरन्तर अभ्यास बढ़ानेमें तत्पर रहते हैं क्या ? ॥ ११७ ॥

टिप्पणी—भायाः = "भा दीप्तौ" धातुसे आशीर्लिङ्में सिप् । तद्युगयुक् = तयोर्युगं (ष० त०), तद् युनक्तीति, तद्युग + युज् + क्विप् (उपपद०) । युवां= नलं च त्वां च युवां, तौ "त्यदादीनि सर्वैर्नित्यम्" इससे एकशेष । युयुक्षुः=योक्तु-मिच्छुः, युज् + सन् + उः । स्वभ्यासम् = अभ्यासस्य समृद्धौ, समृद्धिके अर्थमें "अव्ययं विभक्तिसमृद्धि०" इत्यादि सूत्रसे अव्ययीभाव समास और "तृतीया-सप्तम्योर्बहुलम्" इस सूत्रसे सप्तमी विभक्तिका विकल्पसे अम्भाव । "योग्या-मुपास्ते" इस पाठान्तरमें योग्याम् = अभ्यासम् । उपास्ते = करोति, यह अर्थ है । "योग्याऽभ्यासाऽर्कयोषितोः" इति विश्वः । आस्ते + आस + लट् + त । इस पद्यमें अन्योन्य अलङ्कार, दो उपमाएँ और उत्प्रेक्षा इनका सङ्कर है ॥११७॥

स्तनद्वये तन्वि ! परं तवैव पृथौ यदि प्राप्स्यति नैषधस्य ।
अनल्पवैदग्ध्यविवर्धिनीनां पत्त्रावलीनां रचना समाप्तिम् ॥ ११८ ॥

अन्वयः—हे तन्वि ! नैषधस्य अनल्पवैदग्ध्यविवर्धिनीनां पत्त्रावलीनां रचना समाप्तिं प्राप्स्यति यदि (तर्हि) पृथौ तव एव स्तनद्वये परं प्राप्स्यति ॥११८॥

व्याख्या—हे तन्वि = हे कृशाङ्गि, नैषधस्य = नलस्य, अनल्पवैदग्ध्य-विवर्धिनीनां = महानैपुण्योज्जृम्भणीनां, पत्त्रावलीनां = पत्त्रपङ्क्तीनां, रचना= निर्मितिः, समाप्तिं = सम्पूर्णतां, प्राप्स्यति यदि = आसादयिष्यति चेत्, तर्हि,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पृथौ = विशाले, तव एव = भवत्या एव, स्तनद्वये = कुचद्वितये, परम् = उत्कर्षं यथा तथा, प्राप्स्यति = आसादयिष्यति, अन्यस्या अयोग्यत्वादिति भावः ॥ ११८ ॥

अनुवादः—हे कृशाङ्गि ! नलकी बड़ी निपुणतासे बढ़ाई गई पत्रावलियोंकी रचना समाप्तिको प्राप्त करेगी तो आपके ही विशाल पयोधरोंमें उत्कर्षपूर्वक प्राप्त करेगी ॥ ११८ ॥

टिप्पणी—अनल्पवैदग्ध्यविवर्धिनीनाम् = अनल्पं च तत् वैदग्ध्यम् (क० धा०), तेन विवर्धिन्यः, तासाम् (तृ० त०)। पत्त्राऽऽवलीनां = पत्त्राणामावल्यः, तासाम् (ष० त०)। प्राप्स्यति = प्र+आप्+लृट्+तिप्। पृथौ = पृथुशब्दके भाषितपुंस्क होनेसे "तृतीयाऽऽदिषु भाषितपुंस्कं पुंवद् गालवस्य" इस सूत्रसे पुंवद्भाव। स्तनद्वये = स्तनयोर्द्वयं तस्मिन् (ष० त०)। इस पद्यमें "सम" अलङ्कार है, उसका लक्षण है—

"समं स्यादानुरूप्येण श्लाघा या योग्यवस्तुनोः ।" ६–९२ ॥ ११८ ॥

एकः सुधांऽशुर्न कथञ्चन स्यात्तृप्तिक्षमस्तन्नयनद्वयस्य ।
त्वल्लोचनाऽऽसेचनकस्तदस्तु नलाऽऽस्यशीतद्युतिसद्वितीयः ॥ ११९ ॥

अन्वयः—एकः सुधांऽशुः त्वन्नयनद्वयस्य कथञ्चन तृप्तिक्षमो न स्यात्, तत् नलाऽऽस्यशीतद्युतिसद्वितीयः (सन्) त्वल्लोचनाऽऽसेचनकः अस्तु ॥ ११९ ॥

व्याख्या—एकः = एकाकी, सुधांऽशुः = चन्द्रः, त्वन्नयनद्वयस्य = भवन्नेत्रद्वितयस्य, कथञ्चन = केनाऽपि प्रकारेण, तृप्तिक्षमः = प्रीणनसमर्थः, न स्यात् = नो भवेत्, तत् = तस्मात्कारणात्, नलाऽऽस्यशीतद्युतिसद्वितीयः = नलास्यशीतद्युतिना (नलमुखचन्द्रेण) सद्वितीयः (द्वितीययुक्तः) सन्, त्वल्लोचनाऽऽसेचनकः = त्वल्लोचनयोः (भवन्नयनयोः) आसेचनकः (अत्यन्ततृप्तिकरः), अस्तु = भवतु ॥ ११९ ॥

अनुवादः—एक चन्द्र आपके दोनों नेत्रोंको किसी प्रकारसे तृप्त करनेमें समर्थ नहीं होंगे, इस कारणसे वे (चन्द्र) नलके मुखचन्द्रके साथ दूसरे होते हुए आपके दोनों नेत्रोंको अत्यन्त तृप्ति करनेवाले हों ॥ ११९ ॥

टिप्पणी—सुधांऽशुः = सुधा अंशुः यस्य सः (बहु०)। त्वन्नयनद्वयस्य = नयनयोर्द्वयम् (ष० त०), तव नयनद्वयं, तस्य (ष० त०)। तृप्तिक्षमः = तृप्तौ क्षमः (स० त०)। नलाऽऽस्यशीतद्युतिसद्वितीयः = नलस्य आस्यम्

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ष० त०)। शीता द्युतिर्यस्य सः (वहु०)। नलाऽऽस्यम् एव शीतद्युतिः (रूपक०)। द्वितीयेन सहितः सद्वितीयः (तुल्ययोग-वहु०)। नलाऽऽस्यशीतद्युतिना सद्वितीयः (तृ० त०)। त्वल्लोचनाऽऽसेचनकः = तव लोचने (ष० त०), तयोः आसेचनकः (ष० त०)। "तदासेचनकं तृप्तेर्नाऽस्त्यन्तो यस्य दर्शनात्" इत्यमरः ।। ११९ ।।

अहो ! तपःकल्पतरुर्नलीयस्त्वत्पाणिजाग्रस्फुरदङ्कुरश्रीः ।
त्वद्भ्रूयुगं यस्य खलु द्विपत्री, तवाऽधरो रज्यति यत्कलम्बः ।। १२० ।।
यस्ते नवः पल्लवितः कराभ्यां, स्मितेन यः कोरकितस्तवाऽऽस्ते ।
अङ्गम्रदिम्ना तव पुष्पितो यः, स्तनश्रिया यः फलितस्तवैव ।। १२१ ।।

अन्वयः—(हे राजकुमारि !) नलीयः तपःकल्पतरुः अहो ! (यः) त्वत्पाणिजाऽग्रस्फुरदङ्कुरश्रीः, यस्य त्वद्भ्रूयुगं द्विपत्री, तव अधरो यत्कलम्बो रज्यति ।। १२० ।।

यः ते कराभ्यां नवः पल्लवितः । यः तव स्मितेन कोरकितः आस्ते ।
यः तव अङ्गम्रदिम्ना पुष्पितः । यः तव एव स्तनश्रिया फलितः ।।१२१।।

व्याख्या—अथ द्वाभ्यां पद्याभ्यां नलस्य तपःसाफल्यमाह—अहो इत्यादिना। (हे भैमि !) नलीयः=नलसम्वन्धी, तपःकल्पतरुः = तपस्याकल्पवृक्षः, अहो = आश्चर्यस्वरूपः । (यः = कल्पतरुः), त्वत्पाणिजाऽग्रस्फुरदङ्कुरश्रीः=त्वत्पाणिजाग्रैः (त्वत्कराऽग्रैः) स्फुरदङ्कुरश्रीः (प्रकाशमानाऽङ्कुरशोभः), यस्य = कल्पतरोः, त्वद्भ्रूयुगं=भवद्भ्रूयुग्मं, द्विपत्री=पत्रद्वयं, प्रथमोत्पन्नमिति शेषः। तव = भवत्याः, अधरः = ओष्ठः, यत्कलम्बः = कल्पतरुनालं, रज्यति = रक्तो भवति, स्वयमेवेति शेषः ।। १२१ ।।

यः = नलीयः कल्पतरुः, ते = तव, कराभ्यां = हस्ताभ्यां, नवः = नूतनः, पल्लवितः = सञ्जातपल्लवः । यः = कल्पतरुः, तव = भवत्याः, स्मितेन = मन्दहास्येन, कोरकितः = सञ्जातकोरकः सन्, आस्ते=तिष्ठति । यः = कल्पतरुः, तव = भवत्याः, अङ्गम्रदिम्ना = शरीरमार्दवेन, पुष्पितः=सञ्जातपुष्पः । यः = कल्पतरुः, तव एव = भवत्या एव, स्तनश्रिया = पयोधरशोभया, फलितः = सञ्जातफलः आस्ते ।। १२१ ।।

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) नल का तपस्यारूप कल्पवृक्ष आश्चर्यस्वरूप है। जो कि आपके नाखूनोंके अग्रभागोंसे इसके अङ्कुरोंकी शोभा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

प्रकाशित हो रही है। जिस (कल्पवृक्ष) के आपकी भौंहें दो पत्ते हैं। आपका ओष्ठ जिसका लाल नाल हो रहा है ॥ १२० ॥

जो (नलका तपःसम्बन्धी कल्पवृक्ष) आपके दो हाथोंसे नया पल्लववाला है। जो आपके मन्दहास्यसे कलीसे युक्त है। जो आपके शरीरकी कोमलतासे पुष्पयुक्त है। जो नलका तपस्यारूप कल्पवृक्ष आपकी ही पयोधर–शोभासे फल-सम्पन्न है ॥ १२१ ॥

टिप्पणी—नलीयः = नलस्य अयम्, "वा नामधेयस्य वृद्धसंज्ञा वक्तव्या" इससे वृद्धसंज्ञक होकर नल-शब्दसे "वृद्धाच्छः" इस सूत्रसे छ (ईय) प्रत्यय। तपःकल्पतरुः = तप एव कल्पतरुः (रूपक०), त्वत्पाणिजाऽग्रस्फुरदङ्कुरश्रीः= पाणिभ्यां जाताः पाणिजाः (नखाः), पाणि+जन्+डः (उपपद०)। पाणिजानाम् अग्राणि (ष० त०)। तव पाणिजाग्राणि (ष० त०)। अङ्कुराणां श्रीः (ष० त०)। स्फुरन्ती अङ्कुरश्रीर्यस्य (बहु०)। त्वत्पाणिजाऽग्रैः स्फुरदङ्कुरश्रीः (तृ० त०)। त्वद्भ्रूयुगं = भ्रुवोर्युगम् (ष० त०), तव भ्रूयुगम् (ष० त०)। द्विपत्त्री = द्वयोः पत्त्रयोः समाहारः (द्विगु०)। यत्कलम्बः = यस्य कलम्बः (ष० त०), "अस्य तु नालिका। कलम्बश्च" इत्यमरः। रज्यति = "रञ्ज रागे" धातुसे "कुषिरञ्जोः प्राचां श्यन्परस्मैपदं च" इस सूत्रसे कर्मकर्तामें श्यन् और परस्मैपदित्व ॥ १२० ॥

पल्लवितः = पल्लवानि संजातानि अस्य सः, पल्लव+इतच्। कोरकितः = कोरकाः संजाता अस्य सः, कोरक+इतच्। अङ्गम्रदिम्ना=मृदोर्भावो म्रदिमा, "मृदु" शब्दसे "पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा" इस सूत्रसे इमनिच्प्रत्यय और "र ऋतो हलादेर्लघोः "इस सूत्रसे 'ऋ' के स्थानमें 'र' आदेश। अङ्गानां म्रदिमा, तेन (ष० त०)। पुष्पितः = पुष्पाणि संजातानि अस्य सः, पुष्प+इतच्। स्तनश्रिया = स्तनयोः श्रीः, तया (ष० त०)। फलितः = फले सञ्जाते अस्य सः, फल+इतच्। सर्वत्र "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्" इससे इतच्प्रत्यय। यहाँपर दो श्लोकोंमें तपमें कल्पतरुत्वका और दमयन्तीके नख आदियोंमें अवयत्वका आरोप करनेसे साऽवयवरूपक, तथा अवयवी परस्पर कार्यकारणभूत कल्पतरुका और अवयव नखाऽङ्कुर आदियोंका भिन्न देशमें रहनेसे असङ्गति अलङ्कारसे मिश्रित है, इस प्रकार सङ्कर है। असङ्गतिका लक्षण है—

"कार्यकारणयोर्भिन्नदेशतायामसङ्गतिः।" (सा० द० १०–९०)॥१२१॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कंसीकृताऽऽसीत् खलु मण्डलीन्दोः संसक्तरश्मिप्रकरा स्मरेण ।
तुला च नाराचलता निजैव मिथोऽनुरागस्य समीकृतौ वाम् ॥ १२२ ॥

अन्वयः—(हे भैमि !) स्मरेण वां मिथोऽनुरागस्य समीकृतौ संसक्तरश्मिप्रकरा इन्दोः मण्डली कंसीकृता आसीत् । निजा नाराचलता एव तुला (कृता आसीत्)॥ १२२ ॥

व्याख्या—(हे भैमि !) स्मरेण = कामदेवेन कर्त्रा, वां = युवयोः, मिथोऽनुरागस्य = अन्योन्यप्रणयस्य, समीकृतौ = समीकरणे निमित्ते, संसक्तरश्मिप्रकरा = संयोजितकिरणसमूहा, संयोजितसूत्रसमूहा च, इन्दोः = चन्द्रमसः, मण्डली = बिम्बं, कंसीकृता = लोहपात्रीकृता, आसीत् = अभवत् । निजा = स्वकीया, नाराचलता एव = बाणवल्ली एव, तुला = तुलादण्डः, कृता आसीदिति शेषः ॥ १२२ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) कामदेवने आप दोनोंके (नल और आपके) परस्पर के अनुरागको बराबर करनेके लिए चन्द्रमण्डलको तराजूका पलड़ा बनाया, चन्द्रकिरणोंको रस्सी बनाया और अपनी बाणलताको तराजूका दण्ड बना डाला ॥ १२२ ॥

टिप्पणी—संसक्तरश्मिप्रकरा = रश्मीनां प्रकरः (ष० त०) । "किरणप्रग्रहौ रश्मी" इत्यमरः । संसक्तो रश्मिप्रकरो यस्यां सा (बहु०) । कंसीकृता= अकंसः कंसो यथा सम्पद्यते तथा कृता, कंस+च्वि+कृता । "कंसोऽस्त्री लोहभाजनम्" इति शाब्दिकमण्डनम् । नाराचलता = नाराच एव लता (रूपक०) । इस पद्यमें इन्दुदण्ड आदिमे कंस आदिका रूपण शाब्द और रश्मिमें सूत्रका आरोप आर्थ होनेसे एकदेशविवर्ति रूपक अलङ्कार है, जैसे कि—

"यत्र कस्य चिदार्थत्वमेकदेशविवर्ति तत् ।" (सा० द० १०–४६) ॥ १२२ ॥

सत्त्वस्रुतस्वेदमधूत्थसान्द्रे तत्पाणिपद्मे मदनोत्सवेषु ।
लग्नोत्थितास्त्वत्कुचपत्त्ररेखास्तन्निर्गतास्तत् प्रविशन्तु भूयः ॥ १२३ ॥

अन्वयः—मदनोत्सवेषु सत्त्वस्रुतस्वेदमधूत्थसान्द्रे तत्पाणिपद्मे लग्नोत्थिताः तन्निर्गताः त्वत्कुचपत्त्ररेखाः भूयः तत् प्रविशन्तु ॥ १२३ ॥

व्याख्या—(हे भैमि !) मदनोत्सवेषु = रतिक्रीडासु, सत्त्वस्रुतस्वेदमधूत्थसान्द्रे = मनोविकारजनितघर्मोदकरूपमधूच्छिष्टनिबिडे, तत्पाणिपद्मे = नलकरकमले, लग्नोत्थिताः = संक्रान्तविश्लिष्टाः, तन्निर्गताः = नलपाणिकमललिखिताः, त्वत्कुचपत्त्ररेखाः = भवत्पयोधरपत्त्रावलयः, भूयः = पुनः, तत् =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नलपाणिपद्मं, प्रविशन्तु = प्रवेशं कुर्वन्तु, कार्यस्य कारणे लयनियमादिति भावः। युवयोः समागमोऽस्तु इत्यभिप्रायः ॥ १२३ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) रतिक्रीडाओंमें मनोविकारसे उत्पन्न स्वेदरूप मोमसे गाढ नलके करकमलमें लगकर आपके कुचतटसे विश्लिष्ट नलके करकमलसे उत्पन्न आपके पयोधरोंकी पत्त्रावलियां फिर नलके करकमलमें प्रवेश करें ॥ १२३ ॥

टिप्पणी—मदनोत्सवेषु = मदनस्य उत्सवाः, तेषु (ष० त०)। सत्त्वस्रुत-स्वेदमधूत्थसान्द्रे = सत्त्वेन स्रुतः (तृ० त०), स चाऽसौ स्वेदः (क० धा०)। मधुन उत्तिष्ठतीति मधूत्थम्, मधु+उद्+स्था+कः (उपपद०)। सत्त्व-स्रुतस्वेद एव मधूत्थम् (रूपक०)। तेन सान्द्रंस्तस्मिन् (तृ० त०)। तत्पा-णिपद्मे = पाणिः पद्मम् इव (उपमेयपूर्वपद-कर्म०)। तस्य पाणिपद्मं, तस्मिन् (ष० त०)। लग्नोत्थिताः = पूर्वं लग्नाः पश्चात् उत्थिताः, "पूर्व-कालैकसर्वजरत्पुराणनवकेवलाः समानाऽधिकरणेन" इससे समास। तन्निर्गताः= तेन निर्गताः (तृ० त०)। त्वत्कुचपत्त्ररेखाः = तव कुचौ (ष० त०)। तयोः पत्त्ररेखाः (ष० त०)। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ १२३ ॥

> **बन्धाऽऽढ्यनानारतमल्लयुद्धप्रमोदितैः केलिवने मरुद्भिः।**
> **प्रसूनवृष्टिं पुनरुक्तमुक्तां प्रतीच्छतं भैमि ! युवां युवानौ ॥ १२४ ॥**

अन्वयः—हे भैमि ! बन्धाऽऽढ्यनानारतमल्लयुद्धप्रमोदितैः केलिवने मरुद्भिः पुनरुक्तमुक्तां प्रसूनवृष्टिं युवानौ युवां प्रतीच्छतम् ॥ १२४ ॥

व्याख्या—हे भैमि = हे दमयन्ति !, बन्धाऽऽढ्यनानारतमल्लयुद्धप्रमोदितैः= उत्तानाद्यासनसंपूर्णविविधसुरतमल्लसमरसन्तोषितैः, केलिवने = क्रीडोपवने, मरुद्भिः = वायुभिर्देवैश्च, पुनरुक्तयुक्तां = सान्द्रविसृष्टां, प्रसूनवृष्टिं = पुष्पवर्षं, युवानौ = तरुणौ, युवां = भवन्तौ, नलस्त्वं चेति भावः। प्रतीच्छतं = स्वीकुरु-तम्। समरवीरा जना अमरैः प्रसूनवृष्ट्या सत्क्रियन्त इति भावः ॥ १२४ ॥

अनुवादः—हे दमयन्ति ! क्रीडाके उपवनमें आसनोंसे समृद्ध अनेक रतिक्रीडा-रूप मल्लयुद्धोंसे प्रसन्न बनाये गये वायुवर्ग और देवताओंसे वारंवार छोड़ी गई पुष्पवृष्टिको तरुण और तरुणी आप दोनों (नल और आप) स्वीकार करें ॥ १२४ ॥

टिप्पणी—बन्धाढ्यनानारतमल्लयुद्धप्रमोदितैः=बन्धैः आढ्यं (तृ० त०), तच्च तत् नानारतम् (क० धा०), तदेव मल्लयुद्धं (रूपक०)। तेन प्रमो-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

दिताः, तैः (तृ० त०)। केलिवने = केलेर्वनं, तस्मिन् (ष० त०)। मरुद्भिः= "मरुतौ पवनाऽमरौ" इत्यमरः। पुनरुक्तमुक्तां = पुनरुक्तं (यथा तथा) मुक्ता, ताम् (सुप्सुपा०)। प्रसूनवृष्टिं = प्रसूनानां वृष्टिः, ताम् (ष० त०)। युवानौ = युवतिश्च युवा च "पुमान् स्त्रिया" इस सूत्रसे एकशेष। प्रतीच्छतं= प्रति + इष् + लोट् + थस्। इस पद्यमें रूपक अलङ्कार है ॥ १२४ ॥

अन्योन्यसङ्गमवशादधुना विभातां, तस्याऽपि तेऽपि मनसी विकसद्विलासे।
स्रष्टुं पुनर्मनसिजस्य तनुं प्रवृत्तमादाविव द्व्यणुकक्कृत् परमाणुयुग्मम् ॥ १२५ ॥

अन्वयः—(हे भैमि !) अधुना अन्योन्यसङ्गमवशात् विकसद्विलासे तस्य अपि ते अपि मनसी मनसिजस्य तनुं पुनः स्रष्टुं प्रवृत्तम् आदौ द्व्यणुकक्कृत् परमाऽणुयुग्मम् इव विभाताम् ॥ १२५ ॥

व्याख्या—(हे भैमि।) अधुना = इदानीम्, उभयसम्बन्धाऽनन्तरमिति भावः। अन्योन्यसङ्गमवशात् = परस्परसंयोगवशात्, विकसद्विलासे = वर्धमानोल्लासे, तस्य अपि = नलस्य अपि, ते अपि = भवत्या अपि, मनसी = मानसे, मनसिजस्य = कामस्य, तनुं = शरीरं, पुनः = भूयः, स्रष्टुम् = आरब्धुं, प्रवृत्तम् = उद्यतम्, आदौ = पूर्वकाले, द्व्यणुकक्कृत् = द्व्यणुकाऽऽरम्भकं, परमाणुयुग्मं = परमाणुयुगलम् इव, विभातां = शोभेताम् ॥ १२५ ॥

अनुवादः—(हे दमयन्ति !) इस समय परस्परमें संयोग होनेसे विकसित विलासवाले नलके और आपके मन आरम्भमें द्व्यणुकको बनाने वाले दो परमाणुओंके समान कामदेवके शरीरको फिर उत्पन्न कर शोभित हों ॥ १२५ ॥

टिप्पणी—अन्योन्यसङ्गमवशात् = अन्योन्ययोः सङ्गमः (ष० त०), तस्य वशः, तस्मात् (ष० त०)। विकसद्विलासे = विकसन् विलासो ययोस्ते (बहु०)। मनसिजस्य = मनसि जायते इति मनसिजः, तस्य, जन धातुसे "सप्तम्यां जनेर्डः" इस सूत्रसे ड प्रत्यय, "हलदन्तात्सप्तम्याः संज्ञायाम्" इससे अलुक् समास। "शम्बरारिर्मनसिजः कुसुमेषुरनन्यजः"। इत्यमरः। स्रष्टुं = सृज् + तुमुन्। द्व्यणुकक्कृत् = द्व्यणुकं करोतीति, द्व्यणुक + कृ + क्विप् (उपपद०)। परमाणुयुग्मं = परमाण्वोर्युग्मम् (ष० त०)। विभातां = वि + भा + लोट् + तस (ताम्)। न्यायशास्त्रके सिद्धान्तके अनुसार जैसे सक्रिय दो परमाणुओंसे द्व्यणुक उत्पन्न होता है, उसी तरह आप दोनोंके मन भी मिलकर विलासपूर्ण होकर कामदेवके शरीरको उत्पन्न करें यह अभिप्राय है। इस पद्यमें उत्प्रेक्षा अलङ्कार और वसन्ततिलका वृत्त है ॥ १२५ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कामः कौसुमचापदुर्जयममुं जेतुं नृपं त्वां धनु-
र्वल्लीमव्रणवंशजामधिगुणामासाद्य माद्यत्यसौ।
ग्रीवाऽलङ्कृतिपट्टसूत्रलतया पृष्ठे कियल्लम्बया
भ्राजिष्णुं कषरेखयेव निवसत्सिन्दूरसौन्दर्यया॥ १२६॥

अन्वयः—असौ कामः कौसुमचापदुर्जयम् अमुं नृपं जेतुम् अव्रणवंशजाम् अधिगुणां निवसत्सिन्दूरसौन्दर्यया कषरेखया इव पृष्ठे कियल्लम्बया ग्रीवाऽलङ्कृतिपट्टसूत्रलतया भ्राजिष्णुं त्वाम् एव धनुर्वल्लीम् आसाद्य माद्यति॥ १२६॥

व्याख्या—(हे भैमि !) असौ=अयं, नलजिगीषुरिति भावः। कामः=मदनः, कौसुमचापदुर्जयं = पुष्पधनुरजय्यम्, अमुम् = इमं, नृपं = राजानं नलं, जेतुं = वशीकर्तुम्, अव्रणवंशजां = सत्कुलप्रसूतां, दृढवेणुजन्यां च, अधिगुणाम् = अधिकसौन्दर्यादिगुणाम्, अधिज्यां च, निवसत्सिन्दूरसौन्दर्यया = अनुवर्तमान-सिन्दूरसमशोभायुक्तया, कषरेखया = कृतघर्षणरेखया, इव, पृष्ठे = ग्रीवापश्चा-द्भागे, कियल्लम्बया = कियद्दीर्घया, ग्रीवाऽलङ्कृतिपट्टसूत्रलतया = शिरोधिभूष-णकौशेयतन्तुवल्ल्या, भ्राजिष्णुं = शोभमानां, त्वाम् एव = भवतीम् एव, धनु-र्वल्लीं = चापलताम्, आसाद्य = प्राप्य, माद्यति = हृष्यति॥ १२६॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) वह कामदेव, फूलोंके धनुषसे नहीं जीते जानेवाले राजा नलको जीतनेके लिए उत्तम कुलमें उत्पन्न, सौन्दर्य आदि अधिक गुणोंवाली, सिन्दूरके सौन्दर्यसे युक्त घर्षणकी रेखाकी समान, पीठपर कुछ लटकनेवाले ग्रीवाके भूषण रेशमीवस्त्रकी सूत्रलतासे चमकनेवाली आपको ही धनुष्के रूपमें प्राप्त कर प्रसन्न हो रहा है॥ १२६॥

टिप्पणी—कौसुमचापदुर्जयं = कुसुमानामयं कौसुमः, कुसुम+अण्। कौसुमश्चाऽसौ चापः (क० धा०)। तेन दुर्जयः तम् (तृ० त०)। जितेन्द्रिय होनेसे कामदेवके फूलोंके बाणसे नहीं जीते जानेवाले राजा नलको, यह तात्पर्य है। जेतुं = जि+तुमुन्। अव्रणवंशजाम् = अविद्यमानः व्रणः (छिद्रं दोषो वा) यस्मिन् सः अव्रणः (नञ्-बहु०)। स चाऽसौ वंशः (क० धा०), तस्मिन् जाता, ताम्। अव्रणवंश+जन्+ड (उपपद०)+टाप् अम्। दमयन्तीके पक्षमें निर्दोष कुलमें उत्पन्न, धनुर्वल्लीपक्षमें निश्छिद्र अर्थात् दृढ वंशमें उत्पन्न "द्वौ वंशी कुलमस्करौ" इत्यमरः। अधिगुणाम् = अधिकाः गुणाः यस्यां सा, ताम् (बहु०)। दमयन्तीके पक्षमें लावण्य आदि अधिक गुणोंवाली। धनुर्वल्ली-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पक्षमें—गुणे इति अधिगुणा, ताम् (विभक्त्यर्थमें अव्ययीभाव), प्रत्यञ्चासे युक्त धनुर्वल्ली । निवसत्सिन्दूरसौन्दर्यया = सिन्दूरस्य सौन्दर्यम् (ष० त०), निवसत् सिन्दूरसौन्दर्यं यस्याः सा (बहु०) कषरेखया = कषस्य रेखा, तया (ष० त०), "शाणस्तु निकषः कषः" इत्यमरः । धनुष्के लायक बांसकी परीक्षामें उसपर डाला गया सिन्दूर रगड़नेपर सिन्दूरका वर्ण मिटे तो वह परिपक्व होनेसे उत्तम माना जाता है । कियल्लम्बया = कियत् (यथा तथा) लम्बा, तया (सुप्सुपा०) । ग्रीवाऽलङ्कृतिपट्टसूत्रलतया = ग्रीवाया अलङ्कृतिः (ष० त०), पट्टस्य सूत्रं (ष० त०) । पट्टसूत्रम् एव लता (रूपक०) । ग्रीवाऽलङ्कृतिश्चाऽसौ पट्टसूत्रलता (क० धा०), तया । भ्राजिष्णुं = भ्राजते तच्छीला भ्राजिष्णुः, ताम् "भ्राजृ दीप्तौ" धातुसे "भुवश्च" इस सूत्रसे "च" के पाठसे इष्णुच् प्रत्यय । धनुर्वल्लीं = धनुरेव वल्ली, ताम् (रूपक०) । आसाद्य = आङ्+सद्+णिच्+क्त्वा (ल्यप्) । माद्यति = "मदी हर्षे" धातुसे लट्+तिप् । इस पद्यमें श्लेष, और रूपकका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार और शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १२६ ॥

त्वद्गुच्छाऽऽवलिमौक्तिकानि घुटिकास्तं राजहंसं विभो-
र्वेध्यं विद्धि मनोभुवः स्वमपि तां मञ्जुं धनुर्मञ्जरीम् ।
यन्नित्याऽङ्कनिवासलालिततमज्याभुज्यमानं लस-
न्नाभीमध्यबिला विलासमखिलं रोमाऽऽलिरालम्बते ॥ १२७ ॥

अन्वयः—(हे भैमि) विभोः मनोभुवः त्वद्गुच्छाऽऽवलिमौक्तिकानि घुटिकाः, तं राजहंसं वेध्यं, स्वम् अपि तां मञ्जुं धनुर्मञ्जरीं विद्धि । यन्नित्याऽ-ङ्कनिवासलालिततमज्याभुज्यमानम् अखिलं विलासं लसन्नाभीमध्यबिला रोमाऽऽलिः आलम्बते ॥ १२७ ॥

व्याख्या—(हे भैमि !) विभोः = प्रभोः, मनोभुवः = कामस्य, पक्षिवेद्धु-रिति शेषः । त्वद्गुच्छाऽऽवलिमौक्तिकानि = भवद्धारविशेषमुक्ताः, घुटिकाः = गुलिकाः, तं = पूर्वोक्तं, राजहंसं = राजश्रेष्ठं नलं, कलहंसम् (अत्र श्लिष्टरूपकम्), वेध्यं = लक्ष्यं, स्वम् अपि = आत्मानम् अपि, तां = वक्ष्यमाणप्रकारां, मञ्जुं = मनोहरां, धनुर्मञ्जरीं = चापवल्लरीं, विद्धि = जानीहि । यन्नित्याऽ-ङ्कनिवासलालिततमज्याभुज्यमानं = यत्सततोत्सङ्गवासाऽत्याहतमौर्व्यनुभूयमा-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

नम्, अखिलं = समस्तं, विलासं=शोभां, ज्यारूपतामित्यर्थः। लसन्नाभीमध्य-विला = दीप्यन्नाभीगुलिकास्थाना, रोमालिः = त्वल्लोमपङ्क्तिः, आलम्बते = भजति ॥ १२७ ॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) आपकी हारपङ्क्तियोंके मोतियोंको काम-देवकी गोलियाँ जानिए, उन राजहंस नलको लक्ष्य (निशाना) समझिए, और अपनेको कामदेवकी सुन्दर धनुर्लता जानिए, जिसकी गोद (मध्यभाग)-में नित्य निवास करनेसे अत्यन्त आदृत प्रत्यञ्चासे अनुभव की जानेवाली सम्पूर्ण शोभाको प्रकाशित नाभिरूप मध्यच्छिद्र (गोलीरखनेका स्थान) से युक्त रोमपङ्क्ति आश्रय कर रही है॥ १२७ ॥

टिप्पणी—त्वद्गुच्छाऽऽवलिमौक्तिकानि=गुच्छानाम् आवलिः (ष० त०), "हारभेदा यष्टिभेदा गुच्छगुच्छार्धगोस्तनाः" इत्यमरः। तव गुच्छाऽऽवलिः (ष० त०) तस्याः मौक्तिकानि (ष० त०)। मुक्ता एव मौक्तिकानि। मुक्ता + ठक्। स्वाऽर्थमें ठक् (इक) प्रत्यय। राजहंसं=राजा हंस इव, तम् (उपमित-कर्म०)। तमेव राजहंसम्=हंसानां राजा, तम् (ष० त०) "राजदन्तादिषु परम्" इससे राज-पदका पूर्वप्रयोग। श्लिष्टरूपक है। "राजहंसो नृपश्रेष्ठे कादम्बकलहंसयोः" इति विश्वः। वेध्यं=वेधितुं योग्यः, तम्। "विध विधाने" धातुसे "ऋहलोर्ण्यत्" इस सूत्रसे ण्यत्, "धातूपसर्गाणामनेकाऽर्थाः" इस न्यायसे विध धातुका यहाँ ताडन अर्थमें प्रयोग किया गया है। स्वं = "स्वो ज्ञातावात्मनि स्वम्" इत्यमरः। धनुर्मञ्जरीं=धनुषो मञ्जरी, ताम् (ष० त०)। विद्धि = विद् + लोट + सिप्। यन्नित्याऽङ्कनिवासलालिततमज्याभुज्यमानम्=अङ्के निवासः (स० त०)। नित्यम् अङ्कनिवासः (सुप्सुपा०)। यस्या नित्याऽङ्कनिवासः (ष० त०)। अत्यर्थं लालिता लालिततमा, लालित + तमप् + टाप्। लालिततमा चाऽसौ ज्या (क० धा०)। यन्नित्याऽङ्कनिवासेन लालिततमज्या (तृ० त०), तया भुज्यमानः, तम् (तृ० त०)। लसन्नाभीमध्यबिला = मध्यं च तत् बिलम् (क० धा०)। नाभी एव मध्यबिलम् (रूपक०) लसत् नाभीमध्यबिलं यस्याः सा (बहु०)। रोमाऽऽलिः = रोम्णाम् आलिः (ष० त०)। आलम्बते= आङ् + लबि + लट् + त। इस पद्यमें मौक्तिक आदिमें गुटिकादि अवयवका शाब्द आरोप और अवयवी काममें वेद्धृत्वका अर्थ आरोप होनेसे एक देशविवर्ति साऽवयव रूपक अलङ्कार तथा शार्दूलविक्रीडितं छन्द है॥ १२७ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

पुष्पेषुश्चिकुरेषु ते शरचयं स्वं भालमूले धनू
रौद्रे चक्षुषि यज्जितस्तनुमनुभ्राष्ट्रं च यश्चिक्षिपे।
निर्विद्याऽऽश्रयदाश्रमं स वितनुस्त्वां तज्जयायाऽधुना
पत्त्राऽऽलिस्त्वदुरोजशैलनिलया तत्पर्णशालायते ॥ १२८ ॥

अन्वयः—यः पुष्पेषुः यज्जितः निर्विद्य ते चिकुरेषु स्वं शरचयं, भालमूले धनुः, रौद्रे चक्षुषि अनुभ्राष्ट्रं तनुं च चिक्षिपे। स वितनुः (सन्) अधुना तज्जयाय त्वाम् आश्रमम् आश्रयत्। (अतएव) त्वदुरोजशैलनिलया पत्त्रालिः तत्पर्णशालायते ॥ १२८ ॥

व्याख्या—(हे भैमि !) यः, पुष्पेषुः = कामः, यज्जितः = नलपराभूतः, अतएव, निर्विद्य = निर्वेदमनुभूय, ईर्ष्यया जीवननैष्फल्यं ज्ञात्वेति भावः। ते = तव, चिकुरेषु = केशेषु, स्वं = स्वकीयं, शरचयं = वाणसमूहं, त्वद्धृतपुष्पच्छलादिति भावः। भालमूले = त्वल्ललाटभागे, धनुः = कार्मुकं, भ्रूव्याजादिति भावः। रौद्रे = रुद्रसम्बन्धिनि, चक्षुषि = नेत्रे, तस्मिन्नेव अनुभ्राष्ट्रं = भर्जनपात्रे, तनुं च = स्वशरीरं च, चिक्षिपे = क्षिप्तवान्। पूर्वमेव दग्धतनुव्याजादिति भावः। इत्थं च सः = कामः, वितनुः = अनङ्गः सन्, अधुना = इदानीं, तज्जयाय = नलविजयार्थं, त्वां = भवतीम् एव, आश्रमं=तपोवनम्, आश्रयत् = आश्रितवान्, तपश्चर्यार्थमिति भावः। अन्यथा तं कथं जेष्यतीति तात्पर्यम्। अतएव त्वदुरोजशैलनिलया=भवत्स्तनपर्वतस्थिता, पत्त्रालिः = पत्त्ररचना, पर्णसमूहश्च, तत्पर्णशालायते=कामस्य पर्णशालावत् आचरति ॥१२८॥

अनुवादः—(हे राजकुमारि !) जिस कामदेवने नलसे पराजित होनेसे विरक्त होकर आपके केशोंमें अपने बाणोंको, आपके ललाट भागमें (भौंहोंके बहानेसे) धनुषको और रुद्रके नेत्र रूप भट्टीमें अपने शरीरको डाल दिया है। इस प्रकार उस कामदेवने अनङ्ग (शरीररहित) होकर इस समय नलको जीतनेके लिए आश्रमके समान आपका आश्रय लिया है, इसी कारणसे आपके पर्वतरूप पयोधरोंमें रहनेवाली पत्त्ररचना वा पर्णसमूह कामदेवकी पर्णशालाके समान आचरण कर रहा है ॥ १२८ ॥

टिप्पणी—पुष्पेषुः = पुष्पाणि इषवः अस्य सः (बहु०)। यज्जितः = येन जितः (तृ० त०)। निर्विद्य = निर्+विद्+क्त्वा (ल्यप्)। निर्वेदका लक्षण है—"तत्त्वज्ञानाऽऽपदीर्ष्यादेर्निर्वेदः स्वावमाननम्" (सा० द० ३–१४९) अर्थात् तत्त्वज्ञान, आपत्ति और ईर्ष्यादिसे अपना अपमान करना

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"निर्वेद" कहलाता है। शरचयं = शराणां चयः, तम् (ष० त०)। भालमूले= भालस्य मूलं, तस्मिन् (ष० त०), रौद्रे=रुद्र+अण्+ङि। अनुभ्राष्ट्रं = भ्राष्ट्रे इति, विभक्तिके अर्थमें "अव्ययं विभक्ति०" इत्यादि सूत्रसे अव्ययीभाव समासः। "क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ना" इत्यमरः। चिक्षिपे = क्षिप्+लिट्+त। वितनुः = विगता तनुर्यस्य सः (बहु०)। तज्जयाय = तस्य जयः, तस्मै (ष० त०)। आश्रयत् = आङ्+श्रिञ्+लङ्+तिप्। त्वदुरोजशैलनिलया= उरसि जातौ उरोजौ, उरस्+जन्+डः+औ। उरोजौ एव शैलौ (रूपक०)। तव उरोजशैलो (ष० त०), त्वदुरोजशैलौ निलयः यस्याः सा (बहु०)। पत्त्रालिः = पत्त्राणामालिः (ष० त०)। तत्पर्णशालायते = पर्णानां शाला (ष० त०), तस्य पर्णशाला (ष० त०)। तत्पर्णशाला इव आचरति, तत्पर्ण-शाला+क्यङ्+लट्+त। इस पद्यमें पूर्वार्द्धमें शर और चाप आदियोंका पूर्वोक्त पुष्प आदि विषयका निगरण (अप्रतिपादन) से उनके साथ अभेदका अध्यवसाय होनेसे अभेदलक्षण अतिशयोक्ति, "तत्पर्णशालायते" कहनेसे उपमा और "त्वाम् आश्रमम्" कहनेसे रूपकसे सङ्कीर्ण, उत्प्रेक्षावाचक इव आदिका प्रयोग न होनेसे प्रतीयमानोत्प्रेक्षा इनका सङ्कर और शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १२८ ॥

इत्यालपत्यथ पतत्त्रिणि तत्र भैमीं, सख्यश्चिरात्तदनुसन्धिपराः परीयुः।
शर्माऽस्तु ते विसृज मामिति सोऽप्युदीर्य, वेगाज्जगाम निषधाऽधिपराजधानीम्॥१२९॥

अन्वयः—तत्र पतत्त्रिणि भैमीम् इति आलपति (सति) अथ चिरात् तदनुसन्धिपराः सख्यः परीयुः। सोऽपि ते शर्म अस्तु, मां विसृज इति उदीर्य वेगात् निषधाऽधिपराजधानीं जगाम ॥ १२९ ॥

व्याख्या—तत्र = तस्मिन्, पतत्त्रिणि = पक्षिणि, हंसे। इति = इत्थम्, आलपति = आभाषमाणे सति, अथ = अस्मिन् अवसरे, चिरात् = बहुकालात्, तदनुसन्धिपराः = दमयन्त्यन्वेषणपराः, सख्यः=वयस्याः, परीयुः =परिवव्रुः। सोऽपि=हंसोऽपि, ते = तव, शर्म=सुखम्, अस्तु = भवतु, मां = हंसं, विसृज= प्रेषय, नलसमीप इति भावः। इति=एवम्, उदीर्य = उक्त्वा, वेगात् = जवात्, निषधाऽधिपराजधानीं = नलनगरीं, जगाम = वव्राज ॥ १२९ ॥

अनुवादः—हंसके दमयन्तीको ऐसा कहनेपर उस अवसरमें बहुत समयसे दमयन्तीको ढूँढ़ती हुई सखियोंने उनको घेर लिया। हंसने भी "आपको सुख

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मिले, मुझे रुखसत दीजिए" ऐसा कहकर वेगपूर्वक नलकी राजधानीमें प्रस्थान किया ॥ १२९ ॥

टिप्पणी—पतत्रिणि = पतत्र + इनि + ङि। आलपति = आङ् + लप + शतृ + ङि। तदनुसन्धिपराः = तस्या अनुसन्धिः (ष० त०), तस्मिन् पराः (स० त०)। परीयुः = परि + इण् + लिट् + झिः। विसृज = वि + सृज + लोट् + सिप्। उदीर्य = उद् + ईर + क्त्वा (ल्यप्)। निषधाऽधिपराजधानीं= निषधानाम् अधिपः (ष० त०)। राज्ञा धीयतेऽस्यामिति राजधानी, राजन् + धा + ल्युट् + ङीप् (उपपद०)। निषधाऽधिपस्य राजधानी, ताम् (ष० त०)। इस पद्यमें ओजगुण और वसन्ततिलका छन्द है ॥ १२९ ॥

चेतोजन्मशरप्रसूनमधुभिर्व्यामिश्रतामाश्रयत्
प्रेयोदूतपतङ्गपुङ्गवगवीहैयङ्गवीनं रसात्।
स्वादं स्वादमसीम मृष्टसुरभि प्राप्ताऽपि तृप्तिं न सा
तापं प्राप नितान्तमन्तरतुलामानर्च्छं मूर्च्छामपि ॥ १३० ॥

अन्वयः—सा चेतोजन्मशरप्रसूनमधुभिः व्यामिश्रताम् आश्रयत्, असीम-मृष्टसुरभि प्रेयोदूतपतङ्गपुङ्गवगवीहैयङ्गवीनं रसात् स्वादं स्वादं तृप्तिं प्राप्ता अपि अन्तः नितान्तं तापं न प्राप, अतुलां मूर्च्छाम् अपि न आनर्च्छं ॥ १३० ॥

व्याख्या—सा=दमयन्ती, चेतोजन्मशरप्रसूनमधुभिः=कामबाणभूतपुष्परसैः क्षौद्रैश्च, व्यामिश्रतां = मेलनम्, आश्रयत् = प्राप्नुवत्, मिश्रं सदिति भावः। असीम = सीमारहितम्, अपरिमितमिति भावः। मृष्टसुरभि = शुद्धसुरभि, प्रेयोदूतपतङ्गपुङ्गवगवीहैयङ्गवीनं = नलसन्देशहरराजहंसवाणीघृतं, रसात् = अनुरागात्, स्वादं स्वादं = पुनः पुनरास्वाद्य, तृप्तिं = सौहित्यं, प्राप्ता अपि = प्राप्तवत्यपि, अन्तः=अन्तःकरणे, नितान्तम्=अविरतं, तापं=सन्तापं, न प्राप = न प्राप्तवती, अतुलाम्=अनुपमां, मूर्च्छाम् अपि = मोहम् अपि, न आनर्च्छं = न प्राप ॥ १३० ॥

अनुवादः—दमयन्तीने कामदेवके बाणभूत फूलोंके रससे वा शहदसे मिश्रण-को प्राप्त करते हुए अपरिमित शुद्ध और सुगन्धित, प्रियतम नलके दूत पक्षि-श्रेष्ठ हंसकी वाणीरूप मक्खनको अनुरागसे आस्वादन कर तृप्तिको पाकर भी अन्तःकरणमें अत्यन्त तापको नहीं पाया और अनुपम मूर्च्छाको भी नहीं पाया ॥ १३० ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—चेतोजन्मशरप्रसूनमधुभिः = चेतसो जन्म यस्य स चेतोजन्मा, वामनाचार्यके "अवर्ज्यो बहुव्रीहिर्व्यधिकरणो जन्माद्युत्तरपदः" इस नियमके अनुसार व्यधिकरण-बहु० । शरा एव प्रसूनानि (रूपक०), चेतोजन्मनः शरप्रसूनानि (ष० त०), तेषां मधूनि, तैः (ष० त०) । मधुका अर्थ यहाँपर पुष्परस और शहद है । "मधु मद्ये पुष्परसे क्षौद्रेऽपि" इत्यमरः । आश्रयत् = आङ्+श्रिञ्+लट् (शतृ) + सुः । असीम = अविद्यमाना सीमा यस्य, तत् (नञ् बहु०) । मृष्टसुरभि = मृष्टं च तत् सुरभि (क० धा०), तत् । प्रेयोदूतपतङ्गपुङ्गवगवीहैयङ्गवीनं = प्रेयसो दूतः (ष० त०), स चाऽसौ पतङ्गः (क० धा०) । पुमांश्चाऽसौ गौः पुङ्गवः (क० धा०), "गोरतद्धितलुकि" इससे समासाऽन्त टच् प्रत्यय । प्रेयोदूतपङ्गश्चाऽसौ पुंगवः (क० धा०), तस्य गौः (वाणी), प्रेयोदूतपतङ्गपुङ्गवगवी (ष० त०), पूर्वसूत्रसे टच् और "टिड्ढाणञ्०" इत्यादि सूत्रसे ङीप् । ह्योगोदोहस्य विकारः हैयङ्गवीनं "हैयङ्ग-वीनं संज्ञायाम्" इस सूत्रसे निपात । "तत्तु हैयङ्गवीनं यद् ह्योगोदोहोद्भवं घृतम्" इत्यमरः । प्रेयोदूतपतङ्गपुङ्गवगवी एव हैयङ्गवीनं, तत् (रूपक०) । स्वादं स्वादं = "स्वद आस्वादने" धातुसे आभीक्ष्ण्य द्योत्य होनेपर "नित्य-वीप्सयोः" इससे द्विर्वचन और "आभीक्ष्ण्ये णमुल् च" इससे णमुल् । चकार पाठसे एक पक्षमें क्त्वा प्रत्यय भी होता है । तृप्तिं = तृप्+क्तिन्+अम् । अतुलाम् = अविद्यमाना तुला यस्याः सा अतुला, ताम् (नञ् बहु०) । आनर्च्छ = ऋच्छ+लिट्+तिप् । इस पद्यमें ··· "पतङ्गपुङ्गवगवीहैयङ्गवी-नम्" इसमें रूपक और मधुसे मिश्रित घृत विष होता है उसका पान करनेसे भी तापका अभाव कहनेसे विरोध अलङ्कार है, इन दोनोंका अङ्गाङ्गिभाव होनेसे सङ्कर अलङ्कार है । शार्दूलविक्रीडित छन्द है ॥ १३० ॥

तस्या दृशो वियति बन्धुमनुव्रजन्त्यास्तद्बाष्पवारि न चिरादवधिर्बभूव ।
पार्श्वेऽपि विप्रचकृषे तदनेन दृष्टेरारादपि व्यवदधे न तु चित्तवृत्तेः ॥ १३१ ॥

अन्वयः—वियति बन्धुम् अनुव्रजन्त्याः तस्या दृशः तद्बाष्पवारि चिरात् न अवधिः बभूव । तत् अनेन दृष्टेः पार्श्वे अपि विप्रचकृषे, चित्तवृत्तेस्तु आरात् अपि न व्यवदधे ॥ १३१ ॥

व्याख्या—वियति = आकाशे, बन्धुं = बान्धवभूतं हंसमित्यर्थः । अनु-व्रजन्त्याः = अनुगच्छन्त्याः, तस्याः = भैम्याः, दृशः = दृष्टेः, तद्बाष्पवारि = तन्नयनजलं, चिरात् = बहुकालं यावत्, न अवधिर्बभूव = न सीमारूपं बभूव,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

"ओदकान्तमनुव्रजेत्" इति शास्त्रात् अग्रे गन्तुं न ददौ इति भावः। तत्= तस्मात्कारणात्, अनेन = हंसेन, पार्श्वे अपि = समीपे अपि, विप्रचकृषे= विप्रकृष्टेन बभूवे। चित्तवृत्तेस्तु = मनोवृत्तेस्तु, आरात् अपि = दूरे अपि, न व्यवदधे = व्यवहितेन न बभूवे ॥ १३१ ॥

अनुवादः—आकाशमें बन्धु हंसका दृष्टिसे अनुगमन करनेवाली दमयन्तीके नेत्रोंके जल बहुत समयतक अवधिभूत नहीं हुए। इस कारणसे दमयन्तीके नेत्रोंसे निकटमें भी हंस दूर हुआ और दूर होने पर भी व्यवहित नहीं हुआ ॥ १३१॥

टिप्पणी—अनुव्रजन्त्याः = अनु + व्रज + लट् (शतृ) + ङीप् + ङस्। तद्बाष्पवारि = तस्या बाष्पम् (ष० त०), तस्य वारि (ष० त०)। आकाशमें अपने बन्धुको देखनेवाली दमयन्तीके आँखोंसे वियोगके दुःखसे उत्पन्न आंसू बहुत समयतक उनकी दृष्टिकी सीमाभूत नहीं हुए अर्थात् अपने बन्धुका कुछ दूरतक अनुगमनमें "ओदकान्तमनुव्रजेत्" अर्थात् जलाशयतक अनुगमन करे ऐसी शास्त्राज्ञा है। दमयन्तीके आँखोंमें आँसू आ जानेसे वह हंसका अनुगमन न कर सकी यह अभिप्राय है। विप्रचकृषे = वि + प्र + कृ + लिट् (भावमें) + त। चित्तवृत्तेः = चित्तस्य वृत्तिः, तस्याः (ष० त०)। आरात् = "आराद् दूरसमीपयोः" इत्यमरः। व्यवदधे = वि + अव + धा + लिट् (भावमें) + त। हंसके जानेपर दमयन्तीके आँखोंमें आँसू आ जानेसे हंस निकट होने पर भी ओझल हुआ परन्तु दूर होने पर भी चित्तवृत्तिसे ओझल नहीं हुआ यह तात्पर्य है। इस पद्यमें निकटस्थकी दूरता और दूरस्थकी निकटस्थताका वर्णन होनेसे विरोधाभास अलङ्कार है ॥ १३१ ॥

अस्तित्वं कार्यसिद्धेः स्फुटमथ कथयन्पक्षयोः कम्पभेदै-
राख्यातुं वृत्तमेतन्निषधनरपतौ सर्वमेकः प्रतस्थे।
कान्तारे निर्गताऽसि प्रियसखि ! पदवी विस्मृता किं नु मुग्धे !
मा रोदीरेहि यामेत्युपहृतवचसो निन्युरन्यां वयस्याः ॥ १३२ ॥

अन्वयः—अथ एकः पक्षयोः कम्पभेदैः कार्यसिद्धेः अस्तित्वं स्फुटं कथयन् एतत् सर्वं वृत्तं निषधनरपतौ आख्यातुं प्रतस्थे। अन्यां वयस्याः "हे प्रियसखि ! हे मुग्धे ! कान्तारे निर्गता असि, पदवी विस्मृता किं नु ? मा रोदीः। एहि यामः" इति उपहृतवचसः (सत्यः) (एनाम्) निन्युः ॥ १३२ ॥

व्याख्याः—अथ=अनन्तरम्, एकः = अन्यतरः, अनयोरिति शेषः, हंस इत्यर्थः। पक्षयोः = पतत्रयोः, कम्पभेदैः = वेपथुरूपचेष्टाविशेषैः, कार्यसिद्धेः =

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

कृत्यसाफल्यस्य, अस्तित्वं = सत्तां, स्फुटं = व्यक्तं, कथयन् = सूचयन्, एतत्= इदं, सर्वं = सकलं, वृत्तं = व्यतीतं, दमयन्त्या सह संलापादिकमिति भावः। निषधनरपतौ = नले विषये, आख्यातुं = कथयितुं, प्रतस्थे = प्रस्थितः। अन्याम् = अपराम्, अनयोरिति शेषः। दमयन्तीमित्यर्थः। वयस्याः = सख्यः, "हे प्रियसखि = हे वल्लभवयस्ये !, हे मुग्धे = हे मूढचित्ते !, कान्तारे = दुर्गमे वर्त्मनि, निर्गता = निष्क्रान्ता, असि = वर्तसे, पदवी = मार्गः, विस्मृता किं नु = प्रस्मृता किं नु, त्वयेति शेषः। मा रोदीः = रोदनं मा कुरु। एहि = आगच्छ। यामः = गच्छामः, सर्वा मिलित्वेति शेषः, इति = इत्थम् = उपहृत-वचसः = दत्तवचनाः सत्यः, निन्युः = प्रापयामासुः, राजप्रासादमिति शेषः॥ १३२॥

अनुवादः—तब उन दोनोंमें एक (हंस) ने पङ्खोंकी कम्परूप चेष्टाओंसे कार्य-साफल्यकी सत्ताको स्पष्ट रूपसे जताकर यह सब व्यतीत संभाषणरूप वृत्तान्तको महाराज नलको कहनेके लिए प्रस्थान किया। दमयन्तीको उनकी सखियाँ "हे प्रिय सखि ! हे मूढचित्तवाली ! आप दुर्गम मार्गमें निकली हैं, राहको भूल गई हैं क्या ? मत रोइए। आइए, हम सब चलें" इस प्रकारके वचनोंको कहती हुई दमयन्तीको राजप्रासादमें ले गईं॥ १३२॥

टिप्पणी—कम्पभेदैः = कम्पस्य भेदाः, तैः (ष० त०) कार्यसिद्धेः = कार्यस्य सिद्धिः, तस्याः (ष० त०)। अस्तित्वम् = विद्यमानका समानार्थक "अस्ति" अव्ययसे त्वप्रत्यय। कथयन् = कथ + णिच् + लट् (शतृ) सुः। निषधनरपतौ = नराणां पतिः (ष० त०), निषधानां नरपतिः, तस्मिन् (ष० त०), विषयमें सप्तमी। आख्यातुम् = आङ् + ख्या + तुमुन्। प्रतस्थे= प्र–उपसर्गपूर्वक स्था धातुसे "समवप्रविभ्यः स्थः" इस सूत्रसे आत्मनेपदमें लिट् + त। वयस्याः = वयसा तुल्याः, वयस् शब्दसे "नौवयोधर्म०" इत्यादि–सूत्रसे यत् प्रत्यय और टाप्। प्रियसखि = प्रिया चाऽसौ सखी (क० धा०), तत्संबुद्धौ। कान्तारे = "कान्तारं वर्त्म दुर्गमम्" इत्यमरः। विस्मृता = वि + स्मृ + क्त + टाप् + सुः। मा रोदीः = माङ्के योगमें "रुदिर् अश्रुविमोचने" धातुसे अट्के अभावपक्षमें "माङि लुङ्" इससे लुङ् + सिप्। "न माङ्योगे" इससे अट्का अभाव। यामः = या + लट् + मस्। उपहृतवचसः = उपहृतं वचो याभिस्ताः (बहु०)। निन्युः = नी + लिट् + झि॥ १३२॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

सरसि नृपमपश्यद्यत्र तत्तीरभाजः
स्मरतरलमशोकाऽनोकहस्योपमूलम् ।
किसलयदलतल्पम्लापिनं प्राप तं स
ज्वलदसमशरेषुस्पर्धिपुष्पर्द्धिमौलेः ॥ १३३ ॥

अन्वयः—स यत्र सरसि नृपम् अपश्यत्, तत्तीरभाजः ज्वलदसमशरेषुस्पर्धिपुष्पर्द्धिमौलेः अशोकाऽनोकहस्य उपमूलं स्मरतरलं किसलयदलतल्पम्लापिनं तं प्राप ॥ १३३ ॥

व्याख्या—सः = हंसः, यत्र = यस्मिन्, सरसि = कासारसमीपे, नृपं = राजानं नलम्, अपश्यत् = दृष्टवान्, तत्तीरभाजः = तत्तटरुहस्य, ज्वलदसमशरेषुस्पर्धिपुष्पर्द्धिमौलेः = दीप्यमानकामवाणसङ्घर्षिकुसुमसमृद्धिशिखरस्य, अशोकाऽनोकहस्य = अशोकवृक्षस्य, उपमूलं = मूलसमीपे, स्मरतरलं = कामचञ्चलं, किसलयदलतल्पम्लापिनं = पल्लवपत्रशयनम्लानिकारकं, तं = नृपं, नलं, प्राप = प्राप्तवान् ॥ १३३ ॥

अनुवादः—उस हंसने जिस तालाबके समीपमें राजा नलको देखा था उसके तीरमें उत्पन्न और चमकते हुए कामबाणोंसे स्पर्धा करनेवाले फूलोंसे युक्त चोटीवाले अशोक वृक्षके नीचे कामदेवसे चञ्चल, पल्लवोंके पत्तेकी सेजको म्लान करनेवाले राजाको प्राप्त किया ॥ १३३ ॥

टिप्पणी—अपश्यत् = दृश् + लङ् + तिप् । तत्तीरभाजः = तस्य तीरं (ष० त०), तत् भजतीति तत्तीरभाक्, तस्य, तत्तीर + भज् + ण्विः + (उपपद०) ङस् । ज्वलदसमशरेषुस्पर्धिपुष्पर्द्धिमौलेः = न समाः (नञ्०) । असमाः शरा यस्य सः (बहु०), तस्य इषवः (ष० त०) । ज्वलन्तश्च ते असमशरेषवः (क० धा०) । तान् स्पर्धत इति ज्वलदसमशरेषुस्पर्धिनी, ज्वलदसमशरेषु + स्पर्ध + णिनि + ङीप् (उपपद०), पुष्पाणाम् ऋद्धिः (ष० त०) । ज्वलदसमशरेषुस्पर्धिनी चाऽसौ पुष्पर्द्धिः (क० धा) सा मौलौ यस्य सः (व्यधिकरणबहु०), तस्य । अशोकाऽनोकहस्य = अशोकश्चाऽसौ अनोकहः, तस्य (क० धा०) । उपमूलं = मूलस्य समीपे, "अव्ययं विभक्ति" समीप०"—इत्यादि सूत्रसे समीप अर्थमें अव्ययीभाव । स्मरतरलं = स्मरेण तरलः तम् (तृ० त०) । किसलयदलतल्पम्लापिनं = किसलयानां दलानि

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

(ष० त०), तेषां तल्पं (ष० त०), तत्, म्लापयतीति तच्छीलः तम्, किसल-दलतल्प + म्लै + णिच् + पुक् + णिनिः (उपपद०) + अम् । प्राप = प्र + आप् + लिट + तिप् । मालिनी छन्द है ।। १३३ ।।

"परवति दमयन्ति ! त्वां न किञ्चिद्वदामि,
द्रुतमुपनम, किं मामाह सा ? शंस हंस !" ।
इति वदति नलेऽसौ तच्छशंसोपनम्रः
प्रियमनु सुकृतां हि स्वस्पृहाया विलम्बः ।। १३४ ।।

अन्वयः—"परवति हे दमयन्ति ! त्वां किञ्चित् न वदामि" । "हे हंस ! द्रुतम्; उपनम सा मां किम् आह ? शंस" । इति वदति नले असौ उपनम्रः (सन्) तत् शशंस । हि सुकृतां प्रियम् अनु स्वस्पृहाया (एव) विलम्बः ।। १३४।।

व्याख्या—परवति = हे पराऽधीने !, हे दमयन्ति = हे भैमि ! त्वां = भवतीं, किञ्चित् = किमपि, न वदामि = न कथयामि, मत्सविधे शीघ्रं प्रणय-सन्देशः किमर्थं न प्रहित इति कृत्वा नोपालभ इति भावः । हे हंस = हे राज-हंस !, द्रुतं = शीघ्रम्, उपनम = समीपम् आगच्छ । सा = दमयन्ती, मां = नलं, किम्, आह = वदति, शंस = कथय, तदिति शेषः । इति=एवं वदति = भाषमाणे, नले = नैषधे, असौ = हंसः, उपनम्रः = समीपमागतः सन्, तत् = वृत्तान्तजातं, शशंस = कथयामास । हि = यतः, सुकृतां = पुण्यात्मनां, प्रियम् अनु = इष्टाऽर्थं प्रति, स्वस्पृहायाः = निजेच्छाया एव, विलम्बः = समयाधिक्यम्, न तु इच्छाऽनन्तरं तत्सिद्धेर्विलम्ब इति भावः ।। १३४ ।।

अनुवादः—"हे पराऽधीने दमयन्ति ! मैं तुम्हें कुछ भी नहीं कहता हूँ" । "हे हंस । तुम शीघ्र मेरे पास आओ । दमयन्तीने मुझे क्या कहा ? कहो ।" नलके ऐसा कहनेपर उस हंसने राजाके समीप आकर सब वृत्तान्त बतलाया, क्योंकि पुण्यात्माओंको अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिके लिए अपनी इच्छाका मात्र विलम्ब होता है (इच्छाके अनन्तर अभीष्ट वस्तुकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं होता है) ।। १३४ ।।

टिप्पणी—परवति = पर + मतुप् + ङीप् (सम्बुद्धिमें), "परतन्त्रः पराऽधीनः परवान्नाथवानपि" । इत्यमरः । वदामि = वद + लट् + मिप् । उपनम= उप + नम् + लोट् + सिप् । शंस = शंस् + लोट् + सिप् । वदति = वद् +

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

लट् (शतृ)+ङि । शशंस = शंस + लिट् + तिप् । सुकृतां = शोभनं कृतवन्त इति सुकृतः, तेषाम्, सु-उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातुसे "सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः" इस सूत्रसे क्विप् प्रत्यय । प्रियम् = "अनु" इस पदकी "अनुर्लक्षणे" इस सूत्रसे कर्मप्रवचनीय संज्ञा होनेसे उसके योगमें "कर्मप्रवचनीययुक्ते द्वितीया" इससे द्वितीया । स्वस्पृहायाः = स्वस्य स्पृहा, तस्याः (ष० त०) । इस पद्यमें सामान्यसे विशेषका समर्थन होनेसे अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है । मालिनी छन्द है ॥ १३४ ॥

कथितमपि नरेन्द्रः शंसयामास हंसं
किमिति किमिति पृच्छन् भाषितं स प्रियायाः ।
अधिगतमतिवेलानन्दमार्द्वीकमत्तः
स्वयमपि शतकृत्वस्तत्तथाऽन्वाचचक्षे ॥ १३५ ॥

अन्वयः—स नरेन्द्रः कथितम् अपि प्रियाया भाषितं किमिति किमिति पृच्छन् हंसं शंसयामास । (किं च) अतिवेलानन्दमार्द्वीकमत्तः (सन्) अधिगतं तत् स्वयम् अपि शतकृत्वः अन्वाचचक्षे ॥ १३५ ॥

व्याख्या—सः = पूर्वोक्तः, नरेन्द्रः = राजा, नलः, कथितम् अपि = उक्तम् अपि, प्रियायाः = दयितायाः, दमयन्त्या इत्यर्थः । भाषितं = वचनं, किमिति किमिति=कीदृक् कीदृक् इति, पृच्छन्=अनुयुञ्जानः सन्, हंसं=राजहंसं, शंसयामास = पुनः आख्यापयामास । (किं च) अतिवेलाऽऽनन्दमार्द्वीकमत्तः = अत्यन्तप्रमोदद्राक्षामदयुक्तः (सन्), अधिगतं = सम्यग्गृहीतं, तत् = हंसप्रतिपादितं दमयन्तीभाषितं, स्वयम् अपि = आत्मना अपि, शतकृत्वः=शतवारम्, अन्वाचचक्षे = अनूदितवान्, मत्तोऽपि उक्तमेव वचनं भूयो भूयो वक्तीति भावः ॥ १३५ ॥

अनुवादः—राजा नलने हंससे कहे गये भी दमयन्तीके वचनको कैसा ? कैसा ? ऐसा पूछ कर हंससे फिर कहलवाया । अत्यन्त आनन्दस्वरूप द्राक्षामद्यसे मत्त होकर सुने गये, हंससे प्रतिपादित दमयन्तीके वचनका स्वयम् भी सैकड़ों वार अनुवाद किया ॥ १३५ ॥

टिप्पणी—नरेन्द्रः = नराणाम् इन्द्रः (ष० त०) । पृच्छन् = प्रच्छ + लट् (शतृ) + सुः । हंसम् = शंस धातुके शब्दकर्मक होनेसे णिच्के न होनेपर कर्तृ-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

संज्ञक हंससे णिच् होनेपर "गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माऽकर्मकाणामणि कर्ता स णौ" इससे कर्मसंज्ञक होकर द्वितीया । शंसयामास = शंस + णिच् + लिट् + तिप् । अतिवेलाऽऽनन्दमार्द्वीकमत्तः = अतिवेलश्चाऽसौ आनन्दः (क० धा०) । मृद्वीकायाः (द्राक्षायाः) विकारो मार्द्वीकम्, मृद्वीका शब्दसे "तस्य विकारः" इससे अण्, आदिवृद्धि । अतिवेलाऽऽनन्द एव मार्द्वीकं (रूपक०), तेन मत्तः (तृ० त०) । शतकृत्वः = शतवारम्, शत शब्दसे "संख्यायाः क्रियाऽऽभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच्" इस सूत्रसे कृत्वसुच् प्रत्यय । अन्वाचचक्षे = अनु + आङ् + चक्षिङ् + लिट् + त । इस पद्यमें रूपक अलङ्कार और मालिनी छन्द है ॥ १३५ ॥

श्रीहर्षं कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः सुतं
श्रीहीरः सुषुवे जितेन्द्रियचयं मामल्लदेवी च यम् ।
तार्तीयीकतया मितोऽयमगमत्तस्य प्रबन्धे महा-
काव्ये चारुणि नैषधीयचरिते सर्गो निसर्गोज्ज्वलः ॥ १३६ ॥

अन्वयः—कविराजराजिमुकुटाऽलङ्कारहीरः श्रीहीरः मामल्लदेवी च जितेन्द्रियचयं यं श्रीहर्षं सुतं सुषुवे । तस्य प्रबन्धे चारुणि नैषधीयचरिते महाकाव्ये अयं तार्तीयीकतया मितः निसर्गोज्ज्वलः सर्गः अगमत् ॥ १३६ ॥

व्याख्या—व्याख्यातपूर्वः श्लोकः संक्षेपेण पुनर्व्याख्यायते । कविराजराजिमुकुटालङ्कारहीरः = पण्डितश्रेष्ठश्रेणीकिरीटभूषणवज्रमणिः, श्रीहीरः, मामल्लदेवी च, जितेन्द्रियचयं = वशीकृतहृषीकसमूहं, यं श्रीहर्षं, सुतं = पुत्रं, सुषुवे = जनयामास । तस्य = श्रीहर्षस्य, प्रबन्धे = रचनायां, चारुणि = सुन्दरे, नैषधीयचरिते = तदाख्ये, महाकाव्ये, अयं = सन्निकृष्टस्थः, तार्तीयीकतया = तृतीयत्वेन, मितः = परिमितः, निसर्गोज्ज्वलः = स्वभावसुन्दरः, सर्गः = अध्यायः, अगमत् = गतः समाप्त इति भावः ॥ १३६ ॥

अनुवादः—श्रेष्ठ पण्डितोंकी श्रेणीके मुकुटके हीरकस्वरूप श्रीहीर और मामल्लदेवीने इन्द्रियोंको जीतनेवाले जिन श्रीहर्ष पुत्रको उत्पन्न किया, उनकी रचनामें सुन्दर, नैषधीयचरित महाकाव्यमें यह तृतीयरूपसे परिमित, स्वभावसे सुन्दर सर्ग समाप्त हुआ ॥ १३६ ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

टिप्पणी—तार्तीयीकतया = त्रयाणां पूरणः तृतीयः, 'त्रि' शब्दसे "त्रेः सम्प्रसारणं च" इससे तीय प्रत्यय और सम्प्रसारण। तृतीय एव तार्तीयीकः, 'तृतीय' शब्दसे "तृतीयादीकक् स्वाऽर्थे वा वाच्यः" इस वार्तिकसे स्वार्थमें विकल्पसे ईकक् प्रत्यय और कित् होनेसे "किति च" इस सूत्रसे आदिवृद्धि। तार्तीयीकस्य भावः तार्तीयीकता, तया तार्तीयीक+तल्+टाप्+ टा। शेष भाग पहलेके समान ॥ १३६ ॥

इति श्रीचन्द्रकलाऽभिख्यायां नैषधीयचरितव्याख्यायां तृतीयः सर्गः।

छात्रप्रबोधकरणाऽर्थमयं प्रयास-
स्तीकाकृतोऽत्र नहि कोऽपि मतिप्रकाशः।
स्यात्संभ्रमभ्रमकृतं मम दूषणं चेत्
क्षाम्यन्तु तद्बुधवराः सुकृतः प्रतीक्ष्याः ॥ १ ॥

—:❀:—

मुमुक्षु भवन वेद वेदांग विद्यालय
ग्रन्थालय
आगत क्रमांक......322.......
दिनांक.............................

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri
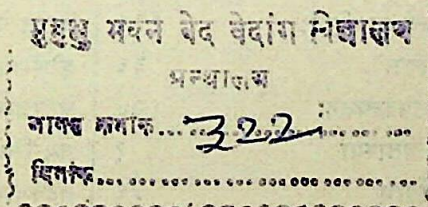
नैषधीयचरितके तृतीय सर्गमें अकारादिक्रमसे पद्यानुक्रमणिका

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय
वाराणसी।
आगत क्रमांक........1597........
दिनांक..........................

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri